दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर

विरचित

सत्यार्थ-बोध

Ācārya Viśuddhasāgara's

Satyārtha-bodha

Know The Truth

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर विरचित

सत्यार्थ-बोध

Ācārya Viśuddhasāgara's

Satyārtha-bodha

KNOW THE TRUTH

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर विरचित

सत्यार्थ-बोध

Ācārya Viśuddhasāgara's

Satyārtha-bodha

KNOW THE TRUTH

सम्पादक

श्रमण सुव्रतसागर मुनि

English Rendering

Vijay K. Jain

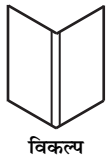

विकल्प

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर विरचित

सत्यार्थ-बोध

Ācārya Viśuddhasāgara's

Satyārtha-bodha

KNOW THE TRUTH

Non-copyright
This work may be reproduced, translated and published in
any language without any special permission.

ISBN: 978-81-932726-8-8

Rs. 600/-

Published, in the year 2021, by:
Vikalp Printers
Anekant Palace, 29 Rajpur Road
Dehradun-248001 (Uttarakhand) India

E-mail: vikalp_printers@rediffmail.com

Printed at:
Vikalp Printers, Dehradun

प्राप्ति स्थान-

Mrs. Sonal Jain Chhabra, Dehradun
WhatsApp: 9412057845

Ms. Malika Jain, Dehradun
WhatsApp: 8923114988

श्रमण संस्कृति सेवा समिति, इन्दौर
94253-21151, 98262-10189

श्री नन्दीश्वर द्वीप जिनालय, लालघाटी, भोपाल
94253-74897

श्री विशुद्ध ग्रंथालय, परेड मंदिर, भिण्ड (म.प्र.)
98269-61617

परम पूज्य गणाचार्य १०८ श्री विरागसागर जी महाराज

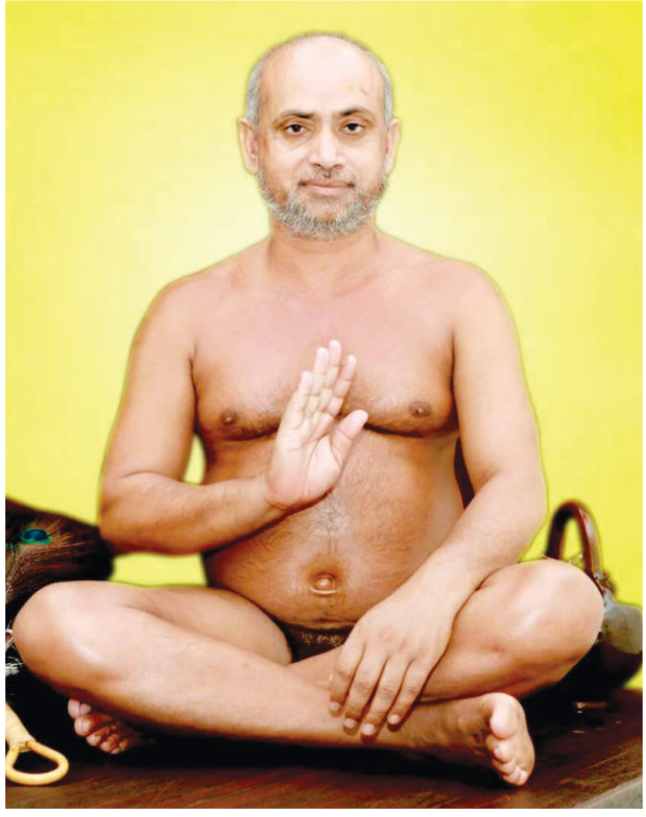

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री विशुद्धसागर जी महाराज

विषयानुक्रमणिका

सम्पादकीय			-----	(viii)
मनोभावना			-----	(xvi)
क्रमांक	विवेच्य-विषय	Topic		पृष्ठ
1.	अहिंसा	**Non-injury**	-----	**1**
2.	सत्यता	**Truthfulness**	-----	**7**
3.	अचौर्य	**Non-stealing**	-----	**12**
4.	ब्रह्मचर्य	**Celibacy**	-----	**17**
5.	अपरिग्रह	**Non-possession**	-----	**23**
6.	मैत्री	**Benevolence**	-----	**30**
7.	प्रमोद	**Joy**	-----	**36**
8.	कारुण्य	**Compassion**	-----	**41**
9.	माध्यस्थ-भाव	**Neutrality**	-----	**48**
10.	विवेक	**Discrimination**	-----	**57**
11.	धैर्य	**Forbearance**	-----	**62**
12.	दया	**Kind-heartedness**	-----	**71**
13.	दम (संयम)	**Self-restraint**	-----	**81**
14.	त्याग	**Renunciation**	-----	**90**
15.	समाधि	**Supreme-Meditation**	-----	**99**
16.	गुरु	**The Guru**	-----	**110**
17.	शिष्य	**The Disciple**	-----	**120**

18.	**अध्यात्म-योग**	**The Soul-yoga**	-----	**129**
19.	**संस्कार**	**Soul-impressions**	-----	**138**
20.	**आत्म-तत्त्व**	**Soul-substance**	-----	**146**
21.	**सहज-जीवन**	**Innate Life**	-----	**155**
22.	**पुण्य-पाप**	**Merit-Demerit**	-----	**165**
23.	**आस्था**	**Trustfulness**	-----	**175**
24.	**कर्म**	**Karma**	-----	**185**
25.	**अप्रमाद**	**Non-negligence**	-----	**196**
26.	**सोच**	**Thought**	-----	**206**
27.	**अनुग्रह** (उपकार)	**Beneficence**	-----	**216**
28.	**धर्म**	**Dharma**	-----	**226**
	उत्तम क्षमा-धर्म	Supreme Forbearance	-----	**235**
	उत्तम मार्दव-धर्म	Supreme Modesty	-----	**239**
	उत्तम आर्जव-धर्म	Supreme Straightforwardness	-----	**242**
	उत्तम शौच-धर्म	Supreme Purity	-----	**244**
	उत्तम सत्य-धर्म	Supreme Truthfulness	-----	**245**
	उत्तम संयम-धर्म	Supreme Self-restraint	-----	**248**
	उत्तम तप-धर्म	Supreme Austerity	-----	**249**
	उत्तम त्याग-धर्म	Supreme Renunciation	-----	**250**
	उत्तम आकिंचन्य-धर्म	Supreme Non-attachment	-----	**254**
	उत्तम ब्रह्मचर्य-धर्म	Supreme Celibacy	-----	**254**
29.	**शिक्षा**	**Education**	-----	**255**

30.	**व्यसन**	**Addictions**	-----	**277**
	जुआ व्यसन	Gambling	-----	**281**
	मांस व्यसन	Eating Flesh	-----	**284**
	मद्य व्यसन	Drinking Alcohol	-----	**294**
	वेश्या व्यसन	Sexual Intercourse With A Harlot	-----	**298**
	शिकार व्यसन	Hunting	-----	**301**
	चोरी व्यसन	Stealing	-----	**302**
	पर-रमणी-रमण व्यसन	Sexual Intercourse With Wife Of Another	-----	**308**
	पिशुन व्यसन	Backbiting	-----	**310**
	दिवा-शयन व्यसन	Sleeping In Daytime	-----	**312**
	निन्दा व्यसन	Censuring Others	-----	**315**
	गीत-श्रवण व्यसन	Listening To Songs	-----	**321**
	नृत्य-दर्शन व्यसन	Watching Of Dance	-----	**323**
	वादित्र-श्रवण व्यसन	Listening To Music	-----	**327**
	वृथा-गमन व्यसन	Aimless Moving About	-----	**328**
	ईर्ष्या व्यसन	Jealousy	-----	**331**
	साहस व्यसन	Recklessness	-----	**334**
	अर्थ-दूषण व्यसन	Squandering Wealth	-----	**334**
	अकारण-वध व्यसन	Aimless Killing of Living Beings	-----	**338**
	द्रव्य-हरण व्यसन	Snatching Wealth Of Others	-----	**342**
	कर्कश-वचन व्यसन	Harsh Words	-----	**344**
	दण्ड-पारुष्य व्यसन	Punishing Others Unlawfully	-----	**349**
31.	**सदाचार**	**Good Conduct**	-----	**351**

* * *

सम्पादकीय

• श्रमण सुव्रतसागर मुनि

साहित्य हमारी संस्कृति को जीवित रखता है। अच्छा साहित्य आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग-दर्शक के समान होता है। साहित्य हमारी सोच को विस्तृत-विराट् व पवित्रता प्रदान कर सद्-प्रेरक का कार्य करता है। जो नई और समीचीन प्रेरणा दे, जीवन को सफल व सार्थक बनाने में सहयोगी बन मित्रवत् प्रेरित करे, वही साहित्य श्रेष्ठ है। जो माँ की तरह कल्याण-प्रद हो, वही सर्वजन-हितकारी साहित्य समझना चाहिए।

अठारह भाषा-भाषी, अहिंसा के पक्षधर निर्ग्रन्थ नाथ भगवन् श्री महावीरकीर्ति महाराज ने लिखा है कि- "जो हमें मोक्ष की ओर बढ़ाता है; वह शास्त्र है और जो संयम की शिक्षा दे वह धर्म है। शास्त्र सिद्धत्व के द्वार तक पहुँचने की सद्-शिक्षा देने वाले सर्वज्ञ-वचनों से परिपूर्ण भरे होते हैं।"

बाल गंगाधर तिलक ने लिखा है कि- "मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है; जहाँ ये होंगी वहाँ अपने आप ही स्वर्ग बन जाएगा।"

जन-उपयोगी 'सर्वजन हिताय' नीतियों से परिपूर्ण, ज्ञान-विज्ञान से शृंगारित, रस-पूर्ण, सरल-सुबोध, हृदय-गम्य, महनीय कृति है- 'सत्यार्थ-बोध'। सत्य का बोध कराने वाली, सत्पथ दर्शाने वाली, बाल हो या वृद्ध, युवक हो या युवति, श्रावक हो या संत, शासक हो या महंत, ब्रह्मचारी हो या पंडित, सबके मन भाने वाली निर्ग्रन्थवर्य विशुद्धसागर जी गुरुदेव की हस्त-लिखित इक्कीसवीं सदी की अमर कृति है- 'सत्यार्थ-बोध'; जो है सूक्तियों का अमृत-कुंभ, नीतियों का करण्ड।

आप पढ़ें, समझें, चिंतन-मनन करें और बनें नीतिज्ञ, नैतिक-मानवीयता के आदर्श-पथिक। विश्व-मैत्री के अग्रदूत। जन-जन के सद्-बोधक, आत्म-शोधक। आचार्यश्री ने स्वयं ही लिखा है कि- "बिना पुण्योदय के 'सत्यार्थ-बोध' नहीं होता और 'सत्यार्थ-बोध' के बिना जीवन पशुवत हो जाता है।"

जैन धर्म का स्तुत्यस्थान

जैन दर्शन में नय-प्रमाण से वस्तु के वस्तुत्व की सिद्धि की जाती है, यही इस दर्शन का सिद्ध सिद्धांत है। वाणी में स्याद्वाद, दृष्टि में अनेकान्त तथा चर्या में अहिंसा मूल है। **जैन धर्म एवं इसकी गौरवशाली संस्कृति विश्व-वसुन्धरा पर अनादि से विद्यमान है।** सृष्टि के आरम्भ से यह विश्व-व्यापी सिद्धांतों, आदर्शों के कारण प्रख्यात रहा, पर यह यथार्थ में शाश्वत-धर्म है, अत्यंत प्राचीन है; इतिहास साक्षी है। भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में 141 ऋचाओं में भी इसका स्तुत्य-उल्लेख है।

देश-धर्म और तीर्थंकर-वाणी

वर्तमान शासन-नायक, तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की दिव्य-ध्वनि के धारक द्वादशांग-आगम के प्रणेता निर्ग्रन्थ योगीश्वर गौतम गणधर स्वामी हुए, पश्चात् इस पवित्र परम्परा में अनेक वीतरागी आचार्य एवं मुनि भगवंत हुए जो सम्प्रति भी इस भारतीय वसुधा पर निर्ग्रन्थ-मुद्रा सहित विचरण कर रहे हैं। **सम्पूर्ण-विश्व में दिगम्बरों की प्राञ्जल प्रज्ञा आदर को प्राप्त है। यह शुद्ध-विशुद्ध-सिद्धत्व-सिद्धि की पवित्र परम्परा है।**

यह सर्व-विदित है कि- जैन धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर ऋषभदेव के पिता अजनाभ (नाभिराय) अन्तिम कुलकर

थे, जिनके नाम से यह देश 'अजनाभ वर्ष' कहलाता था। तदुपरांत आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत के नाम पर 'भारत वर्ष' कहलाया। यह जैनत्व की गुरुता का प्रतीक है।

जैन श्रमण हमेशा से ही विद्यान्वेषी श्रुत-साहित्य प्रिय रहे हैं। सर्वज्ञाता-सर्वज्ञों द्वारा प्रदत्त दिव्य-देशना के पठन-पाठन, चिंतन-मनन, गुंथन-मंथन से दिगम्बरों के तार्किक, स्वच्छ, विराट्-मस्तिष्क से जिस अद्भुत स्व-पर हितकारी ज्ञान का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने सद्-साहित्य का विस्तृत रूप ले हजारों वर्षों से विश्व-धरा पर जन-जन को सद्-प्रेरणा का कार्य किया है। दिगम्बराचार्यों की हित-मित-मधुर-गंभीर, मन-भावन वाणी ने प्राणियों के बौद्धिक, मानसिक, वाचनिक उत्कर्ष के साथ-साथ आध्यात्मिक-जागृति तथा ध्यान-योग जागरण में महनीय योगदान दिया है।

भारतीय जैन साहित्य का महत्त्व

भारतीय साहित्य, प्रज्ञा-कौशल, आचार-विचार और संस्कृति विश्व-वंदनीय है। यहाँ की क्षमता-समता, करुणा-दया-अहिंसा, बौद्धिक-बल, युवा-शक्ति, कृषि-विज्ञान, प्रतिभायें, औषध-वनस्पति, भू-सम्पदा, खगोल-भूगोल ज्ञान, धर्म, अध्यात्म, योग-प्रणायाम, व्याकरण व औषधशास्त्र अनुकरणीय, स्तुत्य हैं। **भारतीय-विद्यायें; चाहे वह योग हो, अध्यात्म या ध्यान, सर्वत्र पूज्यता को प्राप्त हैं।** भारत-भूमि पर बड़े-बड़े नीतिज्ञ पुरुष हुए, जिनकी नीतियाँ विश्व-विख्यात हो गईं। जैन आचार्य श्री सोमदेव सूरि का 'नीति वाक्यामृतं', तिरुवला ऐलाचार्य का 'कुरल काव्य' नीति-प्रधान महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

भारतीय वसुन्धरा को गौरवमयी बनाने में निर्ग्रन्थ मुनियों, ऋषियों, विचारकों, मनीषी-विद्धानों-के साहित्य-का अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। अध्यात्म, काव्य, नीति, अलंकार, जीव-विज्ञान, ज्योतिष, गणित, भूगोल, छंद, योग-ध्यान, कथा आदि समस्त विषयों पर विपुल-साहित्य-सम्पदा, हमारे लिए रत्न और स्वर्ण से भी बहुमूल्य रही है, क्योंकि साहित्य में ही सर्वांगीन विकास के गूढ़ रहस्य निबंधित हैं।

यही कारण रहा कि- विदेशी लोग हमारी धन-सम्पदा के साथ-साथ साहित्य-सम्पदा भी अपने साथ ले गए, फलतः आज भी लंदन, जर्मनी, वाशिंगटन, बोस्टन (अमेरिका), पेरिस (बिब्लियोथिक), रूस, इटली, काठमांडू-नेपाल, चीन, इण्डोनेशिया, जापान आदि देशों में करोड़ों भारतीय ग्रंथ हैं, जिनमें अधिकांशतः संस्कृत व प्राकृत के हैं, जो गूढ़-गहनतम अर्हत्-दर्शन से सम्बन्धित हैं। **एकमात्र रूस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में २२,००० भारतीय पुस्तकें मौजूद हैं, जो समय-समय पर हमारे देश से ले गए हैं।**

हमें सर्वांगीन उत्कर्ष के लिए सर्वप्रथम हमारी प्राचीन-साहित्य-सम्पदा को सँभालना होगा, साहित्य के प्रति पाठकों को जागरुक करना होगा। प्राचीन शिक्षा-पद्धति, गुरुकुल-व्यवस्था, सात्विक-शिक्षा-प्रणाली और 72 कलाओं का ज्ञान कराना अनिवार्य है, जिससे प्रत्येक नागरिक आत्म-निर्भर बने, देश की उन्नति हो। धर्म संस्कारों के प्रति समर्पण हो, अपनी संस्कृति के प्रति बहुमान हो।

साहित्य में आचार्यों का अवदान

सम्पूर्ण विश्व-वाङ्मय की अभिवृद्धि में भारतीय जैन-वाङ्मय का स्तुत्य स्थान है। जो और जैसा विश्व-वाङ्मय में जैन साहित्य का महनीय माहात्म्य है, वैसा ही अप्रतिम स्थान सम्प्रति जैन-साहित्य में प्रवचन-प्रभावक आचार्य-रत्न विशुद्धसागर जी का है।

दिगम्बरों के मुकुटमणी आचार्य गुरुदेव श्री विशुद्धसागर जी जब आध्यात्मिक तत्त्व-विवेचना करते हैं, देशना-प्रवचन करते हैं, तो सभा में बैठे हजारों लोग शांत होकर मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। अभी तक गुरुदेव 12,000 के लगभग प्रवचन कर चुके हैं। जिनका शब्द-शब्द आगम से बद्ध और स्व-पर हितकर होता है, उनकी यह अनोखी शैली है

जिससे सूक्तियाँ, नीति-वाक्य पगै:-पगै: निश्रित होते हैं, जो नवीन-नवीन ही प्रतिध्वनित होते हैं।

सर्वज्ञों द्वारा प्रदत्त द्वादशांग-वाणी में से 'षट्खण्डागम', 'कसाय-पाहुड' के रूप में साहित्यांश अवशेष हैं, जो 'धवल', 'जय-धवल' और 'महाधवल' महाग्रंथों, सिद्धांत-शास्त्रों में निबद्ध है, शेष सब काल के गाल में समा गया। फिर भी हम अपने-आपको भाग्यशाली मानते हैं कि- जो भी है वह हिमगिरि जैसा श्रेष्ठ-उतंग एवं समुन्दर-सम गंभीर, अतुलनीय और परम-पवित्र है। ऐसी अद्भुत अचिन्त्य, अनुपम, विशुद्ध-साहित्य-सम्पदा आज भी हमारे शास्त्र-भण्डारों में सुरक्षित है।

इस श्रुत-सम्पदा के संरक्षण, संवर्धन, उद्योतन में सहस्रों आचार्य भगवंतों ने श्लाघनीय योगदान दिया जिसे हम क्या सर्व-विश्व भी विस्मरण नहीं कर पाएगा। पहली-दूसरी शती में आचार्य भगवन् श्री गुणधर स्वामी, आचार्य धरसेन स्वामी, आचार्य भगवन् श्री पुष्पदन्त स्वामी, आचार्य भगवन् श्री भूतबलि स्वामी, आचार्य भगवन् श्री कुन्द-कुन्द स्वामी आदि हुए, तदोपरान्त आचार्य भगवन् श्री उमास्वामी, आचार्य भगवन् श्री समन्तभद्र स्वामी, आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी, आचार्य भगवन् श्री मानतुंग स्वामी, आचार्य भगवन् श्री अकलंक स्वामी, आचार्य भगवन् श्री रविषेण स्वामी, आचार्य भगवन् श्री विद्यानन्दि, आचार्य भगवन् श्री जिनसेन स्वामी, आचार्य भगवन् श्री नेमिचन्द्र स्वामी, आचार्य भगवन् श्री अमितगति स्वामी, आचार्य भगवन् श्री अमृतचंद्र स्वामी, आचार्य भगवन् श्री वीरसेन स्वामी, आचार्य भगवन् श्री माणिक्यनंदि, आचार्य भगवन् श्री जयसेन स्वामी, आचार्य श्री रामसेन स्वामी आदि अनेक आचार्यों ने गुरु-परम्परा से प्राप्त ज्ञान से विविध विधाओं पर ग्रंथ सृजन कर विश्व को चमत्कृत कर दिया। इस प्रकार दो हजार वर्षों में निरन्तर श्रुतधर विद्यान्वेषी निर्ग्रन्थाचार्यों ने श्रुत की रक्षा की।

प्रधान त्रय-आचार्य

सम्प्रति बीसवीं शती में तीन दिग्गज आचार्य हुए जिनके शिष्य-प्रतिशिष्य-प्रत-प्रतिशिष्य भारत देश में वीतराग श्रमण संस्कृति की प्रभावना कर रहे हैं; वे हैं आद्याचार्य 108 श्री आदिसागर जी (अंकलीकर), चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी (दक्षिण) और आचार्य श्री शांतिसागर जी (छाणी)।

ग्रंथकार की आचार्य परम्परा

जैन दर्शन में वीतरागी श्रमण-संस्कृति की शुद्ध-विशुद्ध, विश्व-प्रसिद्ध, पूत-परम्परा में वनवासी, आचार्य भगवन् श्री आदिसागर जी 'अंकलीकर' की अदूषित, शुभंकर शृंखला में अठारह भाषा-भाषी, मंत्रवादी आचार्य भगवन् श्री महावीरकीर्ति जी महाराज हुए, इनके शिष्य महानिमित्तज्ञानी, वात्सल्य-रत्नाकर, परमोपकारी आचार्य भगवन् श्री विमलसागर जी, उनके शिष्य उग्र-तपस्वी मासोपवासी आचार्य भगवन् श्री सन्मतिसागर जी, उभयाचार्यों से शिक्षित-दीक्षित संस्कृत-प्राकृतादि भाषाओं के वृहद्-टीकाकार आत्मानुशासक गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज और इनके आज्ञानुवर्ती प्रियाग्र शिष्य हैं- अध्यात्मयोगी आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज जो प्रस्तुत नीति-शास्त्र 'सत्यार्थ-बोध' के लेखक हैं।

'सत्यार्थ-बोध' प्रदाता : आचार्य विशुद्धसागर जी

आध्यात्मिक गुरु, निर्ग्रन्थ-नाथ पूज्यपाद श्री विशुद्धसागर जी का जन्म भारत देश के मध्य-प्रदेश राज्य के भिण्ड में 18 दिसम्बर 1971 को हुआ। आपका गृह ग्राम रूर है। पूर्व संस्कार-वश आपको बाल्यकाल से ही आध्यात्मिक रुचि जाग्रत हुई और 17 वर्ष की अल्पायु में जीवन-पर्यन्त के लिए गृह त्यागकर, आचार्य श्री विरागसागर जी से 11 अक्टूबर 1989 में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की; पश्चात् 19 जून 1991 में हीरों की नगरी पन्ना में रत्नत्रय की ओर एक पग

और बढ़ाया तथा ऐलक दीक्षा प्राप्त कर ली। 21 नवम्बर 1991 को घनघोर एकान्त, अत्यंत प्राचीन सीरा-पहाड़ी तीर्थराज श्रेयांसगिरि के पादमूल में वृहद्काय वटवृक्ष के तले गुरुदेव के कर-कमलों से जैनेश्वरी मुनि-दीक्षा को प्राप्त किया। तदोपरांत गणाचार्य श्री विरागसागर जी के द्वारा 31 मार्च 2007, महावीर जयंती के दिन, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया गया।

प्रस्तुत नीति-शास्त्र **'सत्यार्थ-बोध'** सृष्टा, आचार्य श्री विशुद्धसागर जी सम्प्रति सम्पूर्ण विश्व में आध्यात्मिक मन-भावन प्रवचन एवं आत्मा को झंकृत कर देने वाले आगमिक-साहित्य सृजेता के रूप में जाने-पहचाने जाते हैं। आप मौन-प्रिय हैं, पर बोलते हैं; तो मिश्री से भी मधुर... तभी तो सम्पूर्ण-विश्व आपकी मधुर-वाणी श्रवण कर आत्मानन्द का रसपान कर अतीव-शान्ति का वेदन करता है। शताधिक-साहित्यिक कृतियाँ आपके आगम-ज्ञान की प्रतीक हैं। त्रय-दशक से भी अधिक बाल-ब्रह्मचारी युवा दिगम्बर-मुनि-यतियों का शिष्य-समुदाय आपके आंतरिक-वात्सल्य व संघ-संचालन की कुशलता का परिचायक है। देश के दस राज्यों में 73,000 कि.मी. से भी अधिक पग-विहार कर धर्म-प्रचार एवं शतक पंचकल्याणक-प्रतिष्ठायें आपकी अरिहंत भक्ति का अभिज्ञान कराती हैं।

निर्ग्रन्थनाथ आचार्य श्री विशुद्धसागर जी अध्यात्म-विद्या प्रवीण, न्याय-दर्शन, सिद्धान्त-नीति, व्याकरणादि विधाओं के ज्ञाता, स्याद्वाद-अनेकान्त के सजग-प्रहरी, वैराग्य से ओत-प्रोत, मृदु-मधुर-स्वभावी, भद्र-परिणामी, क्रिया-काण्ड प्रवीण, जिनागम के गूढ़-ज्ञाता, अध्ययन-अध्यापन में कुशल, संघ-वृद्धि में धुरंधर-अग्रेसर, रत्नत्रय से मंडित, नय के महापंडित, भगवत् समन्तभद्रसम रसपूर्ण लयबद्ध आध्यात्मिक प्रवचनों के सफल प्रस्तोता, ओजस्विता-पूर्ण भगवत् श्री कुन्दकुन्द सम निडर, निशंक, निष्पक्ष लेखक हैं। उत्कृष्ट संयमाचरण के परिपालक चर्या-शिरोमणि के रूप में आप जन-जन के मन-मस्तिष्क में रचे-बसे हैं।

जहाँ एक ओर आप तार्किक-मनीषी हैं, तो दूसरी ओर शास्त्रज्ञ दार्शनिक। एक ओर 'वस्तुत्व' महाकाव्य के रचयिता महाकवि हैं, तो दूसरी ओर 'सत्यार्थ-बोध' नीति-शास्त्र के महानीतिज्ञ लेखक। एक ओर सर्वतोमुखी देशनाओं के उपदेशष्टा हैं, तो दूसरी ओर मौन-साधना के महामौनी साधक।

2000 वर्ष पूर्व भारतीय वसुन्धरा पर वीतराग श्रमण-संस्कृति में दीक्षित, आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द देव ने अपने समय की भ्रमपूर्ण-भ्रांतियों एवं शिथिलाचार के विरुद्ध निडरता-पूर्वक सार्वजनिक देशना एवं साहित्य के माध्यम से बढ़ते शिथिलाचार को रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया था, उसी प्रकार वर्तमान आचार्य भगवन् श्री विशुद्धसागर जी युगानुरूप प्रचलित भ्रांतियों, आगम-विरुद्ध क्रिया-काण्डों एवं मृदुलाचार का उल्लेख कर उसका समीचीन समाधान प्रस्तुत करते हैं।

जो कार्य कोई योद्धा अस्त्र-शस्त्र से न कर सके; वह कार्य आप अपनी बलवती प्रज्ञा का प्रयोगकर मौन से ही कर देते हो, द्वि-संधान करने में आप महा-कुशल हो, शिकारी तो जाल फैलाकर प्राणियों को बंधी बना पाता है, पर आप अपनी मंत्र-मुग्ध, मन-मोहिनी वाणी के पाश से वैराग्य के बंधन में बांधकर हमेशा के लिए मूर्छित करते हो। धोबी तो वस्त्र को पचीट-पचीट कर धोता है, पर आप जब बिना हाथ-पैर लगाए पछीटते हो तो घुड़की देने वाले का मैल तो क्या, रंग-रोगन भी निकल जाता है। आप क्या हैं? समझ से परे हैं। आपकी वाणी किसी को कटुक तो किसी को मधुर लगती है, पर हाँ यह यथार्थ सत्य है कि वह परम-औषधि है।

आप स्व-पर कल्याण में इतने व्यस्त हैं कि क्षण-भर भी बाह्य-कार्यों में समय नहीं देते। मुझे आपकी अदम्य क्षमता व समता देखकर भ्रम-सा उत्पन्न हो जाता है कि- आप विक्रियाधारी देव हैं या धरती के मानव? एक तरफ आप अध्ययन-अध्यापन, उपदेश-लेखन में तल्लीन रहते हैं, तो दूसरी ओर संघ-संचालन। दो-दशक युवा ब्रह्मचारियों को सँभालना, तो दूसरी ओर कलयुग-कालीन परिग्रह-त्यागी, सत्यवादियों का समता से परिपालन। यह सब करते हुए भी- पगविहार, साथ ही साथ निरंतर पंचकल्याणक-प्रतिष्ठाओं में सान्निध्य और दुनिया भर के भक्तों को नाम और ग्राम सहित जेहन में बसाये रखना। आप व्यवहारी हो या निश्चयवादी, यह सब समझ से परे है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी : आध्यात्मिक देशनाएँ

इस लक्ष्य-विहीन, अर्थहीन वातावरण में जीवनोपयोगी, कल्याणकारी, स्व-पर हितकारक, भव-भ्रमण का क्षय करने वाली आध्यात्मिक-देशनाएँ अत्यंत आवश्यक हैं।

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर जी का अध्यात्म-ज्ञान सर्वोपरि है। भावसिक्त, वैराग्योत्पादक, ज्ञान-वर्धक आपकी देशना की यह विशेषता है कि- भले ही किसी भी अनुयोग का ग्रंथ हो, पर आपकी देशना से वह चतुरनुयोगी बन जाता है। अध्यात्मपूर्ण नीति-वाक्य आपकी देशना में पद-पद पर निर्झरित होते हैं।

लोकप्रिय प्रवचनकार आचार्य श्री विशुद्धसागर जी के द्वारा प्रदत्त देशनाएँ अध्यात्म के गूढ़-रहस्यों को उद्घाट्य करने का श्रमशील प्रयास है, जो आपके उच्च चिंतन की फलश्रुति है। देशनाओं में साहित्यिक, आध्यात्मिक, सैद्धांतिक, निश्चय-व्यवहार रूप सामन्जस्य बेजोड़ है; जो तत्त्वज्ञान संपूरित है। सरल, सुबोध व आत्म-ग्राह्य है। **आपकी देशनाएँ तत्त्व-अन्वेषीयों को शोध और चिन्तन के लिए बाध्य करती हैं। एकान्त निश्चयाभास एवं व्यवहाराभास का निरसन आपकी स्याद्वाद-युक्त वाणी से स्वतः हो जाता है।**

कुल-मिलाकर सारांश रूप में कहूँ तो गुरुदेव श्री विशुद्धसागर जी द्वारा प्रदत्त देशनाएँ सुख-शांति, अभ्युदय व निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए यंत्र-मंत्र-तंत्र हैं।

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी गुरुदेव श्रुतोपासक एवं दीर्घ श्रुत-साधक हैं, फलतः शताधिक शास्त्र साहित्य जगत् को उन्होंने प्रदत्त किए हैं, जिनकी लगभग पृष्ठ संख्या 50,000 है। यदि श्लोक प्रमाण निकाला जाये तो आपका समग्र साहित्य लगभग ग्यारह लाख पचास हजार श्लोक प्रमाण है।

नियमसार पर नियम-देशना (तीन भाग), समयसार पर समय-देशना (सत्रह भाग), प्रवचनसार पर प्रकृष्ट-देशना (अठारह भाग), ज्ञानांकुश पर सद्ज्ञान-देशना (दो खण्ड), सार-समुच्चय पर सद्देशना (छह भाग), तत्त्वानुशासन पर परमार्थ-तत्त्वदेशना (छह भाग), सद्भाषितावली पर सुभाषित-देशना (पाँच भाग), आत्मानुशासन पर निर्ग्रन्थ-देशना (छह खण्ड), पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पर पुरुषार्थ-देशना, योगसार पर अध्यात्म-देशना, तत्त्वसार पर तत्त्व-देशना, वारसाणुपेक्खा पर प्रेक्षा-देशना, इष्टोपदेश पर सर्वोदयी-देशना, स्वरूप संबोधन पर स्वरूप-देशना, रत्नकरण्डक श्रावकाचार पर श्रावक-देशना, रयणसार पर सागार-अनगार-देशना, तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थ-देशना, प्रश्नोत्तर रत्नमाला पर पृच्छना-देशना, पंचास्तिकाय पर परमागम-देशना, सैंतालीस शक्तियाँ, अलिंगग्गहणं आदि प्रमुख कृतियाँ हैं।

देशनाओं के अलावा, भाष्य, अनुशीलन, परिशीलन, स्वतंत्र-चिंतन, लघु-प्रवचन, कथा-साहित्य, 5000 कवितायें आदि विविध प्रकार का साहित्य गुरुदेव के द्वारा सृजित है।

जीयात् जैनी नीति

आध्यात्मिक-सात्विक जीवन ही नीति-पूर्ण होता है। **सुर-दुर्लभ मनुष्य-जन्म प्राप्त कर रीति-नीति का ज्ञान नहीं किया तो फिर यह नर-भव व्यर्थ समझो।** सातिशय योगी भगवत् श्री पूज्यपाद स्वामी ने 'इष्टोपदेश' ग्रंथ में विपुल आध्यात्मिक-नीतियों का निबन्धन किया है। साँची निर्ग्रन्थ नीति तो यही है कि- नर-भव में उत्तम-संयम धारण कर सर्वसुख-स्वरूप सिद्धत्व को प्राप्त किया जावे।

सूक्तियाँ सुख का आधार

सार-का-सार, सैकड़ों शास्त्रों का सार-स्वरूप एक अच्छी सूक्ति होती है, जो जीवन में सुख-शांति, उत्साह-आनंद, प्रसन्नता एवं सफलता प्रदान करने में सहायक बनती है। संक्षेप में सारभूत-शिक्षा ही सूक्ति कही जाती

है। यथार्थ में नीति वही सत्यार्थ है- जो अपूर्व-अपूर्व आनन्द की प्रदाता हो। कष्टों से मुक्ति, इष्ट की परमसिद्धि, पर से उपेक्षा-आत्मस्थ-उपस्थिति, पापों का त्याग, व्रतों से लगाव, संयम से जुड़ाव - यही तो है जैनियों की सूक्ति।

निर्ग्रन्थों की एक सूक्ति भी भव्यात्मा को मुक्ति-पथ का महामंत्र बन जाती है। सूक्तियाँ यथार्थ में सुख का मार्ग दिखाती हैं, पर प्रबल-पुण्यात्मा भव्य-जीव ही सत्यार्थ-बोध को प्राप्त कर पाता है और फिर पवित्र-आचरण तो दुर्लभ है।

जीवन में सम्पत्ति श्रेष्ठ नहीं; शांति श्रेष्ठ है। कषाय की एक कणिका शांत परिणामों को अशांत कर देती है। प्रमाद का एक पल, जीवन की एक छोटी-सी भी भूल जीवन भर की साधना को धूमिल कर देती है। विष की एक बूँद दुग्ध की धारा को विषाक्त कर देती है। **अग्नि की एक चिंगारी विनाश के लिए पर्याप्त है। शांति भंग करने के लिए; एक शत्रु बहुत है। एक ज्योतिर्मय दीप हजारों बुझे हुए दीपों को प्रकाशित करने में सहायक है। हजारों उत्साह-हीन मनुष्यों से एक जाग्रत मनुष्य श्रेष्ठ है। वैसे ही निर्ग्रन्थ-योगियों की एक लकीर हमारी तकदीर को बदलने में सहायक है।**

आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी : नीति-साहित्य

जैन परम्परा में भगवत् श्री पूज्यपाद स्वामी कृत 'सर्वार्थसिद्धि' टीका इतनी प्रौढ़, महत्त्वपूर्ण और गूढ़ है कि- उसके वाक्य के वाक्य सूत्रात्मक परिभाषाओं के रूप में प्रचलित व प्रतिष्ठित हो गए । ऐसे ही पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विशुद्धसागर जी का प्रत्येक वाक्य सूक्ति या नीति-वाक्य के रूप में उद्घाट्य होता है, फलतः हिन्दी, अंग्रेजी, प्राकृत, संस्कृत, मराठी, अपभ्रंश आदि भाषाओं में उनकी सूक्ति-सूत्रात्मक 24 कृतियाँ प्रकाशित हैं।

पंचशील-सिद्धांत, सार-सूत्र, बोधि-सूत्र, अध्यात्म-वाणी, अमृत-बिन्दु, अध्यात्म-वचनामृत, अध्यात्म-अमृत, अध्यात्म-अमिय, आगम-अमृत, आईना, बोधि-संचय, अर्हत्-सूत्र, अध्यात्म-प्रमेय, अध्यात्म-सूत्र, सूक्ति-संग्रह, सामयिक-सूत्र, बोध-वाक्यामृतम्, सूक्ति-सुधा, देशना-बिंदु, देशना-संचय, दिव्व-वयणं, भव्व-वयणं, विशुद्ध-वचनामृत और 'सत्यार्थ-बोध' ये नीति-वाक्यों से पूर्ण साहित्य गुरुदेव श्री विशुद्धसागर जी द्वारा प्रदत्त है, जिनमें लगभग 13,000 नीतिवाक्य निबद्ध हैं।

ज्ञात इतिहास में यह अद्भुत तथ्य है कि- किसी आचार्य, मुनि या विद्वान् ने मात्र नीतियों से परिपूर्ण इतनी कृतियाँ साहित्य-जगत् को प्रदत्त की हों। यह सब स्वप्नवत प्रतीत होता है, पर यथार्थ सत्य है।

'सत्यार्थ-बोध' का वैशिष्ट्य : विवेचना

'सत्यार्थ-बोध' श्रुतनिष्ठ, प्रत्युत्पन्नमति, अध्यात्मयोगी, निर्ग्रन्थनाथ विशुद्धसागरजी गुरुदेव की; अंतरंग मन के मनन, चित्त के चिंतन-मंथन, चैतन्य के तत्त्व-ज्ञान से प्रसूत एक मौलिक कृति है; जो पाश्चात्य-संस्कृति से अशांत पथ भ्रमित मानवों को स्वात्म-संस्कृति के प्रति चेतना प्रदान कर सुप्त-मानवीय-आदर्शों को जागृति प्रदान कर नैतिकपूर्ण जीवन निर्माण के लिए जनोपयोगी, पठनीय, अनुकरणीय, स्तुत्य एवं महत्त्वपूर्ण है।

'सत्यार्थ-बोध' इसलिए और अधिक महत्त्वपूर्ण है कि- यह सत्य-अहिंसा के पथिक पग-विहारी, आत्मयोगी, निष्ग्रह-साधक के द्वारा स्वांत-सुखाय ही उद्भूत हुई है, जनहित हो जाय तो 'सोने-पर-सुहागा' कहावत सिद्ध होगी। यह सत्य को अनुभूत वेदन करने वाले सातिशय श्रुत-धर निर्ग्रन्थ पथ के पथिक, विश्व-मैत्री के पक्षधर, सर्व-जीवों पर करुणावान, समताधारी, क्षमाशील, परिग्रह-शून्य, न्याय-प्रवीण, ज्ञानी-ध्यानी, निर्ग्रन्थों के मुकुट-मणी, ज्येष्ठ-श्रेष्ठ, सर्वमान्य तत्त्वमनीषी, आत्म-साधक, जिनशासन-प्रकाशक, सुव्रत-धारक आचार्य गुरुदेव विशुद्धसागर जी द्वारा सृजित है।

'सत्यार्थ-बोध' हिन्दी-हितैषियों के लिए अत्यंत सरल-सुबोध है, **इसमें न्याय है, पर न्याय की शाब्दिक जटिलता नहीं। शब्द-शब्द, वाक्य-वाक्य में मतार्थ है, पर धर्म-सम्प्रदाय, पंथवाद का पक्षपात नहीं। मानवीयता की**

नैतिक शिक्षा है, पर हटवाद नहीं। सत्यार्थ का उद्योतन है, पर कर्तावाद नहीं। वाक्य-वाक्य में नीतियाँ गुंथित हैं, सर्वोन्नति के सूत्र हैं, पर कर्तृत्व की गंध नहीं। वास्तविक सत्य भी यही है कि- करुणावंत महापुरुष जगत्-कल्याण का पुरुषार्थ तो करते हैं, पर उनकी यह विशेषता होती है कि वह किंचित् भी कर्तृत्व की गंध ही नहीं आने देते, फलतः जन-जन उनके सर्वोदयी, प्राञ्जल, सर्वहितकर, सुखकर वचनों को श्रवण कर, ग्रहण कर अतीव शांतता का रसास्वादन करता है।

जो आत्मयोगी निज-आत्म-योग में ही लवलीन रहते हैं, यदि कुछ कहें तो मात्र आत्मा की ही चर्चा करते हैं, वह भी पाण्डित्य-पूर्ण; जो सामान्य तत्त्व-अभ्यासियों के लिए पहुँच से परे होता है। हम सबके लिए अतीव प्रसन्नता का प्रसंग यह है कि- आचार्य भगवंत आत्म-योगी गुरुदेव श्री विशुद्धसागर जी ने उगते योवन के युवा हों या ढलती उम्र के वृद्धजन अर्थात् **जन-जन के हितार्थ, प्राणिमात्र के उत्थानार्थ यह नीतिपूर्ण 'सत्यार्थ-बोध' कृति की संरचना की है। इसकी भाषा मधुर है, विवेच्य विषय जीवनोपयोगी होने के साथ-साथ आत्मोत्थान की ओर संप्रेरित कर जीवन जीने की रीति-नीति में निष्णात कर प्रज्ञा-प्राञ्जलता, विवेक-जागृति, आत्म-सुख प्राप्ति एवं सर्वोन्नति के सूत्र प्रदान करने में परम सहायक है। यह मात्र मानव-विकास ही नहीं, अपितु समाज, राष्ट्र एवं विश्व-विकास की भावना से ओतप्रोत है।** यह परिपूर्ण जिनागम से बद्ध है, जिन-श्रुति से परिपूर्ण है, यह इतना व्यापक है कि मंदिरों तक ही सीमित न रहे, अपितु देश ही नहीं, विश्व के प्रत्येक विद्यालय, महाविद्यालय और युनिवर्सिटियों तक पहुँचाया जाय, जिससे विश्व-एकता, विश्व-मैत्री और नैतिकपूर्ण मानवीयता का विकास हो। कहा भी है कि- **'अभ्यर्हितत्वं च सर्वतो बलीयः।'** श्रेष्ठता सबसे बलवती होती है। जहाँ संस्कारों, गुणों, अनुशासन की श्रेष्ठता होती है वहाँ सर्व-जन स्वयमेव ही नतमस्तक हो जाते हैं। यह यथार्थ में पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने योग्य है।

हम सब अनुशासन-प्रिय बनें, गुणों में श्रेष्ठ बनें, संस्कारों से शृंगार करें, मानवता के आदर्श बनें। आओ, आओ हम सब सत्य का सद्बोध, सत्य का जयघोष 'सत्यार्थ-बोध' पढ़ें, समझें, चिंतन-मनन करें, तदनुसार जीवन में गमन करें। मिलनसार, मधुर-स्वभावी बनें, विनेय और संतोषी बनें। परस्पर ईर्ष्या-कलह को छोड़ गुण-ग्राही बनें। विकास की राह पर बढ़ें।

'सत्यार्थ-बोध' के मंगलाचरण में सर्वप्रथम 'अहिंसा' की व्याख्या है, क्योंकि अहिंसा से ही धर्म प्रारंभ होता है, जीवन में मंगल के लिए अहिंसा अनिवार्य अंग है। **जिनमत का मूल ही अहिंसा है।** ऐसा कोई दर्शन, धर्म, सम्प्रदाय पंथ या परम्परा नहीं है जिसमें न्यूनाधिक रूप से 'अहिंसा' की चर्चा न हो। महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि- अहिंसा परम धर्म है, परम तप है, सत्य है, संयम है, दान है, ज्ञान है। अहिंसा ही धर्म का प्रवर्तन करने वाली है तथा अहिंसा से बढ़कर हितकारी मित्र और सुख देने वाला दूसरा कोई नहीं। गुरुग्रंथ साहिब में भी लिखा है कि- **'दइया दिगंबरू देह बीचारी। अरि मरै अवरा नहमारी।'**

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी 'सत्यार्थ-बोध' में अहिंसा के महत्त्व को समझाते हुए लिखते हैं कि- विश्व-शान्ति प्रदायक धर्म 'अहिंसा' है। विश्व-मैत्री का जनक 'अहिंसा' है। ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण-गुण अहिंसा में विद्यमान हैं। व्यवहार और परमार्थ धर्म अहिंसा के बल पर ही पलते हैं। (पृष्ठ-1)

सत्यधर, सत्यपथ-गामी आचार्य भगवन् ने सत्यता के महत्त्व को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि- सत्य-वचन, सत्य-जीवन स्वयं में ही उच्चता के शिखर का जीवन है। हित-मित-प्रिय सत्य-वचन धर्म-यश वृद्धि के साधन हैं। वह धन्य है; जो सत्यार्थ-धर्मामृत का पान करते हैं तथा अन्य जनों को कराते हैं। (पृष्ठ-8)

अंतरंग वात्सल्य का बोधक 'मैत्री' है। सम्पूर्ण जीवों के साथ 'स्वान्त-सुखाय' मैत्री ही है। मैत्री आनन्द की जननी है। आचार्य श्री 'सत्यार्थ-बोध' में कहते हैं कि- **हृदय-से-हृदय का मिलन मित्रता है।** सुख-दुःख में समान प्रीति रखने वाला सज्जन ही सच्चा मित्र होता है। मित्रता में आकांक्षा नहीं। मित्रता नारायण कृष्ण और सुदामा जैसी होनी

चाहिए। ब्रह्माण्ड का सबसे सुंदर और मधुर संबंध मित्र की मित्रता है। आचार्य श्री कहते हैं कि- अच्छे संस्कारित, सज्जनों से मित्रता हितकारी है, परन्तु दुष्टों व संस्कार-हीनों की मित्रता धर्म, यश, धन, वंश, कुल नाश का कारण बनती है।

संसार में अविवेक से बड़ा अपकारक अन्य कोई नहीं। संसारी प्राणी जो भी कष्ट भोगता है, चिंता-कलह-ईर्ष्या करता है, आत्म-हत्या जैसे अपराध करता है या फिर जितने भी अनर्थकारी कार्य होते हैं, वह अविवेक के बिना सम्भव ही नहीं हैं, अतः सुखी, प्रशंसनीय जीवन जीने के लिए विवेक बहुत आवश्यक है। परम-विवेकी, अनुभवशील, सर्व-शास्त्रों-पुराणों के ज्ञाता आचार्य श्री विशुद्धसागर जी 'सत्यार्थ-बोध' में लिखते हैं कि- हेय-उपादेय में भेद करने की बुद्धि, ग्राह्य-अग्राह्य का भेद-ज्ञान, परीक्षा-कौशल का नाम 'विवेक' है। विवेकी ही सम्पूर्ण-सम्पत्तियों, सम्मानों का स्वामी हो सकता है। कार्य करने के पूर्व विवेक-पूर्ण विचार, यह विवेकियों की पहचान है।

धैर्य के बिना किसी भी क्षेत्र में सफलता संभव नहीं है। धैर्यवान् धैर्य के प्रभाव से अत्यंत विपरीत को भी अपने पक्ष में कर लेता है। धैर्य उत्कर्ष की राह है। 'सत्यार्थ-बोध' में उद्धृत है कि- धैर्य मानव-जाति का आभूषण है। धैर्य आनंद व सुख का दाता है, धैर्य शारीरिक, मानसिक, वाचनिक सम्पूर्ण विपदाओं से रक्षा करता है। धैर्य से पुरुषोत्तम राम ने वन में रहकर भी पुनः विश्व राज्य प्राप्त कर लिया। धैर्य-गुण सर्वगुणों का आधार है।

दया धर्म का सार है। दया के बिना धर्म नहीं। आचार्य श्री विशुद्धसागर जी 'सत्यार्थ-बोध' में व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि- स्व-पर आनन्दप्रद लोक में कोई वस्तु है, तो वह दया है। सर्व धर्म का सार, शांति का परम द्वार, सुख का आधार 'दया' है। प्राणियों की रक्षा करना ही दया है। दयावान ही नीति और पुण्यवान हो सकता है।

जैसे वाहन में ब्रेक की, नदी में तट की, अश्व में लगाम की, हाथी में अंकुश की, ऊँट में नकील की, घर में द्वार की, खेत में बाढ़ की आवश्यकता होती है वैसे ही जीवन में संयम की अनिवार्यता है। आचार्य श्री कहते हैं कि- बिना संयम-साधना के नर पशु तुल्य है। आकांक्षाओं को शांत करना संयम है। संयम से ही मानव महा-मानव अर्थात् पूज्य बनता है (पृ. 249)

किसी भी क्षेत्र में गुरु के बिना पथ-प्रशस्त नहीं होता है; चाहे वह शिक्षा हो, व्यापार हो या अन्य कोई भी क्षेत्र। उच्चता, उत्कर्ष, उत्तीर्णता, सफलता प्राप्त करना है, तो सच्चे और अच्छे गुरु का होना अनिवार्य है। गुरु के बिना जीवन शुरू नहीं। निर्ग्रन्थों के स्वामी, अध्यात्म-गुरु आचार्यरत्न विशुद्धसागर जी 'सत्यार्थ-बोध' में उल्लिखित करते हैं कि- गुण-गुरुता से पूर्ण, दुर्गुणों से शून्य, सत्यार्थ पथ के नेता, सर्व-प्राणियों के कल्याणकारक, हितचिंतक जो होते हैं, वही सच्चे गुरु हैं। (पृ. 110)

प्रत्येक सफल-पुरुष के पीछे कोई एक श्रेष्ठ, प्रज्ञाशील सम्यक्-बोध देने वाले 'गुरु' अवश्य होते हैं। गुरु ही ज्ञानांजन-शलाका हैं, जो मिथ्यातिमिर से आत्म-रक्षा करते हैं। (पृ. 111) **जीवन-विकास में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।** (पृ. 113)

अध्यात्म-योग के बिना आत्म-शांति नहीं। आत्मज्ञान के बिना परम-सुख नहीं। अध्यात्म के बिना आत्मानंद नहीं। अध्यात्म के अन्वेषक, आत्मान्वेषी आचार्य गुरुवर विशुद्धसागर जी अध्यात्म को स्पष्ट करते हुए उल्लेख करते हैं कि- आत्मा के उपयोग को आत्मा में लीन करना 'अध्यात्म-योग' है। विश्व की परा-विद्या 'अध्यात्म-विद्या' है। परमात्म-पद प्रदान करने वाली परम-विद्या 'अध्यात्म-विद्या' है। **अध्यात्म अंतरंग की विशिष्ट साधना है।** आत्म-शान्ति, सन्तोषी-जीवन जीने की महान् कला 'अध्यात्म' है। (पृ. 129, 130, 131) आध्यात्मिक जीवन ही परम पवित्र जीवन है। (पृ. 133)

कोई मानव जब भी महानता, पूज्यता को प्राप्त होता है उसके संस्कार ही उसे ऊँचाईयों पर पहुँचाते हैं। संस्कारों की महत्ता समझाते हुए 'सत्यार्थ-बोध' में उल्लेख किया है कि- जीवन में महानता संस्कारों से ही आती है। जैसा

संस्कार जीवन में आता है वैसा ही भविष्य बनता है। संस्कारवान सर्वत्र सम्मान को प्राप्त होता है। (पृ. 138)

जीवन में आस्था-विश्वास अत्यन्त आवश्यक है। आस्था-विश्वास के बिना न तो घर-गृहस्थी चल सकती है और न ही व्यापार, न ही संस्था, राष्ट्र। इसी को विवेचित करते हुए जन-जन की आस्था के देवता आचार्य श्री ने उल्लेख किया है कि- आस्था के बिना न तो गुरु दिखते, न प्रभु और न ही गुणीजन। आस्था वह अमृत है जिसकी मिठास आस्थावान ही जानता है, अनास्था विष है; जो आनन्द को भंग कर देती है। (पृ. 179)

जीवन के ह्रास और विकास में सोच का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस की सोच श्रेष्ठ होती है, वह कष्ट में इष्ट की सिद्धि कर लेता है और जिसकी सोच ठीक एवं समीचीन नहीं है वह जीवन में क्षण-भर सुखी नहीं रह पाता है। समीचीन सोच, सम्यक्-चिंतन के शिखर 'अर्हन्-बुद्धि' के धारक गुरुदेव श्री विशुद्धसागर जी 'सोच' को समझाते हुए 'सत्यार्थ-बोध' में लिखते हैं कि- व्यक्ति का व्यक्तित्व स्वयं के सोच पर निर्मित होता है, इसलिए सर्वप्रथम अपने सोच को सम्यक् करना चाहिए। (पृ. 206) उत्तम पुरुषों की सोच भी उत्तम होती है। (पृ. 207) व्यक्ति के भोजन, भाषण, रीति, वस्त्राभूषण और संगति से उसके सोच का बोध हो जाता है। सोच विकृत होते ही चित्त-विशुद्धि का ह्रास होता है। सोच की निर्मलता के लिए सद्-शास्त्रों का अध्ययन अनिवार्य अंग है। (पृ. 211)

अनुग्रह (उपकार) के बिना संसार भी नहीं चल सकता है। जननी-माँ उपकार न करे तो सन्तान का जन्म, लालन-पालन भी संभव नहीं है। उपकार के बिना न कोई जी सकता है और न ही मर सकता है। प्रकृति भी सर्वत्र उपकार करते देखी जाती है। सूर्य ताप देता है, प्रकाश देता है, नदी नीर देती है, वृक्ष फल देते हैं, गुरु उपदेश देते हैं। इसी की व्याख्या करते हुए परमोपकारी आचार्य श्री उल्लेख करते हैं कि- उन जीवों का जीवन ही धन्य है, जो अपने समय को सर्व जीवों के उपकार में लगाते हैं। (पृ. 216) सज्जन-पुरुष कभी भी अपने उपकारी के उपकार का विस्मरण नहीं करते हैं। (पृ. 220) सच्चा उपकारी कभी भी पापी के पापों की पुष्टि नहीं करता है। (पृ. 224)

जो उत्तम सुख की प्राप्ति करा दे, वही सच्चा धर्म है। क्षमादि उसके ही भेद हैं। धर्म की व्याख्या करते हुए 'सत्यार्थ-बोध' में कहा है कि- क्रोध का अभाव क्षमा धर्म है। क्षमा वीरों का आभूषण है। क्रोधाग्नि महा-ज्वाला है, जिसमें किसी की भी रक्षा संभव नहीं है। क्षमा आत्मशांति का परम द्वार है। अन्यत्र भी कहा है कि- कर्मक्षय के लिए जो साधना की जाती है, वह उत्तम तप धर्म है। तप आत्म-सिद्धि का परम साधन है। (पृ. 249)

देश-समाज की सर्वोन्नति के लिए नागरिकों का शिक्षित होना आवश्यक है और वह शिक्षा अधिकारों के साथ कर्तव्यों का बोध कराने वाली होना चाहिए। शिक्षा यथार्थ में सर्व-उपयोगी, मातृ-भाषा में होना चाहिए। नर हो या नारी दोनों को ही शिक्षित होने का समान अधिकार होना चाहिए। 'सत्यार्थ-बोध' में शिक्षा के सम्बंध में उल्लेख किया गया है कि- जहाँ शिक्षा है, साक्षरता है, वहीं विकासशीलता है। प्रत्येक स्थान पर मात्र पुस्तकीय-ज्ञान कार्यकारी नहीं होता है, सर्वत्र व्यवहारिक एवं अनुभवज्ञान की आवश्यकता है। (पृ. 255) शिक्षक विद्वान्, नीतिज्ञ, सदाचारी, कुशल और भद्र-स्वभावी होना चाहिए। (पृ. 256) शिक्षा नीति-न्याय व सदाचार-पूर्ण होना चाहिए। (पृ. 261)

व्यसन शब्द बुरी-आदतों के लिए लोक में रुढ़ है। व्यसन अर्थात् आदत और बुरी आदत को व्यसन कहते हैं। व्यसन मानव जाति के बर्बादी के कारण हैं। **व्यसन-सेवी सम्पूर्ण अनर्थों और बीमारियों को स्वयमेव ही आमन्त्रण देता है।** व्यसन-सेवी तड़फ-तड़फ कर मरण को प्राप्त होता है। व्यसनों के त्यागी, चारित्ररथी आचार्य श्री विशुद्धसागर जी करुणा-भाव से प्राणियों को समझाते हुए 'सत्यार्थ-बोध' में उल्लिखित करते हैं कि- **धर्म-यश, कुल-सम्पत्ति का एक साथ क्षय कराने वाली महामारी व्यसन है।** बुरे-व्यसनों में व्यक्ति अपना सर्वस्व नाश कर लेता है, व्यसन विष से भी अधिक घातक हैं। (पृ. 277) जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा-पान, वेश्या-सेवन, शिकार, चोरी, चुगली, ईर्ष्या, कटु-वचन आदि बुरे व्यसन हैं, जो हर प्रकार से सर्वनाश व अनर्थों की जड़ हैं, इसलिए सज्जनों को बुरे व्यसनों से परिपूर्ण दूर रहना चाहिए।

सदाचारी, करपात्री, पगविहारी, आत्मार्थी आचार्य श्री विशुद्धसागर जी पंचाचार का पालन करते हैं और श्रमण-शिष्यों से सद्-आचरण का पालन कराते हैं और वह सदाचार की शिक्षा देकर जन-जन को स्वात्म-सुख का सद्-मार्ग सुझाते हुए उल्लेख करते हैं कि- उच्च-आचार, सदाचार, सद्-आचरण व्यक्ति की कुलीनता का परिचायक है। **सदाचार व्यक्ति के व्यक्तित्व का सार है।** सदाचारी व्यक्ति सर्वत्र विश्वास को प्राप्त करता है। सदाचारी को सर्व-विद्यायें शीघ्र ही सिद्ध हो जाती हैं। (पृ. 351) सदाचार की सिद्धि के हेतु सद्-साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। (पृ. 353) **'जियो और जीने दो'** इसी भावना से सदाचरण का प्रारम्भ होता है। (पृ. 367)

परोपकारी आचार्य भगवन् श्री विशुद्धसागर जी ने 'सत्यार्थ-बोध' में विविध विषयों पर संक्षेप-संक्षेप में सरल-सुबोध व्याख्या की है; जिसमें वाक्य-वाक्य में उत्कर्ष के उपाय हैं, आत्म-शांति के सूत्र हैं, सर्वोन्नति के नीति-पूर्ण निर्देश हैं। मूलतः यह इकत्तीस शीर्षकों में निबद्ध है, जो अपने-आप में एक-एक पृथक्-पृथक् पुस्तकों का आकार ले सकतीं हैं। यह यथानाम तथागुण रूप है। गागर में सागर सम प्रतीत होती है। आचार्य श्री ने हजारों-हजारों ग्रंथों का अध्ययन किया है, आयु के पचास वर्षों का अनुभव-ज्ञान उनके पास है, तीस वर्षों से संयमी जीवन जी रहे हैं। **अनुभव-अध्ययन-चिंतन-मनन से जो उन्होंने जीवन में प्राप्त किया उसके सार को उन्होंने 'सत्यार्थ-बोध' में निबद्ध कर दिया है।**

'सत्यार्थ-बोध' के पारायण का सुख तो आप उसके अद्यान्त अध्ययन से ही प्राप्त कर पायेंगे, मैंने उसकी कुछेक कणिकायें यहाँ प्रस्तुत की हैं। **इस कृति को आप एक बार नहीं, अपितु अनेक बार पढ़ें। जैसे निर्ग्रन्थ-श्रमण पन्द्रह दिन में पाक्षिक प्रतिक्रमण करते हैं, वैसे ही सदाचरण की निर्मलता, रीति-नीति निपुणता के लिए सज्जनों को इस 'सत्यार्थ-बोध' का अथ से इति पर्यंत हर माह अध्ययन एवं पल-प्रतिपल चिंतन-मंथन करना चाहिए।**

आचार्य श्री का लेखन परिपूर्ण तार्किक है, नीतियों से रचा-पचा सूक्तिमय है। भाषाशैली मधुर है और मातृभाषा में है, अतः माधुर्य वाक्यों में समाया हुआ है। व्याख्यान विशेषणात्मक है, प्रश्नात्मक है, दृष्टान्त-परक है तथा जिसमें मधुर-संबोधन आनन्द से भर देते हैं। **आप वीतराग-वैज्ञानिक हैं, अतः आपने सम्पूर्ण व्याख्या एक मनोवैज्ञानिक बनकर की है।**

सार-रूप में कहें तो प्रस्तुत कृति सत्य का सम्यक्-बोध कराने वाली 'सत्यार्थ-बोध' नामक नीति-शास्त्र है। सम्यक्-नीतियों का सत्यार्थ-बोध है। अज्ञान का नाशक, ज्ञान का प्रकाशक है। बोध कराने वाला, बोधि प्रकटाने वाला, शोध कराने वाला है। कुल मिलाकर सर्व-जन हितकारी है तथा विश्वव्यापी व्यापक-चिंतन से परिपूर्ण व्याप्त है।

'सत्यार्थ-बोध' उदय

किसी ग्रंथ का लेखन अपने-आप में श्रम-साध्य कार्य है। एक कुशल जननी-माँ ही संतान प्रसूति एवं संतान को संस्कारित करने का श्रम जानती है। मैं समझता हूँ कि- जो श्रम एक मील पद-विहार में लगता है उससे भी अधिक मानसिक व शारीरिक श्रम मनोयोग पूर्वक एक पृष्ठ लिखने में लगता है, फिर सैकड़ों पृष्ठों के श्रम की क्या व्याख्या करें? वह तो शास्त्र-सृजेता ही जानता है।

ऐसा ही श्रमपूर्ण कार्य किया है; श्रमणाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी गुरुदेव ने। प्रस्तुत ग्रंथ 'सत्यार्थ-बोध' का लेखन दक्षिण भारत की तीर्थ-वंदना के अवसर पर सन्-2018 में, तेलंगाना प्रदेश में दिगम्बर जैन तीर्थ तुलचाराम के समीप, हैदराबाद शहर में श्री दिगम्बर जैन मंदिर में ग्रीष्म-वाचना में प्रारम्भ किया, मध्य में 'वस्तुत्व' महाकाव्य का लेखन किया, पश्चात् तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की जन्म, निर्वाण एवं प्रथम देशना भूमि के निकट-निश्रा में चंडीगाँव, माधोगढ़ नगर, नालन्दा जनपद, बिहार-प्रान्त, वैदिक-उद्यान में तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की जन्म-जयन्ती पर सन्-2020 में पूर्ण किया।

आप भाग्यशाली हैं कि- 'सत्यार्थ-बोध' कृति आपके पवित्र कर-कमलों में है। आप अपने सौभाग्य को जाग्रत करना चाहते हैं तो एक बार नहीं, अनेक बार पढ़ें और किसी अपने मित्र, परिचित, संबंधी को उपहार में अवश्य दें, वह आपका उपकार कभी नहीं भूलेगा।

आंग्ल-अनुवाद : हार्दिक धन्यवाद

'विद्वानेव जानाति विद्वज्जन परिश्रमं' - एक जिनतीर्थ निर्माण का श्रम सच्चा शिल्पकार ही जानता है, वैसे ही विद्वान् ही विद्वज्जनों के श्रम को समझता है।

ऐसे ही जैन वाङ्मय के परम-प्रभावक, श्रुत-निष्ठ, आध्यात्मिक सदाचरण के प्रबल पक्षधर, तत्त्वान्वेषी, सिद्धांतवादी, स्पष्टवादी, आंग्लभाषा के सुविज्ञज्ञाता, निर्ग्रन्थ चारित्रानुरागी, अरिहंत-पाद पद्माराधक, अध्यात्म रसिक, श्रेष्ठ शास्त्र संकलज्ञ श्री विजय कुमार जी जैन (देहरादून) ने अत्यंत श्लाघनीय, स्तुत्य एवं अनुकरणीय, महनीय कार्य किया है, जो 'सत्यार्थ-बोध' नीति-शास्त्र का स्व-पर सुखाय, आत्म-हिताय, निस्पृह-निरिच्छभाव से, हिन्दी से आंग्ल भाषा में, विशिष्ट-श्रम व मनोयोगपूर्वक रूपान्तरण किया है। साथ ही साथ सुन्दर-आकर्षक टाईपिंग में परिपूर्ण श्रम किया है। यह श्रुत सेवा का कार्य आपकी आगम में प्रगाढ़ आंतरिक जुड़ाव, गुरु-भक्ति तथा आध्यात्मिक अभिरुचि का परिचायक है। आप हमेशा मूलागम के प्रकाशन-उद्योतन में श्रम किया करते हैं। यह मंगल अनुष्ठान आपके जीवन में संयम का अमृत-कुंभ बनकर शोभित हो, आप उत्तरोत्तर शाश्वत सुख की ओर बढ़ें ऐसी शुभ-भावनाओं के साथ मंगल-भावना भाता हूँ।

हैदराबाद निवासी; परम गुरु-भक्त श्री किशोरजी, श्रुतानुरागी श्री अनिवेश जी एवं पहाड़े परिवार ने, इस ग्रंथ के प्रकाशन में द्रव्य व्यय किया है। आप सभी का जीवन मंगलमय, स्वस्थ व सुखद हो।

'सत्यार्थ-बोध' के प्रकाशन में जिन-जिन श्रुताराधकों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग किया है, सभी को पूज्य आचार्य भगवन्त की ओर से बहुत-बहुत मंगल-शुभाशीष...।

आचार्य भगवंत की मुझ पर अनन्य-अनुकम्पा है कि- वह मुझे श्रुत-सेवा के विविध अवसर प्रदान करते हैं। मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ, जो मुझे 'सत्यार्थ-बोध' कृति के सम्पादन का सुयोग्य कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं धन्य हो गया। इस परमोपकार के लिए मैं आचार्य भगवंत श्री विशुद्धसागर जी के प्रति अत्यंत विनीत और अनुगृहीत हूँ। यह मौलिक कृति निश्चित ही जन-जन में लोकप्रिय होगी, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। अधिक क्या लिखूँ? विस्तार भय से विराम लेता हूँ। गुरुदेव तो ज्ञान के समुन्दर हैं, मैं एक बूँद।

ग्रंथ संकलन / सम्पादन में प्रमादवश त्रुटियों का शेष रह जाना संभव है, अतः सुधी, विवेकी, ज्ञानीजन यथायोग्य सुधार कर पारायण करें। नीतियों, सम्यक्-शिक्षाओं से परिपूर्ण यह 'सत्यार्थ-बोध' पाठकों को पठन-पाठन हेतु प्रस्तुत है। इससे श्रेष्ठ; अन्य कोई उपहार हो ही नहीं सकता है। यह साहित्य-सृजन का कार्य संस्तुत्य है। वंदनीय-अनुकरणीय है। मुझे भी श्रुत-श्रम के फलस्वरूप आत्म-विशुद्धि, श्रुत-सेवा का वर्षण, शास्त्र पारायण का पुण्य आत्मसिद्धि के रूप में प्रतिफलित हो।

नमामि भारतीं जैनीं, सर्व सन्देह नाशिनीम् ।
भानुभामिव भव्यानां, मनः पद्म विकासिनीम् ॥

अप्रतिम-योगी, निर्ग्रन्थ-नाथ, आचार्य भगवंत गुरुवर श्री विशुद्धसागर जी के मुझ पर महत्-उपकार हैं, उन्हीं की मंगल-प्रेरणा एवं शुभाशीष से यह कार्य सम्पन्न हुआ है, अन्यथा मैं तो उनके समक्ष एक बूँद के बराबर भी नहीं हूँ।

मैं गुरु-भगवन् के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। यदि कहीं अनुरूप कार्य न हो सका हो, तो क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अन्त्य में यही भावना भाता हूँ कि- सर्वजन उत्तम-सुख को प्राप्त करें। धरती पर जितने भी धरती के निर्ग्रन्थ देवता हैं, रत्नत्रय आराधक हैं, उनकी रत्नत्रय आराधना निर्मल अरु पूर्णता को प्राप्त हो। सभी प्राणी परस्पर वात्सल्य के सूत्र में बंधकर, अखिल विश्व को 'सत्त्वेषु-मैत्री' का सुखद-संदेश प्रदान करें।

'शुभम् भूयात् भद्रं भूयात्'
सर्वेषां मंगलम् भवतु।

11वाँ संयम दिवस (14 अक्टूबर 2020)
बासोकुण्ड, वैशाली तीर्थ
बिहार-प्रदेश, भारत

गुरुचरणाम्बुज-चंचरीक
कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः

* * *

मनोभावना

• अनिवेश पहाड़े, हैदराबाद

अर्हन्तो मङ्गलं नित्यं, सिद्धा जगति मङ्गलम् ।
मङ्गलं साधवो मुख्यं, धर्मः सर्वत्र मङ्गलम् ॥

लोक में अरहन्त निरन्तर मङ्गल हैं, सिद्ध मङ्गल हैं, साधु मङ्गल हैं और धर्म सर्वत्र मङ्गलरूप है।

मनुष्य जीवन उन्हीं का मङ्गलमय है; जो पंच-परमेष्ठी की भक्ति में संलग्न हैं। मनुष्य जीवन उन्हीं का धन्य है जो सच्चे-प्रभु और साँचे गुरु की भक्ति-सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित किया करते हैं। वे नर नर-लोक में पुरुषोत्तम हैं जो नर-देह पाकर जन्म-जरा-मृत्यु के क्षय का सम्यक्-पुरुषार्थ कर रहे हैं। वे नर भी उत्तम हैं, जो धर्म-धर्मात्मा की रक्षा में अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं।

मैं अपना अहो-भाग्य मानता हूँ कि- मेरा जन्म एक ऐसे सुसंस्कारित, सुप्रसिद्ध परिवार में हुआ; जिसमें प्रभु भक्ति की चाह है, तो गुरु-सेवा के प्रति अनुकरणीय समर्पण भी। मेरे दादा-दादी श्री मांगी लाल जी, श्रीमती वसंति देवी जी पहाड़े तीर्थ-भक्त थे। उन्होंने 1982 से लेकर श्रवणबेलगोला श्री बाहुबली गोम्मटेश्वर में सराहनीय सेवा-सहयोग कर अपना जीवन धन्य किया। कर्नाटक के अधिकांशतः मठों-मंदिरों में पहाड़े परिवार का निरंतर प्रशंसनीय सहयोग रहा है।

ग्रंथ प्रकाशन हो, जिन प्रतिमा स्थापन हो या गुरु-सेवा का कोई अवसर, हमारा परिवार हमेशा ही अग्रणीय भूमिका निभाता रहा है। आचार्य श्री देवनंदी, गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी आदि संघों की ससंघ तीर्थ यात्राएँ कराने का सौभाग्य पहाड़े परिवार को प्राप्त हुआ। हमारे दादा महासभा के संरक्षक सदस्य भी रहे। सामाजिक संस्थाओं तथा समितियों से पहाड़े परिवार हमेशा जुड़ा रहा है। हमारे पूर्वजों के संस्कारों का ही परिणाम है कि श्री मांगीलाल जी के सुपुत्र श्री रमेश जी, श्री राजेश जी, श्री किशोर जी, श्री अनिल जी, श्री दिलीप जी, श्री प्रदीप जी और उनकी सुपुत्री श्रीमती बबीता जी भी धर्म के मार्ग पर बढ़ते रत्नत्रय-धारियों की सेवा-भक्ति में हमेशा तत्पर रहते हैं।

मेरे पूज्य पिताजी श्री किशोर जी, जननी माँ श्रीमती शांता जी पहाड़े, मेरे ससुर जी श्री महावीर पाटनी, सासु जी श्रीमती अर्चना पाटनी, मेरी धर्मपत्नी श्रीमती लीना, बेटा दिव्यार्थ और बेटी साईशा पहाड़े - हम सभी पर परम-पूज्य अध्यात्म योगी आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी गुरुदेव का बहुत-बहुत शुभाशीष है। उनकी विशेष अनुकम्पा दृष्टि का ही प्रताप है कि हमारे परिवार को आचार्य भगवन् के सम्पूर्ण संघ को इन्दौर से गोम्मटेश्वर, गोम्मटेश्वर से हैदराबाद और सोनागिरि से वैशाली (बिहार) तथा सम्मेद-शिखर यात्रा में सहभागी बनने का परम-पुण्य प्राप्त हुआ।

मेरे लिए 'कोरोना-महामारी' अनिष्ट-इष्ट हुई, जिस समय 70-80 दिन गुरुदेव के अत्यंत निकट रहने का दुर्लभ-अवसर प्राप्त हुआ। उस समय गुरुदेव के मुखारबिन्द से मुझे 'कुरल-काव्य' नीति-शास्त्र पढ़ने-समझने का अवसर मिला। मैं इस परमोपकार के लिए उनका सदा-सदा ऋणी रहूँगा।

आचार्य भगवन् ने हैदराबाद (तेलंगाना) में प्रवास के मध्य **'सत्यार्थ-बोध'** नीति-शास्त्र का लेखन प्रारम्भ किया था। हमारे परिवार का परम-पुण्योदय है कि इस नीति-शास्त्र के प्रकाशन का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ।

हम गुरुदेव को क्या दे सकते हैं? हमारा तन-मन-धन और साथ-ही-साथ आत्मन् भी उनके तपःपूत

पाद-पल्लवों में समर्पित है। अधिक क्या कहूँ? उनके विराट् व्यक्तित्व के समक्ष मेरे शब्द बौने हैं-

नैराश्यमद में डूबते नर के लिए गुरु नव आश हैं।
कोई आलौकिक शक्ति हैं, अभिव्यक्ति हैं, विश्वास हैं।।
पंचमकाल की दिव्य ज्योति हैं, अध्यात्म का आभास हैं।
मानो न मानो सत्य है, विशुद्ध-गुरु स्वयं में इतिहास हैं।।

* * *

1

सत्यार्थ-बोध

अहिंसा

Non-injury

1. विश्व-शान्ति प्रदायक धर्म अहिंसा है। विश्व-मैत्री का जनक अहिंसा है। ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण गुण अहिंसा में विद्यमान हैं। अहिंसा धान्य की खेती है; शेष व्रत अहिंसा की रक्षा के लिए बाड़ी हैं। व्यवहार और परमार्थ धर्म अहिंसा के बल पर ही पलते हैं। अशुभ-तरंगें अहिंसक को प्रभावित नहीं कर पातीं। अहिंसा परमब्रह्म है। चिद्ब्रह्म में लीन योगी परमब्रह्म अहिंसा को प्राप्त होता है; जहाँ घात्य-घातक भाव का भी अभाव हो जाता है।

1. The virtue of non-injury *(ahiṃsā)* is the bestower of world-peace. It is the source of friendliness among the beings of the world. All virtues that exist in the universe stream out of the virtue of non-injury *(ahiṃsā)*. The vow *(vrata)* of non-injury *(ahiṃsā)* is the harvest; the rest of the vows are like the surrounding fence to protect the crop. The empirical *(vyavahāra)* as well as the spiritual *(paramārtha)* piety *(dharma)* can only be observed on the strength of the virtue of non-injury *(ahiṃsā)*. Inauspicious vibes fail to affect the person observing the vow of non-injury *(ahiṃsā)*. Non-injury *(ahiṃsā)* leads to the supreme-state-of-being *(paramabrahma)*. The *yogī* engrossed in the pure-self *(cidbrahma)* attains the supreme-state-of-being *(paramabrahma)* where even the dispositions *(bhāva)* relating to the injured and the injurer vanish.

---

2. सर्व-विद्याओं में श्रेष्ठ-विद्या अहिंसा है। जो इस विद्या को सिद्ध कर लेता है उसके सम्पूर्ण विकारों का अभाव सहज ही हो जाता है। यथार्थ में अकषाय-भाव का नाम ही अहिंसा है। सबल-निर्बल सभी की रक्षक है अहिंसा। स्व-पर की रक्षा का ब्रह्मास्त्र है अहिंसा। अहिंसक स्व की भी रक्षा करता है और पर की भी।

दया-अदया भाव शून्य चिद्ब्रह्म की सहज अनुभूति परम विशुद्ध-भाव का नाम है; परम अहिंसा। स्व-पर के द्रव्य प्राणों का वियोग नहीं करना द्रव्य-अहिंसा है और स्व के भावों में कषायिक भाव का उत्पन्न नहीं होने देना भाव-अहिंसा है। भाव-अहिंसा के अभाव में मात्र द्रव्य-अहिंसा परमब्रह्म का कारण नहीं है।

2. Non-injury *(ahiṃsā)* is the best of all learnings *(vidyā)*. The one who masters this learning naturally gets rid of all imperfections. Verily, getting rid of the passions *(kaṣāya)* is non-injury *(ahiṃsā)*. Non-injury *(ahiṃsā)* protects all, the strong and the weak. It is the super-weapon *(brahmāstra)* that protects the self as well as the others. The person with the virtue of non-injury *(ahiṃsā)* protects not only the others but also the self. The supreme-state-of-being *(paramabrahma)* is the experience of the pure-self *(cidbrahma),* rid of all dispositions *(bhāva),* even of compassion *(dayā)* and non-compassion *(adayā)*; this supremely pure state constitutes supreme-non-injury *(parama-ahiṃsā)*. Not causing severance of the physical life-principles *(dravya prāṇa)* of the self and the others is the material-non-injury *(dravya-ahiṃsā)*; not allowing the passions *(kaṣāya)* to stain own dispositions *(bhāva)* is the psychic-non-injury *(bhāva-ahiṃsā)*. The one who observes just the material-non-injury *(dravya-ahiṃsā)*, and not the psychic-non-injury *(bhāva-ahiṃsā)*, cannot attain the supreme-state-of-being *(paramabrahma)*.

---

3. 'प्राणों का वियोग नहीं करना' - मात्र इतना धर्म अहिंसा नहीं है, अपितु किसी भी जीव के प्राणों के हरण के मन में विचार भी नहीं लाना अहिंसा है।

3. Non-injury *(ahiṃsā)* is not just refraining from causing severance of the life-principles *(prāṇa)* of the self and the others; it is not allowing even the thought of injuring any living-being enter the mind.

---

4. प्रत्येक जीव जीने का अधिकार रखता है, उसे जीने देना आपका कर्तव्य है। मात्र अधिकार का ही नहीं, साथ में अपने कर्तव्यों का भी ध्यान रखो। परम-धर्म अहिंसा दुर्बलों का धर्म नहीं, अपितु अहिंसा बलवानों का धर्म है। जो अपनी कषाय से पराजित हो जाता है वही हिंसा कर्म करता है। श्रेष्ठ जन स्व-पर दोनों पर दया भाव रखते हैं। अंत:करण में किञ्चित् मात्र भी अशुभ संकल्पों-विकल्पों को उत्पन्न नहीं होने देना भाव-अहिंसा है। भाव-अहिंसा पालक ही यथार्थ में अहिंसक है और वही सुगति का पात्र है। मात्र द्रव्य-अहिंसाव्रत का पालक सुगति (सिद्धगति) को प्राप्त नहीं कर पाएगा।

4. Every living-being has the right to live; it is your duty to let it live. Think not only about your rights but also of your duties. The supreme virtue of non-injury *(ahiṃsā)* is observed by the strong, not by the weak. The one who gets overwhelmed by the passions *(kaṣāya)* engages in the acts of injury *(hiṃsā)*. Virtuous men are compassionate on the self as well as the others. Not allowing the rise of even the

slightest of inauspicious volitions *(saṃkalpa)* and inquisitiveness *(vikalpa)* is the psychic-non-injury *(bhāva-ahiṃsā)*. Observance of the psychic-non-injury *(bhāva-ahiṃsā)* is the real non-injury *(ahiṃsā)*. The one who observes the psychic-non-injury *(bhāva-ahiṃsā)* is the real non-injurer *(ahiṃsaka)* and fit to attain the meritorious state-of-existence *(gati)*. The one who observes just the vow of material-non-injury *(dravya-ahiṃsā)* does not attain the supremely meritorious state-of-existence *(gati)*, i.e., the state of liberation *(siddhagati)*.

---

5. दूसरों के अन्नपान में बाधा डालना, अङ्गों का छेदन-भेदन करना, वध-बंधन करना, बलिदान करना, द्रव्य-भाव प्राणों का वियोग करा देना, कर देना अथवा करने वाले की अनुमोदना - ये सब कार्य अहिंसा धर्म के विरुद्ध हैं अर्थात् हिंसा-कर्म हैं। आत्महितार्थी के लिए इन सब कार्यों का त्याग करना ही श्रेष्ठ मार्ग है।

5. Creating obstructions in food and drink, piercing and mutilating limbs, beating and binding, sacrificial offering and severance of physical *(dravya)* or psychic *(bhāva)* life-principles *(prāṇa)* of others – by doing, getting done or approval – are against the virtue of non-injury *(ahiṃsā)*; these constitute acts-of-injury *(hiṃsā-karma)*. The one who wishes own-well-being should tread the excellent path that is rid of all such actions.

---

6. कोटि-कोटि यज्ञों अथवा सहस्त्रों तीर्थों की वन्दना के फल की अपेक्षा एक जीव के प्राणों की रक्षा करना अधिक अच्छा है। यदि आप किसी को प्राण-दान देने में समर्थ नहीं हो तो किसी के प्राण-हरण का अधिकार भी आपको नहीं है। प्राणी-मात्र के प्रिय बनने के भाव हैं, तो मन-वचन-काय से प्राणियों की रक्षा करो। परम सुख का भोक्ता वही होता है जो इन्द्रिय सुख तथा भोग के राग में त्रस-स्थावर जीवों का घात नहीं करता है। वह अल्प-द्रव्य के व्यय से अधिक-द्रव्य प्राप्तिवत जीवन जीता है।

6. To save the life of one living-being *(jīva)* is better than performing millions of rites *(yajña)* and undertaking thousands of pilgrimages *(tīrtha-vandanā)*. As you are not able to offer the gift of life to anyone, you certainly do not have the right to kill. If you desire adoration from all living-beings, protect them with your mind, speech and body. The one who does not harm the living-beings of the two kinds – those with two or more senses *(trasa jīva)* and those with just the sense-of-touch *(sthāvara jīva)* – for the sake of own sensual gratification, enjoys excellent bliss. His life is akin to the one whose income far exceeds expenditure.

---

7. मेरु से बड़ा स्कन्ध नहीं, आकाश से विशाल कोई द्रव्य नहीं, परमाणु से छोटा कोई द्रव्य नहीं, उसी प्रकार अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं और हिंसा से तुच्छ-हीन कोई कार्य नहीं। धान्य-घास खाकर अमृत

(दुग्ध) देने वाली गाय-भैंसादि प्राणियों का घात करा देना यह उपकारी का उपकार नहीं। जो तिर्यंच प्राणी मानव जीवन की आजीविका में अपने जीवन को सौंप रहे हैं उन निरीह-मूक पशुओं की हत्या करा देना मानव की मानवता नहीं है। हे मानव! तेरे मानवता के नयनों में नीर आना चाहिए। जीवन-दान देने वाले का जीवन ले लेना मानव-धर्म नहीं है। प्रकृति ने पृथ्वी पर सबको जीने का अधिकार दिया है, चाहे नर हो, पशु हो। अहो नर! पर के अधिकारों का हनन करना तेरा कर्तव्य नहीं, अपितु दूसरों के अधिकारों को हनन करना हिंसा है। मत करो व्यर्थ में वनस्पति का घात, यह तो पृथ्वी की सुन्दरता का आभूषण है। वसुधा के आभूषण छीनोगे तो पृथ्वी मां सहन नहीं कर पाएगी और फिर भूचाल होगा, सुनामी जैसे उपद्रव होंगे और प्राणियों को बिलखना पड़ेगा।

7. No molecular-matter *(skandha)* is larger than Mount Meru, no substance has more expanse than the substance-of-space *(ākāśa dravya)* and nothing is smaller than the atom *(paramāṇu)*; similarly, there is no piety *(dharma)* greater than the virtue of non-injury *(ahiṃsā)* and no deed more evil than the act of injury *(hiṃsā)*. Animals like the cow and the buffalo themselves subsist on grain and grass but provide the man the nectar (in form of milk); to get them killed is no favour for their beneficence! It is not humane on part of the man to get these meek and mute animals, who submit themselves for his livelihood, killed. O man! This should bring tears to the eyes of your humanity! Humanity can never mean taking the life of the life-giver. The nature accords the right-to-live to every living-being, human or plant-and-animal *(tiryañca)*. O man! It is not your duty to strike down the rights of others; in fact, it constitutes an act of injury *(hiṃsā)*. Do not purposelessly destroy even the plant-life; the plant-life is the ornament that embellishes the earth. Mother Earth will not tolerate the snatching of her ornament and respond in way of calamities like the earthquake or the tsunami, causing widespread wailing.

---

8. करुणा, दया, अनुकम्पा सब अहिंसा के अंग हैं। अहिंसा के अभाव में न करुणा, न दया, न अनुकम्पा। दया से विशुद्ध धर्म के अभाव में जाप-अनुष्ठान, पूजा-विधान सब व्यर्थ ही जानो। जहाँ जीवों का संहार हो वहाँ धर्म नहीं है। यदि पर-प्राणों के हरण-प्रताड़न से धर्म माना जाएगा, तो फिर अधर्म की परिभाषा क्या होगी?

8. Mercifulness *(karuṇā)*, pity *(dayā)* and compassion *(anukampā)* are all limbs of the virtue of non-injury *(ahiṃsā)*. Mercifulness, pity or compassion do not exist without the virtue of non-injury *(ahiṃsā)*. Religious incantations, rituals and prayers devoid of the dharma, purified by the virtue of pity *(daya),* are of no use. No dharma can exist where there is injury to the living-beings. If injuring or causing distress to the life-principles *(prāṇa)* of others be termed *'dharma'*, what would be the definition of *'adharma'* (not-dharma)?

---

9. अपने विवेक को जाग्रत करने की आवश्यकता है। नरमेध, अश्वमेध, गोमेध का अर्थ यह नहीं है कि

आप प्राणियों को कुण्ड में आहूत कर दो। नरमेध का तात्पर्य है कि मानव अपनी मानवता को सुरक्षित रख कर जो अंतरंग में असुरी-वृत्ति है उसको छोड़े। गोमेध का अर्थ गौ (गाय) का घात नहीं है, अपितु गौ से तात्पर्य गौ अर्थात् गमन। जो पाप प्रवृत्ति में गमन हो रहा है उसका अभाव करो, यह गोमेध का अर्थ है। अश्व का अर्थ घोड़ा है, तो क्या घोड़े का घात करना अश्वमेध है? नहीं। अश्व की भाँति चित्त की द्रुतगति है, उसे रोकना अश्वमेध है। महिष की बलि का अर्थ भैंसे को मारना नहीं, विशालकाय प्राणियों का रक्तास्रव कराना नहीं, अपितु महिष प्रमाद का प्रतीक है, इसलिए अपने प्रमाद-आलस्य का विसर्जन करना है। अज्ञानियों ने रूपक को वैसा स्वरूप समझ लिया, जो पूर्ण असत्य है।

9. You need to wake up your discrimination *(viveka)*. The literal translation of the terms *'naramedha'*, *'gomedha'* and *'aśvamedha'* would entail 'man-sacrifice', 'cow-sacrifice' and 'horse-sacrifice', respectively. But, in reality, such expressions do not mean that you sacrifice these creatures into the fire-pit. What *'naramedha'* means is that the man should get rid of his evil demon-spirit, keeping intact his humane tendencies. The term *'gomedha'* does not mean killing of the cow *(gau)*; the expression *'gau'* implies 'movement' *(gamana)*. Therefore, the real meaning of *'gomedha'* is to restrict the movement of your inclinations toward evil tendencies. Similarly, *'aśvamedha'* does not mean killing the horse. The mind wanders at a brisk speed, like that of a horse; to control the wandering of the mind is *'aśvamedha'*. Also, sacrificing the *'mahiṣa'* – the buffalo – would not mean the bloodshed of such huge animals. Since such huge animals signify heedlessness *(pramāda)* and indolence *(ālasya)*; shedding these attributes is the real purport. Ignorant men, not appreciating the use of the metaphors *(rūpaka)*, grossly misinterpret these figurative expressions.

---

10. विश्व में शान्ति, आनन्द का संदेश देना है, तो अहिंसा के माध्यम से ही दिया जा सकता है, अन्य कोई मार्ग विश्वशान्ति का नहीं है। टंकोत्कीर्ण ज्ञायक-भाव में प्रविष्ट पुरुष एकमात्र चैतन्य भगवान्-आत्मा का आलम्बन लेता है। वहाँ बहिरंग संकल्प-विकल्प का पूर्ण अभाव है। वहाँ साम्यभाव से युक्त आत्मशान्ति से सम्पन्न परमार्थ से अहिंसा-धर्म है।

10. Non-injury *(ahiṃsā)* is the only medium to convey the message of world-peace and happiness; there is no other way to attain world-peace. The man who is firmly established in own knowledge-nature takes refuge only in the soul *(ātmā)* whose mark is supreme- and divine-consciousness. Such a man remains totally oblivious to all external volitions *(saṃkalpa)* and inquisitiveness *(vikalpa)*. In him resides the real dharma of non-injury *(ahiṃsā)* that is marked by equanimity *(sāmyabhāva)* and tranquility *(ātmaśānti)*.

---

11. निर्ग्रन्थ महाव्रती मुनि आरम्भी, उद्योगी, विरोधी एवं संकल्पी चारों ही प्रकार की हिंसा का त्याग करते हैं। गृहस्थ देशव्रती एकमात्र संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है तथा व्यर्थ में अन्य हिंसा भी नहीं करता है।

11. The sky-clad *(nirgrantha)* ascetic *(muni)* who observes the great-vows *(mahāvrata)* renounces injury *(hiṃsā)* in all its four manifestations – 1) caused by routine-acts *(ārambhī)*, 2) caused by occupational-acts *(udyogī),* 3) caused for taming the opponents *(virodhī),* and 4) caused wantonly *(saṃkalpī)*. The householder *(gṛhastha, śrāvaka)* observes small-vows *(deśavrata, aṇuvrata)* and renounces just the injury *(hiṃsā)* caused wantonly *(saṃkalpī)*; he, however, also avoids the remaining three kinds of injury *(hiṃsā)*.

* * *

"अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा-धर्म को धारण किए बिना न सुख है, न ही शान्ति। अहिंसा सदुपदेश देने के लिए सरस्वती है। विश्व-शान्ति का उपाय एकमात्र अहिंसा है। धर्म के समस्त अंगों में अहिंसा एक प्रधान अंग है। करोड़ों रत्न का दान श्रेष्ठ नहीं है, पर एक जीव के प्राणों की रक्षा करना श्रेष्ठ है। सर्व सुखमयी धर्मों का जनक 'अहिंसा-धर्म' है।"

(आचार्य विशुद्धसागर, **'जीवन-रहस्य'**, पृ. 53-54)

2

सत्यार्थ-बोध

सत्यता

Truthfulness

1. वस्तु के यथार्थ स्वरूप का कथन करना, विपरीत, हीनाधिक कथन नहीं करना तथा प्रशस्त साधु-वचनों का बोलना सत्यधर्म है। सत्य का अपमान किया जा सकता है, परन्तु फिर भी सत्य-सत्य ही रहता है। सत्य कभी भी अपमानित नहीं होता है, अपितु जो सत्य का अपमान करते हैं वे ही लोक में अपमान को प्राप्त हो जाते हैं।

1. To articulate the true nature of the substances *(vastu)*, without contradiction, blowing-up or playing-down, and to speak only those words which are laudable, is the virtue *(dharma)* of truthfulness *(satya)*. Truthfulness is sometimes denigrated but still it reigns supreme. Truthfulness can never be denigrated; the fact is that those who denigrate truthfulness themselves get denigrated in the world.

---

2. धर्मात्मा को सत्य-वचन प्राणों से अधिक प्रिय लगते हैं। प्रभावी-जन मितभाषी होते हैं, क्योंकि बहुप्रलाप प्रभुत्व-शक्ति का अभाव कर देता है। जो भाषण स्वयं के लिए मधुर नहीं लगता वह अन्य के लिए भी प्रयोग न करें। सज्जन व्यक्ति गुरुजनों के समक्ष अल्प, गम्भीर, अर्थ-प्रधान, विनय-मिश्रित वचनों का ही प्रयोग करते हैं। महाजन स्व-मुख से न तो कभी दूसरों की निन्दा करते हैं और न ही स्वयं की प्रशंसा करते हैं।

2. Virtuous men love truthfulness more than their lives. Influential men talk sparingly as unrestrained talk results in the ruin of their influence. The speech that does not sound pleasing to the self should not be employed for the others. Virtuous men, while in front of their teachers, use only such speech that is succinct, profound, meaningful and respectful. Distinguished men never utter words that suggest censuring of others and praise of self.

---

3. वे ही मुख-कमल हैं; जो गुणीजनों के गुण-कीर्तन से सुवासित हैं, उन मुख-कमलों पर साधुजन भ्रमर की भाँति भ्रमण करते हैं। असत्य-भाषी विश्व का अविश्वासी होता है, स्व-परिजन भी उस पर विश्वास नहीं करते, फिर अन्य की क्या कहें? हितकारी, मृदु, मधुर, गंभीर, विश्व-बंधुत्व के कारणभूत वचनों का प्रयोग व्यक्ति के व्यक्तित्व का ज्ञापक है। असत्य-भाषण करने वाले कभी भी आत्म-शक्ति को प्राप्त नहीं होते, भाव-विशुद्धि तो उनके निकट कभी भी नहीं आती। असत्य-भाषी का सर्वत्र अपमान होता है, वह स्वयं ही स्व-यश का घात करता है। मृषा-भाषी साधुजनों में निम्न स्थान पाता है।

3. Those only are the lotus-mouths which carry the fragrance generated by the singing of the praise of the meritorious men; virtuous men move around such lotus-mouths, like bees. The world does not trust the untruthful man; even his kin and relatives do not trust him, what to talk of the others. If a man uses words that are beneficial, sweet, pleasant, deep and promote fraternity, these proclaim his elevated personality. The men who are untruthful can never experience the strength of their own-soul; the purity-of-thought *(bhāva-viśuddhi)* never comes close to them. The untruthful man gets humiliated everywhere; he himself destroys own-glory. The liar gets a lowly place among the virtuous men.

---

4. असत्य-भाषण करने वाले लोग काम साधने के लिए बहुत मीठा-अपनापन दिखाते हैं, परन्तु समय पाकर वे असत्य-भाषी दगा दे जाते हैं। साधु-पुरुषों के वचन हित-मित-प्रिय तथा धर्म-यश वृद्धि के कारण होते हैं। ज्ञानीजन प्राणों से भी प्रिय सत्य को स्वीकार करते हैं। प्राण तो अनेक भवों में अनेक बार प्राप्त हुए हैं, होते रहेंगे, परन्तु सत्य बार-बार प्राप्त नहीं होता है। एक भव में ही जीव मन-वचन-काय से सत्य को स्वीकार ले, तो जन्म-जरा-मृत्यु का क्षय हो जाए। वह साधु-पुरुष धन्य हैं जो सत्यार्थ धर्मामृत का पान करते हैं तथा अन्य जनों को कराते हैं।

4. The untruthful men, in order to accomplish their desired task, feign sweet-belongingness with you but, with time, they ditch. The words of virtuous men are beneficial, sweet, agreeable and add to the glory of the dharma. The knowledgeable men consider truthfulness more endearing than even their life *(prāṇa)*. In this world, one gets life *(prāṇa)* over and over again but the virtue of truthfulness is not acquired repeatedly. If a man embraces – with mind, speech and body – the virtue of truthfulness in just one life, his cycle of birth-decay-death gets snapped. Hail the virtuous men who themselves drink the nectar of piety based on truthfulness, and let others drink it!

---

5. मधुर भाषण से दरिद्री-जनों के पास वास करने की अपेक्षा वन-खण्ड का वास श्रेष्ठ है। सत्य-वचन, सत्य-जीवन स्वयं में ही उच्चता के शिखर का जीवन है, इसके लिए पर की प्रशंसा की आवश्यकता नहीं है।

जो गुण स्वयं में नहीं, फिर भी उन गुणों से युक्त स्वीकारना, यह असत्य वाक्-वृत्ति का जीवन है। गुणीजनों के गुणों को नहीं स्वीकारना यह असत्य मन का विकल्प है और यही विकल्प गुणहीन बना देता है। जिनके वचन सद्गुणों के कीर्तन में लगते हैं, मात्र उनका ही वचन-बल सम्यक्-सार्थक है। जो पुरुष आगमानुकूल सत्य भाषण करते हैं, उन्हें वचन-सिद्धि हो जाती है।

5. It is better to live in the woods rather than in the company of men devoid of pleasing speech. Truthful speech and truthful living, in themselves, constitute the summit of life; such a life does not need praise from the others. Proclaiming non-existent qualities in oneself is the life of untruthfulness. Not appreciating the existent qualities of meritorious men is an attribute of the untruthful mind; this attribute brings about demerit. The strength-of-speech *(vacanabala)* of only those who use it in singing the laudable qualities (of the soul) is truly meaningful. Those whose speech consists in proclaiming the truth based on the Scripture, attain speech-perfection, i.e., their utterances become inviolable.

---

6. यदि आप अपनी बात सुनाना चाहते हैं, तो सर्वप्रथम स्वयं दूसरे की बात को ध्यान से सुनना होगा। जो भाषण दूसरों को कष्ट-प्रद हो, पर-निन्दापरक, हिंसा-युक्त, कर्कश हो, ऐसे भाषण का पूर्ण त्याग करें। ये सब वचन असत्य की कोटी में आने वाले हैं। ज्ञानी-जन वे ही वचन बोलते हैं, वे ही वचन सुनते हैं, उन्हीं वचनों की अनुमोदना करते हैं जिन वचनों में आत्महित निहित हो।

6. If you want others to listen to you, you will have to first give your ear to others. The speech that is painful, defaming, injuring, and harsh for others should be renounced completely. All these types of speech fall under the category of untruthfulness. The knowledgeable men speak, listen to and approve of only such speech that results in the well-being of own-soul.

---

7. वही वार्ता तत्त्वचर्चा है जिसमें विसंवाद नहीं, विसंवाद से विशुद्धि का विनाश होता है। विशुद्धि के अभाव में संसार वृद्धि होती है। तत्त्ववार्ता संसार-वृद्धि के लिए नहीं, अपितु संसार-हानि के लिए होती है। कर्कश शब्दों का घाव बाण से भी अधिक कष्टप्रद होता है। बाण मात्र शरीर को विदीर्ण करता है, परन्तु वाणी की तीक्ष्णता अंत:करण को विदीर्ण कर देती है। मधुर-भाषण से काले नाग को भी वश कर लिया जाता है; यह विश्व को स्ववश करने की विद्या है - मधुर, प्रिय-मित-हितकारी भाषण। अहंकार-ममकार की भाषा से व्यक्ति साधु-पुरुषों से दूर चला जाता है।

7. Only that discussion in which there is no harshness is the discussion on the substances of reality; harshness disrupts the purity of the dialogue. Without the purity, worldly-existence *(saṃsāra)* gets extended. Discussion on the substances of

reality is not for extending the worldly-existence but for shortening it. The wound caused by the harsh words is more painful than the wound caused by the arrow. The arrow just ruptures the body but the sharp speech ruptures the heart. Sweet sound has the power to subjugate even the black cobra; use of pleasant, sweet, agreeable and beneficial words is the science that has the power to subjugate the world. The person who employs the language of self-aggrandizement *(ahaṃkāra)* and self-interest *(mamakāra)* gets far away from the virtuous men.

---

8. सरिता का शीतल जल प्राणिमात्र के लिए शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार सज्जनों के संस्कारित-वचन प्राणिमात्र के लिए शीतलता प्रदान करते हैं। वाणी में कटुता का विष न हो, मैत्री का अमृत हो जो सर्वजनप्रिय होता है। सर्व-हित-वांछक पंथ-संप्रदायों से भिन्न होकर प्राणिमात्र के लिए विश्व-बंधुता का सदोपदेश देता है।

8. Just as the cool water of the river provides comfort to the living-beings, similarly, the cultured words of worthy men provide cool comfort to the living-beings. The speech that is without the poison of bitterness and with the nectar of amity is liked by all. The person who longs for the well-being of all desolates himself from religious sects and groups, and discourses on universal brotherhood.

---

9. जिसकी भाषा ही कटुतापूर्ण है; उसके भावों की दशा कितनी कटु होगी? शब्दों का प्रयोग भी साधुतापूर्ण होना चाहिए। साधु-भेष मात्र से साधुता की पहचान नहीं है, भाषा-भाव में साधुता है तो साधु-भेष बनाना भी श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ पद के अनुकूल भाषा भी श्रेष्ठता से संस्कारित होना चाहिए। अज्ञ प्राणी धर्म, समाज, संस्कृति की सेवा करते हुए भी उज्ज्वल, विवेकपूर्ण-वाणी के अभाव में सम्मान को प्राप्त नहीं होते। पर-प्राणी पीड़ाकारक शब्द भी सज्जन लोग नहीं बोलते, क्योंकि उन्हें बोध होता है कि शब्द का घाव बहुत गहरा होता है जो सीधा अन्त:करण में होता है। ऐसे शब्दों का भी प्रयोग मत करो जिससे परस्पर में प्रीति का वियोग हो जाए तथा वैर का संयोग हो जाए। धन्य वे साधक जिनके वचन अमृत से भी अधिक मीठे, चन्द्रमा की चाँदनी से अधिक शीतल हैं; वे ही धरती पर मैत्री-भाव स्थापक हैं। यदि आप सत्य-सम्पत्ति की रक्षा चाहते हैं, तो सम्पूर्ण साधनाओं में श्रेष्ठ साधना मौनव्रत का निर्दोष पालन करो।

9. Bitter will be the thoughts of the person whose speech is bitter! The use of the words should be righteous. External appearance alone is not the true indicator of the ascetic; if there is righteousness in speech and thought, it is then appropriate to adopt the external appearance of the ascetic. The speech of the person who enjoys an exalted status should be commensurately sublime. Ignorant men, even if engaged in the service of religion, society and culture, are not held in high esteem if their speech

lacks radiance and discrimination. Noble men do not utter words that cause distress to others; they appreciate that the wound created by the words is very deep and goes straight to the heart. Do not use words that tear apart mutual affection and brings about enmity. Hail the ascetics whose words are sweeter than the nectar and more soothing than the rays of the moon; they only establish friendliness on this earth. If you wish to protect your wealth of truthfulness, observe faultlessly the greatest practice of all practices – the vow of silence.

---

10. आत्मसाधक व्यर्थ के वचनालाप से आत्म-रक्षा करता है। वचनों का संयम रखना साधक का अनिवार्य अङ्ग है, क्योंकि लोक में बड़े-बड़े अनर्थ वाणी-असंयम से ही हुए हैं। जिसकी वाणी में स्याद्वाद विराजमान है, उसकी वाणी ही जगत् में स्व-पर कल्याणी है। स्याद्वाद-शून्य वचन अस्त्र से भी अधिक घातक होते हैं।

10. The person practising own well-being shields himself from worthless talking. Restrained speech is the essential limb of the observance of piety; unrestrained speech has caused many great tragedies in the world. The words of the person whose speech rests on the doctrine of conditional predication – *syādvāda* – are beneficial to self as well as others. The words that do not rest on the doctrine of conditional predication cause more harm than by a weapon.

* * *

3

सत्यार्थ-बोध

अचौर्य

Non-stealing

1. किसी की रखी हुई, पड़ी हुई, भूली हुई, पर-वस्तु को बिना आज्ञा के ग्रहण कर लेना, अन्य को करा देना तथा परकीय अदत्त वस्तु के प्रयोग करने की अनुमोदना करना चोरी है। जो ऐसा नहीं करता, वह अचौर्य व्रती है। जगति पर पर-स्वामित्व के स्वर्ण, हीरा, वज्र, रत्न आदि द्रव्यों को बिना आज्ञा के स्वीकार नहीं करना अचौर्य है। व्यक्ति को स्व-धन प्राणों जैसा प्रिय होता है। जो पर-धन का हरण करता है वह उसके प्राणों का ही हरण करता है। जहाँ चोरी होगी वहाँ हिंसा अवश्यम्भावी होती है, वह हिंसा द्वैत रूप होती है। धन पुरुषों के लिए ग्यारहवाँ प्राण है, जो धन-हरण है वह उसका प्राण-हरण है। दूसरी दृष्टि से देखें तो चोर धन के राग में धनवान की हिंसा कर देता है अथवा कभी धनिक द्वारा पकड़ा जाने पर चोर की हिंसा होते देखी जाती है, इसलिए साधुजनों को चोरी-पाप से आत्मरक्षा प्रतिक्षण करना चाहिए। धन-हरण मात्र ही चोरी नहीं है, जो भी वस्तु परकीय स्वामित्व युक्त है, उसको उसकी अनुमति के बिना ग्रहण करना चोरी है।

1. To accept, give to others or accord others the approval for use, without permission of the owner, any article that has been kept, dropped, or lost, is stealing. The person who refrains from such acts observes the vow of non-stealing. In this world, not taking, without permission, items like gold, diamond, adamant and gem that belong to others is non-stealing. Human beings love their wealth as life. The one who takes away the wealth of others, in effect, takes away their life. Where there is stealing, there certainly is the act-of-injury *(hiṃsā)*; the act-of-injury *(hiṃsā)* has duality *(dvaita)*. The wealth is the eleventh life-principle *(prāṇa)* of man; taking away of the wealth, therefore, amounts to taking away of his life. From other point-of-view, the thief, due to his attraction for wealth, harms the owner of wealth, and, at times, the thief is harmed when caught by the owner of wealth. It is, therefore, appropriate that virtuous men should defend their souls from the evil of stealing. Stealing is not

only taking away the wealth of others; it is also taking away anything that belongs to others.

---

2. लोभ-कषाय, परिग्रह संज्ञा के वश हुआ प्राणी चोरी जैसे हीन-कर्म करने को तैयार हो जाता है। परम तत्त्व का निर्णय तभी होगा जब जीव अस्तेय धर्म का पालन करेगा। तस्कर-भाव न स्व को शान्ति देते हैं, न पर को। जब परिणामों में शान्ति का अभाव है, तब तत्त्व-निर्णय कैसा?

2. The man subjugated by the passion *(kaṣāya)* of greed *(lobha)* and the instinct *(saṃjñā)* of attachment-to-possession *(parigraha)* commits himself to the lowly activities like stealing. Right discernment of the reality can occur only to the man who observes the virtue of non-stealing. The disposition of stealing fails to accord the peace-of-mind to self or to others. When there is no peace-of-mind, how can right discernment of the reality be achieved?

---

3 अपने समय पर स्व-कार्य न करना भी समय की चोरी है। जैसे स्वधन आपको प्रिय है उसी प्रकार से अन्य जनों को भी स्वधन प्रिय है, इसलिए किसी के प्रीतिभूत धन का हरण प्राण-हरण के तुल्य है। साधु-पुरुष पर के गृह-आँगन से आगे बिना पूछे प्रवेश नहीं करते हैं। धर्मात्मा-पुरुष धर्मात्मा के मध्य कभी भी विसंवाद नहीं करते, तभी निर्दोष-अचौर्य व्रत होता है। स्वभावों की विशुद्धि का घातक भी चोर है। अचौर्य व्रत पालक प्रतिक्षण प्रसन्न रहता है; उसके अन्तःकरण में चौर्य-कृत्य संक्लेशता का विष नहीं रहता है। पर-वस्तु का हरणकर्ता अंतरंग-बहिरंग संक्लेशता की अग्नि में झुलसता रहता है।

3. Not performing your activity on time is the stealing of time. As you love your wealth, others too love their wealth; therefore, taking away the wealth of others is akin to taking away their life. Virtuous men do not enter, without permission, beyond the front courtyard of the house of others. Only when the virtuous men restrain themselves from harsh discussion do they observe, faultlessly, the vow of non-stealing . The one who maligns the purity of his thought is also a thief. The observer of the vow of non-stealing remains ever cheerful; his heart remains free from agitation due to the poisonous thought of stealing. The person who takes away anything belonging to others gets continuously scorched in the fire of internal and external agitation.

---

4. चोर पूर्ण आयु को नहीं भोग पाता, या तो पर के अस्त्रों-शस्त्रों से मृत्यु को प्राप्त होता है या फिर संक्लेशता से अकाल-मरण को प्राप्त होता है। तस्कर की आत्मा से 'निर्भय' शब्द तो समाप्त ही हो जाता है, चोर प्रतिक्षण भय-ग्रस्त रहता है। चोर का जीवन जगत् की प्रीति से शून्य व शुष्क बन जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

इन चारों ही पुरुषार्थों में तस्कर शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता है। चोर को देखकर स्व-बंधु भी उसे श्वान सा देखते हैं, चोर किसी का प्रिय नहीं होता है। साधुजन भी चोर से सावधानी रखते हैं। धन का अभाव होने पर भी सावधानी रखने का कारण अपयश की आशंका है; तस्कर के साथ रहने से लोकापवाद हो सकता है। ज्ञानीजनों का सहवास ज्ञानीजनों के ही मध्य होता है।

4. The thief is not able to enjoy full life; he gets untimely death either by the weapons of others or by the agitation of own-mind. The word 'fearlessness' gets deleted from the soul of the thief; he is scared at all times. His life becomes loveless and dry. The thief does not get the peace-of-mind in all his four endeavours – leading to piety *(dharma)*, wealth *(artha)*, enjoyment *(kāma)*, and liberation *(mokṣa)*. He is not loved by anyone; he is looked upon like a dog even by his kin. The ascetics too are wary of the thief. Although the ascetics do not own any wealth, they maintain distance from a thief since his company may bring them calumny and disrepute. The knowledgeable men prefer to live only with those possessing similar attributes.

---

5. अस्तेय व्रतधारक साधर्मी जनों से विसंवाद-भाव को प्राप्त नहीं होता, प्रत्येक धर्मात्मा के प्रति वात्सल्य भाव बनाकर चलता है। अचौर्य व्रत पालक सधर्मात्मा के प्रति विरोध-भाव का त्याग कर देता है, सभी के लिए स्थानदान करता है, स्व-स्थान से किसी को पतित करने के भाव नहीं लाता है।

5. The votary observing the vow of non-stealing does not entertain the thought of aggressive disagreement with fellow pious men; he maintains affection toward all. Such a votary renounces vicious thought against the members of his congregation; he gifts abode to them and does not think of displacing anyone from his own place.

---

6. पर का उपकार करना चाहिए; परन्तु उपकृत को स्व-उपकार की याद नहीं दिलाना चाहिए, यदि आप अणु एवं महाव्रतों के पालक हैं तो। पर के द्वारा की गई चोरी की वस्तु का प्रयोग भी नहीं करता अणुव्रती-महाव्रती। जो परकृत चोरी की वस्तु का प्रयोग कर लेता है उसके अचौर्यव्रत में दोष है। साधु-पुरुष राज्य के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते, शासन की आज्ञा, जो नीति-न्याय युक्त हो, उसका प्राणपन से पालन करते हैं।

6. Be benevolent but if you are an observer of either the small-vows *(aṇuvrata)* or the great-vows *(mahāvrata)* do not remind the benefitted person of the favour you did to him. Such a votary does not put to his use any article stolen by others. The votary who puts to use any article stolen by others vitiates his vow of non-stealing. Noble men do not act in contravention of the rules of the state and obey earnestly all just orders of the state.

---

7. राजा का कर्तव्य है प्रजा से कर ले, वृक्ष के फलवत। जैसे कृषक फलवान वृक्ष से फल ही लेता है परन्तु जड़मूल से वृक्ष का विघात नहीं करता, क्योंकि आगामी फल भी उसी वृक्ष पर आएँगे, उसी प्रकार से राजा प्रजा से कर तो ले, परन्तु प्रजा का सर्व-हरण न करे। यदि राजा बिना कारण प्रजा का सर्व-हरण करता है, तो वह भी चोर है। लेन-देन के मापदण्ड न हीन हों और न अधिक हों, इस प्रकार की वृत्ति जो करता है उसके अचौर्य व्रत पलता है। जो पुरुष मान-उन्मान में हीन-अधिकता रखता है वह निर्दोष अचौर्य व्रत पालक नहीं है। जिन-शासन कर्मदण्ड की क्रिया से वह अपने को सुरक्षित नहीं रख सकता है। जो वस्तु जिस कार्य के लिए उपयुक्त है उसका उपयोग उसी कार्य में करना चाहिए, इस विधि का जो पालन नहीं करता है वह कारण-कार्य विपर्यास कर रहा है। वह अस्तेय व्रत में दोष लगा रहा है, चोरी-मायाचारी के संस्कार उसके कार्य कर रहे हैं, इस बात का बोध होता है।

7. The king should collect taxes from his subjects as fruits are plucked from the tree. The farmer plucks the fruits from the tree without uprooting it as the same tree would provide him fruits in the future; similarly, the king should collect taxes from his subjects but without excessive extortion. If the king, without reason, extorts excessively, he is guilty, like a thief. The one observing the vow of non-stealing does not use false weights in order to obtain more and give less. The man who uses false measures in order to obtain more and give less does not observe faultlessly the vow of non-stealing. He cannot shield himself from the exact karmic penal system of the regime of Lord Jina. Use any article only for the designated purpose; the man flouting this rule contravenes the doctrine of cause-and-effect. He vitiates his vow of non-stealing as he exhibits both these faults, non-stealing and deceitfulness.

---

8. जो भाव मोक्षमार्ग में कारण है साधक के लिए उन्हीं भावों पर स्थिर होने का सतत पुरुषार्थ करना चाहिए। यदि साधक साधु-भेष में असाधु भावों की अनुभूति लेता है तो वह असाधु भावों की तस्करी कर रहा है, स्व के साधु भावों का विघातक है, दीर्घसंसारी है। स्व-संयम में उत्साह के साथ पूर्णरूप से स्थापित रहना साधक का अचौर्यव्रत है। स्वगुणस्थान से पतित होकर भी गुणस्थान-जन्य पूजा को प्राप्त करना तथा श्रेष्ठ साधकों से स्व की विनय करवाना अचौर्यव्रत का अभाव है। उस साधक के अन्दर माया-कषाय से दूषित चित्त-युक्त नर कुमरण को प्राप्त होता है।

8. The ascetic should constantly endeavour to establish himself only in dispositions that help in traversing the path to liberation. If the ascetic, wearing the external marks of an ascetic, engages in dispositions not worthy of his high status, he is engaged in smuggling the non-virtuous dispositions, is the killer of the virtuous dispositions of self, and extending his world-wandering. To remain established, with vigour and entirely, in self-restraint is the observance of the vow of non-stealing for the ascetic. To get himself worshipped even after falling from the high stage-of-spiritual-development *(guṇasthāna)* and to expect reverence from excellent ascetics,

indicate the absence of the vow of non-stealing in the ascetic. Such an ascetic, with heart maligned with deceit and passions, does not get a pious death.

---

9. परकीय पदार्थ को स्व कहकर प्रचार करना, सुन्दर दिखाकर असुन्दर वस्तु देना अचौर्यव्रत का दूषण है। सज्जन पुरुष अपने कर्तव्य-पालन में उत्साहित होते हैं, जो लोग स्व-कर्तव्य में उत्साह-हीन जीवन जीते हैं वे श्रेष्ठ कर्तव्य कार्य की चोरी करते हैं। यदि कोई भिन्न व्यक्ति अपना कार्य या क्रिया को आपको नहीं दिखाना चाहता, तो उसे देखने की चेष्टा मत करो, यदि फिर भी छुपकर आप देखते हैं तो वह चोरी है, उसके भावों की हिंसा है। परकीय वस्तु को बिना पूछे ग्रहण करना तो चोरी है, पर इतनी ही सीमा चोरी की नहीं समझना, परकीय गुप्त बात को छुपकर सुनना भी चोरी है। इससे स्व-परिणाम और पर-परिणामों में क्लेश का संचार होता है, विशुद्धि का नाश होता है, लोक में व्यक्त करने पर महाहिंसा रूप युद्ध भी सम्भव है, धर्म-धर्मात्माओं के प्रति अनास्था भाव जाग्रत होता है।

9. Proclaiming the object of another to be your own, and deceiving others by giving them the object that is not as attractive as shown earlier, are transgressions of the vow of non-stealing. Noble men perform their duties enthusiastically; those who are not sincere about their duties, as it were, steal the precious work that they should have accomplished. If another man does not want you to look at his work or action, do not try to peep in; if you do so, it amounts to stealing and an act-of-injury *(hiṃsā)* that hurts his feelings. It is true that to accept the object of others without their permission is stealing but this is not the whole truth; to listen clandestinely the secret talk of others also constitutes stealing. Such an act generates anguish in the thoughts of self and others and destroys the purity of thought; if the secret be pronounced publicly it may result in a war causing extensive destruction, and also generate distrust for the pious path and its followers.

* * *

4

सत्यार्थ-बोध

ब्रह्मचर्य

Celibacy

1. ब्रह्माण्ड में यदि आत्मबल, देहबल-वर्धक कोई परम-औषधि है तो उसका नाम है 'ब्रह्मचर्य-धर्म'। कामशक्ति को क्षीण कर, ब्रह्मभाव में लीन रहकर गुरु-आश्रम में निवास करना ब्रह्मचर्य है। लोक में सम्पूर्ण व्रतों का राजा यदि कोई व्रत है, तो वह ब्रह्मचर्य व्रत है। ब्रह्मचर्य व्रत के अभाव में सम्पूर्ण व्रत थोथे हैं, गंधहीन पुष्पवत। ब्रह्मचर्य व्रत अंक है, शेष व्रत अंक-हीन शून्य हैं। शून्य-शून्य ही रहता है, अर्थवान कोई है, तो वह अंक है। यदि अंक पर शून्य आते हैं तो अंकों की कीमत वृद्धिमान हो जाती है, उसी प्रकार व्रतों में अंक स्थान पर ब्रह्मचर्य व्रत है, ब्रह्मचर्य व्रत के साथ शेष व्रत शोभायमान होते हैं। ब्रह्मचर्य के अभाव में अन्य व्रत अंक-रिक्त शून्य समझो। ब्रह्मरक्षा आत्मरक्षा है।

1. In this universe, if there is a supreme medicine for increasing the strength of the soul and the body, it is the virtue of celibacy *(brahmacarya)*. Celibacy is to crush the sexual vigour and to live, engrossed in the self, in a hermitage. Celibacy is the king of all vows in this world. All other vows are worthless, like a flower without fragrance, in absence of the vow of celibacy. The vow of celibacy is the non-zero digit and the other vows are zero digits; the set of zero digits is worthless unless it is preceded by a non-zero digit. The vow of celibacy is the non-zero digit that enhances the value of the zero digits that follow. In the same manner, the other vows become laudable when accompanied by the vow of celibacy. In the absence of the vow of celibacy, other vows are like a set of zero digits without a preceding non-zero digit. To protect celibacy is to protect own-soul.

---

2. जिन स्थानों पर दृष्टि जाने से काम-दाह उत्पन्न होता है उन स्थानों से दृष्टि को पृथक् कीजिए। दृष्टि के अब्रह्म पर जिसका नियंत्रण है उसका मन ब्रह्ममय स्वत: हो जाता है। जो अब्रह्म में रुचि रखते हैं उन्हें ही

अब्रह्म-भाव पीड़ित करता है। जिनकी अब्रह्म में रुचि ही नहीं उन वीतरागियों को जगत् की कोई भी शक्ति ब्रह्म-भाव से च्युत करने में समर्थ नहीं है, ऐसा निश्चित मानो। सम्पूर्ण-विश्व को स्व के प्रति आकर्षण की परम विद्या ब्रह्मचर्य है, शील-दृढ़ के श्रीचरणों में देव भी आकर शीश झुकाते हैं। ब्रह्मचर्य पालने हेतु मनशुद्धि अनिवार्य है। मनमथ विचारों के बल पर जीवित रहता है। अब्रह्म की उत्पत्ति मन में होती है, तन से अब्रह्म का सेवन बहुत कम होता है। व्यक्ति सर्वाधिक मानसिक-मैथुन करता है, मानसिक मैथुन की तीव्रता ही काय-प्रवीचार में ले जाती है। मानसिक मैथुन मानसिक रोग उत्पन्न कर देता है। उन्माद, पागलपन, ताप, भूख-प्यास न लगना, चिड़चिड़ापन, लम्बी श्वासें, शरीर-कंपन, मृत्यु आदि अवस्थाएँ तीव्र कामी-पुरुष की होती हैं।

2. The spots whose sight gives rise to lustful burning in the mind should be put out-of-sight. The mind of the man who has controlled the lustful wandering of the faculty of sight automatically becomes pristine. Lustful thoughts trouble only those who are inclined toward lustful activities. It is certain that no power in the world can dislodge the person, without-attachment *(vitarāga)*, from his vow of celibacy if he has no interest in lustful activities. The supreme skill that makes you the centre of attraction for the whole world is celibacy; even the *devas* visit and bow their heads in the pious feet of the celibate. To the observer of the vow of celibacy it is essential to have the purity of the mind. Cupid – god of love – strives on the thoughts. The mind gives rise to unchastity; instances of bodily-unchastity are much less. The unchastity mostly takes place in the mind; when mental-unchastity becomes severe, it results in bodily-unchastity. Mental craving for unchastity gives rise to mental illness. The man with severe lustful craving experiences conditions like insobriety, insanity, fever, loss of appetite, peevishness, breathlessness, trembling, and death.

---

3. यह जीव समस्त-योग धारण कर ले, अनशनादि घोर तप तपे, आचार्य संघ की सेवा करे, विनय-वृत्ति धारण करे, समस्त आगम को धारण कर ले और फिर भी यदि अंतरंग में विषयाभिलाषा है, अब्रह्म परिणाम है तो उपरोक्त सम्पूर्ण क्रियाएँ अकार्यकारी हैं। व्रतों में ब्रह्मचर्य, मणियों में पारसमणि, रत्नों में हीरा, धातु में सोना, वनस्पति में मलयागिरि चंदन, धर्मों में अहिंसा धर्म त्रैलोक्य प्रसिद्ध हैं। साधु-पुरुष प्राण-वियोग स्वीकार लेते हैं प्रसन्नता के साथ, परन्तु पर-नारी को रत्नजड़ित होने पर भी नहीं स्वीकारते। शीलवान की दरिद्रता भी भूषण है, कुशील का सम्पूर्ण वैभव मात्र पुण्य का मल है। निर्दोष शील के योग से अग्नि भी शीतल-जल, विष भी अमृत, शूली भी सिंहासन, शत्रु भी मित्र और अशुभ कर्म भी शुभरूप हो जाते हैं।

3. If a man exercises total control over his body, performs severe austerities like fasting, serves the congregation of the Chief Preceptor *(Ācārya)*, puts into practice reverence for the meritorious, assimilates the whole of the Scripture, still if he has, in his heart, the desire for sensual-pleasures, and entertains lustful craving, all the above-mentioned activities are of no use. In the three worlds, the vow of chastity

among the vows, the *'pārasmaṇi'* among the jewels, the diamond among the precious stones, the gold among the metals, the Malayāgiri sandal-tree among the trees, and the virtue of non-injury *(ahiṃsā)* among the virtues, are famous. Noble men accept, with joy, the severance of their life, but do not accept even a diamond-studded wife of another. Poverty, too, is an embellishment of the virtuous man; the entire prosperity of the wicked man is just the dirt of his past. Through faultless observance of the vows, the fire turns into cool-water, the poison into nectar, the stage for execution into a throne, the foe into a friend, and the inauspicious karmas into auspicious karmas.

---

4. पर-स्त्री लम्पटी इस लोक में अपयश और परलोक में दुर्गति का पात्र होता है। यशवान नर प्राण-हरण करा सकते हैं, सम्पत्ति नष्ट देख सकते हैं, परन्तु पर-स्त्री का चित्र भी राग से नहीं देखते। जो व्यक्ति स्व-वीर्य का क्षरण करता है, वह स्व-जीवन का घातक है। वीर्य शरीर की अंतिम धातु है; जो तेज, बुद्धि-बल प्रदान करने वाला है। श्रेष्ठ-विचार को जन्म देने वाला वीर्य होता है।

4. The man with lust for the wife of another is disgraced in this world and gets a lowly state-of-existence in life hereafter. The celebrated men can accept the loss of life and see their wealth destroyed, but do not see with lust even the image of the wife of another. The man who lets go of his semen is the destroyer of own life. Semen is the root substance in the body that imparts glow to the body and strength of intellect to the man. Semen engenders noble thoughts.

---

5. वीर्य-हीन शरीर निस्तेज, प्रमादपूर्ण, आलस्यपूर्ण, रुग्ण, रक्त-दोषता, मुख-शरीर पर फोड़े-फुन्सी युक्त होता है तथा श्रेष्ठ-जनों के मध्य हीनता-दीनता सम्पन्न होता है। वीर्य-सम्पन्न शरीर तेजवान, सुगन्धवान, सरसता, सुभगता, नेत्र में विशिष्ट ज्योति-सम्पन्नता से युक्त होता है, उससे सम्पूर्ण-लोक आकर्षित होते हैं। विषयासक्त जीव विवेक-शून्य हो जाता है। वह जाति, कुल, धर्म, कीर्ति, विज्ञान, विभूति, सत्य-शुचिता का क्षय कर लेता है। उसका आनन्द-रिक्त जीवन प्रारम्भ हो जाता है।

5. The body without semen becomes lustreless, distressful, lethargic, diseased, inflicted with blood-disorders and with ulcerous face and body; such a body looks inferior and pitiable in midst of the noble men. Semen imparts glow, pleasant odour, lubrication, delightfulness and bright-eyes to the body; such a body attracts the whole of the universe. The man fond of sensual-pleasures loses his power of discrimination. He blemishes his caste, lineage, religion, reputation, intellect, dignity, and purity of truthfulness. It is the beginning of the life devoid of happiness.

---

6. यदि इह-लोक में सत्कार, पर-लोक में परम-सुख की कामना है, तो स्व के शील का निर्दोष पालन करो। स्वयं का चारित्र निर्मल है तो आप ही यश, कल्याण, पुरस्कार प्राप्त करोगे। धन्य-धन्य-धन्य हैं वे मानव, जिन्होंने अपने कुमार-व्रत को नष्ट नहीं होने दिया। सौधर्म-इन्द्र से भी बड़े वे लोग हैं जो प्रवीचारों से शून्य हैं।

6. If you want esteem in this world and supreme-happiness in the next, observe faultlessly the vow of chastity. Building up your conduct will ensure you recognition, well-being and reward. Supremely blessed are those who have been able to protect their childhood celibacy! Those free from sexual-incontinence are superior than the lord of the *devas*, Saudharma Indra.

---

7. शील रक्षा के लिए इष्ट-गरिष्ट भोजन, स्त्रियों की राग भरी कथा, उनके मनोहर अङ्गों का अवलोकन, पूर्व भोग-स्मरण का त्याग अनिवार्य है। जो शीलाभूषण से शोभायमान है उसके लिए अन्य आभूषणों की कोई आवश्यकता नहीं है। आत्म-ब्रह्म में वही प्रवेश कर पाता है, जो ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़ता से करता है। जिसका ब्रह्मचर्य दृढ़ नहीं उसके चित्त में चंचलता प्रतिक्षण रहती है। चंचल चित्तवान को ब्रह्मधर्म में प्रवेश की बात करें तो वह कच्छप-पीठ पर बाल-अंकुरण तुल्य है। ब्रह्मभाव स्वरूप-लीनता, परम ब्रह्मलीन योगी आत्मस्थ हो जाता है। शरीर-चेष्टा जन्य अब्रह्म का जहाँ कोई विकल्प ही नहीं वहीं परमार्थ ब्रह्मचर्य है।

7. In order to protect your chastity, it is essential to renounce consumption of pleasing and stimulating food, listening to stories that incite amorousness, watching attractive forms of women, and recalling former sexual-pleasures. The one adorned with the ornament of chastity does not require any other embellishment. Only the one who observes strictly the vow of celibacy enters the pure-self. The mind of the man who does not observe strictly the vow of celibacy is ever restive. The talk of the the restless mind entering the pure-self is like the growth of hair on the back of the tortoise! The supreme-ascetic – *yogī* – engrossed in the thought of the own-nature gets established in his pure-self. Spiritual celibacy exists only when there in no thought of bodily unchastity.

---

8. जगत् से शून्य स्व में अशून्य भाव ब्रह्मचर्य भाव है। स्वात्म-प्रदेशों में पर-पदार्थों का असत् देखो, स्व से भिन्न द्रव्य मेरे में न पूर्व में थे, न वर्तमान में हैं, न भविष्य में होंगे। स्वात्मसुख तो स्व में था, स्व में ही है, स्व में ही रहेगा। चिद्-ब्रह्मभाव परम-भाव है, ऐसा स्वानुमुखी भाव जहाँ है वहीं ब्रह्मचर्य भाव है।

8. The disposition that is rid of all externalities and stationed in own-self is chastity. Realize that external objects do not penetrate the space-points of own-soul; objects other than the self can never – in the past, in the present and in the future – constitute own-self. The happiness appertaining to own-soul has been in the self, is in

the self, and will remain in the self. Where there is the realization that chastity is the supreme disposition directed toward the self, true chastity exists.

---

9. "निज चैतन्य भाव से पृथक् दृष्टि ले जाना अब्रह्म भाव है, कुशील परिणाम है।" जगत् पूज्यता के भाव बनाने से जगत् पूज्य नहीं हुआ जाता, त्रैलोक्य-पूज्य स्व-ब्रह्म पर जो प्रतिष्ठित है, वह जगत् में पूजा जाता है। सम्पर्क, आलाप, प्रीति, विश्वास, परिणय पाँच बिन्दु अब्रह्म-लीनता के हैं। सर्वप्रथम व्यक्ति परस्पर में सम्पर्क बढ़ाता है, फिर वचनालाप करता है, वचनालाप से प्रीति बढ़ती है, प्रीति से विश्वास, विश्वास हुआ कि-परिणय अर्थात् अब्रह्म सेवन, इसलिए ब्रह्म-भाव रक्षा के लिए विषम लिङ्ग एवं समलिङ्ग से संपर्क ही नहीं रखना चाहिए।

9. To move your sight away from pure-consciousness of own-soul is the disposition of unchastity; it is an unmerited disposition. One does not become venerable in the world by engendering the thought of getting venerated; the one who is established in own-soul – that is worth veneration in the three worlds – gets venerated. The five points that lead to unchastity are contact, conversation, attachment, trust and marriage. First there is contact, contact leads to conversation, conversation leads to attachment, attachment leads to trust, and trust fructifies into marriage, i.e., indulgence in unchastity. Therefore, it is appropriate not to develop contact with the persons of either sex in the first place.

---

10. शरीर, आयु की रक्षा के लिए दो वस्तुओं की रक्षा करना अनिवार्य अंग है, उदरस्थ-अग्नि और वीर्य। इन दो के बल पर ही शरीर स्वस्थ रहता है। सज्जन मात्र सन्तान उत्पत्ति के लिए काम-पुरुषार्थ का सेवन करता है, न कि देह और धर्म-नाश के लिए। सन्तान से सनातन धर्म वर्धमान होता है, इसलिए काम-सेवन यदि करना ही है, अपने आपको वश नहीं कर पा रहे तो शरीर का प्राण-वीर्य उसे व्यर्थ में नष्ट करके धरती पर भार नहीं बनो, सन्तान को जन्म दो।

10. To protect your body and life-span it is necessary to protect these two – the digestive fire in the stomach and the semen. On the strength of these two the body remains healthy. The noble man indulges in sexual-intercourse only for giving birth to the offspring, not to destroy his health and virtuousness. The offspring becomes the propagator of the eternal dharma. Therefore, if you are unable to control yourself and find it necessary to indulge in sexual-intercourse, do so to give birth to your offspring, but do not become a burden on the earth by unnecessarily wasting your semen, the life-principle of your body.

---

11. जो विद्यार्थी जीवन में स्व वीर्य की पूर्ण रक्षा करता है, किसी भी प्रकार से आत्म-वीर्य का नाश नहीं करता, उसे सरस्वती की सिद्धि हो जाती है। वीर्य रक्षा से मस्तिष्क की रक्षा होती है, उससे मेधा-शक्ति की वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्य रक्षा हेतु मात्र मनुष्यनी से ही दूर नहीं रहना, अपितु स्त्रीवाची शब्द से भी आत्मरक्षा करना है। चार प्रकार की स्त्रियों से अब्रह्म होता है, उन चारों से दूर रहना चाहिए - मनुष्यनी, तिर्यंचनी, देवी, अचेतन स्त्री। स्त्री की प्रतिमा चाहे वह काष्ठ प्रतिमा हो, वस्त्र या लेप प्रतिमा हो, मिट्टी से निर्मित स्त्री, पुत्तलिका, पाषाण की प्रतिमा, फोटो आदि के अवलोकन से अब्रह्म भाव उत्पन्न होते हैं, इसलिए सम्पूर्ण स्त्री-आकृतियों से ब्रह्मचारी को आत्म-रक्षा करनी चाहिए।

11. The one who, during his student-life, conserves own-semen conquers Sarasvatī, the goddess of learning. With conservation of the semen the brain gets protected and the intellect gets strengthened. Protecting your chastity is not only to maintain distance from women but also protecting yourself from all feminine words. Four kinds of females – women, female animals, nymphs *(devī)* and inanimate female forms – are responsible for unchastity. Watching the female forms made of wood, cloth, plaster or clay, puppets, statues, and pictures, generates dispositions of unchastity and, therefore, the celibate should protect himself from all female images.

---

12. अप्राकृतिक रूप से जो अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं वे स्व और धर्म-संस्कृति के शत्रु हैं। नियत स्थान से इच्छापूर्ति करने से सन्तान का जन्म होता है, जो कि धर्म-संस्कृति को आगे वृद्धिंगत करता है। अप्राकृत मैथुन से सन्तान का जन्म नहीं होता। जो प्राकृतिक मैथुन करते हैं, परन्तु औषधि आदि के माध्यम से सन्तान को जन्म नहीं लेने देते, वे भी घोर-पापी, धर्म-संस्कृति के शत्रु हैं। तीव्र कामेच्छा भी अब्रह्म-भाव है। भोग भोगने वाला तो पाप-बंध को प्राप्त होता ही है, परन्तु भोग-भावना रखने वाला भी पाप-बंध को प्राप्त होता है, इसलिए काम-इच्छा का भी त्याग करो।

12. Those who indulge in unnatural-sex are the enemies of the self and of their cultural heritage. Only natural-sex gives birth to the offspring, who later on extends the cultural heritage. The unnatural-sex does not produce the offspring. Also, those who indulge in the natural-sex but prevent the birth of the offspring by employing means, such as taking preventive pills, are extremely evil and enemies of their cultural heritage. Intense craving for copulation, too, is unchastity. The one who indulges physically in the objects-of-enjoyment is bound with karmas, but the one who indulges only in thoughts, too, is bound with karmas. Therefore, renounce the desire for sexual-enjoyment.

* * *

5

सत्यार्थ-बोध

अपरिग्रह

Non-possession

1. पर-पदार्थों के प्रति ममत्व-परिणामों का होना परिग्रह है। जहाँ-जहाँ इच्छा है, वहाँ-वहाँ परिग्रह है, चाहे पदार्थ पर अधिकार हो अथवा न हो, पर-ममत्व है तो परिग्रह है। वस्तु परिग्रह नहीं है, ममत्व परिग्रह है, तो फिर वस्तु त्याग करने को क्यों कहा जाता है? यदि ऐसा प्रश्न कोई करे तो उसे उत्तर समझना चाहिए कि- परिग्रह तो ममत्व ही है, परन्तु जैसे अग्नि ईंधन के आश्रित जलती है, बिना ईंधन के अग्नि का अस्तित्व नहीं दिखता, फिर भी ईंधन अग्नि नहीं होता, दोनों स्वतंत्र हैं। उसी प्रकार से ममत्व चैतन्य का विकार है, पर-वस्तु का नहीं, फिर भी ममत्व अवस्तु में नहीं होता, वस्तु में ही होता है। कारण का कारण होने से पर-वस्तु को भी परिग्रह कहा है। जहाँ-जहाँ पर-वस्तु होगी वहाँ-वहाँ नियम से परिग्रह भाव होगा, जहाँ वस्तु नहीं है वहाँ पर परिग्रह हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है, इसलिए जो व्यक्ति ममत्व को परिग्रह कहकर पर-वस्तुओं का संग्रह कर उन्मत्त हो रहा है कि मैं वस्तु स्वीकार करके भी निर्ग्रन्थ-संज्ञा को प्राप्त हूँ, क्योंकि मेरे अन्दर ममत्व नहीं है, यह उन भोले प्राणियों की स्व-वंचना है। बिना ममत्व, परिग्रह-संज्ञा, लोभ-कषाय के पर-वस्तु को स्वीकार कैसे कर सकते हैं?

1. To have infatuation toward external objects is possession *(parigraha)*. Where there is desire, there is possession *(parigraha);* it is not necessary to have the ownership of the object. Owning the object is not possession, infatuation is possession; why then it is advised not to possess the object? The reply is that possession is infatuation but as fire burns on the strength of the fuel and there is no fire without the fuel, still fire and the fuel are two independent entities. In the same way, infatuation is the blemish of the mind and not of the object, still, infatuation subsists in the object; there is no infatuation in the non-object *(avastu)*. Being the cause *(kāraṇa)* of the cause, the external object is called the possession *(parigraha)*. Where there is possession of external object, there certainly is infatuation; however,

where there is no possession of external object, there may or may not be infatuation. There are men who accumulate external objects but proclaim that they being devoid of infatuation are without-possession *(nirgrantha);* there proclamation is nothing but the rationalization of the naive. Without infatuation, instinct *(saṃjñā)* of possession *(parigraha)* and greed-passion *(lobha-kaṣāya)*, how can one accept any external object?

---

2. जहाँ-जहाँ अनिच्छा, निर्ममत्व भाव है वहाँ-वहाँ पर-वस्तु के ग्रहण के परिणामों का अभाव है, जहाँ पर इच्छा, पर-वस्तु दोनों का अभाव है वहाँ अपरिग्रह-भाव है। परम सुख-शान्ति का हेतु अकिञ्चन्य भाव है। पर-भावों से भिन्न जीवन जीने वाला साधु-पुरुष स्वयं को परमात्मा बना लेता है। जो भी परमात्मा पद को प्राप्त हुए हैं वे सब अपरिग्रह भाव से हुए हैं। चिन्ता से शून्य चैतन्य की अनुभूति अपरिग्रह स्वभावी के ही सम्भव है। चैतन्यानुभूति आनन्द के बिना कोई भी प्राणी परमात्म-पद को प्राप्त नहीं कर सकता। भूतार्थ बोध होने पर परिग्रह का प्रेत स्वमेव विलीन हो जाता है। जब तक भूतार्थ-बोध मंत्र की अनुपलब्धि है जीव को तभी तक परिग्रह प्रेत पेरता है। सम्यक् तत्त्व का ज्ञान जीव को महान् बनाता है, पर-पदार्थ के ममत्व का मद आत्मा से दूर कर देता है। परिग्रह का राग आत्मदेव पर कर्मों की रज आच्छादित कर देता है, साधुजन इस रहस्य का अधिगम कर परिग्रह के ममत्व से निज को पृथक् कर लेते हैं। इच्छाएँ असीम हैं, आकाश छोटा हो जाए, परन्तु मानव की इच्छाएँ छोटी नहीं होतीं।

2. Where there is desirelessness and absence of infatuation, the thoughts of possession of external objects do no arise; desirelessness, accompanied with the absence of external objects, gives rise to the virtue of non-possession *(aparigraha)*. The virtue of non-possession *(aparigraha, akiṅcanya)* is the source of supreme happiness. The noble man who rids his life of all externalities becomes a supreme-soul *(paramātmā)*. All those who have attained the status of the supreme-soul have done so by the virtue of non-possession. Realization of the consciousness that is rid of all external thoughts is possible only in the man who has mastered the virtue of non-possession. Without realization of the bliss that appertains to pure-consciousness, no one can attain the status of the supreme-soul. With the realization of the real nature of substances – *bhūtārtha-bodha* – the ghost of possession *(parigraha)* disappears automatically. The ghost of possession torments the man so long as the mantra of '*bhūtārtha-bodha'* is unavailable to him. Knowledge of the reality of substances makes a man great; intoxication due to infatuation with the external objects pulls him away from the soul. Attachment to possessions maligns the soul-god with the dirt of karmas; noble men, after acknowledging this secret, distance themselves from the infatuation for possessions *(parigraha)*. Desires are endless; the sky appears small compared to the desires of the man!

---

3. लोभ-कषाय और परिग्रह-संज्ञा के वश होकर जीव अनेक प्रकार के व्यापार कर पाप का संग्रह कर दुर्गति का पात्र बनता है। जितनी द्रव्य की जीवन में आवश्यकता नहीं पड़ती, उससे अधिक व्यक्ति द्रव्य का अर्जन करता है, फिर रक्षण, संवर्धन के राग में अपने प्राणों का ही अन्त कर लेता है। एक-इन्द्रिय जीव से लेकर असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक परिग्रह-संज्ञा से ग्रसित हैं, स्व-कल्याण का उन्हें भान ही नहीं है। मदिरा का उन्मत्त व्यक्ति अल्प समय में स्वस्थ हो सकता है, परन्तु परिग्रह के मद से उन्मत्त-पुरुष भवों-भवों में स्वस्थ नहीं हो पाता। परिग्रही-पुरुष न शान्ति की नींद ले पाता, न शान्ति से भोजन कर पाता, स्वतंत्र होकर पथ में विचरण भी नहीं कर पाता, चिन्ता-भय दिन-रात के उसके मित्र बन जाते हैं। पर-भावों का ममत्व आत्म-विशुद्धि का घात करने में समर्थ कारण है। मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे पर-भावों से आत्मरक्षा पूर्ण आत्म-जाग्रति के साथ करें।

3. Subjugated by the greed-passion *(lobha-kaṣāya)* and the instinct *(saṃjñā)* of possession *(parigraha)*, the man engages in various kinds of occupations; as a result, he accumulates evil karmas and acquires lowly state-of-existence. He acquires more objects than needed in his entire life and subsequently ends his life securing and nurturing these. Living-beings from one-sensed to five-sensed – without mind and with mind – are tormented by the instinct *(saṃjñā)* of possession *(parigraha);* they are unaware of the need for the well-being of the self. The inebriated man can regain health in little time but the man with intoxication of possessions does not regain health in many lives. Such a man does not get sound sleep, cannot eat peacefully and cannot have a leisurely walk in the street; worry and fear befriend him day and night. Infatuation with the thoughts of externalities is the potent cause of the destruction of the purity of the self. The ascetics should protect themselves from the thoughts of externalities with thorough awareness of the self.

---

4. साधु-असाधु दोनों ही परिग्रह से प्रभावित हो जाते हैं, ऐसी मिठाई परिग्रह है। परिग्रह से सुरक्षित रहने के लिए निस्पृह भाव का कवच धारण करना होगा। परिग्रह की ममता ने अनेकों जीवों की समता का विघात कर उन्हें क्रूर-हिंसक बना दिया। सत्यार्थ-जीवन जीना है तो परिग्रह से पूर्ण पृथक् जीवन जियो। भेद-विज्ञान की कला निर्ममत्व भाव है। सम्यक्-अर्थ का बोध तभी जाग्रत होता है जब जीवन सम्पूर्ण परिग्रह के भार को स्व-परिणामों से निकाल देता है। परिग्रह-संचय के भावों में भगवान् की सत्यार्थ-वाणी स्थापित नहीं होती। लोभी परिग्रह-संज्ञी आगमानुकूल भाषण करने में भयभीत होता है। अति-संग्रह, अति-ममत्व दोनों प्राणी की चिन्ता के कारण हैं, आत्मसुख के घातक हैं। जो आत्मा का निराकुल-सुख है उसकी उपलब्धि तभी सम्भव है जब जीव ममत्व-भाव, संग्रह-वृत्ति से आत्मरक्षा करेगा। परिग्रहवान वर्तमान में निसंगता के आनन्द से रिक्त रहता है, भावी पर्याय में नाना प्रकार के दु:खों को प्राप्त होता है। दु:ख का कारण परिग्रह-संचय में होने वाला आर्त-रौद्रध्यान तथा संकल्प-विकल्प परिणाम समझना।

4. The noble and the lowly men both get influenced by possessions *(parigraha);* possession is such a sweet delicacy. To safeguard the self from possessions, the

armour of desirelessness should be worn. Infatuation for possessions has destroyed the equanimity of many men and made them cruel and violent. If you want to lead life in its true meaning, get completely rid of possessions. The art behind the science-of-discrimination *(bheda-vijñāna)* is the disposition of detachment. Comprehension of the true nature of substances takes place only when the man draws out completely the weight of possessions from his soul-disposition. The divine-voice of the Lord does not get established in the mind engaged in the thoughts of accumulating possessions. The greedy man, overwhelmed by the instinct *(saṃjñā)* of possession *(parigraha)*, is afraid of speaking as per the Scripture. Excessive accumulation and excessive attachment both engender anxiety in the soul and thus destroy its happiness. The anxiety-free happiness of the soul can only be attained when it protects itself from the disposition of attachment and the instinct to accumulate. The man with possessions remains devoid of the happiness that appertains to non-attachment in the present life, and gets to various kinds of miseries in lives hereafter. The cause of miseries should be understood as sorrowful *(ārta)* and cruel *(raudra)* meditation, and thoughts involving volitions *(saṃkalpa)* and inquisitiveness *(vikalpa)*.

---

5. निसंगता निर्ग्रन्थता की ओर ले जाती है, बिना निसंगता के जीव निर्ग्रन्थ नहीं बन सकता। जो वस्त्रादि से आच्छादित भोले प्राणी हैं, अंतरंग संग के परिचायक बहिरंग-संग का प्रदर्शन कर रहे, फलभूत अवस्था पंच परावर्तन संसार में भ्रमण। ध्यान-साधना को भङ्ग करने का प्रबल हेतु परिग्रह, चित्त को पताका की तरह चलायमान कर देता है। जैसे वायु ध्वजा की स्थिरता का घात करती है वैसे ही परिग्रह ध्याता के ध्यान का घात करता है। परम-ध्यान की सिद्धि चाहिए तो परिग्रह से पूर्ण निसंग, विरक्त होकर जियो। दुर्ध्यान के लिए स्तंभ है परिग्रह। जैसे लता के वर्धमान होने के लिए स्तंभ आश्रय की आवश्यकता होती है, बेल आश्रय पाकर वृद्धिमान होती है, उसी प्रकार खोटे ध्यान परिग्रह का आश्रय पाकर वृद्धिमान होते हैं। अशुभ-ध्यानों से आत्मदेव की रक्षा के भाव हैं, तो परिग्रह से ममत्व का त्याग करो।

5. Non-attachment leads to the stage of without-possession *(nirgrantha)*; without non-attachment, the soul cannot reach the stage of without-possession. Internal-attachment which is manifested in external-attachment leads to whirling-round of five kinds – *dravya, kṣetra, kāla, bhāva* and *bhava* – in this world. Possession *(parigraha)* is a powerful cause of disruption in the process of meditation *(dhyāna)*. It causes flutter in the mind, as wind causes flutter in the flag. If you want the accomplishment of supreme meditation, live with total detachment from all possession. Possession is like a prop for inauspicious meditation. As the creeper needs a prop to flourish, similarly, inauspicious meditation flourishes in presence of the prop of possession. If you wish to protect your soul-god from inauspicious meditation, shed your attachment for possession.

---

6. परिग्रह के साथ कल्याण की इच्छा करना गाय के सींगों से दुग्ध-धारा के दर्शन करना है। मठाधीशों (पीठाधीशों) का कल्याण तभी होगा जब पश्चिम दिशा में सूर्य उदय हो रहा होगा, आकाश से पुष्प झर रहे होंगे, कछुए की पीठ के बालों से रस्सी बन रही होगी, बन्ध्या-स्त्री अपने बालक को गाय के सींगों से निकले दुग्ध का पान करा रही होगी। परिग्रह के कारण विश्व में हिंसा-वृत्ति वृद्धिमान हो रही है, जो भी झगड़े हैं वे सब पर-वस्तु को निज-वस्तु बनाने के हैं। लोक में परिग्रह का परिमाण हो जाए तो अहिंसा धर्म वर्धमान हो जाए। पर-द्रव्य न कभी जीवत्वभूत हुआ, न होगा, न वर्तमान में है। फिर भी बुद्धि-सुकुमार लोग आत्मद्रव्य को छोड़; पर-द्रव्य में ही राग कर शुद्धात्म-भाव का नाश कर रहे हैं।

6. To desire the well-being of the self in presence of the possession *(parigraha)* is akin to imagining the flow of milk from the horns of a cow! The well-being of the heads of hermitages can take place only when the sun rises in the west, flowers rain down the sky, hair on the back of the tortoise are used to make a rope, and a barren woman feeds her son on the milk from the horns of a cow. The world is witnessing growth in violence due to the evil of possession *(parigraha)*; all conflicts have root in trying to own the object of another. If the world could ration possession, the virtue of non-injury *(ahiṃsā)* will flourish. The external-object has never been, will never be, and is not, the nature of the soul. Still, those with infantile intellect, abandoning their soul-substance, get attached to the external object, destroying thereby the purity of their soul.

---

7. परमार्थ से लोक में मंगलोत्तम-शरणभूत एकमात्र निजात्मा है, फिर भी अज्ञ-प्राणी उस एक को छोड़कर विश्व में अनात्मभूत द्रव्यों में स्व का मंगल, उत्तम, शरण खोज रहे हैं; यह सब मोह का ही महत्त्व है। धन की दासता जिसने स्वीकार कर ली उसे जगति पर सबकी दासता स्वीकार करना पड़ती है। धन के राग में जीव अकरणीय कार्य भी कर लेता है। उच्च-कुल में उत्पन्न पुरुष परिग्रह के वश होकर नीच कुलोत्पन्न घरों में दास-कर्म करने को तैयार हो जाता है। ऐसे धन को धिक्कार हो जो स्वामी को भी सेवक बना देता है।

7. It is a supreme truth that the only auspicious and laudable refuge of the man in this world is own-soul; still, leaving it, the ignorant man, due to delusion *(moha)*, seeks auspicious and worthy refuge in objects that are external to own-soul. The one who accepts thralldom of money must accept thralldom of everybody else in this world. In his love for money, he performs even undesirable tasks. The man with high-lineage, under the spell of possession *(parigraha)*, works as a servant in houses of persons with low-lineage. Fie on money that makes master a servant!

---

8. परिग्रह को पाकर अहं बुद्धि मत करो। धन, धरती, कुटुम्ब-परिवार, राज्य-पद ये सब पूर्व-कर्म का फलोदय जानो। तीव्र कषाय के साथ इनका भोग करने से पाप-बंध होता है। पापोदय कब आ जाए, नहीं ज्ञात

तुझे। राजा भी रंक-सेवक होते देखे जाते हैं और सेवक भी राजा बनते देखे जाते हैं। विशिष्ट पुण्यवान् के भी सभी दिन एक से नहीं होते। क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, दासी-दास, कुप्य, भाँड एवं मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद - ये बाह्य-अंतरंग परिग्रह के त्याग करने पर ही जीव सिद्धि को प्राप्त होता है। परिग्रह के साथ संसार-भ्रमण ही होता है, निर्वाण-गमन नहीं होता।

8. Do not entertain the sense-of-pride for your possession *(parigraha)*. Money, land, family and high-status, all these are the fruits of past karmas. Those who enjoy these with excessive passions *(kaṣāya)* cause the bondage of evil karmas. You do not know when the rise of evil-karmas happens. The king is seen becoming a servant and the servant a king. All days of even the man who has earned special merit in the past are not the same. By renouncing these ten external possessions – land and house, silver and gold, cattle and corn, female and male servants, and clothes and utensils – and these fourteen internal possessions – wrong-belief, anger, pride, deceitfulness, greed, laughter, liking, disliking, fear, sorrow, disgust, female sex-passion, male sex-passion, and neuter sex-passion – the soul attains liberation. The soul with possession wanders in the world; it does not proceed ahead for liberation.

---

9. वे ही जीव लोक में धन्य-धन्य हैं; जिन्होंने सार्वभौम राज्य को प्राप्त कर जीर्ण तृण-तुल्य जान निर्ग्रन्थ दिगम्बर दीक्षा धारण कर त्रैलोक्य-पूज्य सिद्धत्व को प्राप्त किया। परिग्रह में लिप्त जीव की दशा मुख में रोटी के टुकड़े को दबाए श्वान के समान है। जो कुत्ता मुख में रोटी दबाकर दौड़ता है, न छोड़ता है, न खाता है, उसके पीछे अनेक कुत्ते लगे होते हैं और कष्ट देते हैं। उसी प्रकार परिग्रह का जो न भोग कर रहा है, न दान कर रहा है उसके धन के पीछे अनेक लुटेरे लगे होते हैं; प्राण भी जाएँ, धन भी जाए।

9. Hail the men who, after obtaining kingship over the entire universe, renounce it as a mere blade of grass, adopt the possession-less sky-clad asceticism, and finally attain the state of liberation that is venerated in the three-worlds. The man obsessed with possession *(parigraha)* is like the dog with the piece of bread in its mouth. It keeps on running, neither leaving nor eating the piece of bread; other dogs chase it and cause it distress. Similarly, the man obsessed with possession is able to neither enjoy it nor gift it; many robbers follow him and, finally, he loses both, the life and the possession.

---

10. पुण्य-योग प्राप्त सम्पत्ति का भोग करना अनिवार्य नहीं है, यदि योग धारण कर सम्पत्ति का परित्याग कर दिया जाता है तो वह पुण्य मुक्ति-सम्पत्ति की साधना का साधन बनेगा। वे नरोत्तम श्रेष्ठ हैं जो पर-सम्पत्ति को कोष्ठवत देखते हैं, स्व-सम्पत्ति को पुण्य का फल मानते हैं, परन्तु पुण्य व सम्पत्ति दोनों को निज ध्रुव

भगवान्–आत्मा से अत्यन्त भिन्न देखते हैं।

10. It is not necessary to enjoy the wealth got due to the meritorious karmas of the past; if the wealth is renounced and asceticism is adopted then the merit earned in the past becomes the source of attainment of the wealth of liberation. Those men are laudable who see the wealth of others as a cell, the wealth of self as an outcome of merit, but both, wealth and merit, as utterly distinct from the own eternal soul-god.

* * *

"जीवन में उत्कर्ष प्राप्त करना है; तो आशावादी, सहनशील, मिलनसार एवं व्यवहार–कुशल बनें। समीचीन लक्ष्य निर्धारित करें। उपकारियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करें। किसी की निन्दा न करें। मधुर वाणी व विनयशीलता पर दृष्टि रखें। सही सलाह, समीचीन–मार्गदर्शन एवं अनुभवशीलों के अनुभव लेते रहें। अनुशासन–प्रिय बनें। हमेशा आत्मविश्वास, उत्साह, साहस एवं उमंग बनाए रखें। प्रबल पुरुषार्थ करें, अशुभ विचारों की उपेक्षा करें तथा हर–क्षण अच्छे विचारों को आदर दें।"

(आचार्य विशुद्धसागर, **'जीवन–रहस्य'**, पृ. 51)

6

सत्यार्थ-बोध

मैत्री

Benevolence

1. प्राणिमात्र के प्रति मायाचारी रहित, बिना आकांक्षा के, अंतरंग में राग-द्वेष बुद्धि शून्य होकर जो साधक के भाव साधना की कुशलता है, वह मैत्री-भाव है। व्रत-उपवास की साधना बहिरंग-साधना है। शत्रु-मित्र के प्रति साम्य-भाव सहज उत्पन्न होना अंतरंग मैत्री है। अंतरंग में प्रीति का बोध मैत्री भाव से होता है। मैत्री भाव में जाति-पंथ-सम्प्रदाय की गंध नहीं होती, निर्भेद प्रीति-भाव मैत्री-भाव। किसी भी जाति, पंथ, सम्प्रदाय, देश-प्रदेश, धर्म वाले के साथ मित्रता होती है। मित्रता का तात्पर्य किसी एक जाति जीव-विशेष के प्रति राग-भाव नहीं है, अपितु एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीव पर्यन्त जगत् के प्राणिमात्र के प्रति मैत्री-भाव होता है। पर के दु:खों का कारण न होना मैत्री है। प्राणिमात्र के प्रति करुणा-दृष्टि पूर्वक उनका उपचार करना मित्र का धर्म है। मित्र के साथ विश्वासघात कभी नहीं करना, अविश्वासी को कभी मित्र नहीं बनाना। विश्व में मित्रता ऐसा संबंध है जिसमें जाति-धर्म-सम्प्रदाय-पंथ का राग नहीं, अपितु हृदय का विश्वास होता है।

1. To have thoughts that are rid of deceitfulness, expectation, and attachment or aversion for all living-beings, is deftness of the observances of the noble man; this is the disposition of benevolence *(maitrī)*. Observances of vows and fasting are the external practices. To have the natural disposition of equanimity in friend and in foe is the internal benevolence. The feeling of love for all comes from the disposition of benevolence. Benevolence does not have the odour of caste, sect or group; it is unsegmented love. The benevolent man loves all, without the distinction of caste, sect, group, country or religion. Benevolence does not mean attachment for the man belonging to a particular caste. In fact, the benevolent man has attachment for all living-beings, from one-sensed to five-sensed. Benevolence means not being the cause of suffering to anyone. The benevolent man, as a duty, commiserates with all living-beings and provides them relief. Never deceive a friend and never befriend an

untrustworthy man. Friendship is such a relation that thrives not on attachment for any caste, religion, group or sect, but on trust in the heart.

---

2. जो बात माता-पिता, गुरु के पास नहीं रखी जाती वह बात भी मित्र के पास रखी जाती है, हृदय-से-हृदय का मिलन मित्रता है। सच्चा मित्र वही होता है जो अपने मित्र के लिए धन ही नहीं प्राण भी देने को तैयार रहता है। सुख के दिनों में जैसी प्रीति थी, दु:ख के दिनों में भी वैसी प्रीति के दर्शन जहाँ होते हैं, उसे ही अपना मित्र समझो। मैत्री अन्त:करण की जोड़रूपता है, उसे नष्ट नहीं होने देना। प्राणों के वियोग से भी अधिक पीड़ा तब होती है जब मित्र की मित्रता नष्ट होते दिखे। ब्रह्माण्ड में सबसे मधुर संबंध यदि कोई है तो वह मित्र की मित्रता है। बिना रिश्तों का संबंध मित्रता है। जो निर्धनता को देखकर मुख मोड़ ले ऐसी स्त्री व मित्र त्यागने योग्य हैं। स्त्री का राग, मित्र का अनुराग धन से नहीं, हृदय से होता है। मित्रता ऐसी करना जो अशुभ के दिनों में भी अपने हृदयांगन से बाहर नहीं करना। नारायण श्रीकृष्ण एवं सुदामा जैसी मित्रता करना। सुदामा बाल-सखा का समाचार पाते ही नारायण श्रीकृष्ण सिंहासन छोड़कर महल के द्वारे पर सुदामा को लेने पहुँच गए। गरीब सुदामा की गरीबी श्रीकृष्ण को नहीं दिखी, अपितु मित्र की मित्रता का दर्शन किया।

2. The secret that is not divulged to parents and guru is shared with the friend; friendship is the meeting of the hearts. True friend is the one who is ready to give his friend not only money but also life. Consider him your friend who maintains the love of happy days in difficult days too. Friendship is the connection of hearts, do not dismantle it. Schism in friendship is more painful than loss of life. The most pleasing association in whole of universe is friendship. Friendship is the connection without formal relationships. The wife or the friend who turn their back on you when you have no money deserve to be abandoned. The attachment of the wife or the affection of the friend should not be based on money, it should come from the heart. Friendship should stand firm even during difficult days. It should be like the friendship of Śrīkriṣṇa and Sudāmā. The *nārāyaṇa* Śrīkriṣṇa, on getting the news of the arrival of his childhood friend Sudāmā, left his throne and rushed to the entrance of his palace to receive him. Śrīkriṣṇa did not see the poverty of Sudāmā; he saw the friendship of a friend.

---

3. जो दुर्व्यसन में ले जाए वह सच्चा मित्र नहीं, अपितु अनुकूल शत्रु है। इच्छा के अनुकूल अवश्य है, परन्तु खोटे कार्यों में ले जा रहा है, इसलिए शत्रु है। पाप का फल दुर्गति है। जो पाप में लगाए वह मित्र कैसे हो सकता है? वह तो शत्रु ही है। सत्यार्थ मित्रता का बोध तब होता है जब पतन के मार्ग से बचाकर धर्म के मार्ग पर मित्र रख दे। मदिरालय के स्थान पर जिनालय ले जाए, कुशास्त्रों के स्थान पर सद्-शास्त्र की ओर ले जाए, उन्मार्ग से सद्मार्ग की ओर ले जाए। मित्र जल-पूरित मेघ के तुल्य होता है, जैसे बादल सूखी भूमि को अपनी वर्षा से आर्द्र कर फसल से हरा-भरा कर देते हैं उसी प्रकार सच्चा मित्र सद्-गुणों से रिक्त मित्र को भी अपने सद्-गुणों से परिपूर्ण कर देता है। जीवन में मित्रता समान गुणी-जनों से करनी चाहिए अथवा स्व से अधिक

गुण वालों से करनी चाहिए। हीन गुणी से कभी मित्रता नहीं करनी चाहिए, यदि जीवन में दु:खों से मुक्ति चाहते हैं तो। हीनाचारी की मित्रता पल-पल में कष्टप्रद होगी।

3. The one who incites you to evil addiction is not your true friend but an appealing foe. He appears to be fulfilling your wish but since the effort is evil, he is a foe. The fruit of evil is inauspicious states-of-existence in lives hereafter. How can he who incites you to evil-tendencies be a friend? He is certainly your foe. In true sense, the true friend saves you from the path of destruction and puts you on to the path of virtue. He should take you from the wine-bar to the temple of Lord Jina, from the false-scripture to the true-scripture and from the evil-course to the right-course. A friend is like the nimbus cloud; as the nimbus cloud irrigates the dry land and makes it green with standing crop, similarly, a true friend bestows own good qualities to his friend, lacking in such qualities. Make friends with people having qualities similar to or superior than your own. If you want to get rid of your suffering do not befriend anyone with inferior qualities. Friendship with anyone with base conduct will cause you continuous suffering.

---

4. स्वार्थीजनों से मित्रता स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए, वे लोग स्वार्थ सिद्ध होते ही छोड़ देंगे और आपके जीवन के रहस्य उद्घाटित कर आपके शत्रु को बलवान कर देंगे। आपकी कमजोरियाँ प्रकट कर निर्बल बना देंगे। प्राणों का वियोग स्वीकार कर लें, पर मित्र के रहस्य को किसी को न बताता हो ऐसा मित्र मिलता हो तो राज्य देकर भी स्वीकार कर लेना। सदाचारी पुण्यात्मा-जीव की मित्रता सद्गुणकारी, यशवान, लोक पूजा-प्रतिष्ठा का कारण बनती है, वह जीवन के अन्त तक चन्दन की भाँति सुगंध प्रदान करेगी, इसलिए विशिष्ट पुण्यवानों के साथ मित्रता बनाकर चलें। दुष्टों की मित्रता धर्म, यश, धन, धान्य, वंश, कुल नाश का कारण बनती है, इसलिए दुष्टजनों की मित्रता मन-वचन-काय से शीघ्र छोड़ देना चाहिए। सज्जनों की मित्रता मधुर होती है, जैसे गन्ने की मित्रता से पानी भी मीठा हो जाता है उसी प्रकार गुणीजनों के साथ मित्रता करने से अल्प-गुणी भी गुणवान हो जाता है। दुष्टों की मित्रता से सद्गुण ऐसे ही पिटते हैं जैसे लोहे की संगति से अग्नि पिटती है।

4. Do not, even in dream, befriend selfish people; they will leave you after fulfilling their self-interest and divulge your secrets to the enemy. They will make you weak by passing on your weaknesses to others. Befriend, even at the cost of your kingdom or life, the man who can keep to himself your secrets. Friendship with the virtuous and meritorious brings forth goodness, laudability, and renown; like the sandalwood, it will bring you fragrance till end. Therefore, maintain friendship with those with special merit. Friendship with the wicked causes the destruction of virtue, renown, wealth, corn, family and lineage; renounce it with the might of your mind, speech and body. Friendship with noble men bestows pleasantness, as the water that befriends

sugarcane becomes sweet. The friendship of meritorious men makes the man lacking in virtue virtuous. Virtues get hammered in the company of the wicked, as the fire has to suffer the blow of the sledgehammer in the company of the iron-ball.

---

5. जो धर्म-संस्कृति की रक्षा में सर्वस्व समर्पित करने को तैयार हो, कुमार्ग से पूर्ण रहित हो उसे शीघ्र ही अपना मित्र बना लो। स्व-प्रशंसक, पर-निंदक, ईर्ष्या से युक्त जिसकी जीवन शैली है, पर-उत्कर्ष सहन करने में जो असमर्थ है, ऐसे व्यक्ति की मित्रता की अपेक्षा मित्र-रिक्त जीना श्रेष्ठ है। आस्तिक शत्रु भी श्रेष्ठ है, नास्तिक मित्र की अपेक्षा। शत्रु वर्तमान को कष्टप्रद हो सकता है, परन्तु नास्तिक-मित्र आगामी भव में कष्टदायक होगा, धर्म से दूर रखकर।

5. Befriend, without delay, the man who is ready to sacrifice his all for the sake of virtue and culture, and who shuns the wrong path. It is better to remain without friends than to befriend the man who habitually praises self, censures others, has covetousness and cannot tolerate the rise of others. The enemy who has faith in the dharma is better than the friend who has no faith in the dharma. Such an enemy may bring you trouble in this life but such a friend will bring you trouble, by keeping you away from the dharma, in the life hereafter.

---

6. सहस्त्रों अज्ञानी मित्रों की अपेक्षा एक ज्ञानी शत्रु अच्छा है, क्योंकि वह तत्त्व की यथार्थता को समझाएगा जो कि भावीकाल में तथा वर्तमान में सुखप्रद होगा। अपने घनिष्ठ मित्र को सब दे देना, परन्तु माँ, बहिन, बेटी, स्व-पत्नी, आत्म-धर्म नहीं दे देना, इनका देना घोर अधर्म है। मित्र से कोई बात नहीं छिपाना, परन्तु धर्मात्मा की कमी, जनक-जननी एवं गुरु के प्रति निंदा-भाषण मित्र से भी नहीं करना।

6. One knowledgeable enemy is better than thousands of ignorant friends; interaction with the knowledgeable enemy will make you understand the reality of substances and that will bring you happiness in this life and the next. Give everything, except your mother, sister, daughter, wife and dharma, to your fast friend; giving of these seriously contravenes the dharma. Do not conceal anything from the friend; however, do not indulge in speech that highlights the shortcomings of the virtuous, or is disrespectful toward your parents and guru.

---

7. मित्र की मित्रता को दीर्घ-जीवी बनाकर रखना चाहते हो तो मित्र से मधुर-भाषण का प्रयोग करो, क्योंकि कटुक-भाषण विष-तुल्य है। जैसे विष-भक्षण से प्राण शरीर से निकल जाते हैं, उसी प्रकार कटुक-भाषण से मित्रता के प्राण निकल जाते हैं। जो मित्र के गूढ़-रहस्यों का उद्‌घाटन बाहर करे, मित्र की गुप्त-बातों को शत्रुओं से प्रकट करता हो, ऐसे मित्र की मित्रता विष-वृक्ष को पानी देने तुल्य है। उस मित्र से शीघ्र ही माध्यस्थ हो जाना चाहिए, उससे अपने आपको पृथक् कर लेना ही श्रेष्ठ है।

7. To make your friendship enduring, use pleasant speech with the friend; harsh speech is like poison. The poison of harsh speech kills friendship. To maintain friendship with the person who divulges your secrets to others, including enemies, is like watering the poison-tree. Quickly become indifferent to such a friend and keep yourself at a distance from him.

---

8. मित्र के वचन यदि हमारे सम्यक्-दर्शन, ज्ञान, चारित्र में वृद्धि के कारण हैं, आत्महित में कार्यकारी हैं तो कटुक भी क्यों न हों उन्हें सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। रोगी के लिए रोग मुक्ति के लिए जैसे कड़वी औषधि का सेवन उपादेय है वैसे ही हितोपदेशक के कड़वे वचन भी हितकर जानो। मित्र की मित्रता तभी तक जीवित रहती है जब दोनों मित्रों के मध्य 'श्री' (धन) और स्त्री का राग प्रवेश न करे। जिस क्षण मित्रों के मध्य श्री-स्त्री खड़ी हो जाती है, उसी क्षण मित्रता काँच के तुल्य टूट जाती है।

8. Friend's words, even bitter, which improve your right faith, knowledge and conduct, and functional in the well-being of the self, should be accepted gladly. As a bitter pill is beneficial to the sick person, similarly bitter words of the person who desires your well-being should be considered beneficial. Friendship survives so long as there is no attachment for 'money' or 'woman' between friends. No sooner these two come in between, than the friendship crumbles like glass.

---

9. घनिष्ट मित्र के सामने अन्य किसी से कानों-कान बात नहीं करना, नहीं तो मित्र के अन्दर अविश्वास का जन्म हो सकता है, फिर पुनः विश्वास स्थापित होना कठिन कार्य है। अहो ज्ञानी! मत देखो किसी को शत्रुभाव से, सबके दिन एक से नहीं होते। समय परिवर्तनशील है, प्राणिमात्र से मैत्री-भाव रखो। शत्रु भी मित्र बन जाता है, मित्र भी शत्रु बन जाता है, कर्म-विपाक पर ऐसा ही संसार का स्वभाव है। यदि आपके पास किसी को कुछ देने को नहीं है अथवा कृपणता के कारण देना नहीं चाहते तो कोई बात नहीं, परन्तु दीन-दुःखी जीवों के प्रति ही नहीं प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव नहीं छोड़ देना, यदि आप आस्तिक्य हो तो। सम्पूर्ण विश्व की सहानुभूतियाँ उसके पास स्वयमेव आ जाती हैं जो प्राणिमात्र के प्रति मैत्री-भाव रखता है। स्वार्थ के वश होकर अपनों के प्रति सबकी मैत्री प्रकट होती है, परन्तु यह सत्यार्थ, सम्यक् मैत्री-भाव नहीं है। मैत्री-भाव तो चारों ही गतियों के जीवों के प्रति सादृश होता है।

9. Do not converse with others in secretive whispers in front of your friend; this may arise in him distrust for you, which may be difficult to regain. O knowledgeable man! Don't see a foe in anyone; days of all are not the same. Time changes constantly, therefore, have the feeling of friendship toward all living-beings. Driven by the rise of the karmas, foe turns into a friend and a friend into a foe; such is the nature of the world. It does not matter if you have nothing to give to others or if you are unwilling to give anything to others, but if you have keen intellect based on the teachings of the

Scripture and the guru – termed *āstikya* – you should have the disposition of benevolence not only for the poor and grief-stricken but for all living-beings. The fellow-feeling from the whole world comes naturally to him who is benevolent toward all living-beings. Friendship with kith and kin, driven by self-interest, is seen commonly, but this is not real benevolence. Real benevolence is the same feeling of friendship for all living-beings, of the four states-of-existence.

* * *

7

सत्यार्थ-बोध

प्रमोद

Joy

1. मुख की प्रसन्नता आदि के द्वारा अंतरंग में भक्ति और अनुराग व्यक्त होना प्रमोद है। सज्जन पुरुष गुणीजनों को देखकर प्रसन्नचित्त हो जाते हैं, यही उनकी सज्जनता की पहचान है। दुर्जन साधु-पुरुषों को देखकर खिन्न-चित्त हो जाते हैं, यही दुर्जन की पहचान है। पुण्यक्षीण जीव गुणीजनों के सम्मान में कभी अगुवा नहीं बनता, जबकि गुणीजनों के सम्मान से स्वयं का सम्मान वर्धमान होता है। अन्दर की आस्था को मुख-मण्डल पर प्रकट करने की कला का नाम प्रमोद-भाव है। जिनके अन्दर प्रमोद भाव नहीं वे शुष्क सरोवर के तुल्य हैं, मात्र जमीन के गड्ढे के समान जहाँ प्यासे को पानी नहीं, कमल की सुगंध नहीं। प्रमुदित-भाव गद्गद्-भाव भव्य प्राणी के ही होते हैं। दुर्जन तो सद्गुणी जनों के मिलने पर मुख मोड़ लेते हैं, भाग्यहीन को भगवान् कहाँ? जिसके हृदय में सद्गुणियों के प्रति सम्मान नहीं, उसका हृदय क्या हृदय? वह तो शुष्क पाषाण का टुकड़ा है, जो अपने शुष्क भाव का त्याग नहीं करता, अपितु वह तो पानी के अन्दर रहने पर भी सूखा ही रहता है।

1. To express internal devotion and affection through facial delight, etc., is joy. Noble men get joyful at the sight of virtuous men; this is the mark of their nobility. Ignoble men get anguished at the sight of virtuous men; this is the mark of their ignobility. Although reverence for the virtuous increases your own esteem, but the man without merit does not come forward to revere the virtuous. The art of reflecting inner reverence by pleasant countenance is the disposition of joy. Those lacking in the disposition of joy are like the dry lake – just a pit with no water for the thirsty, no fragrance of the lotus. The disposition of joy and delight happens only to the potential *(bhavya)* souls. Ignoble men turn their face away from the virtuous men; no godhood for the ill-fated! What is that heart which does not have reverence for the virtuous men? Such a heart is like the block of dry rock that does not leave its

dryness even when immersed in water.

---

2. सरल हृदयी जीव गुणीजनों को देखते ही प्रीति से लबालब भर जाते हैं। उन्हे यह सम्यक्-बोध है कि- "धर्मात्मा का सम्मान ही धर्म का सम्मान है, धर्म धर्मात्मा के ही अन्दर पलता है, धर्मात्मा के बिना धर्म कहीं नहीं होता।"

2. The hearts of men with simplicity brim with affection as they see virtuous men. They have this right understanding: "Respect for the virtuous is respect for the virtue; the virtue lives only in the virtuous; the virtue is not found anywhere except in the virtuous."

---

3. जिनके अन्दर अवगुण देखने की भावना जाग्रत होती है, वे अल्प-धी, क्षीण-पुण्य सद्गुणों को कैसे देख सकते हैं? गुणवानों के गुण अवलोकन गुणग्राही जीव ही कर पाएगा, अवगुणी के अंत:करण में ऐसा विशुद्धि का यंत्र ही नहीं है जो कि गुणीजनों के अंतस्थ के गुणावलोकन कर सके। जो सद्गुणी जीवों के अन्दर भी अवगुण देख रहा है, उसकी काक्-दृष्टि है, जो कि मोती छोड़कर मल को चुग रहा है। सुमन करो निज मन को, जिससे सद्गुणों का दर्शन होने लग जाए। मन उनके ही सुमन, शुभमन हैं, जो आर्त-रौद्र ध्यान का त्याग कर धर्म-धर्मात्मा के प्रति प्रमुदित भाव को प्राप्त कर, अन्त:करण के क्लेश को विराम दे दें। गुणी अवगुणी नहीं हो सकता, परन्तु अवगुणी गुणीजनों पर अपवाद की धूल फेंककर स्वयं को अवगुण-भाव की धूल-धरा पर स्थापित कर लेता है। जैसे गाय को अपने बछड़े के प्रति प्रीति होती है, वह बछड़े को देखते ही रम्भाने लगती है, उसी प्रकार धर्मात्मा जीव गुणी-जनों को देखते ही प्रसन्नचित्त होकर वात्सल्यपूर्ण संभाषण करते हैं, परस्पर तत्त्व-ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं।

3. How can the dumb and unholy persons, with tendency to look for faults, see virtues in others? Only the man keen to adopt virtues will be able to see virtues in the virtuous; the wicked man does not have in him the instrument that can look through the inside of the virtuous. The one who sees demerit in the virtuous has the vision of the crow; it picks up filth, leaving the pearl. Make your mind a worthy-mind to be able to see virtues. The minds of only those men are worthy and auspicious who, renouncing sorrowful *(ārta)* and cruel *(raudra)* meditation, exhibit affection for the virtue and the virtuous, and get rid of all mental agitation. Slander of the virtuous does not make him wicked but the slanderer, by throwing the dust of calumny, finds himself standing on the dusty platform of wickedness. As the cow has tender affection for its calf and sings moo as she sees it, similarly, the pious men, on seeing the virtuous, are filled with joy and start affectionate conversation that revolves around the reality of substances.

---

4. जो गुणीजनों को देखकर मुख मोड़ते हैं उनके अन्दर अभी धर्मत्व-भाव का अभाव है। जो मान-कषाय से उन्मत्त हैं वे अभागे ऐसे ही दया एवं उपेक्षा के पात्र हैं जैसे मदिरा का सेवन करने वाला मद्य के नशे में नाली में पड़ा है। अहं के नशे में पड़े पुरुष गुणीजनों के प्रति अशुभ मन होते हैं। सद्‌गुणों से सम्पन्न जनों का सत्कार करना सीखो। जिस देश, नगर, समाज, समूह में गुणीजनों का अपमान होता हो उसकी अवनति नियत है, इसमें कोई संशय नहीं समझना। प्रमोद-भाव व्यक्ति के अन्दर के कषायिक-भावों को नष्ट कर देता है, अंतरंग में विशिष्ट शक्ति का संचार प्रदान करता है, विशेष आनन्द की धारा प्रवाहित होने लगती है। जो व्यक्ति प्रमुदित नहीं होते वे नाना प्रकार के शारीरिक-मानसिक रोगों से ग्रसित होते हैं, उन्हें सहज-शान्ति का भान कभी नहीं होता, वे गंभीर नहीं होते, अपितु गम में होते हैं। जैसे जल से तन का मैल धुल जाता है और मस्तिष्क में नवीन उत्साह-शक्ति का संचार होता है, प्रमुदित पुरुष स्व-पर को सुख प्रदान करता है। प्रसन्नचित्त पुरुष के पास दु:खी व्यक्ति भी एक क्षण के लिए सुख की अनुभूति ले लेता है, अंतरंग व्यथा शांत हो जाती है। अनाथ भी अपने-आप को सनाथ महसूस करने लगता है। गुण-ग्रहणता भी जीवन का एक महान् गुण है, वह प्रशस्त परिणामी जीव के अन्दर ही प्रवेश पाती है। अप्रशस्त परिणाम वाला पुरुष गुण-ग्राही नहीं बन सकता, वहाँ गुण-ग्रहणता का प्रवेश निषेध है। साधुजन गुणीजनों को देखकर इस प्रकार से संतुष्ट होते हैं जिस प्रकार गाय अपने वत्स को देखकर आँचल पान कराकर संतोष को प्राप्त होती है, क्षण-क्षण बछड़े को ही देखती है। जैसे कामिनी को देखकर कामीजन को रोमांच होता है विषयाभिलाषा से युक्त होकर, उसी प्रकार गुणी-जनों को देखकर ज्ञानी-पुरुष को रोमांच होता है, गुण-ग्रहण की अभिलाषा से युक्त होकर। गुणहीनों के साथ स्वर्ग का वास मिलता हो तो उसे छोड़ देना चाहिए, गुणवानों के साथ नरक में वास कर लेना श्रेष्ठ है, क्योंकि गुणवानों का सहवास भविष्य में स्वर्ग और मोक्ष का कारण होगा।

4. Men who turn their face away from the virtuous themselves lack the disposition of virtue. The unfortunate men intoxicated with the pride-passion deserve sympathy and indifference, like the inebriated man who falls in the gutter. The men intoxicated with the pride-passion carry inauspicious thoughts for the virtuous. Learn to respect the virtuous. The downfall of the country, city, society or group where the virtuous is denigrated is certain; do not entertain any doubt about this. The disposition of joy results in destruction of harmful passions, invigorates the heart with special strength, and engenders peculiar delight. Men without the disposition of joy are afflicted with physical and mental diseases of several kinds; they do not experience natural bliss, and remain sorrowful but not serious. As water washes away the dirt of the body and brings new vigor to the mind, similarly, the man with joy brings happiness to self as well as to others. In the company of the man full of joy, even a gloomy man experiences momentary happiness shedding his grief. Those with no one to bank on get a feeling of support. To acquire virtues is a great attribute of life that gets entry only in the man with laudable disposition. Virtues do not enter the man without laudable disposition; in him virtues have 'no entry'. Noble men, on seeing the virtuous, get the same kind of contentment as the cow on seeing and feeding her calf; she looks at it constantly. As the lustful man, due to his desire for sensual-pleasure, gets excited on seeing the lascivious woman, in the same way, the

knowledgeable man, due to his desire to acquire virtue, gets excited on seeing the virtuous. Living in the heaven but in the company of the wicked is worth discarding; it is better to live in the hell but in the company of the virtuous as it will lead to heaven and liberation in future lives.

---

5. धन देकर अन्य वस्तु जैसे स्वर्ण, चाँदी के आभूषण, वास्तु-क्षेत्रादि ली जा सकती है, परन्तु विश्व की सम्पूर्ण विभूति खर्च करके भी गुण-ग्राह्यभाव नहीं लाया जा सकता। गुण-ग्राहकता सर्वोपरि गुण है। जिसके जीवन में गुण-ग्रहण भाव आ गया वह विश्व का सर्वश्रेष्ठ पुरुष बन जाएगा।

5. Money can buy things like gold and silver ornaments, house and land, but all the wealth in the world cannot buy the disposition of quality-acquisition. The attribute of quality-acquisition is supreme. The man with the attribute of quality-acquisition is the finest man.

---

6. क्षुद्रजन सर्वत्र अवगुणों का ही अवलोकन करते हैं। विचारों की आँख ही ऐसी है, उन्हें श्रेष्ठ पदार्थ दृष्टिगोचर ही नहीं होते। गुणवान् यथार्थ में वही है जो अन्य गुणीजनों के गुणों का सम्मान तो करता है, परन्तु उनके प्रति ईर्ष्याभाव नहीं लाता। ईर्ष्यालु के सभी गुण उसी प्रकार से नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार अग्नि से ईंधन राख हो जाता है। प्रमोद-भाव जाति, पंथ का रागी नहीं होता, प्रमोद-भाव तो मात्र गुणों का ही अनुरागी होता है। प्रमोद-भाव विश्व में अखण्डता का पाठ सिखाता है, क्योंकि खण्ड वहाँ होते हैं जहाँ जाति, पंथ-विशेष से राग हो। प्रमोद-भाव तो गुणीजनों को देखकर होता है, गुणवान् किसी भी जाति-पंथ में हो सकता है, उनके प्रति अनुराग अखण्डता का सूत्र है। चाण्डाल कुलोत्पन्न पुरुष भी सद्गुण सम्पन्न हो सकता है और उच्च कुल में उत्पन्न भी दुर्गुण युक्त हो सकता है। कुलीन पुरुषों को कुल की लाज बचानी है, जगति के सम्मान की इच्छा है तो उनका कर्तव्य है कि वे सद्गुणों को स्वीकार करें और अवगुणों का शीघ्र ही त्याग करें। सज्जनों के मध्य सम्मान धन-धरती से नहीं मिलता, अपितु सत्यार्थ सद्गुणों की निधि से मिलता है।

6. Lowly men have their eyes, at all times, only on demerits. Their thoughts are such that they fail to notice merit. The man who respects, without jealousy, the virtues of the virtuous is truly meritorious. All merits of the jealous man get annihilated, as the fire annihilates the fuel into ash. The disposition of joy is impervious to caste or sect; it just has affection for the virtues. The disposition of joy teaches the lesson of togetherness; divisions take place when there is attachment for particular caste or sect. The virtuous engenders the disposition of joy irrespective of his caste or sect; attachment toward the virtuous is the precept of togetherness. A man born in lowly-lineage can be virtuous and a man born in high-lineage can be wicked. Men of noble descent, who wish to save the reputation of their high-birth and desire esteem from the world, must soon accept virtues and shed base qualities.

Esteem from noble men is got if you own the treasure of real virtues, not if you own wealth and land.

---

7. ज्ञानीजनों के मध्य वे पूर्णिमा के चंद्रमा जैसे उद्योदित होते हैं जो अपने सद्गुणों का संरक्षण, संवर्धन करते हैं। परमार्थ से निजात्मगुणों में आनन्दित होना प्रमोद-भाव है; स्वगुणों में प्रमुदित होना सम्यक्-दृष्टि जीव का लक्षण है। अन्य जनों के गुण देखकर प्रमुदित होना व्यवहार प्रमोद है, निज गुणों में प्रमुदित होना निश्चय प्रमोद भाव है। जिसको स्वगुणों में प्रमोद नहीं वह धर्मात्मा कैसा? सच्चा धर्मात्मा स्व-पर गुणों में प्रमोद को प्राप्त होता है। हिंसक कार्यों में संलग्न पुरुष लौकिक अन्य कितने ही विशेषणों से विशिष्ट हो, परन्तु परमार्थभूत गुण-शून्य ही समझो, उसके प्रति प्रमोद-भाव प्रकट नहीं हो सकता। व्यक्ति के अन्दर सर्वप्रथम दो गुण देखे जाते हैं- भोजन और भाषण। भोजन भक्ष्य, निरामिष, मर्यादापूर्ण हो। भाषण समितिपूर्ण हो। दोनों गुणों में अहिंसा परिलक्षित होना अनिवार्य है। धर्म-धर्मात्मा को देखकर जो अंतरंग में गद्गद् भाव है, वही सत्यार्थ प्रमोद-भाव है।

7. Among the knowledgeable men those who conserve and grow their virtues illumine like the full-moon. In real sense, joy is to take delight in the virtues of own-soul; the mark of the right-believer *(samyagdṛṣṭi)* is that he takes delight in qualities of own-soul. To take delight in qualities of others is the empirical *(vyavahāra)* joy and to take delight in qualities of own-soul is the transcendental *(niścaya)* joy. How can the man who does not take delight in qualities of own-soul be termed virtuous? The truly virtuous man takes delight in qualities of own-soul and of others. The man preoccupied in acts that result in injury *(hiṃsā)* is devoid of real qualities even though he may have received many decorative titles from the world; the sense of delight does not arise in him. In an individual, two qualities should first be looked for: his food and speech. Food he eats should be worth-eating, without-flesh and measured. His speech should be regulated – *bhāṣā-samiti* – as described in the Jaina Scripture. It is essential that both these qualities be based on the virtue of non-injury *(ahiṃsā)*. The sense of delight that arises in the soul on seeing the virtue and the virtuous is the real disposition of joy.

* * *

8

सत्यार्थ-बोध

कारुण्य

Compassion

1. जीवों पर दयाभाव रखना कारुण्य भाव है। अपने सुख में सुखी, पर के सुख में दु:खी होने वाले जीवों की संख्या विश्व में बहुत है, परन्तु पर के सुख में सुखी, पर के दु:ख में दु:खी होने वाले कृपालु जीवों की संख्या बहुत कम है।

1. To have a sympathetic attitude toward all living-beings is the disposition of compassion. The number of people in this world who rejoice in own happiness and get saddened in others' happiness is very large; but those who rejoice in others' happiness and get saddened in others' misery is very small.

---

2. सूखे, अंधे-कुएँ के पास कोई कलश लेकर नहीं जाता, उसी प्रकार करुणाहीन के पास कोई भी सज्जन श्रद्धा-कलश लेकर नहीं जाता है। करुणा साधु-पुरुषों की प्रथम पहचान है, जिसके भीतर करुणा नहीं वह कितनी ही प्रसिद्धि प्राप्त कर ले परन्तु सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। सिद्धि के लिए कारुण्य-हृदय चाहिए। आम्रफलवत सरस जीवन कारुण्य-हृदय होता है, प्राणिमात्र के लिए सुखप्रद। कोटि-कोटि हिंसक-यज्ञ से जो धर्म का सत्यार्थ फल दृष्टिगोचर नहीं होता, वह करुणाशील महात्मा पुरुष के अन्दर होता है। जो करुणापूर्वक एक जीव की रक्षा करता है, वह भव्यवर कोटि-कोटि तीर्थों की वन्दना के फल को प्राप्त होता है और यदि कोई एक भी जीव की हिंसा में आनन्द लेता है उसकी सम्पूर्ण तीर्थ-वंदना, तप साधना, ज्ञानाराधना व्यर्थ में ही जाती है। हिंसक के पास नि:श्रेयस और अभ्युदय दोनों ही सुख नहीं होते हैं।

2. No man approaches, with his water-pitcher, the dry- and blind-well, similarly, no noble man approaches, with his faith-pitcher, the uncompassionate man. Compassion is the first distinctive mark of the noble man; howsoever famous, if his

heart be without compassion, he cannot attain liberation. For liberation, a compassionate heart is required. The compassionate heart is like the juicy mango-fruit that provides happiness to all living-beings. No real fruit of dharma is seen in millions and millions of sacrificial-oblations; the fruit lies inside the compassionate heart of the great man. The man who, out of compassion, saves the life of just one living-being gets the fruit of millions and millions of pilgrimages. On the other hand, if a man takes delight in injuring just one living-being, all his effort in terms of pilgrimages, austerities and knowledge-acquisition go waste. The injurer *(hiṃsaka)* does not get happiness either of liberation or of worldly prosperity.

---

3. मानवता वहीं जीवित रहती है जहाँ करुणा का वास है। मृत्युदण्ड कोई मानवता नहीं। दण्ड वह प्रायश्चित्त विद्या है जिससे व्यक्ति में अपने कृत्य पर पश्चाताप हो तथा वह सुधर कर श्रेष्ठ मानवता का जीवन जिये। मृत्यु प्राप्त कर वह क्या सुधार करेगा? किसी के प्राणों का घात करने से आपका पुण्य नहीं बढ़ता, अपितु पूर्वकृत पुण्य का क्षय ही होता है। अपनी गरीबी पर विवेकपूर्वक विचार करो, धनिकों को मारकर कभी धनिक नहीं बना जा सकता। प्राणिमात्र की रक्षा करो, गरीबों को दया-दान करो। सत्-पात्रों को समीचीन दान देने से धन की प्राप्ति होती है न कि किसी के प्राण लेने से। सम्यक्-तत्त्व के ज्ञान का अभाव होने के कारण भोले प्राणी कुज्ञानियों के द्वारा ठगे गए हैं। बलि-कर्म करने से कार्य-सिद्धि होती है, ऐसी कुमति के द्वारा करुणाधर्म से दूर होकर दुर्गति के कार्य करने लग गए। हिंसा से स्वर्ग-मोक्ष की सिद्धि होने लगे, तो स्वयं विचार करो नरक-पशु दुर्गतियों में जाने का उपाय क्या होगा?

3. Humanity survives where compassion exists. Capital-punishment is not humanity. Punishment is the science-of-expiation that motivates the wrong-doer to be remorseful of his misdeed, get reformed, and then, once again, lead the life of a good human being. What reforms can one attempt after death? Taking life of another does not increase your merit; in fact, it results in the loss of your previously-earned merit. Think judiciously about your poverty; one cannot become rich by killing the wealthy. Protect all living-beings and offer your sympathy to the poor. Giving of suitable gifts to worthy recipients begets wealth, not taking life of another. Naive men without right knowledge of the nature of substances have been deceived by those with vicious-knowledge. These naive men have been led to believe that sacrificial homage accomplishes work; such wrong-belief drives them into activities that result in evil life hereafter and distances them from the dharma based on compassion. Think for yourself; if taking life of another would lead one to heaven or liberation, what acts would lead one to the hell or the animal-life?

---

4. करुणादान विश्व का सर्वश्रेष्ठ दान है। इस दान के नीचे ही अन्य सर्व दान हैं। जो भी सम्यक्दान हैं उनका लक्ष्य भी करुणापूर्ण होता है, बिना कारुण्यता के किसी के अन्दर सत्यार्थ दान के भाव उत्पन्न नहीं हो सकते। पर के प्राण-हरण करना कोई कठिन वीरता का कार्य नहीं है। शत्रु को भी कारुण्यता-पूर्ण होकर जीने का दान (अभय-दान) देना वीरता का काम है, आपने अपने क्रोध-मान को गलित कर करुणादान दिया है। करुणा पूर्वक की गई दया ही सच्ची दया है। जब जीव अंतरंग से पूर्ण अहिंसामयी हो जाता है तब उसके कारुण्यता स्फुटित होती है। करुणा का कार्य क्रियारूप से बाह्य में दीनों पर दया के रूप में परिलक्षित होने लगता है, जो मानवता की पहचान है। करुणा का पात्र मात्र मानव नहीं, अपितु प्राणिमात्र है। मूक पशु-पक्षियों पर भी करुणा करो; वे आपके भोजन नहीं, अपितु आपकी दया के पात्र हैं। करुणा धारण कर श्रेष्ठ मानवता का जगत् को संदेश दो।

4. In this world, the gift of compassion is the finest gift. All other gifts are inferior. The aim of all worthy gifts is compassion; without compassionate feeling the thought of giving a meaningful gift does not arise. To take life of another is not an act of rugged bravery. To give, out of compassion, the gift of life even to the enemy is the real act of bravery; here you overwhelm your anger and pride. Sympathy that has arisen out of compassion is the real sympathy. Compassion germinates in the man who, in his heart, adopts fully the virtue of non-injury *(ahiṃsā)*. Externally, compassion reflects in form of sympathy for the downtrodden and that is the mark of humanity. The subject of compassion is not just the human-being but all living-beings. Be compassionate even toward meek animals and birds; they are not your food but deserve your sympathy. Adopt compassion and spread the message of excellent humanity in the world.

---

5. व्यर्थ में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति का भी विघात मत करो, क्योंकि उनके अन्दर भी चैतन्य गुण है। ब्रह्म-स्वभावी भगवान्-आत्मा उन जीवों के भीतर भी विराजमान है। सरलता से देखो, प्रत्येक जीव में भगवान् है। भृत्यों को भृत्य रूप में ही मत देखो; उनके अन्दर भी भगवान्-आत्मा है। उनका पापोदय आपका भृत्य है, अपनी संतान जैसा व्यवहार उनके प्रति करना सीखो। बेटे कुछ करें, न करें, परन्तु विश्वासशील भृत्य आपका कार्य अवश्य करेगा, इसलिए अपनी करुणा की शीतल बौछारें अनुचरों के ऊपर भी होना चाहिए। यही श्रेष्ठ-मानव की सच्ची मानवता है।

5. Do not harm purposelessly even earth, water, air, fire and plants; these too have the attribute of consciousness. The eternal, god-soul exists in beings with such types of bodies. Simply viewed, each soul is divine. Do not see your servants as your subordinates; see the god-soul in them. The rise of their demerit is your servant; learn to treat them as your own children. Your sons may or may not work for you but the servant will. Therefore, you should sprinkle them too with cool showers of your compassion. This truly is the humanity of excellent men.

---

6. गुरुजन करुणा की मूर्ति होते हैं। साधुजनों के अंत:करण में करुणा का वास होता है। वे अपनी करुणा मात्र भक्तजनों, धनपतियों, राजा-मंत्री पर ही न वर्षाएँ, अपितु प्रत्येक जीव पर, प्रत्येक पंथ, सन्त-परम्परा पर वर्षाएँ। किसी शिष्य को प्रायश्चित्त भी दें तो करुणा को लक्ष्य में धारण करके दें। शिष्यों के अन्दर मानवता भरें, वात्सल्य भरें, अन्य-परम्पराओं के प्रति करुणा भाव सिखाएँ।

6. The gurus are the embodiment of compassion. Compassion lives in their heart. They should sprinkle the water of compassion not only on their devotees, the rich, and the dignitaries but on every living-being, sect and congregation. Have compassion as the aim while prescribing expiation for a disciple. Let your disciples cultivate humanity and tender affection, and learn to be compassionate toward other customs.

---

7. वे ही सच्चे करुणावान हैं जो प्राणियों के प्रति दयाभाव रखते हैं। कारुण्य दृष्टि सबको अपना बना लेती है, यह पवित्र दृष्टि की पावन महा-महिमा है जिसने विश्व को पावन किया है। कारुण्य भाव अंत:करण से उत्पन्न अहिंसा की लहर है जो कि कष्ट से शुष्क प्राणियों को आर्द्रता प्रदान करती है। वे ही सज्जन कारुण्य धर्मी हैं जिनकी आँखों से पानी नहीं गिरता, लेकिन दूसरों को दु:खी देखते ही जिनके हृदय में करुणा का अश्रुपात होने लगता है। करुणा दयारूप स्वयं की पीड़ा है उसे दूसरों के कष्ट दूर करके ठीक किया जाता है, यह अंतरंग का रहस्य है इसे भी समझो। यदि प्राणियों के प्रति प्रत्येक प्राणी को करुणा उत्पन्न हो जाए तो भूमण्डल पर भय नाम की कोई वस्तु नहीं होगी और आतंकवाद, हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह जैसे पापों का भी अभाव हो जाएगा। जहाँ पर संवेदनशीलता होगी वहीं पर कारुण्य भाव अपना स्थान स्थापित करता है, संवेदन शून्य व्यक्ति के पास करुणा कहाँ? कारुण्य-भावयुक्त जीव की प्रवृत्ति सहज विवेकपूर्ण होती है; वह न शब्द से हिंसा करता है, न शरीर और मन से, अपितु प्रतिक्षण वह मन से स्वयं की आलोचना करता है। वह निरंतर यही विचारता है कि मेरे निमित्त से बुद्धि-पूर्वक किसी को कष्ट न हो, पीड़ा न हो तथा हमेशा हिंसा-कर्म से रहित प्रवृत्ति बनी रहे।

7. Those who have the disposition of sympathy for all living-beings are truly compassionate. A compassionate look befriends everybody; great power of the true compassionate look has purified this world. The disposition of compassion is actuated in the heart in form of the wave of non-injury *(ahiṃsā)* that moistens the people left dry due to their suffering. Only those noble men are compassionate whose hearts, and not eyes, shed tears of sympathy on seeing the suffering of others. Compassion is the sense of pain in the self that is redressed by removing the suffering of others; this is the secret which you must understand. If each individual develops such a feeling of compassion for all living-beings, the notion of fear will vanish from this earth and evils such as terrorism, acts-of-injury *(hiṃsā)*, theft, sexual-incontinence, attachment-to-possession will cease to exist. Only in presence of sensitivity the disposition of compassion thrives; the insensitive man can have no

compassion. The man with the disposition of compassion acts in a discerning manner; he does not commit acts-of-injury *(hiṃsā)* through words, body and mind. Every moment his mind is vigilant of own faults – *ālocanā*. He thinks constantly that intentionally he should not be the cause of pain and suffering to others and that all his actions be rid of injury *(hiṃsā)* to others.

---

8. शीतल जलाशय के तटवर्ती वृक्ष अत्यंत शीतल वायु प्रदान करते हैं। उसी प्रकार कारुण्य-भावों से युक्त साधु-जनों के संसर्ग से क्रूर-प्राणी भी अत्यंत करुणाशील हो जाते हैं। दया-करुणा भाव से रहित लोगों का सहवास उसी प्रकार कष्टप्रद होता है जैसे जल-शून्य सरोवर जलचर जीवों को कष्टप्रद होता है। जिसके हृदय सरोवर में करुणा जल लबालब भरा हो वहीं निवास करना उचित है। साधुता वहीं है जहाँ प्राणिमात्र के प्रति करुणा भाव है, भेष मात्र में साधुता नहीं देखना। जो साधु-भेषी पंथ-सम्प्रदाय को बल दें, द्वेष-ईर्ष्या की ज्वाला जलाएँ, वे करुणा-हीन जीव करुणा के पात्र हैं। उनके अन्दर करुणा का जन्म हो जाए जिससे भेष और भाव से एक-रूप सत्यार्थ-साधु बन जाएँ। मैत्री-भाव के अभाव में करुणा-भाव उत्पन्न नहीं हो सकता, जैसे बीज के अभाव में वृक्ष।

8. The trees near bodies of cool-water provide extremely soothing air, in the same way, even cruel living-beings become compassionate in the company of noble men endowed with compassion. The company of those void of sympathy and compassion is as painful as the dry pond for the water-animals. It is, therefore, appropriate to live near those whose hearts are filled to the brim with the water of compassion. Asceticism resides in the man who has the disposition of compassion for all living-beings; do not look for asceticism in outside appearance. Those men, bearing the appearance of the ascetic but promote particular sects or groups and ignite the fire of aversion and jealousness, are without compassion and deserve sympathy. Let the disposition of compassion be born in them so that they adopt true asceticism, both in appearance and thought. Without the disposition of brotherhood, the disposition of compassion does not originate; without the seed the tree does not originate.

---

9. कारुण्य-भाव सम्पन्न जीव विशुद्ध भावों से दुर्गति का नाश कर सुगति को प्राप्त होता है, इसलिए करुणा भाव ही सर्व-सुखकारी है। भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, निर्धन को धन देना, परन्तु उपरोक्त दु:खियों को दुर्व्यसनों से रहित होना चाहिए। आपका दिया हुआ सहयोग तभी करुणा-दान संज्ञा को प्राप्त होगा अन्यथा वह सहयोग आपकी दुर्गति का ही कारण बनेगा, अगर किसी मद्यपायी, मांसाहारी का सहयोग किया तो। यदि दुर्व्यसनी के लिए करुणादान की अत्यन्त आवश्यकता है, तो इस बात का ध्यान रखें कि वह स्वयं अन्य जीवों पर करुणा की प्रतिज्ञा ले रहा है कि नहीं? आपकी करुणा दूसरे के लिए अकरुणा न बने, अत: मांसाहारी, मद्यपायी यदि मांस-मद्य सेवन का त्याग कर देता है तो उसका भी उपकार अवश्य करें। मांसाहारी, मद्यपायी

आदि दुर्व्यसनी जीवों के दुर्व्यसन का त्याग कराने वाला महान् करुणामूर्ति है, क्योंकि उसने पापियों के पाप छुड़ा कर उनके उभय-लोक सुधार दिए, उनका वर्तमान समय तो सुखद होगा ही, अपितु कल्याण-मार्ग प्रशस्त होगा। वे जीव भी अपनी भवितव्यता को सुधार कर भगवान् बन सकते हैं ऐसा जिनेन्द्र प्रभु का उपदेश है।

9. The man endowed with compassion destroys, with purity of his thoughts, the evil state-of-existence hereafter; compassion brings forth all-round happiness. Give food to the hungry and money to the poor but the pitiable recipient should be free from evil-addictions. Only then will your assistance bear the tag of compassionate-giving. If you render help to a person addicted to drinking and flesh-eating you are booking for yourself an evil state-of-existence hereafter. If it is essential to assist the addicted person make sure that he takes the vow of compassion for other living-beings. The idea is that your compassion should not become a source of cruelty for other living-beings. If the addicted person vows to renounce drinking and flesh-eating, certainly provide him assistance. The man responsible for reforming those addicted with drinking and flesh-eating is the epitome of compassion; he becomes instrumental in reforming the two worlds of the wicked, not only his present but the future too will become blissful. Even such souls have the potential to attain godhood; this is the precept of Lord Jina!

---

10. जो जीव सत्यार्थ को छोड़कर विपरीत मार्ग का आश्रय लेकर निजात्मा की वंचना कर रहे हैं, उन्हें सन्मार्ग पर स्थापित करना परम-करुणा है। करुणाशील का शरीर, मुख-मण्डल स्वयमेव शोभायमान होता है। उनके शरीर के अन्दर श्वेत-कणिकाओं की वृद्धि होती है, रक्त कणिकाएँ क्षीण होती हैं। वे महा-पुरुष ही होते हैं जो जन्म से समाधि तक करुणा रस का पान करते हैं तथा अन्य भव्य जीवों को करुणा रस-पान करने का सदोपदेश देते हैं। यह वसुन्धरा उन्हीं लोगों से सुशोभित होती है जिनके हृदय में करुणा रस की धारा बहती है। वे हृदय मरुस्थल हैं जिन हृदयों में करुणा का नीर नहीं।

10. Supreme compassion is to reestablish on to the right path those who, deceiving their own-soul by distancing themselves from the reality, are treading the opposite path. The body and the countenance of the compassionate, on their own, become radiant. In their body the white cells get augmented and the red cells decreased. They are great humans who themselves drink the juice of compassion from birth to death and give the pious discourse to potential souls prompting them to drink the juice of compassion. This earth gets embellished by the men in whose hearts flows the stream of the water of compassion. The hearts of those without the water of compassion are like desert.

---

11. अहो प्रज्ञात्मन्! अपने हृदय को मानसरोवर बनाओ जिसमें साधु हंस विराजें। बिना करुणा-पय के पयोदधी संज्ञा को प्राप्त नहीं होता, बिना करुणा, दया, अहिंसा के कोई जीव किसी भी सम्प्रदाय, पंथ, परम्परा का क्यों न हो, वह सज्जनों में धर्मात्मा संज्ञा को प्राप्त नहीं होता है।

11. O knowledge-soul! Make your heart the 'Mānasarovara' in which the ascetic-swans dwell. Without the water of compassion the tag of water-bearing cannot be got. The man without compassion, sympathy and non-injury, to whichever group, sect or tradition he might belong, cannot get among the nobility the tag of a virtuous man .

* * *

9

सत्यार्थ-बोध

माध्यस्थ-भाव

Neutrality

1. राग-द्वेष पूर्वक पक्षपात न करना ही माध्यस्थ भाव है। निज-समत्व की रक्षा करना है तो माध्यस्थ भाव को स्वीकार करो। भाव-हिंसा से अपनी आत्म-रक्षा करना है तो माध्यस्थ भाव का आलम्बन लेना अनिवार्य है। सम्पूर्ण लोक को आप अपने जैसा नहीं बना सकते। एक गुरु कितना ही पुरुषार्थ कर ले, परन्तु अपने शिष्य को अपने जैसा नहीं बना सकता। पिता पुत्र को जन्म देता है, परन्तु स्वयं जैसा नहीं बना पाता है, फिर अन्य जनों के सम्बंध में विचार करना ही अज्ञानता है। आप अपने विचार रख सकते हैं, परन्तु उन पर चलना, न चलना व्यक्ति की स्वयं की इच्छा है।

1. To remain unbiased, rid of attachment and aversion, is neutrality *(mādhyastha-bhāva)*. If you wish to protect your equanimity accept the virtue of neutrality. To protect yourself from psychic-act-of-injury *(bhāva-hiṃsā)* you must take refuge in neutrality. You cannot make the whole world like you. A guru, with utmost effort, cannot make his disciple like him. The father, in spite of giving birth, cannot make his son like him; to think of making others like you is ignorance. You can put forward your views but it is the wish of the others to follow these or not.

---

2. परकीय शुभाशुभ प्रवृत्ति से प्रभावित होना एक कमजोरी है; स्वयं का निर्णय दृढ़ होना चाहिए। स्व कर्तव्य-बोध स्व में हो। माध्यस्थ-भाव द्रव्य एवं भाव दोनों हिंसा से जीव की रक्षा करता है, किसी के कृत्य से प्रभावित नहीं होने देता। किसी से शीघ्र-अशीघ्र प्रभावित नहीं होना; तटस्थ-भाव से समझने के लिए प्रेरित करता है माध्यस्थ-भाव।

2. It is a weakness to get affected by the auspicious and inauspicious pursuits of others; your own determination should be strong. The self should know as to what is

worth doing. The disposition of neutrality protects the man from both kinds of injury, the psychic and the material, and saves him from the actions of others. The disposition of neutrality inspires you not to get affected, instantly or subsequently, by others and to have unbiased understanding of things.

---

3. लोक में कोई भी घटनाचक्र चलता है तो आपके विवेक का कर्तव्य है कि उसे तुरन्त स्वीकार नहीं करें। उसे जानें, देखें, समझें, विचार करें तटस्थ भाव से। यह सत्य है या असत्य या मिश्र? यह जानकर निर्णय लें- क्या हो सकता है इस पर, मुझे क्या करना चाहिए? इसका परिणाम क्या निकलेगा?

3. On every sequence of events in the world your discrimination should guide you not to accept things in a flash. Know, see, understand and think-through with neutral disposition. Is it true or false or mixed? Know the facts and take a decision as to what you should do keeping also in mind the result of your reaction.

---

4. स्व-प्रज्ञा को भी माध्यस्थ भाव से पढ़ना चाहिए। कुछ लोग अपने आपको ही विश्व का ज्ञाता समझते हैं और ऐसा समझकर गुणी एवं गुरुजनों का भी अपमान कर बैठते हैं। अहो आत्मन्! यथार्थ निर्णय करो कि हम तद्-विषय के ज्ञानी हैं या नहीं? आत्म-शान्ति का परम-मंत्र माध्यस्थ भाव है। किसी का कर्ता बनना, किसी को कर्ता स्वयं का बनाना, दोनों ही अज्ञान-भाव हैं। ज्ञानी जीव दोनों भावों से भिन्न भाव में जीता है, वह भाव ही माध्यस्थ-भाव है। यदि आप ऐसा विचारते हैं कि मैं सभी जीवों को दु:खी कर सकता हूँ अथवा सुखी कर सकता हूँ, तो यही आपका अज्ञान-भाव है। प्रत्येक जीव का सुख-दु:ख उसके पुण्य-पापोदय पर आलम्बित है, न कि आपके कर्तापन पर। बाह्य निमित्त के रूप में आप दृष्टिगोचर हो सकते हैं, परन्तु अंतरंग तो अदृष्ट के ऊपर ही है। क्यों व्यर्थ में स्वयं को कर्तापन का क्लेश दे रहे हो?

4. You should evaluate your own intellect with the disposition of neutrality. Some people think themselves to be world-knower and, as a consequence, deride even the virtuous and the guru. O soul! Determine genuinely whether or not you are knowledgeable about the subject in question. The supreme mantra of soul-happiness is the disposition of neutrality. To consider yourself a doer of others, or to make others your doer, both are dispositions of ignorance. The knowledgeable man lives with a disposition different from the two mentioned above, and that is the disposition of neutrality. If you think that you can make others happy or miserable, it is your disposition of ignorance. The happiness or misery of every living-being depends on the rise of auspicious or inauspicious karmas, not on your intervention. You may appear to be the external cause, but the real, internal cause is the unseen. Why are you unnecessarily getting anguished by thinking yourself to be the doer?

---

5. परमार्थ ज्ञान-शून्य प्राणी माध्यस्थ-मंत्र से अपरिचित है। जो परमार्थ-बोध युक्त है उसे माध्यस्थ मंत्र का प्रभाव ज्ञात है। इस मंत्र के आश्रय से ही आत्मा परमात्मा बनेगी, अन्य कोई उपाय साधकतम नहीं है। भावों में उठते पर के सुख-दु:ख के कर्तापन के बबूले माध्यस्थ भाव की वायु से शान्त हो जाते हैं। चाहे कष्ट के दिन आएँ, चाहे सुख के, दोनों में ही प्राणी असामान्य होने लगता है। कष्टकाल में हीन-भावना से भरने लगता है तथा सुख के काल में अहं-भावना से, दोनों ही अवस्थाओं का फल, पुन: महाकष्ट। दोनों भावनाओं से आत्म-रक्षा का अमोघ-शस्त्र है माध्यस्थ भाव। गृह-परिवार में छोटी-छोटी बातों पर परस्पर के सम्बंध विच्छेद को प्राप्त हो रहे हैं, ज्ञात हुआ वर्षों तब बोलना बंद हो चुका है। घर में होने पर भी घर जैसे नहीं लगते, ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि माध्यस्थ भाव का आश्रय नहीं लिया। अरे भाई! तुच्छ-तुच्छ बातों को माध्यस्थ भाव से देखते तो परिवार हरा-भरा रहता। जो देश, राज्य, नगर, यूथ, परिवार, संघ, संस्था अच्छे से चल रहे हैं अथवा चलेंगे वे सब माध्यस्थता की शक्ति से चल पाते हैं। अन्य कोई भी बड़ी शक्ति विशाल देश को चलाने में सामर्थ्यवान नहीं है।

5. The men, void of soul-knowledge, are unaware of the mantra of neutrality. The man with soul-knowledge is aware of the effectiveness of the mantra of neutrality. Only with help from this mantra can the soul become the supreme-soul; no other means is potent enough. The bubbles of the thoughts that you make others happy or miserable dry down by the air of neutrality. Man starts getting unnatural in times of both happiness and misery. In time miserable he breeds the sense of inferiority and in time happy the sense of pride; both these senses result in severe misery. The invincible weapon to protect own-soul from both these senses is the disposition of neutrality. In homes and families, even minor skirmishes lead to breakup in relations and end of communication between members. Living in the same house, they do not look like kin. This happens due to absence of the disposition of neutrality. Had they seen those minor skirmishes with the disposition of neutrality the family would have remained blissful. Smooth functioning, in the present and in the future, of a country, town, troop, family, group or institution is contingent on the power of the disposition of neutrality. No other power is capable of running smoothly a huge country.

---

6. स्वामी को सभी के प्रति माध्यस्थता का व्यवहार करना ही श्रेयस्कर है। किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय के प्रति पक्ष-विशिष्ट रखने से शासन नहीं चल सकता। राजा को किसी से विशेष प्रीति भी हो तो उसे सामूहिक प्रकट न करे, यही श्रेष्ठ नीति है। आत्मस्थ पुरुष वही हो सकता है जो माध्यस्थ भाव को सिद्ध कर चुका है। जब-तक व्यक्ति माध्यस्थ नहीं होगा तब-तक उसके लिए आत्मस्थ होना असम्भव है। अंतरंग-बहिरंग विकारों को नष्ट करने के लिए माध्यस्थ भाव परम रसायन है। जैसे रसायन सेवन से शरीर स्वस्थ रहता है; उसी प्रकार से माध्यस्थता से चित्त (अंत:करण) पूर्ण स्वस्थ रहता है, इसलिए माध्यस्थ भाव का सेवन करो।

6. It is worthwhile for the head of an institution to have the disposition of neutrality for all. He cannot rule by being biased toward a particular individual or

group. If the king has special attraction toward anyone, it is good policy not to display it publicly. Only the man who has mastered the disposition of neutrality can get established in own-soul. It is impossible for the man rid of the disposition of neutrality to get established in own-soul. The disposition of neutrality is the supreme medicine to destroy the internal and external imperfections. As medicine keeps the body healthy, the disposition of neutrality keeps the mind absolutely healthy; take this medicine.

---

7. साधक जब शरीर से माध्यस्थ-भाव स्थापित करता है तब उग्र-साधना के मार्ग पर चल पाता है। देह के ममत्व को छोड़कर साधना करता है; शरीर-आत्मा में भिन्नत्व-भाव को जानकर तटस्थ हो जाता है। माध्यस्थ भाव की साधना वर्द्धमान करते हुए साधक-पुरुष आत्मा के अन्दर ही माध्यस्थता स्थापित करते हैं, यही साधक की अंतरंग साधना है।

7. Having established himself in the disposition of neutrality for his body, the ascetic moves on to tread the path of severe austerity. After discarding infatuation for his body he observes austerities; the knowledge that the body and the soul are entirely distinct makes him unbiased. Through practice, he heightens his disposition of neutrality and establishes it firmly in own-soul. This is the internal austerity of the ascetic.

---

8. राग-द्वेष कर्मजभाव हैं स्यात्, बिना कर्म के आत्मा में राग-द्वेष भाव उत्पन्न नहीं होते। जो भावकर्म जड़-कर्मों से प्रभावित होकर हो रहे हैं उन भावों को मैं अपना स्वभाव-भाव कैसे स्वीकार करुँ? काम, क्रोधादि भावों की जो धारा अंत:करण में चल रही है, उनका मैं ज्ञाता-दृष्टा ही हूँ। यह चिद्ब्रह्म का सत्यार्थ-स्वभाव नहीं है। राग-द्वेषादि भावों से मैं प्रभावित नहीं होता हूँ, ऐसा प्रेक्षा-प्रज्ञावान् अंतरंग में माध्यस्थ है। संसार के प्रत्येक जीव को संतुष्ट करने की क्षमता परमात्मा के पास नहीं; फिर अन्य सामान्य-प्राणी क्या कर पायेंगे? कारण? नाना-प्राणियों की विभिन्न-आकांक्षाएँ हैं, उन्हें पूर्ण नहीं किया जा सकता और जो पूर्ण करने में लगता है वह अपनी शान्ति-समता को ही भङ्ग कर लेगा, इसलिए पर की इच्छाओं के प्रति भी माध्यस्थता को रखना होगा, स्व-शान्ति हेतु।

8. From a certain standpoint *(syāt)*, the dispositions of attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)* are karma-generated; without karmas these do not arise. How can I consider psychic-karmas *(bhāvakarma),* contingent on the previously-bound inanimate karmas, my own-nature *(svabhāva)*? I am just the knower and the seer of the stream of dispositions, like sensual-inclinations and anger, that is flowing within me. These dispositions are not the true nature of the pure soul-substance. The seer-knower who is not influenced by the dispositions of attachment and aversion has the

virtue of neutrality in him. Even God does not have the power to satisfy the fancies of every individual on this earth; what to talk of others? Why do you say so? Different individuals have divergent desires which cannot be fulfilled. If someone tries to fulfill these desires, he is bound to lose his own tranquility and composure; it is, therefore, essential to maintain neutrality in respect of the desires of others.

---

9. अयोग्य व्यक्ति को भी अहंकार-ममकार भाव होता है। पद की आकांक्षा, अधिकार के मद में अयोग्य व्यक्ति भी अपने को योग्य घोषित करता है। माध्यस्थता के बिना श्रेष्ठ योग्य-पुरुषों की योग्यता की कीमत नहीं हो सकती है।

9. Even the incompetent man can have the dispositions of self-aggrandizement *(ahaṃkāra)* and self-interest *(mamakāra)*. Due to his aspiration for position and overbearing pride of power, he declares himself to be competent. Without the disposition of neutrality, he does not value the worthy and competent men.

---

10. खोटे लोगों की श्रेष्ठ तप-साधना को माध्यस्थ-भाव से देखो। उनकी बाह्य तप-साधना से प्रभावित होकर श्रेष्ठ-मार्ग को दूषित नहीं करना चाहिए। उपवास आदि साधना के साथ दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रधानता देखी जाए। आत्मा की परम-सत्ता को प्रकट कराने की योग्यता यदि किन्हीं भावों में है; तो वह भाव माध्यस्थ-भाव है। जब साधक पर से निरपेक्ष होकर स्व के मध्य ही स्थित होता है तब वहाँ राग-द्वेष, पक्षपात को स्थान ही नहीं होता है। पक्षपात शून्य भाव का नाम ही तो माध्यस्थ भाव है। माध्यस्थ भाव से ग्रंथों को पढ़ो, पर वेदन निर्ग्रंथ बनकर करो। एक-एक अशुभ-भाव की गाँठ खोल दो।

10. Watch the good-looking austerities of inauthentic men with the disposition of neutrality. Do not defile the genuine path by getting influenced by their external austerities. Austerities, like fasting, should be viewed in context of right faith, knowledge and conduct. The ability to bring the supreme-existence of the soul to the fore lies only in the disposition of neutrality. When the ascetic gets established in the self, imperious to everything external, imperfection like attachment, aversion and bias vanish. The disposition of neutrality, really, is to have no bias. Study the Scripture with the disposition of neutrality; to assimilate its teachings, become without-possessions *(nirgrantha)*. Unlock the knot of each inauspicious disposition.

---

11. प्रत्येक प्राणी के परिणाम स्व-कषाय जन्य हैं, पर-कषाय से पर के परिणाम नहीं होते, बाह्य निमित्त अवश्य हो सकते हैं, परन्तु कषाय तो व्यक्ति के अशुद्ध नय का विषय है, पर-संयोगी भाव ही कषाय के कारण

हैं। अशुभ भावों के कारण हैं। शुद्धनय में तो द्रव्य द्रव्य है। वह स्व में पूर्ण शुद्ध है, फिर मैं पर को क्यों देखूँ? स्वशुद्ध का आलम्वन लेकर क्यों न माध्यस्थ होकर जियुँ?

11. The dispositions of every living-being originate from own-passions *(sva-kaṣāya)*. The passions-of-others *(para-kaṣāya)* can act as external causes but do not originate dispositions in others. The passions *(kaṣāya)* are the subject of impure point-of-view *(asuddha niścaya naya)*; passions arise due to the soul being caught in the meshes of material environment. From the pure point-of-view *(śuddha niścaya naya)* the substance *(dravya)* is just itself. Absolutely pure in self, it does not need others to rely on. Taking refuge in own pure-self, why should I not live with the disposition of neutrality?

---

12. स्व-कषायिक भाव भी जीव के हैं, आत्मा के नहीं। जो चार प्राणों से तीनों कालों में जीता है वह जीव है। जीव पर-संयोगों से युक्त होता है और आत्मा शुद्ध-चैतन्य धातु है; उसमें पर का कोई संयोग नहीं है, इसलिए राग-द्वेषादि कषाय-भाव मेरा द्रव्य नहीं है, परमार्थ से इनसे भी माध्यस्थता को धारण करता हूँ। ऐसा परम तत्त्वज्ञानी जीव वस्तु-स्वभाव का सम्यक्-चिंतन कर शान्त हो जाता है। क्षीर-नीरवत आत्मा और कर्म का संश्लेष सम्बंध होने पर भी द्रव्यत्व भाव से देखें तो कर्म कभी चैतन्य नहीं होंगे और चैतन्य-आत्मा कभी भी जड़ कर्म-रूप परिणत नहीं होगी। कर्म-आत्मा की मिश्रधारा को अनादि बंध दशा में एकत्वभूत दिखने पर भी तत्त्वज्ञानी ज्ञायक-भाव से देखता है। तब कर्म और आत्मा का स्वतंत्र-स्वतंत्र परिणमन दिखाई देता है, दोनों के मिश्र परिणाम से मुमुक्षु माध्यस्थ हो जाता है।

12. The dispositions of own-passions *(sva-kaṣāya)* belong to the worldly-soul *(jīva)* and not to the pure-soul *(ātmā)*. The worldly-soul *(jīva)* lives, in the three times, with its four life-principles *(prāṇa)*. The worldly-soul *(jīva)* is caught in the meshes of material environment and the pure-soul *(ātmā)*, rid of all foreign matter, has just pure-consciousness. The *yogī* begets tranquility by contemplating on the nature of the reality thus: "The dispositions of attachment *(rāga)*, aversion *(dveṣa)* and passions *(kaṣāya)* are not my own-substance; spiritually I adopt neutrality toward these too." Though the soul and the karmas stay mixed together like milk and water, but seen from the substance point-of-view, the karmas will never become animate and the animate soul will never become inanimate like the karmas. As the two, the soul and the karmas, are bound together from beginningless time, these appear to be one but the knower of the reality sees these as entirely distinct entities. He sees both these as having independent transformations and, therefore, adopts neutrality in respect of their mixed state of existence.

---

13. एकत्व-भाव की लीनता तभी प्राप्त होगी जब जगत् को निज-भाव से विभक्त देखकर सबसे मध्यस्थ हो जाएगा। स्व-स्वरूप में किसी भी पर-पदार्थ का प्रवेश नहीं है, एकमात्र ध्रुव ज्ञायक-भाव ही निज-भाव है। माध्यस्थता को प्राप्त पुरुष मात्र पुरुष का ही वेदक होता है; अन्य द्रव्यों के वेद्य-वेदक भाव का अभाव है। जो पुरुष के द्वारा वेदा जाने वाला पुरुष है वह चैतन्य आत्मा है; जो कि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभावभूत है। पर के द्वारा न कृत, न कारित, न अनुमोदित, वह तो एकमात्र स्व-स्वरूप अहेतुक ही है।

13. On appreciating that the world is entirely distinct from the soul *(ātmā)* and adopting the disposition of neutrality, the oneness *(ekatva)* of the soul is realized. There is no entry of any foreign matter in the soul's own-nature; only the eternal knowledge-nature constitutes the soul's own-nature. The man with the disposition of neutrality apprehends just the soul *(puruṣa)*; he is impervious to the dispositions relating to all other objects and to their apprehension. The *puruṣa* to be apprehended is the conscious soul, rid of the qualities of touch, taste, odour and colour. It has origination *(utpāda)*, destruction *(vyaya)* and permanence *(dhrauvya)* as its nature. In its own-nature, it is independent of doing, getting done or approval of others.

---

14. जगत् का मित्र बनकर जीना है तो एकमात्र माध्यस्थ-भाव ही आलम्बन है। न किसी से मित्रता करो, न शत्रुता; अपितु सभी को सामान्य देखो। न विशेष बनो किसी के, न विशेष बनाओ किसी को, शान्त-माध्यस्थ हो जाओ, सभी आपके मित्र होंगे। वस्तु अनन्त-धर्मात्मक है। अनन्त-धर्मों को एक साथ नहीं कहा जा सकता; एक धर्म की प्रधानता से कथन होता है, अनेक धर्म गौण रहते हैं। पर्याय दृष्टि से वस्तु में अनन्तता है अथवा धर्म दृष्टि से अनन्तता है। धर्मी-दृष्टि से देखें तो एकरूपता है। अर्थात् द्रव्य-दृष्टि से एक है, इसलिए तत्त्वज्ञानी माध्यस्थ होकर देखता है। सम्पूर्ण धर्म-धर्मी में नाना विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है; ज्ञायक भाव से देखो। माध्यस्थता की भूतार्थता को जो समझता है, वही विश्व का श्रेष्ठ-सुखी तत्त्वज्ञानी जीव है। अन्य शास्त्र-पाठी तो मात्र स्व-बुद्धि का व्यायाम कर रहे हैं तथा मानसिक क्लेश को प्राप्त हो रहे हैं।

14. The only means to live as a friend to the world is to adopt the disposition of neutrality. Do not have friendship or enmity with anyone; see all beings naturally. Neither be special to anyone nor make anyone special, become tranquil and neutral; all will become your friend. The substance has infinite qualities *(dharma)*. Infinite qualities *(dharma)* cannot be articulated simultaneously; the speech, therefore, makes one quality *(dharma)* as its primary subject while the other qualities remain in the background as secondary subjects. The substance has infiniteness in respect of mode *(paryāya)* and also in respect of qualities *(dharma)*. As the possessor-of-qualities *(dharmī)*, the substance has oneness. Since from the point-of-view of the substance it has oneness, the knower of the reality sees it with neutrality. There is no need to always dissect the substance into qualities *(dharma)* and possessor-of-

qualities *(dharmī);* learn to see just as the knower. The man who understands the real meaning of neutrality is the excellent and happy knowing-soul. Those who are rid of such neutrality but study the Scripture are just exercising their minds, getting thereby mental-agony.

---

15. सम्पूर्ण शास्त्रों के अध्ययन का सार यदि जीवन में कोई है, तो वह आत्मशान्ति है। वह आत्मशान्ति तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण-लोक से माध्यस्थता का व्यवहार करोगे, इसलिए 'देखो, जानो, जाने दो' सूत्र को कंठाहार बनाओ। अन्य में ज्ञानी माध्यस्थ भाव रखता है; अन्य-अन्य रहते हैं, त्रिकाल में भी अन्य अनन्य नहीं होते। जड़त्व-स्वभावी द्रव्य कभी अजड़त्व भाव को प्राप्त नहीं होता, फिर भी अज्ञ प्राणी जड़-द्रव्यों के राग में जड़-बुद्धि हो रहा है। भूतार्थ सत्यार्थ का जाननहारा एकमात्र निज-आत्म द्रव्य को छोड़कर सबसे माध्यस्थ होकर परम सुख का भोग करता है, जो कि इन्द्रिय सुख शून्य अतीन्द्रिय-सुख है।

15. If there is any essence for life in the study of the entire Scripture, it is the soul-happiness. The soul-happiness is possible only if you adopt the disposition of neutrality for the whole world; just make this aphorism 'Look; know; let go' as your mantra. The knowledgeable man maintains neutrality in respect of 'others'; others remain others as in the three times these cannot become one with you. The objects which are inanimate by their nature cannot become animate; still the ignorant man, out of poor intellect, gets attached to inanimate objects. The man who knows the reality of substances adopts the disposition of neutrality for all substances, except own-soul, and thus enjoys the supreme happiness that is beyond-the-senses *(atīndriya)*.

---

16. अहो आत्मन्! विश्व में तप से बड़ा कोई इष्ट-सिद्धि का साधन नहीं है, परन्तु तप की सिद्धि तभी होगी जब साधक माध्यस्थ भाव की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण कषायिक विकारी-भाव, पंचेन्द्रियों के विषयों से माध्यस्थ-भाव स्थापित कर परम-वीतराग भाव में लीन साधक आत्मा के चरम-उत्कर्ष पर पहुँचता है, जहाँ से पुनः आना नहीं होता। वह परम-सिद्ध दशा है।

16. O soul! In this world, there is no means more potent than austerities *(tapa)* to accomplish the desired; however, austerities can only be observed when the ascetic accomplishes the disposition of neutrality. By establishing the disposition of neutrality for all blemishes pertaining to passions *(kaṣāya)* and objects of the five senses, the ascetic engaged in supreme non-attachment *(vitarāga)* reaches the summit of the soul, from where it does not have to come back to the world. This is the supreme state of liberation.

---

17. अशुभ कर्मों के फल से जो नाना योनियों में जन्मते और मरते हैं; वे सब प्राणी सत्त्व हैं। सत्त्व अर्थात् जीव। असाता वेदनीय के उदय से जो दु:खी हैं वे क्लिश्यमान कहलाते हैं। जो सम्यग्ज्ञानादि गुणों में बढ़े-चढ़े हैं वे गुणाधिक कहलाते हैं। जिनमें जीवादि पदार्थों को सुनने और ग्रहण करने का गुण नहीं है; वे अविनेय कहलाते हैं।

17. Those who take birth in several kinds of birthplaces – *yoni* – and die, owing to the ripening of inauspicious karmas, are the living beings *(sattva* or *jīva)*. The afflicted *(kliśyamāna)* are those who suffer from anguish and distress on rise of the karmas that produce unpleasant-feeling *(asātā-vedanīya)*. The virtuous *(guṇādhika)* are those in whom right knowledge, etc., abound. The ill-behaved *(avineya)* are those who do not listen to the reality of substances and fail to adopt virtues.

---

18. सज्जनों को सत्त्व अर्थात् सर्व प्राणियों में मैत्री-भाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोद-भाव, क्लांत जीवों के प्रति करुणा-भाव तथा विपरीत बुद्धि वाले जीवों के प्रति माध्यस्थ-भाव स्थापित करना चाहिए।

18. Noble men should establish themselves in the disposition of benevolence *(maitrī)* towards all living-beings *(sattva)*, joy *(pramoda)* at the sight of the virtuous *(guṇādhika)*, compassion and sympathy *(kāruṇya)* for the afflicted *(kliśyamāna)*, and neutrality or tolerance *(mādhyasthya)* towards the insolent and ill-behaved *(avineya)*.

* * *

10

सत्यार्थ-बोध

विवेक

Discrimination

1. हेय-उपादेय में भेद करने की बुद्धि, ग्राह्य-अग्राह्य का भेदज्ञान, तत्त्व-अतत्त्व की परीक्षा-कौशल्य का नाम 'विवेक' है। विवेकी जीव समय पर सम्पूर्ण कार्यों का पूर्व से विचार कर लेता है, जबकि कार्य के बाद विचार करना अविवेक है। संसार में विवेक से बड़ा अन्य कोई सुख नहीं और अविवेक से बड़ा कोई दु:ख नहीं।

1. The intellect to discern between objects that are worthless *(heya)* and beneficial *(upādeya)*, the knowledge to discern between what needs to be accepted *(grāhya)* and discarded *(agrāhya)*, and the skill to discern between the reality *(tattva)* and non-reality *(atattva)* is 'discrimination' *(viveka)*. The man with discrimination thinks-through the tasks before undertaking these; to think after performing the tasks is non-discrimination. There is no greater delight in this world than discrimination and no greater sorrow than non-discrimination.

---

2. लोक में प्राणियों के कोई-न-कोई शत्रु एवं मित्र प्राय:कर होते ही हैं। उन सामान्य शत्रु-मित्र के सम्बंधों का कोई विशेष महत्त्व नहीं, परन्तु महत्त्वपूर्ण शत्रु-मित्र का विषय है विवेक-अविवेक। विवेक से बड़ा कोई मित्र नहीं और अविवेक से बड़ा कोई शत्रु नहीं; यह सनातन सिद्धान्त है। इसे परिवर्तित करने की किसी में शक्ति नहीं है। प्रज्ञ-पुरुष प्रत्येक कार्य को करने के पूर्व अच्छी तरह से विचार करते हैं, बिना सम्यक्-विचार किए कोई कार्य नहीं करते हैं। अज्ञ-प्राणी कार्य करने के पश्चात् विचार करते हैं और बिना विचार किए ही कार्य कर लेते हैं, ऐसे लोग दु:ख और उपहास के पात्र होते हैं।

2. In this world, generally, people have some friends and foes. These do not have

much relevance; what is relevant in context of friends and foes is discrimination and non-discrimination. There is no greater friend than discrimination and no greater foe than non-discrimination; this is the eternal doctrine. No one has the power to alter this doctrine. Knowledgeable men think-through every task before its performance. The ignorant men perform the task and then think; they earn grief and derision as a consequence.

---

3. भावुकता में लिया गया निर्णय हर समय कष्टप्रद होता है। किसी कषाय के वश होकर कुछ कार्य करने के पूर्व कम-से-कम एक बार यह तो विचार करो कि इसका भावी परिणाम क्या होगा? धर्म-यश का नाश तो नहीं होगा? हम किसी को अपना रूप दिखाने योग्य रहेंगे कि नहीं? वर्तमान फल क्या होगा? भविष्य की पर्याय कैसी होगी? इसका विचार कर कार्य करो।

3. The decision taken under an upsurge of emotion is painful. While performing any work under the influence of passions *(kaṣāya)* think at least once its future outcome. Will it cause destruction of my dharma and renown? Will I be able to show my face to others? What will be the immediate result? What future state-of-existence will it result for me? Think-through and then act.

---

4. जो कार्य इह-लोक में निन्दा एवं पर-लोक में दुर्गति करें, ऐसे कार्य विवेकी-जनों को स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए। अविचार पूर्वक जो कार्य करता है वह अपने जीवन में मानसिक एवं शारीरिक अनेक कष्टों को क्षण-क्षण में प्राप्त होता है। प्रेक्षाकारी पुरुष सर्वत्र यश और सुख को प्राप्त होते हैं, उन्हें संसार में कष्ट नाम की वस्तु प्रदान करने वाला कोई भी नहीं है। विवेकशील स्व-पर के कल्याणकारी होते हैं; उन्हें हेय-उपादेय का समयानुकूल बोध होता है, वे समय के अनुसार परिवर्तन करना जानते हैं।

4. Men with discrimination should never, even in their dream, think of performing activities that result in derision in this world and evil state-of-existence hereafter. The man who performs activities without proper thinking experiences, each moment, mental and physical pain. Visionary men experience, everywhere, renown and happiness; no one in this world can cause them pain. Men with discrimination cause well-being of self and others, understand what is worthless *(heya)* and beneficial *(upādeya)* in each situation, and know how to change according to time.

---

5. विवेकशील लोग निजात्मा को पश्चाताप की ज्वाला में जलने नहीं देते, वे अंत:करण के भावों की भाषा को पढ़कर जाग्रत रहते हैं तथा शान्त-चित्त से स्व की भविष्यवाणी का बोध कर लेते हैं। किसी भी व्यक्ति से स्व-वचनों का प्रयोग करने के पूर्व इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन वचनों का दूरगामी प्रभाव क्या

होगा? धर्म-यश-संस्कृति की वृद्धि में कारण होगा या घातक? ऐसा विवेकपूर्ण विचार करके ही महाजन अपने वचनों का उपयोग करते हैं।

5. Men with discrimination do not allow them to burn in the fire of remorse. They read the nature of dispositions in own-soul and remain vigilant, with tranquil mind, about future consequences of their actions. Before talking to someone, think about the effect of your words in the distant future. Will these be beneficial or detrimental in regard to dharma, renown and culture? Great men utter words only after discriminatory thinking of this kind.

---

6. हास्य-विनोद करो, चित्त को प्रसन्न रखने के लिए, परन्तु मर्यादा-काल देखकर, पुरुष विशेष को देखकर, क्षेत्र देखकर, अल्प करो। ऐसा हास्य-विनोद न करें जिससे धर्म, समाज, परिवार, देश, राष्ट्र पर कष्ट आ जाए। समय-सूचकता का ज्ञान होना चाहिए। विवेक का अर्थ है; विभक्त करना, पृथक् करना। करणीय-अकरणीय में भेद करके चलना, सहज-शीघ्र किसी से प्रभावित नहीं होना। विवेकवान की चर्या सर्वथा-सर्वदा प्रशंसनीय होती है।

6. Engage in laughter and fun to keep your mind amused but let it only be a little and that too after proper assessment of the time, the peculiarity of the listener and the region. Do not engage in laughter and fun that can cause difficulty to the dharma, the society, the family, the country, or any nation. Time should be appropriate. Discrimination means to break apart, to dissect. It entails distinguishing between what is worth-doing and what is not, and not to get influenced with others in a hurry. The conduct of men with discrimination is praised wholly and universally.

---

7. चारित्रवान श्रेष्ठ वही होता है जो श्रेष्ठ विचारशील होता है। वह गूढ़-विद्या के गूढ़-रहस्यों का साक्षात्कार अपनी चिंतन-शक्ति से कर लेता है। श्रेष्ठ कार्यों की आयोजना सभी प्राणियों के अन्दर नहीं होती। वे विशिष्ट जन ही होते हैं जिनके अन्दर विशेष विवेकपूर्ण विचार-शक्ति का संचार होता है। चिंतनशील लोगों के मध्य बैठने से स्व के चिंतन में विशेषता आती है, इसलिए चिंतनशील लोगों की संगति करनी चाहिए, स्व-चिंतन के विकास के लिए। चिंतन-शून्य, चारित्र-शून्य लोगों के समीप कभी न बैठें, अतः प्रज्ञा में शून्यता आ जाएगी।

7. Only that man is excellent whose conduct is based on sound thoughtfulness. Through his thoughts he brings to the fore deep secrets contained in the profound Scripture. All living-beings do not have the ability to think about worthy tasks. Those men are special who have within them the power to think with discrimination. The company of reflective men brushes up your thinking; have their company. Never be in the company of men who are unreflective and without-conduct; you will lose your intellect.

---

8. विवेकहीन लोगों की दशा खुजले श्वान जैसी होती है। जहाँ देखो वहाँ वह खाज-खुजाने बैठ जाता है। उसकी इस वृत्ति को कोई पसंद नहीं करता, उसे कोई पास में बैठने नहीं देता, सभी उसे भगाते हैं। विवेकहीन भी भूल से कुछ भी बोल देता है, वह सज्जनों को रुचिकर नहीं होता है, इसलिए उस विवेकहीन को लोग भगा देते हैं। विवेकीजन अपने-आप में शान्ति का वेदन करते हैं। वहीं विवेकहीन अशान्तिपूर्ण जीवन जीता है।

8. The condition of men lacking discrimination is like that of a dog with pruritus (itching skin). The dog keeps on scratching all over. No one likes this tendency and allows it to come close; everyone chases it away. Similarly, the man lacking discrimination speaks randomly; he is not liked by the noble men and is driven out of their company. The men with discrimination experience happiness within them. In contrast, the men lacking discrimination live an unhappy life.

---

9. जीवन संसार में ऐसे जियो जिससे किसी से शत्रुता का जन्म न हो तथा मित्रता की मृत्यु भी न हो। धर्म-यश की वृद्धि हो, यह प्रक्रिया विवेक से ही सम्भव है। विवेक खोकर किसी भी कार्य में प्रवेश मत करो, जो व्यक्ति विवेक से रिक्त होकर कार्य करता है वह लोक में शत्रुता की वृद्धि करता है तथा मित्रों के मध्य उपहास को प्राप्त होता है। विवेक मानव को महा-मानव बना देता है तथा अविवेक विद्वान् को भी मूर्ख घोषित कर देता है। प्रज्ञ-पुरुषों का कर्तव्य है कि वे प्रत्येक कार्य विवेकपूर्वक करें।

9. Live life in a manner that does not give birth to enmity and death to friendship. The process of growth of dharma and renown thrives on discrimination. Do not engage in any activity indiscriminately; the man who acts in such a manner makes new enemies and his friends ridicule him. Discrimination turns an ordinary man into a great-man; a learned man, if he lacks discrimination, is proclaimed a fool. It is the duty of knowledgeable men to perform every task with discrimination.

---

10. लोक में जिसकी एकमात्र स्वात्म-हित पर दृष्टि है, जो सम्पूर्ण पर-भावों के प्रपंचों से निज को पृथक् रखता है, तटस्थ भाव से सबको देखता है, वही सच्चा विवेक-सम्पन्न प्रज्ञावान पुरुष है। ऐसा जीव सर्वत्र सुखी रहता है। परम विवेक-भाव से देखो; जगत् में पुण्य-पाप दोनों भूतार्थ शान्ति से रक्षा कर रहे हैं। जहाँ कर्ता-भाव आता है, वहाँ शान्ति का आनन्द कहाँ? पर क्या करें? परमार्थ-विद्या को जानने वाले जीव अत्यंत अल्प हैं। लोगों को भान ही नहीं, कर्तापन शान्तिदायक नहीं है, अपितु अकर्ता-भाव ही आत्म-शान्ति का प्रदायक है। यह अन्तर-बोध विवेक से ही होगा, इसलिए सूक्ष्म-विवेक को जाग्रत करो। विवेक-बोध सर्वज्ञ-देव कथित शब्द-ब्रह्म से ही प्रकट होगा। बिना सर्वज्ञ भाषित श्रुत के सत्यार्थ विवेक ज्ञान सम्भव नहीं। बिना विवेक ज्ञान के सत्यार्थ का अनुभवन नहीं हो सकता। भ्रम एक महामारी रोग तुल्य है, ऐसे भ्रम-रोग का अन्त सच्चे आगमों के अभ्यास से होगा, अनागमों के अभ्यास से नहीं होगा, इसलिए आगमाभ्यास करो।

10. The man whose sight is on the well-being of own-soul, who keeps away from extrovert worldly displays, and who sees everyone with an unbiased disposition, is the real knowledgeable man having discrimination. Such a man remains happy at all places. Viewed with supreme discrimination, both merit and demerit, in true sense, affect the soul only passively. How can there be the joy of peace in the man who has the disposition of the 'doer' *(kartā)*? But what can be done? Men who know the supreme science are but very few. People are not aware that the disposition of the 'doer' does not engender peace; in fact, the disposition of the 'non-doer' engenders peace. Only through discrimination can one acquire this appreciation; therefore, awaken your fine discrimination. This fine discrimination will arise only from the divine words of the Omniscient Lord. It is impossible to get discriminatory knowledge without reading the Scripture expounded by the Omniscient Lord. Without discriminatory knowledge the nature of the reality cannot be ascertained. Doubt is like an epidemic; it can be wiped out only through constant study of the true Scripture. Therefore, study constantly the Scripture.

* * *

11

सत्यार्थ-बोध

धैर्य

Forbearance

1. धैर्य मानव-जाति का आभूषण है। वे लोग सम्पूर्ण लोक में श्रेष्ठ गुणी होते हैं जो प्रत्येक कार्य का निर्णय धैर्यता से लेते हैं और अधीरता से आत्मरक्षा करते हैं।

1. Forbearance is the ornament of humankind. In the whole world, those men are excellently virtuous who adopt forbearance in every work-decision and protect themselves from impatience.

---

2. अधीर पुरुष आपापर के विवेक को खो देता है, वह स्व-पर को क्लेश का कारण बनता है। ऐसा मनुष्य सामान्य विषय को भी विशेष बनाकर देखता है। वह अपनी अधीर-वृत्ति से लोक में निन्दा और दया का पात्र होता है।

2. The impatient man loses his power to discriminate between 'self' and 'non-self' and causes anxiety to self and others. Such a man tends to see even a general subject as special. Due to his impatience, he becomes a subject of scorn and sympathy in the world.

---

3. धीरता से सम्पूर्ण उपसर्ग-परिषहों को प्रसन्नचित्त, ज्ञायक-भाव से सहन किया जा सकता है, अधीरता से नहीं।

3. Through forbearance all calamities and afflictions can be endured gladly with the attitude of the 'knower', not through impatience.

---

4. धीर पुरुष के धैर्य को देखकर कष्ट भी कष्ट में पड़ जाते हैं, उन्हें विचारना पड़ता है कि यह कितना महान् है जो मेरे होने पर भी धृति-भाव से बैठा है। धन्य है ऐसे महामना के लिए।

4. Seeing the forbearance of the patient man even hardships get into hardship; the hardships are forced to think about the greatness of the man sitting firm in their presence. Hail such a great man!

---

5. अधीरता व्यक्ति के व्यक्तित्व को नीचे ले जाती है। अधीर व्यक्ति अपने आपको ही नहीं सँभाल पाता, वह प्रत्येक कार्य अधीरता पूर्वक करके जगति में उपहास का पात्र बनता है। सज्जन लोग अधीर-व्यक्ति से आत्मरक्षा करते हैं, क्योंकि अधीर-व्यक्ति मानसिक दु:ख देता है।

5. Impatience pulls down the personality of a man. The impatient man fails to control himself; he is ridiculed in the world owing to his impatience. Noble men protect themselves from the impatient man as he engenders them anxiety.

---

6. अधीरता व्यक्ति के अन्दर अनेक प्रकार के अवगुणों को उत्पन्न करा देती है। क्षमादि गुणों का तो अधीरता में अवकाश ही नहीं है।

6. Impatience generates many kinds of blemishes in the man. Qualities like forgiveness *(kṣamā)* have no place in the impatient.

---

7. धैर्यवान प्रत्येक कार्य को पूर्वापर अवस्था देखकर करता है। लाभ-अलाभ में अत्यन्त हर्ष-विषाद को प्राप्त नहीं होता। वह वस्तु-व्यवस्था का ध्यान रखता है। लाभ-अलाभ संसार का स्वभाव है, इसमें हर्ष-विषाद करके व्यर्थ में संक्लेशता को क्यों प्राप्त करुँ, धैर्यवान-पुरुष ऐसा सम्यक्-चिन्तन करता हुआ स्व-पर को धीरता प्रदान करता है।

7. The man with patience performs each task after watching the before-after situation. He does not experience delight or gloom on profit or loss. He keeps in mind the nature-of-substances. Profit or loss constitutes the nature-of-substances; in such a situation, it is futile to get anxious by experiencing delight or gloom. With such right thinking, he provides patience to self and others.

---

8. अधीरों का मित्र धैर्य है। अधीरता मानसिक पीड़ा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देती, जबकि धैर्य शारीरिक, मानसिक, वाचनिक सम्पूर्ण विपदाओं से रक्षा करता है।

8. Forbearance is a friend to impatient men. Impatience does not accord anything but anxiety; forbearance saves the man from all calamities of body, mind and speech.

---

9. अधीरता अस्थिरता को उत्पन्न करती है। अस्थिर-चित्त में कभी भी आत्मशान्ति का वास नहीं होता। आत्मशान्ति चाहिए; तो सर्वप्रथम निज अंत:करण को अधीरता से शून्य करो और धीरज से पुष्ट करो।

9. Impatience generates instability in mind. Soul-happiness does not dwell in an unstable mind. If you wish soul-happiness, first make your heart clear of impatience and strengthen it by the virtue of patience.

---

10. धैर्य के अभाव में न व्यवहार में सुख मिलता है, न ही परमार्थ में। अंतरंग-बहिरंग लक्ष्मी की प्राप्ति धैर्य से ही होती है।

10. Happiness, worldly or spiritual, cannot be got in absence of forbearance. Only through forbearance can one get internal and external prosperity.

---

11. अधीरता जीवन उन्नति में बहुत बड़ा अवरोध है, इसे हटाना अनिवार्य है। यदि आप अपने जीवन में अधीरता पर विजय प्राप्त नहीं कर पाए, तो सम्पूर्ण जीवन कष्ट और अपयश के साथ निकलेगा।

11. Being impatient is a big obstacle in the progress of life; it is essential to remove this obstacle. If you have not been able to win over impatience, your whole life will be full of misery and calumny.

---

12. सारा विश्व उसके साथ है जिसके पास शूरता-धीरता, भाग्य की प्रबलता है। अधीर व्यक्ति के साथ स्व के परिजन भी नहीं रह पाते, अन्य की क्या बात करें।

12. The whole world is with him who has the fortitude of forbearance and strength of fate. Even the members of the family are not able to cope with the impatient, what to talk of others.

---

13. उन वीर धैर्यवान नरोत्तमों को देखो जिनके जीवन में परिजन, स्वजन व अन्यजनों के द्वारा घोर उपसर्ग किए गए, विपुल कष्ट दिए गए फिर भी अपने दृढ़ विश्वास के साथ स्व-कर्तव्य से च्युत नहीं हुए। आज उनकी लोक में आराधना हो रही है, चाहे श्रीराम हों, तीर्थंकर पार्श्वनाथ हों या महावीर हों।

13. Look at the great men of forbearance who have been subjected to great calamities by their family, kin and others and tortured extensively; still, with self-confidence, they remained steadfast in their duty. Whether Lord Rāma, *Tīrthaṅkara* Pārśvanātha or Mahāvīra; they are being adored and worshipped by the world even today.

---

14. अखण्ड विश्वव्यापी बनने के लिए धीरता का कवच धारण करना अनिवार्य अंग है। बिना धैर्य धारण किए कोई भी विश्वव्यापी नहीं बन सका।

14. Wear the shield of forbearance to attain undivided omnipresence. Without adopting forbearance no one can attain omnipresence.

---

15. अधीर का भी समय निकलता है, धीर का भी समय निकलता है। धीर की भी मृत्यु होती है अधीर की भी मृत्यु होती है। जब दोनों की ही मृत्यु होती है तो धीरता के साथ मरण क्यों न करें?

15. The time passes for the impatient; it passes for the patient too. The impatient has to die; the patient also has to die. When both must die, why not die with patience?

---

16. अज्ञानी ही अधीरता में डूबता है, ज्ञानी को अधीरता स्पर्श भी नहीं कर पाती। तत्त्व-निर्णय के बल से ज्ञानी जीव अपनी सम्पूर्ण विषमताओं को समता में वर्तित कर लेता है। अधीरता भी अधीर हो जाती है, तत्त्वज्ञानी को देखकर।

16. Only the ignorant man gets immersed in impatience; impatience cannot even touch the knowledgeable man. With his power of right determination of the reality, the knowledgeable man transforms all his incongruities into a harmonious whole. On seeing the knowledgeable man, even impatience becomes impatient.

---

17. धैर्यवान के सामने देव भी शीश झुकाते हैं। विषमताओं में समता कैसे रखी जाती है, यह विद्या धैर्यशाली के ही पास होती है। शारीरिक, वाचनिक, मानसिक कोई भी पीड़ा हो, परन्तु साम्यभाव से धैर्यशाली आनन्द के साथ जीता है।

17. Even *devas* bow down their heads in front of the man with forbearance. The man with forbearance knows the science of maintaining harmony in midst of incongruities. Maintaining his equanimity, he lives with happiness in midst of all calamities of body, speech and mind.

---

18. पर के कष्ट को सुनकर, कष्ट निवारण का विवेकपूर्ण विचार करो, परन्तु पर के कष्ट को सुनकर इतने अधीर मत हो जाना कि स्वयं की आत्मा को कष्ट आ जाए। स्व-शक्ति से पर के दु:ख का निवारण करो धैर्य पूर्वक, पर दु:खी होकर नहीं।

18. On hearing the suffering of the other, think judiciously about the way to provide him relief, but do not become so impatient that your own soul starts grieving.

Provide, with forbearance and as per your strength, relief to the other, without being sorrowful.

---

19. जीवन के क्षण नानत्वरूप हो सकते हैं, वह व्यवस्था कर्म-सापेक्ष है। आत्मद्रव्य का स्वभाव कर्म निरपेक्ष देखो, जो कुछ हो रहा है वह स्व-स्व उपादान में हो रहा है, निमित्त तो मात्र निमित्त ही है। क्यों व्यर्थ में अधीर होकर संक्लेशता को प्राप्त हो रहा है।

19. The instants of life can be different; this scheme is karma-dependent. See the nature of the substance-of-soul *(ātmadravya)* as karma-independent; each substance is the substantive-cause *(upādāna)* of all happenings that takes place in it, the instrumental-cause *(nimitta)* is external to it. Why to unnecessarily get impatient and cause yourself anguish?

---

20. जीव का उपादान जीव ही है, पुद्गल का उपादान पुद्गल है। भिन्न द्रव्य का उपादान भिन्न द्रव्य नहीं होता। जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता है ही नहीं तो फिर कर्ताभाव लाकर व्यर्थ में क्यों क्लेश को प्राप्त हो रहा है?

20. The substantive-cause *(upādāna)* of the soul is soul, and of the matter *(pudgala)* is matter. The substantive-cause of a substance can never be other-substance. When one substance cannot be the doer of the other substance, why do you bring in the sense of 'doer' *(kartā)* and unnecessarily get anguished?

---

21. अधीरता सम्पूर्ण आत्मगुणों को मलिन कर देती है। लोक में अविश्वास अमैत्रीभाव को जन्म देता है, इसीलिए सज्जनों को धैर्य धारण का अभ्यास करना चाहिए।

21. Lack of forbearance maligns entire own-qualities of the soul. In the world, distrust gives rise to rivalry; noble men, therefore, should practice adoption of forbearance.

---

22. जब आप अपनी बात किसी पुरुष के समक्ष कहने तत्पर हों, तो सर्वप्रथम इस बात का ध्यान रखें कि सामने वाला हमारा हित-चिन्तक है कि अहित-चिन्तक। सर्वप्रथम दूसरे की बात को गंभीरता के साथ सुनना चाहिए, फिर प्रेक्षा-पूर्वक सादर उत्तर देना चाहिए।

22. When you proceed to speak with someone, first ascertain whether or not the person is your well-wisher. Listen attentively to him first and then reply with due caution and respect.

---

23. अधीरता मानव जीवन में एक कड़वा विष है जो कि जीवन में अमृतभूत विवेक का घात कर देता है। जहाँ विवेक का विघात हुआ वहाँ सम्पूर्ण विशिष्ट आत्मगुणों का पतन प्रारंभ हो जाता है, इसीलिए सज्जनों को अधीरताभूत कालकूट विष से प्रतिक्षण सँभल कर रहना चाहिए।

23. In human life, the lack of forbearance is a bitter poison that destroys the nectar of discrimination. When discrimination is destroyed, destruction of all special qualities of the soul begins. Therefore, noble men should, every moment, protect themselves from the deadly poison of the lack of forbearance.

---

24. वे लोग लोक में महान् हो गए जो अधीरता रूपी विष से दूर हो गए, धैर्य रूपी अमृतरस का पान कर गए। धीरज धारण करने से बिगड़ते कार्य भी सँभल जाते हैं।

24. Those who had distanced themselves from the poison of the lack of forbearance and had drunk the nectar of forbearance have become great in this world. With forbearance, even the messed up tasks get resolved.

---

25. धैर्यगुण सर्वगुणों का आधार है, बिना धैर्य-भूमि के किसी भी गुण को स्थित होने को कोई स्थान नहीं है। सम्पूर्ण गुणों को मंडित करने का अधिकार धैर्य के पास है।

25. The quality of forbearance is the support for all other qualities; without the ground of forbearance, other qualities find no place to rest. The quality of forbearance has the power to embellish all other qualities.

---

26. प्राणी धनवान, बलवान, पुण्यवान या सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी यदि धैर्यवान नहीं है तो वह लोक में परमार्थ में सर्वत्र कार्य-हानि को ही प्राप्त होगा, कार्य सिद्धि तभी होगी जब व्यक्ति के अन्दर धैर्यगुण होगा। धैर्य विचार करने के लिए समय देता है, प्रेक्षापूर्वक किया गया कार्य सम्पूर्ण सफलताओं को प्रदान करता है।

26. If a man is rich, strong, meritorious and has all-round qualities but without the virtue of forbearance, in this world, his spiritual efforts will all be unsuccessful; his efforts will get accomplished only if has the virtue of forbearance. Forbearance provides the man the time to think; the effort preceded by proper reflection leads to total success.

---

27. कीर्ति धृति का मुख देखती है, बिना धृति के कीर्ति अपना कदम आगे नहीं रख पाती। यदि आपको कीर्ति पाने की इच्छा है तो प्रत्येक कार्य के करने में तथा बात करने में धृति को धारण करना अनिवार्य अंग है।

27. Goddess (of fame) Kīrti constantly looks at the face of Goddess (of resoluteness) Dhṛti; without Dhṛti, Kīrti is not able to move one step. If you wish to get Kīrti, it is an essential requirement to adopt Dhṛti in your every effort and in speech.

---

28. धैर्यता युक्त भूमिगत बीज ही समय पाकर अंकुरित होकर विशाल वृक्ष बनता है; उसी प्रकार धैर्यवान पुरुष के प्रत्येक कार्य सहजता से विशालता में परिवर्तित हो जाते हैं, यह धीरजता का सुफल है।

28. The underground seed, endowed with forbearance, sprouts in time and takes the form of a huge tree. In the same way, each effort of the man endowed with forbearance turns into greatness; this is the fruit of the virtue of forbearance.

---

29. आप कितने ही श्रेष्ठ ज्ञाता तद्-विषय के क्यों न हों, परन्तु जब आपसे ज्येष्ठ, श्रेष्ठ गुरुजन तद्-विषय पर वार्ता कर रहे हों तब तक स्व प्रज्ञा का धैर्य रखना जब तक गुरुजन आपको बोलने का संकेत न करें। यहाँ पर आपके ज्ञान धैर्य की परीक्षा है। उत्तीर्णता-अनुत्तीर्णता स्व के अधीन है।

29. You may be adept in a particular subject but still maintain forbearance in respect to knowledge when senior and excellent gurus are discussing the subject. Speak only when asked. Your forbearance in respect to knowledge is on test. It is up to you to pass or fail.

---

30. यदि आप कुशल वक्ता हैं और आपके पूर्व वक्ता ने आपके विरुद्ध भाषण किया, फिर भी आप धैर्य को न खोकर अपने नियत विषय पर ही बोलते हैं तो आपके उपदेश में अमृत है।

30. The person who spoke before you made unwarranted comments on you. If you are an expert speaker you will not lose forbearance and speak only on the subject under consideration. You will have nectar in your discourse.

---

31. कषाय के उद्रेक काल में यदि व्यक्ति विवेकपूर्वक धैर्य धारण करके एक मुहूर्त प्रमाणकाल कषाय भाव को टाल दे, तो महा-पाप संक्लेशता से आत्मरक्षा हो जाती है।

31. During the time when excessive rise of passions *(kaṣāya)* takes place, if the man adopts forbearance, with discrimination, and is thus able to defer the rise of the passions for one *muhūrta* (48 minutes), he saves his soul from great evil of anguish.

---

32. विषयों की अधीरता ने व्यक्ति के जीवन को नाश कर दिया। एक क्षण की वासना ने कितने जीवों के

धर्म-यश का पतन करा दिया। वासना के पूर्व वासना का फल जान लेता तो सम्प्रति लोक में सिर नीचा न होता, भविष्य में दुर्गति का पात्र न बनता; विद्वान् के मध्य सम्मान को प्राप्त होता।

32. Impatience for sensual enjoyments has destroyed the life of men. The lust of one instant has destroyed dharma and renown of many men. Had these men appreciated, beforehand, the outcome of their lust, they would have saved themselves from lowering their heads in the present and getting evil state-of-existence in the future; they would have maintained prestige among the learned.

---

33. धैर्य पूर्ण-सत्य का बोध करा देता है जैसे शीतल स्थिर पयस (पानी) में जल-तल में कहाँ मोती हैं, कहाँ अन्य कीमती पदार्थ हैं। इसी प्रकार धैर्य गुण से जीवन के भूतार्थ रहस्य दृष्टिगोचर होते हैं, इसीलिए वस्तु-तत्त्व के निर्णयकाल में धीरता-गंभीरता का आश्रय लेना अनिवार्य है।

33. Forbearance brings to the fore the whole truth; just as in the still water it is possible to determine exactly where, in its bottom, pearls and precious jewels exist. The virtue of forbearance makes the real secrets of life visible; therefore, it is essential to adopt forbearance and seriousness during the time of determination of the reality.

---

34. विपत्ति काल में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। जो विपत्ति के काल में धैर्य छोड़ देता है उसे विपत्तियाँ महाकष्ट देती हैं और जो धीर-पुरुष विपत्ति काल में धैर्य नहीं छोड़ते उन्हें विपत्तियाँ स्वतः छोड़कर चली जाती हैं।

34. Do not forsake forbearance even at the time of adversity. The man who forsakes forbearance during the time of adversities gets greatly tormented by the adversities; the adversities themselves leave the man who does not forsake forbearance during the time of adversities.

---

35. धीर पुरुष के सामने अनेक बार विषमताओं के काले बादल आते हैं, परन्तु वे महापुरुष धैर्य की हवा से उन्हें हटाकर अलग कर देते हैं। कष्टों के श्याम बादल भी धैर्यशील का कुछ नहीं कर पाते।

35. Men of forbearance face, many times, the dark clouds of incongruity but they blow these away by the wind of their patience. The dark clouds of suffering, too, are not able to affect the men of forbearance.

---

36. अशान्त परिणामी जीव भी सहज, समता धैर्यवान के समीप आकर साधु-स्वभाव को प्राप्त कर लेते हैं।

36. Even the men who are anxious adopt saintly nature in the company of those who are endowed naturally with equanimity and forbearance.

---

37. सर्वगुणों का संरक्षण-दायक धैर्यगुण को जीवन के प्रत्येक पलों में अपने साथ रखो, तो आपके सर्वगुणों की रक्षा स्वत: हो जाएगी।

37. Keep with you, every moment, the quality of forbearance, the protector of all other qualities; all your qualities will automatically get protected.

* * *

12

सत्यार्थ-बोध

दया

Kind-heartedness

1. प्रत्येक जीव जीने की इच्छा रखता है, संसार में कोई भी जीव अपना मरण नहीं चाहता। प्राण-वियोग से बड़ा अन्य कोई कष्ट लोक में नहीं है। पर के प्राणों का हरण, स्वयं के प्राणों का वियोग कर लेना घोर पाप है।

1. Every living-being wants to live; no living-being in the world wants to die. There is no greater suffering in the world than the loss of life. To take the life of others or your own is great evil.

---

2. स्व-पर आनन्दप्रद लोक में कोई वस्तु है तो वह दया है। दया स्व को भी सुख देती है और जिस पर दया की जाती है उसे भी सुख प्राप्त होता है, इसलिए सर्व-धर्म का सार दया है। दयाधर्म का आश्रय लेने से आत्मशान्ति के साथ विश्वशान्ति का भी दिव्य जयनाद होता है।

2. If there is anything in this world that provides happiness to self and to others, it is kind-heartedness. Since it provides happiness to self and to the person who receives it, kind-heartedness is the essence of all dharma. On taking shelter in the dharma of kind-heartedness, the divine victory-sound of soul-happiness and world-happiness is heard.

---

3. जब आप किसी को प्राण नहीं दे सकते हो, तो फिर आपके लिए किसी अन्य के प्राण हरण करने का अधिकार किसने दिया? पर के प्राणों का संहार करना मानवता पर कलंक है। किसी को कष्ट देना यह मानव धर्म नहीं है। थोड़ा शान्तचित्त से चिंतन करो, आवेग में नहीं, विवेकपूर्वक आचार-विचार करो।

3. When you cannot give life to anyone, who has given you the right to take away

the life of others? To take away the life of others is a dark spot on humanity. It is not the dharma of humans to cause suffering to others. Think with a tranquil mind, without excitement; think with discernment.

---

4. अहो मानव! मानवता रो रही, क्योंकि पशु से अधिक पशुता मानव के पास आ गई। ओहो! मानव, मानव को मार रहा, स्वसंतान का भी घात कर रहा, स्व-शरीर, श्री-स्त्री के लिए।

4. O human! Humanity is in tears because the man has acquired more beastliness than the beast. Alas! The man is killing man; he is killing own offspring for the sake of his body, money and woman.

---

5. जहाँ 'श्री', 'स्त्री' का राग प्रवेश कर जाता है, वहाँ से दया का पलायन हो जाता है। धन-दारा का राग विश्व का ऐसा राग है जिसके कारण सम्पूर्ण मधुर संबंध क्षणमात्र में कड़वे हो जाते हैं और फिर दया समाप्त हो जाती है, शत्रुता प्रकट हो जाती है।

5. Where there is the entry of attachment *(rāga)* for money and woman, kind-heartedness departs. Attachment for money and woman is such that it turns, instantly, all sweet relations bitter and that is the end of kind-heartedness and appearance of enmity.

---

6. धर्म वहीं होता है जहाँ प्राणियों के हृदय-पटल पर दया अंकित होती है। जहाँ दया का अभाव है वहाँ पर सत्यार्थ धर्म का भी अभाव है। मंदिर, तीर्थक्षेत्र, धर्म के प्रतीक-स्थान हैं, धर्म तो दया है।

6. Dharma exists where there is kind-heartedness inscribed on the hearts of the living-beings. Where there is no kind-heartedness, there is no true dharma. The temples and the places of pilgrimage are only the symbols of dharma; the dharma is kind-heartedness.

---

7. किसी की भूतकाल की कमी को जानकर वर्तमान में प्रकट करना भी अदया भाव है। दोष प्रकट होने पर व्यक्ति को बहुत मानसिक पीड़ा होती है, उसका हृदयाघात भी हो सकता है। यदि आपके अन्दर किञ्चित् मात्र भी दयाभाव है तो किसी को भी संतापित मत करो, उसका कर्म उसे स्वयं देख लेगा, आप व्यर्थ क्यों कष्ट उठाते हो।

7. To proclaim in the present the past faults of others too is absence of kind-heartedness. The person whose faults are made known suffers great mental agony; his heart may stop breathing. If you have even an iota of kind-heartedness, do not agonize anyone; his karmas will take take of his deeds, you need not bother.

---

8. लोक ईर्ष्या का घर है, इसमें सभी आपके हित-चिन्तक नहीं हो सकते। जिन्हें आप अपना मानते हैं वे ही कभी-कभी प्रबल शत्रु निकलते हैं। भूत भूल को वर्तमान में प्रकट करने की क्षमता उन्हीं लोगों में होती है जो आपके बहुत पास होते हैं। उनके प्रति भी अशुभ परिणाम नहीं लाना तथा स्व के प्रति भी हीन-भावना नहीं लाना। स्व पर मानसिक दया-भाव अत्यन्त दुर्लभ भाव है।

8. The world is the home of envy; all men cannot be your well-wishers. Those, whom you consider your own, sometimes turn out to be your biggest enemies. Only those who are very close to you have the capability to proclaim your past faults in the present. Do not think evil of them and also do not trap yourself in inferiority complex. To have the disposition of kind-heartedness for the self is an extremely rare quality.

---

9. अंतरंग की उज्ज्वलता व्यवहार में दया के रूप में प्रकट होती है और आंतरिक क्रूरता हिंसात्मक क्रिया रूप में प्रकट होती है। बहिरंग की प्रवृत्ति व्यक्ति के अंतरंग का यथार्थ बोध कराती है।

9. The brilliance in the inside manifests externally in form of kind-heartedness and the cruelty in the inside manifests externally in form of acts-of-injury *(hiṃsā)*. External propensities of the man reflect truly his internal dispositions.

---

10. दयावान मर्मभेदी शब्दों का भी प्रयोग नहीं करता, क्योंकि उसको बोध है कि कठोर वाणी बाण से भी अधिक कष्टप्रद होती है। कर्कश बोलने वाला न स्वयं को प्रसन्न रख पाता है, न अन्य को। स्व-पर को पीड़ा देने वाला क्रूर हृदयी वह है; जो मर्मभेदी शब्दों का प्रयोग करता है।

10. The kind-hearted man does not use heart-piercing words since he reckons that harsh words may cause more pain than the arrow. The man who speaks harshly can keep happy neither himself nor others. The man who uses heart-piercing words has a cruel heart that causes pain to self and others.

---

11. प्रत्येक प्राणी स्व-स्व भाग्य से जीता है, स्व-आयु के क्षय से मरता है, फिर आप पर के अहित का अशुभ-चिंतन करके मानसिक हिंसा क्यों कर रहे हो? आपके विचार करने से न कोई जीता है, न मरता है, इसलिए अपने दयाभाव की रक्षा करो।

11. Every living-being lives according to own fate and dies at the end of life-span; why do you engage in inauspicious thoughts of harming others and, in the process, cause mental-injury to self? No one lives or dies due to your thoughts; therefore, keep your kind-heartedness intact.

---

12. दया के अभाव में धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं। जहाँ पर दया-करुणा का अभाव है वहाँ व्यवहार धर्म का ही अभाव है, परमार्थ धर्म की तो गंध ही नहीं। बिना व्यवहार धर्म के परमार्थ धर्म का जन्म नहीं, परमार्थ धर्म का कारण व्यवहार धर्म ही है।

12. There is no dharma in absence of kind-heartedness. Where there is no kind-heartedness, there is no empirical *(vyavahāra)* dharma; there the transcendental *(parmārtha, niścaya)* dharma does not have even its smell. Without the empirical dharma, the transcendental dharma does not originate; the source of the transcendental dharma is the empirical dharma.

---

13. करुणा-दया से शून्य हृदय में धर्म की मृत्यु ऐसे ही हो जाती है जिस प्रकार सरोवर के सूखने पर मछली आदि जलचरों की मृत्यु हो जाती है। जल विहीन क्षेत्र में जैसे मछली का जीवन नहीं रहता, उसी प्रकार से दया विहीन हृदय में सत्यार्थ प्रकाशक धर्म नहीं रहता।

13. In the heart devoid of kind-heartedness the dharma dies, as the fish and other water-animals die in the dried up lake. As the fish does not live where there is no water, the truth-illuminating dharma does not live in the heart devoid of kind-heartedness.

---

14. करोड़ों वर्षों तक दयाशून्य कुतप तप लो उससे कुछ भी प्राप्त नहीं होता, वहीं एक दिन का दया परिणाम जीव का कल्याण मार्ग प्रशस्त करता है, इसलिए मिथ्या तप का त्याग कर दया व्रत धारण करना श्रेयोमार्ग की सिद्धि का साधन है।

14. False austerities of millions of years, devoid of kind-heartedness, will get you nothing; the one-day disposition of kindness will lead the soul to the path that leads to its well-being. Therefore, renounce false austerities and adopt the vow of kind-heartedness; this is the source of the accomplishment of the right-path.

---

15. सत्यार्थ प्रकाशक धर्म हवन-कुण्ड में धान्यादि द्रव्यों का क्षेपण नहीं है, वह तो व्यर्थ में धूम उड़ाकर जीवों का घात करना है। सत्यार्थ प्रकाशक धर्म दया से पूरित ध्यान अग्नि में कर्मों को भस्म करता है, न कि व्यर्थ में जीवों को स्वाहा करता है।

15. The truth-illuminating dharma does not consist in the offering of corn and other things in the sacrificial fire pit; the smoke from the fire pit just leads to the killing of living-beings. The truth-illuminating dharma consists in burning the karmas in the fire of meditation that is full of the dharma of kind-heartedness. It does not unnecessarily burn living-beings to ashes.

---

16. रसना की लोलुपता के वश होकर जीवों की गर्दन पर छुरा चलाना कोई परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय नहीं है। यदि जीव-वध परमात्म प्राप्ति का उपाय हो गया; तो स्वयं विचार करो नरक जाने का उपाय क्या होगा? सम्प्रदाय एवं धर्म के नाम पर जो अज्ञ प्राणी दया-धर्म का नाश कर रहे हैं वह परमात्म पद प्राप्ति का उपाय नहीं है, मात्र अज्ञानियों की अज्ञानता का परिचय है।

16. Subjugated by their athirst for toothsomeness, those who split with razor the neck of a living-being cannot acquire the status of the supreme-soul. If the slaughter of living-beings becomes the way to acquire the status of the supreme-soul, just think, what will be the way to go to hell! Ignorant men, who destroy the dharma of kind-heartedness in the name of group and religion, cannot acquire the status of the supreme-soul; they just exhibit their ignorance.

---

17. जिन भावों से विशुद्धि का विघात हो, जो आत्मा की दुर्गति के कारण बनें वे सब भाव अदया भाव हैं, इसलिए दयावान का कर्तव्य है वह स्व-पर भी दया भाव रखे। काम, क्रोधादि कुभावों को स्वात्म भावों में उत्पन्न ही नहीं होने दे, क्योंकि वे भाव आत्मा को चिरकाल तक भव-भ्रमण के कारण हैं।

17. All dispositions that destroy the purity of thoughts and cause evil states-of-existence for the soul mark the absence of kind-heartedness. Therefore, the kind-hearted should have fellow-feeling for self and others. Evil thoughts, pertaining to lust, anger, etc., should not be allowed to enter the soul's own-disposition; such thoughts cause wandering of the soul in the world for a long time.

---

18. जो स्वयं पर दया भाव रखता है वही यथार्थ में अन्य पर दया रख पाएगा। जिस व्यक्ति को विषय-कषाय रुचिकर लग रहे हैं वह क्रूर प्राणी है। वह न स्वयं पर दया रख सकता है, न अन्य किसी भव्य जीव पर ही करुणा भाव ला सकता है। विषयी जीव के अन्दर क्या करुणा के दर्शन होंगे? जो एक बार के अब्रह्म सेवन में नव कोटि जीवों की विराधना करता हो, उससे भी अधिक निज-भावों की निर्मलता का तीव्र घातक है।

18. Only the one who has kind-heartedness for self can be kind-hearted for others. The man who is attracted towards sensual-pleasures *(viṣaya)* and passions *(kaṣāya)* is cruel. He cannot be kind-hearted for self and also for any other potential *(bhavya)* soul. What kind-heartedness can be found in the lustful man? The one who causes destruction of innumerable living-beings in one act-of-lust causes more severe harm to the purity of own-thoughts.

---

19. करुणाशील दयावान जब अंतरंग विशुद्धि में निमग्न होता है तब सम्पूर्ण विकारी भावों को निज से पृथक् कर लेता है। यही प्रयास प्रत्येक धर्मात्मा को करना चाहिए। जो विकारी इच्छाओं का दमन कर लेगा तो उसके

अन्य अदया के कार्य स्वमेव समाप्त हो जायेंगे; यह बात परम सत्य है। जो व्यक्ति दिन भर उदास दिखता है वह स्वदया प्रभाव से दिन भर प्रसन्नचित दिखेगा।

19. The compassionate and kind-hearted man, established in internal purity, separates all evil dispositions from self. This kind of effort should be made by all virtuous men. It is the supreme truth that the man who restrains evil desires keeps cruel activities at bay. Kind-heartedness for self will transform the melancholic man into an ever-delightful man.

---

20. कषाय का अभाव जहाँ है वहीं परम-दया है। कषायी के पास स्व-पर दया का अभाव देखा जाता है। मन्द कषाय में अल्प दया तथा पूर्ण कषाय के समाप्त होने पर पूर्ण दया-धर्म प्रकट होता है, इसीलिए साधक-पुरुष को प्रतिक्षण दयाधर्म की वृद्धि हेतु कषाय भाव का अभाव करने का सम्यक्-पुरुषार्थ करना चाहिए।

20. Where there is absence of passions *(kaṣāya)* there is supreme kind-heartedness. In the man with passions there is absence of kind-heartedness for self and others. In the man with mild passions there is part kind-heartedness; in the man without passions the complete dharma of kind-heartedness is manifested. Therefore, the ascetic should make constant effort to eradicate passions so as to enhance his dharma of kind-heartedness.

---

21. विभिन्न अनेकानेक विकल्पों का समूह जीव के अंतरंग विशुद्ध-भावों का विघातक है, आत्म-दया से रहित परिणाम जीव के लिए क्षण-क्षण में कष्टप्रद होते हैं।

21. The chain of multifarious thoughts of man destroys the purity of his internal disposition. The disposition devoid of kind-heartedness for self gives the man pain every instant.

---

22. पर घर में स्त्री, नदी के किनारे का वृक्ष, मंत्री-शून्य राज्य जैसे विनाश को प्राप्त होते हैं वैसे ही दया-रहित धर्मात्मा नाश को प्राप्त होता है।

22. As the woman in other's house, the tree on the bank of the river, and the state without the minister, get ruined, similarly, the virtuous man without kind-heartedness gets wiped out.

---

23. दयाधर्म जहाँ होगा वहाँ वात्सल्य मैत्री-भाव की पावन-पीयूष वर्षा होगी, शत्रुता, द्वेषबुद्धि की विष-वर्षा वहाँ नहीं होगी। करुणाभाव के सद्भाव में ही सर्व-संबंध मधुरता को प्राप्त होते हैं। जहाँ माधुर्य भाव है, वहीं मैत्री-भाव है।

23. Where there is the dharma of kind-heartedness there is purifying, nectarous rainfall of affectionate benevolence; the poisonous rain of enmity and aversion does not fall there. In the company of compassion all relations are sweetened. Where there is sweetness in relations there is benevolence.

---

24. दयाधर्म के पालने में ही सम्पूर्ण धर्म पलते हैं शिशुवत; जैसे बालक पालने में पलता है।

24. In the cradle of the dharma of kind-heartedness all other dharma are nurtured; like an infant is raised in the cradle.

---

25. वहाँ धर्म नहीं धर्माभास है जहाँ प्राणी मात्र के प्रति दया की बात न कही जाए, तदनुसार आचरण नहीं किया जाए, जहाँ मूक पशु-पक्षियों का प्राण हरण किया जाए और उसे धर्म कहा जाए तो आप स्वयं विचार करो कि अधर्म नाम की वस्तु क्या होगी?

25. Where there is no mention of kind-heartedness for the living-beings and lack of incumbent conduct, there is no dharma but an illusion of dharma. If killing of mute beasts and birds be called 'dharma', think for yourself, what else would be called absence-of-dharma *(adharma)*?

---

26. स्वच्छ-श्वेत या अन्य कोई अनेक प्रकार के वस्त्रों के धारण करने से धर्म नहीं आता, धर्म तो स्वच्छ निर्मल भावों से आता है। शुद्ध आहार, विचार, वाणी की पवित्रता से धर्म का अंत:करण में प्रवेश होता है। विद्वेष, जाति, पंथ, सम्प्रदाय के आग्रह में क्रूरता का जन्म होता है, धर्म का नहीं।

26. Dharma does not come from wearing spotless-white or other types of clothes; it comes from clean and unstained disposition. Dharma enters the heart through pure food, noble thoughts, and righteous speech. Insistence on aversion, caste, sect and group gives birth to cruelty, not dharma.

---

27. दया शब्दों के साथ आचरण में भी आना चाहिए। दया शब्द तो वाचक है, वाच्यार्थ में क्रियाभूत दया है। दु:खी प्राणियों के दु:ख को दूर करने का पुरुषार्थ करना, परन्तु दूसरे को दु:खी करके नहीं।

27. Kind-heartedness is a matter of conduct, not mere words. The word 'kind-heartedness' is an expression; putting it into action is its real sense. Try to alleviate sufferings of those in distress but not at the expense of afflicting anyone.

---

28. दयावान के साथ विवेकवान भी होना चाहिए। एक पर दया दूसरे पर अदया न हो जाए इस बात का ध्यान रखना। दयावान प्राण-हरण करने वाले हिंसकों के भी प्राणों की रक्षा करता है। शठ के साथ स्वयं को शठ घोषित नहीं कराता, स्वप्रज्ञा से स्व-पर की रक्षा करता है, विश्व बन्धुता के साथ।

28. The kind-hearted should also have the power of discrimination. Keep in mind that sympathy on one should not cause cruelty on another. The kind-hearted saves the life of even those who kill others. He does not become wicked in company of the wicked; he saves, with own intellect and feeling of world-brotherhood, self and others.

---

29. जो दयावान होते हैं; वे सम्यक्-नीतिवान भी होते हैं। यदि मार्ग में कोई भार-वाहक, रुग्ण या गर्भवती स्त्री जा रही हो तो दयाशील के लिए स्वयं मार्ग छोड़ देना चाहिए, क्योंकि हमारे द्वारा किसी को कष्ट न हो।

29. The men with kind-heartedness have sound worldly wisdom too. If they run across a loaded man, a sick man or a pregnant woman, they make way for them; they do not want to be a cause of hardship to others.

---

30. यदि आप दयाशील हैं; तो स्व विशिष्ट प्रज्ञा का प्रयोग करना भी आना चाहिए। जैसे आपने मार्ग में, घर, भवन, मंदिर आदि में कहीं भी क्रूर-हिंसक प्राणी देखा तो अपने इष्टों के साथ उस प्राणी की भी रक्षा होना चाहिए।

30. The kind-hearted man should know how to use own special intellect. For example, if you see a cruel man engaged in an act-of-injury *(hiṃsā)* at any place like street, home, building, or temple, he should also be saved, besides your dear ones.

---

31. उन-क्रूर प्राणियों पर भी क्रूर-भाव मत लाओ जो सामने ही जीवों का घात कर रहे हैं। उन्हें संभव हो तो अपनी प्रज्ञा के कौशल से समझाओ, नहीं समझें तो माध्यस्थ हो जाओ, परन्तु उन्हें भी मारने के भाव मत लाओ। दया के पात्रों पर दया ही दिखाओ।

31. Do not have cruel thoughts even for the cruel men who are killing living-beings in front of you. If possible, using the skill of your wisdom, persuade them to desist from such acts. If still they refuse to understand, adopt neutrality and do not think of harming them. The pitiable needs pity.

---

32. दयालु प्राणी किसी के द्रव्य-प्राणों का घात तो करता ही नहीं, अपितु वह तो भावों का भी घात नहीं

करता। वह प्रतिक्षण सावधानी रखता है कि मेरे किसी भी कृत्य से किसी अन्य भिन्न पुरुष या प्राणी के परिणाम क्लेश को प्राप्त न हो जायें।

32. The kind-hearted man does not cause severance of physical life-principles *(dravya prāṇa)* of others; in fact, he restrains from causing them even psychic-injury. He takes care, every moment, that no act of his should cause anguish to others.

---

33. एकमात्र अद्वैत के ही अनुष्ठान से लोकालोक के विकल्पों का अभाव संभव है और वही परमार्थ से परम दया है।

33. Only through the adoption of non-duality *(advaita)*, worldly inquisitiveness *(vikalpa)* can be overcome; and that is the real and supreme kind-heartedness.

---

34. करुणा-दयाशील जीवों से ही धर्म, समाज, देश, राष्ट्र तथा विश्व रक्षित है। क्रूर-हिंसक, स्वार्थी, अहंकारी लोगों की स्वयं की ही रक्षा नहीं है, फिर अन्य धर्म, राष्ट्र, विश्व की रक्षा की उनसे क्या कल्पना की जाये?

34. The dharma, society, country, nation and world are protected only by men with compassion and kind-heartedness. The men who are cruel and engaged in acts-of-injury *(hiṃsā)*, selfish and haughty are themselves without protection; how can one expect protection of the dharma, nation and world from them?

---

35. जिनका हृदय करुणा, दया से आर्द्र है वे ही विश्व-बन्धुता का पाठ विश्व को पढ़ा सकते हैं। सम्प्रदाय विशेष का उपासक विश्व-बन्धुत्व की स्थापना नहीं कर सकता, क्योंकि सम्प्रदाय का राग हिंसा को जन्म देता है, मैत्री भाव को नहीं।

35. Only those men whose hearts are moistened with compassion and kind-heartedness can teach the world the lesson of world-brotherhood. The one devoted to a particular group cannot establish world-brotherhood since devotion for any particular group gives rise to injury *(hiṃsā)*, not brotherhood.

---

36. दया भाव की करो उपासना जिसमें प्राणिमात्र को आनन्द है, सम्प्रदायवाद को छोड़ो उसमें संक्लेशता है, अन्धविश्वास है।

36. Adore kind-heartedness that is pleasing to all living-beings; leave affiliation to particular religious groups since that has anxiety and superstition.

---

37. सम्पूर्ण सम्प्रदायों का एक पवित्र स्थान हो और वह है दया तीर्थ। जिसका न कोई धाम-उपाश्रय, एकमात्र आत्म विशुद्ध-परिणाम, प्राणिमात्र की रक्षा के परिणाम तथा सम्पूर्ण पंथों से अतीत 'सत्त्वेषु-मैत्री' का दिव्य-नाद।

37. All religious groups should have one single place of pilgrimage and that is kind-heartedness. Such a place of pilgrimage will have no hermitage; just the pure soul-disposition with the thought of the protection of all living-beings, free from sects and reverberating with the divine sound of 'brotherhood-for-all'.

* * *

"चिंता कपोल-कल्पना का वह रास्ता है जो काल्पनिक पागलपन के गड्ढे में गिरा देता है और फिर वह यथार्थ तक पहुँचने ही नहीं देता है। चिंता बहता हुआ दरिया है जो हमारी समस्त ऊर्जा एवं शक्ति को शीघ्र ही बहाकर हमसे दूर ले जाता है। चिंता एक अंतहीन प्रक्रिया है, जो असफलता तक निरन्तर चलती है। चिंता से ज्ञान, बल, बुद्धि, सुन्दरता नष्ट होती है तथा सम्पूर्ण बिमारियों की मूल जड़ चिंता है।"

(आचार्य विशुद्धसागर, **'जीवन-रहस्य'**, पृ. 17)

13

सत्यार्थ-बोध

दम

Self-restraint

1. मनोज्ञ-अमनोज्ञ इन्द्रिय के विषयों में राग-द्वेष की विरति दम-संयम है।

1. Giving up attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)* for agreeable *(manojña)* and disagreeable *(amanojña)* objects of the senses constitutes self-restraint *(dama, saṃyama)*.

---

2. जिनके पास संयम है, लोक में वे ही लोग विश्वास के पात्र हैं। दम (संयम) के अभाव में कितना ही श्रेष्ठ कार्य कर ले व्यक्ति, परन्तु वह संसार में पूज्यता को प्राप्त नहीं कर पाएगा।

2. Only men who have self-restraint are trustworthy. The man without self-restraint cannot attain adorableness, whatever great works he may perform.

---

3. जिन्होंने मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली, जगत् की किसी भी वस्तु पर जिनकी राग-द्वेष बुद्धि नहीं है; वे नर धन्य हैं, विश्वास के पात्र हैं। लोक उन्हें सिंहासन ही नहीं, अपितु हृदयासन पर विराजमान कर श्रद्धा-सुमन से उनकी पूजा करता है।

3. Hail those trustworthy men who have controlled their mind and senses and have no attachment and aversion for any object. The world seats them not on the throne but in their hearts and worships them with flowers of devotion.

---

4. संसार के चक्री पद की विभूति त्याग कर देना, परन्तु अपने चारित्र का नाश नहीं करना। सम्पत्ति तो पर-वस्तु है वह पुण्योदय से प्राप्त होती है, पर चारित्र आत्म-गुण है। सम्पत्ति पुनः प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु चारित्र की प्राप्ति इतनी सरल नहीं है।

4. Abdicate worldly position of the king-of-kings but do not destruct your conduct *(cāritra)*. Wealth is an external object which is got through the rise of meritorious karmas but conduct is the attribute of the soul. Wealth, if lost, can be regained but to regain lost conduct is not that easy.

---

5. संसार के मोहपूर्ण सम्पूर्ण कार्य मात्र भव-वृद्धि के ही कारण हैं, दुर्गति में सहायक हैं, महा कष्टप्रद हैं। एकमात्र चारित्र गुण ही ऐसा है जो संसार के समस्त दुःखों से मुक्ति दिलाता है, आत्मा को परमात्मा बनाता है, सामान्य प्राणी को भी महान् बना देता है।

5. All worldly tasks, propelled by delusion *(moha),* are causes of advancement of transmigration, assist in getting evil states-of-existence and greatly painful. Conduct *(cāritra)* is the only attribute that provides relief from worldly suffering, makes the soul a supreme-soul and the ordinary man a great man.

---

6. आत्म-साधना में इन्द्रिय-कषाय का दमन आवश्यक अङ्ग है; इसके दमन के बिना किसी भी साधक की गति वर्धमान नहीं हो सकती, इसीलिए आत्म-हितैषी साधक के लिए प्रधान अङ्ग इन्द्रिय-दमन ही है। धर्म व यश का रक्षक दम (संयम) भाव ही है।

6. Restraining the senses and the passions is an essential limb in the practice of soul-advancement. The practitioner of dharma cannot advance much without this limb. Therefore, the practitioner looking forward to the well-being of his soul should primarily concentrate on restraining his senses. Both dharma and renown are protected by restraining the senses.

---

7. क्या आप विश्व-पूज्यता की भावना रखते हैं? यदि विश्व से पूज्यता चाहते हो तो अपने चारित्र को पूर्ण सुरक्षित रखो। यदि आपका संयम निर्दोष-निर्मल है, तो विश्व की कोई भी शक्ति आपकी पूज्यता पर प्रश्न-चिह्न नहीं लगा सकती है, आपकी पूज्यता नष्ट नहीं कर सकती है।

7. Do you wish to be revered by the world? If you wish to be revered by the world keep your conduct absolutely safe. If your self-restraint is flawless and pristine, no power in the world can put a question-mark on your reverence, or destroy it.

---

8. विषय-विष का प्रत्याख्यान करो, इन्होंने बड़े-बड़े दिग्गजों के भी ब्रह्मधर्म का हरण कर लिया और नर्क गर्त्त में डाल दिया। सागरों पर्यन्त तक नर्क-वेदनाओं, यातनाओं की पीड़ा से आत्मरक्षा की भावना है तो विषय-कषाय से दूर हो जाओ।

8. Renounce the poison of sense-indulgence; this poison has destroyed the chastity of even great men and put them into the pit of hell. If you wish to save your soul from the suffering and torture of the life in hell, discard sensual-pleasures and passions.

---

9. जहाँ इन्द्रिय कषायों का दमन है वहीं जीवन में चमन है। त्रिकाल त्रिलोक पूज्यता वहीं प्राप्त होती है जहाँ मन-इन्द्रियों का दम है।

9. Where there is subjugation of the senses and the passions, there is the springtime in life. Reverence in the three times and the three worlds is gained only where the mind and the senses are controlled.

---

10. हिमालय की चोटी पर चढ़ने वाले, सिंह की मूँछ, नाग की मणि हरने वाले बहुत मिल सकते हैं; परन्तु इन्द्रियों विषयों का दमन करने वाले सत्यार्थ वीर बहुत कम हैं।

10. Many are those who can scale the Himalayas, pluck hair from the moustache of the lion and obtain pearl from the head of the cobra, but the real brave ones who subjugate the senses and the passions are but few.

---

11. सागर की बूँदों व आकाश के तारों की गणना करना फिर भी सरल हो सकता है, परन्तु इन्द्रिय विषय लोलुपी के कुटिल भावों को समझना बहुत कठिन है। विषयी बाँस की जड़ जैसे वक्र-भावों से भरा होता है, उसका बाह्य-जीवन भिन्न दिखता है और आंतरिक जीवन भिन्न होता है।

11. It is easy to count the drops of water in the ocean and the stars in the sky but very difficult to understand the crooked thoughts of the lustful man. The lustful man is filled with crooked thoughts, like the root of the bamboo-tree; his outside life is different from his inner life.

---

12. जहाँ आशाओं का दमन है वहीं साधना का जन्म है। यदि आप आत्म-साधना के पवित्र मार्ग को प्रशस्त करना चाहते हैं, तो सर्वप्रथम अपनी इच्छाओं का दमन करो। द्वन्द्व निरोध किए बिना आत्म-साधना में कोई भी पुरुष उत्तीर्ण नहीं हो सकता है।

12. Where there is the control of the desires there is the birth of the spiritual purification. If you wish to proceed on the auspicious path to soul-purification, control first your desires. Without the control of the lustful desires, no man can pass the test of soul-purification.

---

13. नेत्रों का दमन आत्म-रमण का परम सहकारी कारण है और नेत्रों का भ्रमण ही चित्त भ्रमण का साधन है, इसीलिए साधक पुरुष के लिए अपने नेत्र नासाग्र रखना चाहिए और तिरिया अथवा अन्य भोग-जन्य सामग्रियों के अवलोकन का त्याग कर देना चाहिए। चित्त विशुद्धि चाहिए, तो विशुद्ध चित्र देखो।

13. The control of the eyes is the supreme facilitative cause for merriment in own-soul, and wandering of the eyes is the cause of wandering of the mind. The ascetic should keep his eyes directed toward the nostrils and renounce looking at the figures of women and other objects of sensual indulgence. To attain purity of the heart, look only at pure images.

---

14. भोग का भोग ही मात्र कष्टप्रद कर्मबन्ध का कारण नहीं है, अपितु भोग-भावना भी जीव को विभिन्न प्रकार के दु:खों को देने वाले कर्मबन्ध का कारण है। आपको स्वयं ही निर्णय लेना होगा कि मुझे संसार भ्रमण तथा उसके दु:खों से आत्मरक्षा करनी है, तो भोग और भोग-भावना दोनों से ही पूर्ण रूपेण आत्म-रक्षा करनी है।

14. Physical indulgence in sensual-pleasures is not the only cause of bondage of the karmas; engendering thoughts of such indulgence too is the cause of bondage that results in many kinds of misery. You have to decide; to save your soul wholly from wandering in the world and consequent miseries, renounce physical indulgence as well as thoughts of sensual-enjoyment.

---

15. एक-एक इन्द्रिय विषयों की लिप्सा से बड़े-बड़े प्राणी लोक में बड़े-बड़े कष्टों को प्राप्त हुए हैं, तो फिर मानव तू विचार कर- पाँचों ही इन्द्रिय सुखों की तीव्र लिप्सा तेरे अन्दर है फिर तेरा क्या होगा? दु:ख से बचना है तो इन्द्रिय सुखों का दमन करो। आकर्ष से आकर्षित मत होना, क्योंकि पाँचों ही इन्द्रियों के सुख (भोग) बहुत बड़े आकर्षण का केन्द्र हैं।

15. The craving for the pleasure of one sense has caused immense miseries for great men in this world; just think about your condition as you have within you the craving for the pleasures of all the five senses. If you wish to escape from miseries control your desire for sensual-pleasures. Do not get attracted by the attractive; the pleasures of all the five senses are huge centres of attraction.

---

16. इन्द्रिय विषयों के वश होकर वर्तमान में जो अनर्थ कार्य अज्ञ-प्राणी कर रहा है; वह समय पर भविष्य में जब कर्म का परिपाक काल आएगा तब बोध होगा कि हमने क्या-क्या अशुभ कर्म लिप्सा में किए थे? जब तुम स्वयं बकरी, मछली, सुअर, मुर्गी आदि बनकर कसाई की छुरी से काटे जाओगे तब आपको कष्ट का वेदन होगा।

16. The abject acts that the ignorant man performs now under subjugation of the senses will remind him in future, as the time of ripening of the karmas arrives, of their inauspicious consequences. You, when cut by the knife of the slaughterer in states-of-existence like goat, fish, pig or hen, will experience the pain due to your past karmas.

---

17. जो इन्द्रिय व मन का दमन करता है वह चर्चा से नहीं स्व-चर्या से श्रीजिन शासन की प्रभावना करता है। वही सच्चा प्रभावक है, जो कि स्व-साधना में लवलीन रहे।

17. The man who restrains his senses and the mind propagates, not by words but by his conduct, the regime of Lord Jina. He who is ever engaged in soul-purification is the real propagator.

---

18. वे ही लोग लोक में यश उदयश्री और सर्वलोक मान्य सम्मत हुए हैं जिन्होंने इन्द्रिय कषायों का दमन किया है। वे ही मनुष्य धन्य हैं जिन्होंने विषय कषायों की कर्दम से आत्म-वस्त्र को पूर्ण सुरक्षित रखा तथा श्री-स्त्री से स्व को अप्रभावित किया है।

18. In this world, only those men could attain the rise of their renown and universal acceptability who restrained the senses and passions. Only those men are worthy who have protected assiduously their soul-cloth from the mire of sense-indulgence and passions, and remained impervious to wealth and woman.

---

19. जगत् की विभूति की जो महिमा नहीं है वह स्व-चारित्र एवं यश की महिमा है। प्राणों के वियोग जैसा संकट भी क्यों न आ जाए, परन्तु फिर भी अपने चारित्र और यश की रक्षा करना, उसका अन्त नहीं करना।

19. Worldly-prosperity has lesser significance than own-conduct and honour. Protect your conduct and honour even at the cost of your life; do not ever lose these.

---

20. जो जीवन की अन्तिम श्वास तक अपने संयम को पूर्ण सुरक्षित रखता है तथा दम (संयम) के साथ जो मरण को प्राप्त करता है, वह द्रव्य-प्राणों से रहित होने पर, उसका शरीर न भी रहे फिर भी वह अपने चारित्र प्रतिष्ठा से सर्वकाल जगति पर जयवंत रहता है।

20. By virtue of conduct, the glory of the man who maintains self-restraint till his last breath and attains death with self-restraint remains intact for eternity after he parts with his physical body and life-principles *(dravya prāṇa)*.

---

21. जप-तप आदि सभी व्रत वहीं शोभा पाते हैं जहाँ इन्द्रिय-कषाय-मन का दमन है। इन्द्रिय दमन जहाँ नहीं है वहाँ कोई भी व्रत, तप, संयम नहीं है।

21. Vows of religious-incantations and austerities shine where there is restraint of the senses, passions and mind. Where there is no control of the senses there are no vows, austerities and self-restraint.

---

22. दमीजन ही यमीजन होते हैं। जिनके जीवन में प्राणी एवं इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्ति का दमन है, उन नर श्रेष्ठों का जीवन ही चमन है।

22. Men with self-restraint are the men of morality. The life of those great men who control their senses from inauspicious indulgence is like a beautiful garden.

---

23. आत्म-सुख शान्ति की भावना है तो विषय-कषायों का दमन करो, क्योंकि ये विषय सेवन ही भव-भव में भ्रमण करा रहे हैं।

23. If you wish soul-happiness, control your senses and passions; indulgence in sensual-pleasures is the cause of your perpetual wandering in the world.

---

24. दमवान संयमी पुरुष स्वर्ग, मोक्ष को प्राप्त करता है और असंयमी नर्क-तिर्यञ्च गति को प्राप्त होते हैं। दोनों अवस्थाओं को जानकर स्वप्रज्ञा से निर्णय करें कि मुझे क्या करना चाहिए?

24. Men with self-restraint get to life in heaven or attain liberation; those without self-restraint get to states of existence in hell or as plants and animals. Know both these consequences and decide, with own-intellect, what you should do.

---

25. संयम महानिधि है; वह जिसके पास है वह इहलोक व परलोक में सुख, श्री सम्पन्न होता है, इसलिए प्रज्ञजनों को प्राणों की चिन्ता न करते हुए स्व-संयम की रक्षा करना चाहिए।

25. Self-restraint is a great treasure; the owner of this treasure remains happy in this world and the next. Men with sound intellect should, therefore, protect self-restraint even at the cost of their life.

---

26. संयमभाव लोक का सर्वश्रेष्ठ भाव है। जब-जब इन्द्रिय दमन के परिणाम स्व के अन्दर जाग्रत हों तो स्व की प्रशंसा स्वयं ही कर लेना चाहिए।

26. The disposition of self-restraint is the finest disposition. Whenever the disposition of self-restraint arises in own-self, praise yourself.

---

27. दम को प्राप्त करने का लक्ष्य है, तो वस्तु-स्वभाव का चिंतन अनिवार्य है। वस्तु-स्वभाव के चिंतन बिना सफल दमीजीवन असंभव है, क्योंकि मोह-उत्पत्ति के साधन रागी के लिए अनेक हैं।

27. It is essential to reflect on the reality of substances for accomplishing self-restraint. Without reflecting on the reality of substances it is impossible to lead a life of self-restraint as there are many ways by which delusion arises in the man with attachment.

---

28. वस्तु स्व-स्वभाव के अधीन है, पर के लिए वह न मनोज्ञ है न अमनोज्ञ। मनोज्ञता, अमनोज्ञता व्यक्ति के राग द्वेष के अधीन है, जिसे जिसमें राग होता है उसे वह मनोज्ञ और जिसे जिसमें द्वेष होता है उसे वह वस्तु अमनोज्ञ प्रतीत होती है, पर वस्तु तो जो है सो है।

28. The substance is governed by its own-nature, for others it is neither agreeable *(manojña)* nor disagreeable *(amanojña)*. It being agreeable or disagreeable depends on attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)*; attachment makes the substance agreeable and aversion makes it disagreeable; the substance remains what it is.

---

29. स्व-पर विवेक का अवलोकन तत्त्व निर्णय के लिए आवश्यक है। तत्त्व निर्णय से विरक्ति भाव का जन्म होता है, फिर उसे इन्द्रिय-दमन सहज होता है।

29. It is essential to have the power of discrimination between the self and the other for right determination of the reality. Right determination of the reality gives rise to the disposition of detachment and makes the control of the senses natural.

---

30. धन्य हैं वे नर जिन्होंने बाल वय में ही जीवन के सार संयम को समझ लिया और विषयों से विरक्त होकर रत्नत्रय धर्म को स्वीकार कर लिया। ऐसे भावलिङ्गी सच्चे-वीतरागी दमियों के श्रीचरणों में कोटिशः करो प्रणाम, क्योंकि उनकी वन्दना से चारित्र-मोहनीय कर्म का क्षय होता है।

30. Hail those men who in their childhood understood self-restraint, the essence of life, and after detaching themselves from sensual-pleasures adopted the dharma of 'Three Jewels' *(ratnatraya)*. Bow down, millions and millions times over, at the Lotus Feet of such real ascetics, the epitome of internal detachment and restraint; their adoration leads to the destruction of the conduct-deluding *(cāritra mohanīya)* karmas.

---

31. साधक को आत्म-सुख एवं संतोष वहीं प्राप्त होता है जहाँ इन्द्रिय-सुख व विषय-कषाय का दमन है।

31. Only through subjugation of sensual-pleasures and passions the ascetic attains soul-happiness and contentment.

---

32. दमभाव को प्राप्त जीव कुमार्ग पर आँख उठाकर भी नहीं देखता, क्योंकि सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का मूल कारण असंयम भाव है। जो संयम मार्ग पर आरूढ़ हो ही चुका है फिर पाप-मार्ग पर गमन कहाँ?

32. The man with self-restraint does not even look at the evil-path since the main reason of influx of all inauspicious karmas is the disposition of non-restraint. Why would the man treading the path to self-restraint step on the path leading to evil?

---

33. बिना संबन्ध के भी विश्व में विश्वास का पात्र यदि कोई है तो वह संयमी है। जीव-संयम की महिमा विशाल है, सर्व-जगत् संयमी जीव की भक्ति-पूजा विश्वास के साथ करता है।

33. Other than own-relative, if anyone deserves trust he is the one with self-restraint. The glory of the man with self-restraint is great; the whole world adores and worships him with trust.

---

34. आक्रोशपूर्ण दूसरों के द्वारा कथित शब्दों को भी शान्त भाव से सुनो, उन्हें सुनकर प्रति-उत्तर की भावना का भी दमन करो। यह आपकी समता की पहचान है।

34. Listen with calmness even the enraged words of the others; restrain from the thought of answering back. This is the mark of your equanimity.

---

35. स्व की प्रशंसा, अन्य की निन्दा सुनकर हर्ष-विषाद का दमन करो, क्योंकि दोनों सत्य नहीं, सत्य तो स्वरूप की चर्चा है।

35. Refrain from getting elated or dejected on listening to your praise or criticism by the others; both are not true as the only truth is the discussion on own-nature.

---

36. आत्म प्रशंसा सुनने की भी आकांक्षा मत करो, क्योंकि यह भी नीच गोत्र के आस्रव का कारण है।

36. Do not aspire to hear own-praise; this too leads to the influx of the karmas leading to low-status.

---

37. पर के अवगुण भी किसी से मत कहो, क्योंकि इससे आपकी अवनति निश्चित है। संयम को धारण करो, गंभीर बनो।

37. Do not proclaim bad qualities of others; if you do this, your decline is certain. Observe self-restraint, be serious.

* * *

14

सत्यार्थ-बोध

त्याग

Renunciation

1. अंतरंग में उठती विषय-कषायों की लहरों का त्याग करो, क्योंकि ये उभय-लोक में कष्ट देने वाली हैं। भूचाल से भवन भूमिगत हो जाता है; वैसे ही विषय-कषाय के द्वारा शिखर पर पहुँचा व्यक्ति भूमिगत हो जाता है।

1. Renounce the waves of sense-pleasures and passions arising in your soul; these cause you pain here and hereafter. Just as the earthquake razes a building to the ground, the waves of sense-pleasures and passions pull down the man at the summit.

---

2. उस प्रवृत्ति का शीघ्र त्याग कर देना चाहिए जो आपको मानसिक, शारीरिक पीड़ा से पीड़ित करे तथा लोक में यश का घात करे।

2. Renounce quickly the inclination that engenders you mental and physical pain and destroys your esteem in the world.

---

3. जिसका आप त्याग कर चुके हो अब उसके स्मरण का भी त्याग कर दो, क्योंकि पापों की स्मृति भी पाप बंध का कारण है।

3. Now renounce even recollection of things you have earlier renounced; even recollection of past evil activities causes the bondage of karmas.

---

4. धन-धान्यादि बाह्य और क्रोध-मानादि कषाय आभ्यन्तर परिग्रह को छोड़ना त्याग है अथवा दिगम्बर मुनि आदि मोक्षमार्गी पात्रों को दान देना भी त्याग है।

4. To get rid of external possessions like cattle and corn, and internal possessions like passions of anger and pride, is renunciation. Or, to give suitable gift to ascetics treading the path to liberation too is renunciation.

---

5. जिसके दम संयम भाव होगा, उसके ही त्याग भावना का जन्म होगा। व्यक्ति परिग्रह का संचय भोग के लिए करता है, पर जहाँ संयम धारण कर लिया है फिर वहाँ भोग और भोग भावना कहाँ? वहाँ तो सम्पूर्ण पर द्रव्यों का त्याग ही श्रेष्ठ-धर्म स्वीकार किया जाता है।

5. The disposition of renunciation arises only in the man with the disposition of self-restraint. Man accumulates possessions for enjoyment but he, who has adopted self-restraint, does not go after such enjoyment. He accepts that renunciation of all external objects is the real dharma.

---

6. निर्वेग-भाव त्याग को जन्म देता है। योगी एकमात्र आत्म-संवित्ति का आनन्द लेता है, उसे आत्म-द्रव्य से भिन्न अन्य किसी द्रव्य की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

6. The disposition of calmness gives rise to renunciation. The supreme ascetic experiences own soul-happiness; for this he does not require any substance other than own soul-substance.

---

7. साधना के मार्ग में श्री (धन), स्त्री (नारी) की कोई आवश्यकता नहीं होती, वहाँ एकमात्र परम अद्वैत भाव का समरस पान किया जाता है।

7. There is no requirement of wealth and woman in the path of asceticism; on this path just the supreme, non-dual ambrosia of equanimity is relished.

---

8. मठ-मन्दिर, तीर्थक्षेत्र का राग भी आत्म-साधक के लिए अप्रयोजनभूत है। ज्ञानी-योगी एकमात्र निज ज्ञायक को स्वीकारता है शेष का बुद्धि-पूर्वक त्याग कर देता है। संसार के सम्पूर्ण जीवों में परम सुखी यदि कोई जीव है तो वह आकिञ्चन्य स्वभाव में लीन साधु पुरुष मात्र है। अन्य सब तो इन्द्रिय भोगों में लिप्त दुःखीजन हैं।

8. Attachment for the hermitage, the temple and the place of pilgrimage too is non-

consequential for the one engaged in soul-realization. The knowledgeable ascetic accepts only the knowing-soul; he renounces deliberately everything else. The only supremely happy person among all living-beings of the world is the ascetic engrossed in the soul-nature of non-possession. All others are unhappy persons engaged in sense-gratification.

---

9. त्याग परम धर्म है। त्याग के बिना समाधि की लीनता नहीं हो सकती। तिल-तुष मात्र भी पर-पदार्थ में ममत्व रहेगा तब-तक समाधि की संवित्ति नहीं हो सकती, समाधि के लिए पर-पदार्थों से पूर्ण दूर होना अनिवार्य है।

9. Renunciation is the supreme dharma. Without renunciation, concentration in meditation cannot be attained. Even minute infatuation for external objects inhibits the realization of real meditation; to attain real meditation it is essential to withdraw from all external objects.

---

10. वे लोग महादु:खी हैं जो पर-वस्तु का संग्रह करना तो जानते हैं, परन्तु दान देना नहीं जानते। दान देने का जो आनन्द है उसे कृपण नहीं जानता, उसे तो पवित्र हृदयी दाता ही जानता है। जो पर को दान देता है; उसे कभी याचना नहीं करना पड़ती।

10. Those who know how to accumulate external objects but not how to give gift are extremely miserable. The stingy man does not know the happiness of giving gift; only the generous giver knows it. The one who gives gift to others does not have to ever resort to solicitation.

---

11. स्वच्छता संग्रह भाव में नहीं आती। जैसे जल भरे बादल काले होते हैं और वर्षा होते ही स्वच्छ हो जाते हैं, इसी प्रकार पर-पदार्थों के संग्रह का त्याग करने से भावों में स्वच्छता आ जाती है।

11. Cleanliness is not in the disposition of accumulation. As the nimbus clouds are black but clear up after raining, similarly, renouncing the accumulation of external objects clears up the dispositions.

---

12. अपने जीवन में उन कारणों का शीघ्र त्याग कर दो जो आपके धर्म, धन और देह के घातक हैं। जो व्यक्ति इनके कारणों के त्याग में प्रमाद करेगा उसका सर्वस्व नाश शीघ्र होगा, जैसे कोई रोगी प्रमाद करता है तो शीघ्र ही वह मृत्यु के द्वार पहुँचता है।

12. Renounce quickly all causes of the destruction of your dharma, wealth and body.

The man negligent in renouncing such causes will experience all-round destruction, like the man negligent of his sickness soon reaches the gates of death.

---

13. भाव ही संसार वर्धक है और भाव ही संसार नाशक है। अहो प्रज्ञ! स्व-भावों का कर परीक्षण प्रतिक्षण, वे किस ओर जा रहे हैं, शुभ या अशुभ? अशुभ भाव संसार में तीव्र दु:ख के कारण हैं, आत्मसुख चाहिए तो अशुभ-भावों का पुरुषार्थपूर्वक त्याग करो।

13. Dispositions are the causes of extension as well as destruction of world-wandering. O knowledgeable man! Every instant keep track of your dispositions; see if these are auspicious or inauspicious. Inauspicious dispositions cause grave misery; if you wish soul-happiness make effort to renounce inauspicious dispositions.

---

14. जो वस्तु आपके परिणामों को विकृत कर रही हो, पुन:-पुन: वहाँ दृष्टि जाए, परिणाम तीव्र चलायमान हो रहे हों उस समय सावधानी-पूर्वक उस वस्तु का शीघ्र त्याग कर दो, अन्यथा धन-धरती-यश का क्षय हो जाएगा तथा लोक में हास्य का पात्र हो जाएगा।

14. Renounce quickly and deliberately objects that distort your dispositions; such objects attract your attention over and over again, and make you highly restive. Else you will lose wealth, land and renown, and become a subject of ridicule.

---

15. त्याग से जीव महान् बनता है। बिना त्याग के लोक व्यवहार भी शुष्क हो जाता है, परमार्थ तो प्रारंभ ही नहीं होता है, इसलिए दृढ़ता से त्याग-धर्म का पालन करो।

15. Renunciation makes a man great. Without renunciation even worldly affairs become dry; spiritual journey does not begin. Follow rigidly the dharma of renunciation.

---

16. सम्पूर्ण द्रव्य निज चैतन्य द्रव्य से पूर्ण भिन्न हैं, निज आत्म-द्रव्य ही एकमात्र स्वद्रव्य है। वर्तमान पर्याय में जो शरीर तथा शरीर के संबन्धीजन हैं वे भी सब परद्रव्य ही हैं। पर के राग का त्याग करो, एकत्व-विभक्त भाव का आलम्बन लो, भिन्न द्रव्य भिन्न ही रहेंगे। जब एकीभूत हो ही नहीं सकते, तो फिर राग क्यों? व्यर्थ के बंध भावों का त्याग करो।

16. All substances are entirely different from the own, conscious soul-substance. Only your soul is own-substance *(svadravya)*. Your body and the kinsperson of the present state-of-existence are other-substances *(paradravya)*. Renounce attachment

for the 'other'; have recourse to the disposition of discrimination and realize that different substances remain eternally different. When such is the case, why this attachment for the 'other'? Renounce futile dispositions that cause the bondage of karmas.

---

17. जीवन उन लोगों का ही यशवान होता है जो अपनी इच्छाओं को सीमित कर अपनी सम्पत्ति पर-हित में व्यय करते हैं। दीन-हीन जनों के हित में अपना सर्वस्व जो समर्पित कर देता है; उसे यश:कीर्ति स्वयं कण्ठाहार डालने खड़ी हो जाती है।

17. Only those men who control their desires and spend their wealth for others are laudable. Glory-and-renown, on its own, garlands the man who renounces his entire possession for the welfare of the downtrodden.

---

18. इच्छाओं का त्याग ही सबसे बड़ा श्रेष्ठ त्याग है। परभावों में ले जाने वाली इच्छायें ही होती हैं। त्याग करने वाले से बड़ा कोई अन्य सम्माननीय नहीं होता है।

18. The greatest renunciation is to renounce desires. Desires direct thoughts to the externalities. No one is more venerable than the man with renunciation.

---

19. दाता देय में ममत्व का त्याग कर देता है तब देय वस्तु स्वयं को हेय लगने लगती है। स्व में हेय जिसे स्वीकारा गया है उसे पुन: ग्रहण करने के भाव का भी अभाव करना और पुन:-पुन: स्मृति का भी विषय नहीं बनाना ऐसा दाता ही श्रेष्ठ दाताओं में गिना जाता है।

19. The giver of gift renounces attachment for the gifted object; he sees the object as worth dissociating from. Once he dissociates himself from it, he does not think of regaining it and stops even recollecting it. Such a man is an excellent giver of gift.

---

20. जैसे सिर से भार उतर जाने पर पुरुष शान्ति का अनुभव करता है वैसे ही श्रेष्ठ दानी पुरुष पर-वस्तु धन-धान्यादि द्रव्यों के त्याग करने पर स्वयं हल्कापन तथा शान्ति का वेदन करता है।

20. As the man feels relieved after taking off the load from his head, the excellent giver of gift gets buoyant and peaceful after renouncing his possessions like cattle and corn.

---

21. आत्मा को पीड़ित करने वाला महाशत्रु संकल्प-विकल्प भाव है। जिन निमित्तों से ये भाव उत्पन्न होते हैं उन निमित्तों सहित संकल्प-विकल्प भाव का त्याग करो, इसी में आत्मशान्ति है।

21. The great enemy that brings pain to the soul is the disposition of volitions and inquisitiveness *(saṃkalpa-vikalpa)*. To get soul-happiness, renounce the disposition of volitions and inquisitiveness and all its instrumental causes.

---

22. उन भावों का शीघ्र त्याग करो; जो भाव बौद्धिक वैभव के विनाश के कारण बन रहे हैं। तनाव बुद्धि का घातक है, बुद्धि का विनाश सम्पूर्ण जीवन की उन्नति का विनाश समझना।

22. Renounce immediately dispositions that cause destruction of the intellectual well-being. Anxiety destroys the intellect and destruction of the intellect scuttles advancement in life.

---

23. यदि आप सही हो तो किसी अन्य की बात पर विकल्प क्यों? यदि आप गलत हैं तो किसी की बात पर तनाव क्यों? यदि गलती है तो स्व का सुधार करो तथा विकल्प का त्याग करें, यदि स्वच्छ बुद्धि चाहिए है तो।

23. If you are right why bother about what others say? If you are wrong why be tense about what others say? If you are wrong, renounce unease and correct yourself so that your intellect remains clear.

---

24. पर ज्ञेयों की निष्ठता का निज भेदज्ञान से पृथकत्व का भाव नहीं आएगा तब-तक महामोह शत्रु से आत्मदेव की रक्षा सम्भव नहीं है, इसलिए आगम ज्ञान से तत्त्वार्थ का अभ्यास कर पर ज्ञेयों की निष्ठता का त्याग करो, एकमात्र ज्ञान में निष्ठता प्राप्त करो।

24. So long as the realization that external objects-of-knowledge are distinct from the self does not come, it is not possible to protect own-soul from the invincible enemy of delusion *(moha)*. Therefore, through the knowledge attained by the study of the Scripture renounce attachment for all external objects-of-knowledge; get engrossed only in soul-knowledge.

---

25. प्रज्ञा की निर्मलता तभी प्रकट होगी जब तत्त्वज्ञ प्राणी आत्म-ज्ञान से भिन्न जो-जो पर-पदार्थ हैं उनके प्रति वर्तमान-भूत-भविष्य की राग बुद्धि का परिपूर्ण त्याग कर दे।

25. Clarity of the intellect will appear only when the knower of the reality completely renounces, in the present, past and future, attachment for all external objects that are distinct from the soul-knowledge.

---

26. आत्मानुष्ठान में निष्ठ साधक एकमात्र परमब्रह्म का आलम्बन लेता है और वह जगति के सम्पूर्ण पर-पदार्थों के राग का त्याग कर निजात्मा को कर्म-कलंक से सुरक्षित कर लेता है। मोह बुद्धि विलीन कर लेता है वही साधक भगवत्ता को प्राप्त करता है।

26. The ascetic engrossed in the self takes refuge only in the supreme-soul; renouncing attachment for all external objects of the world he protects own-soul from the mire of karmas. Only the ascetic whose intellect is free from delusion *(moha)* attains godhood.

---

27. निजात्मा से भिन्न पर-पदार्थों को छोड़ देना सामान्य विषय है, उसे शीघ्र छोड़ा जा सकता है, परन्तु उन पर-पदार्थों को जो स्व का द्रव्य मान रहा था ऐसा जो भीतर का राग है उसका जो त्याग करता, वही श्रेष्ठ नर है।

27. To physically renounce external objects other than own soul is a subject common, it can soon be done; the man who renounces the attachment for external objects that he hitherto considered his own is the excellent man.

---

28. उसका भी त्याग करो जो त्याग करने का भाव आपको बार-बार कष्ट दे रहा है, पर-पदार्थ जब त्याग करने का भाव आए तो तत्काल त्याग कर दो, नहीं कर पा रहे तो विकल्पों की संक्लेशता का त्याग कर दो। एक निर्णय में आ जाओ तो व्यर्थ के संकल्प-विकल्प में जो आत्मा पीड़ित हो रही है वह पीड़ा समाप्त हो जाएगी।

28. Renounce the thought of renunciation that is troubling you again and again; renounce the external object as soon as the thought of its renunciation arises. If it is difficult, renounce at least the anxiety in thought. Take a decision and get rid of the uncalled-for anxiety of mind-vacillation that is causing pain to your soul.

---

29. जो व्यक्ति संकल्प लेकर कार्य पूर्ण नहीं कर पाते वे बिचारे मानसिक पीड़ा से बहुत दु:खी होते हैं। उनकी वेदना उन्हीं के गम्य है, यदि वह विकल्पों के बाहर नहीं आ पाते तो आत्मघात कर लेते हैं।

29. The poor men who start a work with determination but are not able to complete it suffer great mental agony. Only they know their mental agony; if they do not come out of this, they may resort to committing suicide.

---

30. भिन्न का त्याग करते-करते बहुत काल व्यतीत हो गया। भिन्न का त्याग जीव मिथ्यात्व दशा में भी कर लेता है। बाह्य वस्त्र, पात्र, धान्य-धन, स्त्री-पुत्रादि चेतन-अचेतन धर्म-युक्त पर-पदार्थ भिन्न द्रव्य हैं, इनका त्याग सभी प्राणी सरलता से कर लेते हैं, परन्तु अब अभिन्न का त्याग करो। जो काम, क्रोध, मान, माया, लोभ,

ईर्ष्या, डाह, संकल्प-विकल्प तेरे अंदर हैं उनका बुद्धि-पूर्वक त्याग करो और सहजता, सरलता, भद्रता को प्राप्त करो, यदि स्वहित भाव जाग्रत है तो।

30. Much time has lapsed renouncing objects entirely different from the soul. Even a wrong-believer resorts to the renunciation of the different. Clothes, utensils, land and corn, wife and son, etc., are animate and inanimate external objects that are different from the soul; many people are able to renounce these, but now you renounce that which is not-different. Renounce, by choice, lust, anger, pride, deceitfulness, greed, envy, spite, and mind-vacillation that are inside you. If you wish own well-being, adopt naturalness, simplicity and virtuousness.

---

31. परम समरसी भाव की साधना में रत साधक ग्रहण-त्याग भाव से भी शून्य स्वभाव को प्राप्त होता है। चैतन्य भगवानात्मा ने परभावों को निज स्वभाव रूप कभी स्वीकारा ही नहीं, जब ग्रहण ही नहीं किया तो त्याग भी किसका करें, इसलिए आत्मा शुद्ध दृष्टि से ग्रहण-त्याग से रहित है, ऐसा सत्यार्थ वस्तु-स्वभाव का निर्णय करो।

31. The ascetic engrossed in supreme soul-nature becomes rid of the dispositions of acceptance and rejection. The conscious god-soul has never accepted foreign dispositions as its own-nature; when it has not accepted these, what is there to be rejected? Therefore, from the pure point-of-view, the soul is void of acceptance and rejection; such determination is the true nature of the reality of substances.

---

32. धन-धान्य-धरा का त्याग करने के उपरान्त भी जीव को बहुत कुछ और त्याग करना अवशेष होता है, वह है त्याग के राग का भी त्याग।

32. Much remains to be renounced after renunciation of cattle and corn, land, etc., and that is renunciation of the attachment for renunciation.

---

33. त्याग के बिना जीवन नहीं, त्याग के बल से प्रकृति का सन्तुलन है। वस्तु का धर्म त्याग है। वृक्ष फल का त्याग करता है, योगी ज्ञान का त्याग करता है। प्रत्येक द्रव्य अपनी पूर्व-पूर्व पर्यायों का त्याग करते हैं, तभी तो नवीन पर्यायों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वस्तु-व्यवस्था व्यवस्थित है।

33. There is no life in the absence of renunciation; renunciation provides balance to the nature. Renunciation is the dharma of the substance. The tree renounces the fruit and the *yogī* renounces the knowledge. Every substance keeps on renouncing its prior modes *(paryāya)* and that causes the origination of the new modes. That is how the nature of the reality is established.

---

34. त्याग के बल पर विश्व में यश टिका है। जो जितना त्यागी होता है वह उतना ही यशवान होता है। स्व-पर कल्याण का साधक त्यागी पुरुष ही है। ग्रहण का भाव ही व्यक्ति को दीन-हीनता का जनक है।

34. In the world, glory hinges on renunciation. The man who is great in renunciation is commensurately great in glory. Only the man of renunciation practices the well-being of self and others. The disposition of acquisition makes the man pitiable and lowly.

---

35. दान सुपात्र को देना। दान देने के पहले अपात्र, कुपात्र की परीक्षा कर लेना। आपके द्वारा देय द्रव्य से धर्म संस्कृति, संस्कार की रक्षा होनी चाहिए। यदि दाता का द्रव्य प्राप्त कर कोई अशुभ कार्य करता है, तो उसका कुफल दाता को भी भोगना पड़ेगा। द्रव्य भी गया और दुर्गति भी हुई, ऐसा कार्य कभी नहीं करना।

35. Give gift only to a worthy recipient. Before giving gift examine the worthiness of the recipient. The thing gifted by you should result in protection of the dharma, culture and tradition. If the recipient is engaged in inauspicious acts, its evil effect will have to be borne by the giver of gift too. Such a giver of gift loses wealth and spoils his future; never do this.

---

36. त्याग करके हर्षित मन होना चाहिए। पात्र ने आपका उपकार किया है कि आपको लोभ कषाय कृश करने का अवसर दिया है।

36. The mind should get elated after renunciation. The recipient has favoured you by giving you the opportunity to subdue your greed-passion.

---

37. वे नर इस धरा पर धन्य-धन्य-धन्य हैं, जो स्व-सम्पत्ति का उपयोग पर की विपत्ति पर करते हैं।

37. Hail the men on this earth who make use of their wealth in mitigating the hardship of others.

* * *

15

सत्यार्थ-बोध

समाधि

Supreme-Meditation

1. प्रशस्त शुक्ल व धर्म्यध्यान समाधि है। समाधि के बिना विश्व की सम्पूर्ण साधनायें निर्वाण प्राप्ति में अकिंचित्कर हैं। निर्वाण की प्राप्ति जब भी होगी तब वह समाधि अर्थात् श्रेष्ठ ध्यान से ही होगी। ध्यान के बिना आत्मसिद्धि नहीं हो सकती है।

1. Laudable pure *(śukla)* and virtuous *(dharmya)* concentration-of-mind is supreme-meditation *(samādhi)*. Without supreme-meditation all other worldly observances remain unhelpful in the attainment of liberation. The attainment of liberation, whenever it takes place, will be through supreme-meditation only. Without meditation, soul-realization cannot take place.

---

2. आत्मसिद्धि का साधन समाधि है। समाधि के बिना आत्मसिद्धि सम्भव नहीं। सम+धी=समाधि, अर्थात् प्राणी मात्र के प्रति जिसकी साम्य-बुद्धि होगी उसी की समाधि होगी। सम अर्थात् एकीभूत निजयोग को एक कर आत्मानुमुख होना समाधि है, परभावों से विमुख होकर आनन्द का जीवन समाधि है।

2. Supreme-meditation is the means of soul-realization. Soul-realization is not possible without supreme-meditation. The word *'samādhi',* signifies that only the one who has equanimity for all living-beings can attain supreme-meditation. To get directed toward the own-soul with help of singular self-yoga is supreme-meditation; the life becomes blissful, rid of all external thoughts.

---

3. समाधि का अर्थ मात्र मृत्यु नहीं समझना। अज्ञ प्राणी समाधि का अर्थ जल समाधि, अग्नि समाधि इत्यादि प्रकार से समझते हैं, जबकि जल-अग्नि में कूदकर, पर्वत से गिरकर, मरण करना समाधि नहीं कुमरण है, अज्ञानपूर्वक मरण है। धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान पूर्वक जो मरण करता है वह समाधि है अथवा तत्त्व निर्णय के साथ शान्त भाव से जो आयु पूर्ण करता है वह समाधि है।

3. Do not mistake supreme-meditation *(samādhi)* for death. Ignorant men express supreme-meditation *(samādhi)* as embracing death in water or fire; embracing death by jumping into water or fire, or by rolling down a precipice, is ignorant self-immolation, not supreme-meditation. Embracing death while engaged in pure *(śukla)* and virtuous *(dharmya)* concentration is supreme-meditation *(samādhi)*; or, supreme-meditation is to exhaust your life-span through peaceful contemplation of the reality.

---

4. जितेन्द्रिय जीव ही ध्यान-समाधि की साधना करने के अधिकारी हैं, इन्द्रिय विषय लोलुपी समाधि को प्राप्त नहीं होते।

4. Only those who subjugate their senses can observe supreme-meditation; those with craving for sense-indulgence do not attain supreme-meditation.

---

5. आर्त-रौद्रध्यान से रहित, प्राणिमात्र के प्रति समत्व का भाव, जीवन-मरण में, लाभ-अलाभ में, सुख-दुःख में, कंचन-काँच में, मान-अपमान में जो साम्यभाव है उसका नाम समाधि है।

5. Being rid of sorrowful *(ārta)* and cruel *(raudra)* meditation, having the disposition of equanimity for all living-beings, and observing oneness in happiness and misery, gold and glass, respect and disrespect, is supreme-meditation.

---

6. समाधि का आनन्द एकमात्र योगी के अनुभवगम्य है। जहाँ जगति के सम्पूर्ण विषयानन्द समाप्त हो जाते हैं तब योगी की समाधि का अतीन्द्रिय आत्मानन्द प्रारंभ होता है। वह एक ऐसा आनन्द है जो इन्द्र-नरेन्द्र-अहमिन्द्र के पास भी नहीं है।

6. The happiness appertaining to supreme-meditation can be experienced only by the ascetic. When all sensory-pleasures end, the sense-independent soul-happiness of supreme-meditation begins in the ascetic. Even the lords of the devas – Indra, Narendra, and Ahamindra – are bereft of such happiness.

---

7. समाधि इन्द्रिय-भोगों से शून्य तथा कषाय से रहित होती है।

7. Supreme-meditation is rid of sensual-pleasures and passions.

---

8. स्व-से-स्व का मिलन कराने वाली साधना ध्यान है। बिना ध्यान सिद्धि के आत्मसिद्धि सम्भव नहीं है, इसलिए प्रत्येक साधक को अन्य साधनाओं से अधिक ध्यान-साधना की वृद्धि अनिवार्य रूप से करनी चाहिए।

8. Meditation is the observance of connecting the self with the self. Without the accomplishment of meditation, self-realization is not possible; therefore, every ascetic must necessarily and increasingly observe meditation, more than any other observance.

---

9. सम्पूर्ण लौकिक एवं पारमार्थिक सिद्धियाँ ध्यान समाधि से प्राप्त होती हैं। जब साधक के चित्त में पूर्ण आकांक्षाओं से शून्यता प्रविष्ट होती है तब समाधि प्रारम्भ होती है और उस समाधि की अनुभूतियाँ अवाच्य होती हैं।

9. All worldly and spiritual accomplishments are gained through supreme-meditation. When the ascetic is rid of all desires, supreme-meditation begins. The experience of supreme-meditation cannot be expressed in words.

---

10. सम्पूर्ण तत्त्वों के सार में कोई पूर्ण सारभूत सार है; तो वह है ध्यान-समाधि। समाधि साधना के बिना आत्मसिद्धि गाय-सींग से दुग्धपान वत ही है। गाय-सींग से दुग्ध नहीं निकलता उसी प्रकार समाधि साधना के बिना मुक्ति नहीं मिलती।

10. The essence of the whole of reality is supreme-meditation. To imagine soul-realization without supreme-meditation is like trying to get milk out of the horns of the cow. As milk cannot be got out of the horns of the cow, liberation cannot be got without the observance of supreme-meditation.

---

11. काय एवं कषाय का त्यागी ही समाधि-साधना का साधक हो सकता है। जिसके अन्दर देह का राग तथा कषाय की तीव्रता है उसका चित्त स्थिर नहीं हो सकता। अस्थिर चित्त सहित तीन-लोक, तीन-काल में समाधि नहीं हो सकती।

11. Supreme-meditation takes place only in the ascetic who has renounced the body and the passions. The man with attachment for the body and with severe passions cannot stabilize his mind. The one with unstable mind cannot observe supreme-meditation in the three worlds and the three times.

---

12. समाधि की सिद्धि के लिए अनिवार्य अंग सुसंस्कार, सुसंगति, सुसाधना, इन तीनों का संयोग जिस साधक के पास है वही श्रेष्ठ समाधि की सिद्धि को प्राप्त करता है, इसलिए प्रत्येक मुमुक्षु जीव को इन तीन की प्राप्ति का पुरुषार्थ सतत करते रहना चाहिए। अंतरंग विशुद्धि के लिए बहिरंग निमित्त भी पवित्र होना अत्यावश्यक है। जहाँ संगति-संस्कार-साधना तीनों हीन होते हैं वहाँ पर नियम से समाधि का अभाव होता है। अशुभभावों के संयोग में पवित्र-ध्यान की सिद्धि नहीं होती।

12. Only the ascetic who has the requisite trio of right tradition, right company and right practice can establish himself in supreme-meditation. Every ascetic should constantly endeavour to acquire the above three attributes. Further, for internal purity, the external causes too must be pure. Where these three – tradition, company and practice – are not up to the mark, as a rule, supreme-meditation cannot take place. In the company of inauspicious concentration, pious meditation cannot be accomplished.

---

13. ममत्व भाव समाधि का प्रबल-शत्रु है। जहाँ-जहाँ ममत्व खड़ा है वहाँ-वहाँ समाधि का अभाव है। ममत्व का जहाँ अभाव है वहाँ समाधि का प्रादुर्भाव होता है। निर्वाण-दीक्षा धारण किए बिना समाधि नहीं और समाधि के बिना निर्वाण नहीं।

13. The disposition of attachment is the stark enemy of supreme-meditation. Where there is attachment, there is the absence of supreme-meditation. Where there is the absence of attachment, there is supreme-meditation. There is no supreme-meditation without initiation in the path-to-liberation and there is no liberation without supreme-meditation.

---

14. समाधि की सिद्धि में प्रसिद्धि से तो पृथकत्व की आवश्यकता है और समत्व के समीप रहने की अत्यन्त आवश्यकता है। जो साधक समत्वभाव की साधना में कुशल हो जाता है, उसे समाधि साधना सरल हो जाती है।

14. For the accomplishment of supreme-meditation it is absolutely necessary to maintain distance from renown and proximity to equanimity. The ascetic adept in the practice of equanimity accomplishes easily supreme-meditation.

---

15. समाधि की गहराई के लिए स्वाध्याय की गंभीरता अनिवार्य है। साधक की कर्तव्य-निष्ठता व ज्ञान-गूढ़ता ही ध्यान को गूढ़ बनाती है।

15. Seriousness in study of the Scripture is necessary to reach the depth of supreme-meditation. The attributes of dutifulness and profoundness of knowledge in the ascetic provide depth to his meditation.

---

16. धैर्यशीलता समाधि का प्रबल कारण है। अधीर पुरुष का चित्त स्थिर नहीं होता, यही कारण है कि नारी पर्याय में परम समाधि की सिद्धि नहीं होती है। समाधि निर्वाण का साक्षात् कारण है। स्त्रियों के अन्दर भीरुता और अधीरता दो ऐसे दोष हैं जिनके कारण स्त्रियों को चित्त स्थिरता की प्राप्ति नहीं होती और अस्थिर चित्त में समाधि संभव नहीं है।

16. Forbearance is a strong cause of supreme-meditation. The mind of the person who lacks forbearance does not become stable; this is the reason why in the mode-of-existence as a woman, supreme-meditation is not attained. Supreme-meditation is the direct cause of liberation. Fear and impatience are two imperfections in women due to which they are not able to attain the requisite stability of the mind and, therefore, not able to attain supreme-meditation.

---

17. समाधि वह परम उपकारी विद्या है जो मानसिक, शारीरिक, वाचनिक, कर्मज आदि सम्पूर्ण दु:खों से जीव को मुक्त करा देती है और ध्रुव, अचल, अनुपम, सुख में स्थिर करा देती है। फिर वहाँ कभी दु:ख के वेदन का उदय ही नहीं होता, सम्पूर्ण बाधाओं से शून्य कर्मातीत आत्मा को ज्ञानानन्द होता है।

17. Supreme-meditation is the learning that frees the man from all mental, bodily, vocal and karma-generated sufferings and establishes him in eternal, immutable and incomparable happiness. No more the rise of the experience of suffering is possible in the soul; free from all impediments, it experience karma-independent knowledge-happiness.

---

18. विश्व में अनेक साधक समाधि का अभ्यास कर रहे हैं, परन्तु जब-तक अंतरंग-बहिरंग परिग्रह का परिपूर्ण त्याग नहीं करेंगे तब-तक समाधि की सत्यार्थ सिद्धि नहीं हो पाएगी। स्व-पर भेद-विज्ञानी जीव ही समाधि को प्राप्त होता है। स्व-पर भेद-विज्ञान किए बिना जीव समाधिस्थ नहीं हो सकता। तत्त्व-निर्णय पूर्वक स्व-पर भेद-विज्ञान समाधि के लिए अत्यंत अनिवार्य अंग स्वीकारना चाहिए।

18. Many ascetics in the world are practising supreme-meditation but so long as they do not renounce completely the internal and external attachment supreme-meditation cannot be attained in its real sense. Only the one who knows the science of distinction between the self and the other attains supreme-meditation. Without this knowledge one cannot get established in supreme-meditation. Mastering the science of distinction between the self and the other after ascertaining the nature of the reality should be considered an essential limb of supreme-meditation.

---

19. षट्काय के जीव, षड्द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थों के प्रति साम्य-रुचि जहाँ है वहीं समाधि है, ऐसा तत्त्व-ज्ञानियों ने कहा है। साम्य परिणति तभी प्रकट होगी जब जीव के अन्दर वस्तु स्वभाव पर लक्ष्य जाएगा। बिना लक्ष्य के कार्य नहीं होता है।

19. The one who has interest in the six kinds of bodily-beings (*sthāvara* of five kinds and *trasa* of one kind), six substances *(dravya)*, seven realities *(tattva)* and nine objects *(padārtha)* has supreme-meditation; this has been said by the knowers of the reality. In the man who aims at the nature of the substance, the observance of equanimity takes place. No work gets accomplished without the aim.

---

20. साध्य है तो साधन अवश्य होता है। साध्य सिद्धि साधन के अभाव में कभी नहीं होती; यह ध्रुव सिद्धांत है। मोक्ष तत्त्व साध्य है, समाधि (ध्यान) साधन है। श्रेष्ठ साध्य की सिद्धि, श्रेष्ठ साधनों से ही होती है। मोक्ष श्रेष्ठ साध्य है, सम्यक्-ध्यान श्रेष्ठ साधन है।

20. If there is a goal *(sādhya)*, there necessarily is a means *(sādhana)*. The goal is never accomplished in absence of the means; this is an eternal principle. Liberation is the goal and supreme-meditation is the means. For attaining excellent goal, excellent means are to be employed. Liberation is the excellent goal and right meditation is the excellent means.

---

21. परम समाधि में स्थित साधक आत्मस्थ होकर परम-अद्वैत का अनुभवन करता है, वहाँ उसे अन्य आत्मा तो क्या परमात्मा का भी भाव नहीं होता। उसे तो मात्र एकत्व-विभक्त्व निज भगवनात्मा का ही अनुभवन होता है। यही परम समाधि है।

21. The ascetic established in supreme-meditation turns to own-soul and experiences pure non-duality *(advaita)*. In such a state he does not think of even the supreme-soul of the Lord, what to talk of any other soul. He just experiences one singular own god-soul. This truly is supreme-meditation.

---

22. जहाँ ध्याता-ध्यान-ध्येय का विकल्प समाप्त हो जाता है, साध्य-साधक भाव का विकल्प भी नहीं होता, एकमात्र सहज ज्ञायक का ही आलम्बन शेष रहता है। ऐसी परम समाधि में लीन साधक निज-भगवानात्मा का ही आनन्द लेता है।

22. In supreme-meditation the idea of meditator *(dhyātā)*, meditation *(dhyāna)*, and object-of-meditation *(dhyeya)* vanishes and no thought of to-be-achieved *(sādhya)* and achiever *(sādhaka)* remains; just the thought of the natural knowledge-

soul remains. The ascetic engrossed in such supreme-meditation experiences happiness appertaining to own god-soul.

---

23. लौकिक प्रसिद्धि की भावना के भाव से जिनकी आत्मा विघात को प्राप्त हो रही है, उन्हें समाधि की उपलब्धि तीन काल में सम्भव नहीं है। समाधि साधक के लिए सर्वप्रथम कायिक व कषायिक अस्ति तत्त्व का समापन करना होगा तब कहीं समाधि-साधना के भाव की उत्पत्ति होगी। सम्पूर्ण विकल्पों से पूर्ण परे होने पर ही समाधि होगी, अन्य कोई उपाय समाधि-साधना का नहीं है।

23. Those whose soul is getting destroyed by the desire of worldly glory cannot attain supreme-meditation in the three times. The ascetic who wishes to observe supreme-meditation should first annihilate the inclination for the body and the passions. The observance of supreme-meditation takes place only after distancing the self from all thoughts; there is no other way.

---

24. समाधि साधक के लिए अशन-आसन और निद्रा पर नियंत्रण करना बहुत ही आवश्यक है। जो साधक भोजन पर नियंत्रण रखते हैं, सम्पूर्ण आसनों को सहज लगा लेते हैं और निद्रा पिशाचनी के वश नहीं होते, वे ही श्रेष्ठ साधक समाधि-साधना के प्राणों की रक्षा करते हैं।

24. It is essential for the observer of supreme-meditation to control his diet, posture and sleep. Only those excellent ascetics who control their diet, adopt easily various postures and are not subjugated by the imp of sleep, are able to protect the life-breath of the observance of supreme-meditation.

---

25. विषय लम्पट, आशाओं से युक्त, कषायों में निमग्न पुरुष यदि समाधि या मोक्ष-सुख चाहता है, तो वह आकाश-पुष्प की उत्पत्ति करना चाहता है। जैसे आकाश का पुष्प नहीं होता, उसी प्रकार से विषय-कषाय से युक्त जीव को समाधि नहीं होती।

25. If the man who although is subjugated by intense craving for sensual-pleasures, wishful and absorbed in passions, still desires supreme-meditation or happiness appertaining to liberation, he wants to see the growth of the sky-flower. As there is no flower in the sky, similarly, the man with sensual-inclinations and passions cannot observe supreme-meditation.

---

26. काम, क्रोध, मिष्ट-भोजन, पर की प्रशंसा, स्व-पूजा के परिणाम समाधि-साधक के लिए विष-तुल्य हैं। समाधि के इच्छुक को इन कारणों से दूर ही रहना चाहिए।

26. Lust, anger, toothsome food, praise of others and thought of adoration of the self are like poison for the ascetic practising supreme-meditation. The one desirous of supreme-meditation should maintain distance from these causes.

---

27. भवातीत होने की विद्या सम्यक्-समाधि है। जो साधक आहार, निद्रा, आसन, विषय-कषाय पर विजय प्राप्त कर लेते हैं वे ही सम्यक्-समाधि साध पाते हैं। पाँचों में एक का भी जहाँ पर अभाव है; वहाँ पर ध्यान समाधि सम्भव नहीं है, इसलिए साधक का कर्तव्य है कि वह सर्वप्रथम अपने आहार पर नियंत्रण करे। शुद्ध-प्रासुक अल्प-शाकाहार करे, मांस आदि अभक्ष्य सेवन का पूर्णतः त्याग करे। तामसिक, गरिष्ठ, मादक-द्रव्य का सेवन न करे।

आहार शुद्धि चित्त-शुद्धि को प्रभावित करती है। शुद्धाहारी ही समाधि-साधना का अधिकारी है, अभक्ष्य भोजी कभी भी शुद्ध-समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

निद्रा पिशाचनी के वश हुआ जीव जगत् क्लेश को प्राप्त हो रहा है। जैसे प्रेत से पीड़ित व्यक्ति विवेक-बोध शून्य हो जाता है उसी प्रकार निद्रा से पीड़ित व्यक्ति विवेक बोध शून्य हो जाता है। निद्राकाल में अचेतनवत दशा हो जाती है। निद्रा-तन्द्रा काल में समाधि-साधना नहीं होती है, इसलिए मुमुक्षुओं को निद्रा पर क्रमशः नियंत्रण रखना आवश्यक है।

आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा पर विजय प्राप्त करने हेतु आसनजय अनिवार्य अंग है। उपसर्ग-परिषह के आने पर अविचलपने को वही लोग प्राप्त कर पाते हैं जो आसनयजी होते हैं। समाधि साधक के लिए आसन प्रथम साधना का अंग है। आत्म-साधक के लिए आसनों की दृढ़ता अनिवार्य है। आसन की चंचलता से चित्त भी चंचल होने लगता है, स्थिर आसन से चित्त में स्थिरता सहज आती है। समाधि-साधक को शक्ति के अनुसार विभिन्न आसनों में बैठकर, खड़े होकर, पद्मासन, अर्द्ध-पद्मासन, सुखासन, जिनमुद्रा आदि में ध्यान करना चाहिए।

27. Practising right kind of supreme-meditation is the science of overcoming wandering in the world. The ascetics who vanquish diet *(āhāra)*, sleep *(nidrā)*, posture *(āsana)*, senses *(viṣaya)* and passions *(kaṣāya)* are able to practise right kind of supreme-meditation. All the five attributes, mentioned above, are necessary. First control your diet. Take only pure, free-from-organism, little and vegetarian diet; renounce fully the consumption of forbidden items like meat. Do not take diet that is vicious, stimulating and inebriating.

The purity of diet affects the purity of mind. Only the one who consumes pure food has the right to practise supreme-meditation. The one who consumes forbidden items in his food cannot attain supreme-meditation.

The man subjugated by the imp of sleep remains anxious. Just as the man troubled by evil-spirit loses his power of discrimination, the man troubled by sleep too loses his power of discrimination. During sleep the man becomes unconscious, so to speak. Supreme-meditation does not take place during sleep or snooze. The

practitioner of supreme-meditation should progressively control sleep.

To vanquish laziness, negligence and snooze, control over the posture is a must. Only those with control over their posture remain unperturbed at the occurrence of calamities or afflictions. The practitioner of supreme-meditation should first control his posture; he must practice endurance of the posture. Unsteadiness in the posture gives rise to unsteadiness in mind. The practitioner of supreme-meditation should, according to his strength, adopt sitting and standing postures like the *padmāsana,* the *ardha-padmāsana,* the *sukhāsana* and the *jinamudrā*.

---

28. आहार, निद्रा, आसन, विषय-कषाय पर जो विजय प्राप्त कर गए; वे जीव भव-भ्रमण से बच गए। जिन्होंने आहार, निद्रा, आसन, विषय-कषाय पर विजय प्राप्त नहीं की वे आज तक संसार में भ्रमण कर रहे हैं।

28. Those who could vanquish diet *(āhāra)*, sleep *(nidrā)*, posture *(āsana)*, senses *(viṣaya)* and passions *(kaṣāya)* have saved themselves from wandering in the world; others are still wandering in the world.

---

29. आत्मस्थ होने की कला ध्यान है। जो माया-प्रपञ्च से शून्य हो, एकमात्र आत्म-कल्याण की भावना से सहित है वही एकत्व-विभक्त्व भाव से पूर्ण होता है।

29. The art of getting established in own-soul is meditation. The one who is free from deceitfulness and thinks only of soul-enrichment engenders the disposition of soul-oneness, i.e., distinctness of the soul from everything else.

---

30. आत्मज्ञान ही समाधि में पूर्ण सहकारी है और वह शास्त्र-ज्ञान से भिन्न है।

30. Soul-knowledge is the absolute cause of supreme-meditation and that is different from scriptural-knowledge.

---

31. समाधि के पूर्व संयम होना अनिवार्य अंग है, बिना यम-नियम के समाधि सम्भव नहीं है, इसलिए साधक के लिए मन और इन्द्रियों को संयमित करने का सतत अभ्यास करते रहना चाहिए।

31. Self-restraint is a prerequisite for supreme-meditation; supreme-meditation is not possible without accepting rules of conduct either for life or for a specified period of time. To attain supreme-meditation the ascetic should practice continuously control of the mind and the senses.

---

32. जो स्व विवेक बल से कषाय को परास्त कर देता है वह साधक चित्त-विशुद्धि को प्राप्त होता है। चित्त-विशुद्धि की वृद्धि साधक को सत्यार्थ-समाधि में स्थापित कर देती है, इसलिए प्रत्येक मुमुक्षु साधक का कर्तव्य है कि वह अपनी कषायों पर नियंत्रण पुरुषार्थपूर्वक करे।

32. The ascetic who, with own power of discrimination, vanquishes passions attains the purity of the mind. Increased purity of the mind establishes him in true supreme-meditation. Therefore, every ascetic should assiduously make effort to control his passions.

---

33. विश्व मैत्री को स्थापित करने की कला समाधि है। समाधि में लीन योगी के लिए ब्रह्माण्ड में कोई भी प्राणी शत्रु के रूप में दृष्टिगोचर नहीं होता, वहाँ शत्रु-मित्र के विकल्प का ही अभाव हो जाता है। सम्पूर्ण वसुन्धरा सामान्य प्रतिभासित होती है, यह योग विद्या का अपूर्व-अचिन्त्य प्रभाव है।

33. The art of establishing world-brotherhood is supreme-meditation. For the ascetic engrossed in supreme-meditation there is no foe; in fact, he makes no distinction as friend or foe. The whole earth appears natural to him; this is the unparalleled and unimaginable outcome of the science of yoga.

---

34. समाधिशून्य पुरुष को संयोग-वियोग प्रभावित करते हैं, परन्तु जो समाधि में लीन है उसे संयोग-वियोग किञ्चित् मात्र भी प्रभावित नहीं करते।

34. Union and separation affect those who are rid of supreme-meditation. The ascetic engrossed in supreme-meditation is not affected a bit either by union or by separation.

---

35. योगविद्या की लीनता ही समाधि है। निज-में-निज को जोड़कर जीना ही योग है। मन-वचन को एकाग्र कर लेना योग है। योग को स्थिर कर स्वमुखी हो जाना समाधि है। योगपूर्वक समाधि का साधक शीघ्र सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है।

35. To get engrossed in the science-of-yoga is supreme-meditation. Yoga is to merge the self with the self. Concentration of the mind and the speech is yoga. After establishing in yoga, getting introvert is supreme-meditation. The ascetic who observes supreme-meditation accompanied by yoga soon reaches the state of liberation.

---

36. समाधि साधक के लिए समाधि के पूर्व स्वाध्याय को अभिन्न अंग बनाना चाहिए। स्वाध्याय से अंतरंग अशुद्धि का क्षय हो जाता है तथा विशुद्धि का उत्पाद होता है।

36. The one who wants to attain supreme-meditation should make the study of the Scripture an essential requirement for its attainment. The study of the Scripture destroys internal impurities and generates purity.

---

37. श्रुत-संवेग भाव समाधि साधक के लिए, शिशु को माँ के अंक के समान है। माँ की गोद शिशु को आनन्द देती है उसी प्रकार श्रुत साधक-को आनन्द देता है।

37. For the practitioner of supreme-meditation, the disposition of affection for the Scripture is like the embrace of the mother. As the lap of the mother provides happiness to the child, the Scripture provides happiness to the practitioner of supreme-meditation.

* * *

16

सत्यार्थ-बोध

गुरु
The Guru

1. गुण-गुरुता से जो पूर्ण हैं, दुर्गुणों से पूर्ण दूर हैं, पन्थों से शून्य, सत्यार्थ-पथ के नेता हैं, प्राणिमात्र के कल्याण के चिंतक हैं, भव-सागर उत्तीर्ण करने में समर्थवान हैं, वही सच्चे गुरु हैं।

1. Those who are full of great qualities, far away from blemishes, rid of sects, leaders of the path to the truth, thinkers of the well-being of all living-beings, able to cross the world-ocean, are the true guru.

---

2. गुरुता की प्राप्ति सद्गुणों से होती है और गुणवान् ही गुरु होता है। गुणहीन गुरु-भाव को प्राप्त नहीं होता, गुरु बनना है तो स्वगुणों की वृद्धि करो।

2. Greatness comes from noble qualities and only the one with noble qualities can be a guru. Man without noble qualities does not get to the status of the guru; to become a guru enhance your qualities.

---

3. प्रभु बनने का भाव है; तो सर्वप्रथम यह निर्णय करो कि श्रेष्ठ-गुरु के बिना प्रभुत्व की प्राप्ति नहीं होती।

3. If you wish to attain godhood, first appreciate that godhood cannot be attained without an excellent guru.

---

4. पुण्यहीन को श्रेष्ठ-गुरु का समागम नहीं होता। जिन्हें सच्चे-गुरु प्राप्त हो गए वे जीव धन्य हैं। वे पूर्वभव के पुण्यात्मा हैं जिन्हें परमात्म-पद के सत्यार्थ मार्ग-दर्शक गुरु मिले।

4. Men without merit do not get the company of excellent guru. Hail those who get the company of excellent guru. Due to merit earned in previous births they get the guru who leads them to the true path leading to the state of liberation.

---

5. जीवन के उत्कर्ष में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इतिहास साक्षी है, प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे कोई एक श्रेष्ठ प्रज्ञाशील सम्यक्-बोध देने वाले गुरु अवश्य होते हैं।

5. The guru plays an important role in the ascent of life. History is witness to the fact that behind every successful man there had been an excellent knowledgeable guru who provided right guidance.

---

6. गुरु का सान्निध्य बुद्धि की उज्ज्वलता के लिए अनिवार्य अङ्ग है। हेय-उपादेय का समय-पर बोध-दाता गुरु ही होता है। बिना गुरु के स्व-जीवन की वक्रता का बोध नहीं होता।

6. Proximity to the guru is an important limb for the brilliance of the intellect. The guru imparts the wisdom to know what is worth accepting and rejecting. Without the guru, contradictions in own life are not known.

---

7. जीवन में सत्यता, सरलता, सहजता की उपलब्धि हेतु सच्चे-गुरु का आश्रय आवश्यक है। गुरु के अभाव में सम्पूर्ण-लोक शून्य दृष्टिगोचर होता है। गुरु ही ज्ञान-अंजन शलाका हैं; जो मिथ्यातिमिर से आत्म-रक्षा करते हैं।

7. For attaining the qualities of truthfulness, simplicity and naturalness in life, the support of the guru is essential. Without the guru the whole world appears void. The guru is the stick that lights up the eyes by applying the knowledge-collyrium and thereby protects the soul from the darkness of delusion.

---

8. अंतरंग-बहिरंग शुद्धि सम्पन्न महापुरुष ही गुरु संज्ञा को प्राप्त होता है, अन्य नहीं।

8. Only the great man who has internal as well as external purity gets the name 'guru'; no one else.

---

9. गुरुता गुणता से वर्धमान होती है, गुणों से मण्डित आत्मा ही गुरु गुण-स्वभावी है। बिना गुणों का निलय बने कोई स्वयं को गुरु कहलाए, तो वह काक को हंसपक्षी कहलाने के तुल्य जानो।

9. Greatness is enhanced by great-qualities; only the soul that has great-qualities

is of the nature of the guru. Without being the home of qualities, if someone wants to be called the guru, it is like the crow wanting to be called the swan.

---

10. विषय भोग ही नहीं, अपितु विषयाभिलाषा भी जहाँ है वहाँ साधुत्व व गुरुत्व का पूर्ण अभाव जानो। गुरु की गुरुता में विषयाभिलाषा को कोई स्थान नहीं। धन्य-धन्य-धन्य वे गुरु भगवन्त जिन्होंने विषयों से ही नहीं विषयाभिलाषा से भी अपनी दृष्टि मोड़ ली है।

10. Know that where there is indulgence in or urge for sensual-pleasures there is total absence of asceticism and greatness. In the greatness of the guru there is no place for urge for sensual-pleasures. Hail the revered gurus who have turned their eyes away not only from sensual-pleasures but also from urge for these.

---

11. गुरुत्व भाव उन्हें ही प्राप्त होता है जो अवगुणों का पूर्ण त्याग कर चुके हैं। शिष्यों से अधिक प्रत्येक गुणों में ज्येष्ठत्व गुरु में होना अनिवार्य है। ज्येष्ठत्व गुण के बिना गुरु की गुरुता स्थिर नहीं रह सकती। गुरु की चर्या वर्धमान होना चाहिए।

11. The disposition of being the guru occurs to them who have renounced all blemishes. It is essential that the guru has greater extent of each quality in him than in his disciple. Without this the greatness of the guru cannot be sustained. The conduct of the guru should be ever-rising.

---

12. गुरु का जीवन शरीर के लिए नहीं सर्व-कल्याण के लिए होता है। स्वपर-कल्याणी दृष्टि गुरु की गुरुता को उच्चता का स्पर्श कराती है। जहाँ जगत् का सोच नहीं जाता; वहाँ गुरु का सोच स्थापित होता है।

12. The life of the guru is not for own-body but for welfare of all. His vision of well-being of self and others provides height to his greatness. Where the thought of the world fails to go, the thought of the guru gets established.

---

13. गुरु दिव्य प्रकाशक है, बिना गुरु प्रकाश के तत्त्व बोध नहीं होता और तत्त्व बोध के अभाव में आत्मशोध सम्भव नहीं है। आत्मबोध व आत्मशोध से भव्यजीव रूपातीत अवस्था को प्राप्त होता है।

13. The guru is the divine light; without this light the reality of substances is not known. Without the knowledge of the reality of substances, soul-purification is not possible. Through soul-knowledge and soul-purification the potential soul reaches the bodyless state (of liberation).

---

14. जीवन विकास में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सच्चे-गुरु के बिना आत्म-विकास संभव नहीं।

14. The guru has an important place in the progress of life. Without the true guru, soul-development is not possible.

---

15. सद्गुरु की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जिसे सच्चा गुरु प्राप्त हो गया उसे सत्यार्थ मार्गदर्शक प्रभु ही मिल गया। प्रभुत्व-शक्ति की अभिव्यक्ति का मार्ग गुरु के माध्यम से ही प्राप्त होता है।

15. It is extremely difficult to get the true guru. The one who has found the true guru has found the lord to lead him to the true path. The path to manifestation of the power of godhood is known only through the guru.

---

16. रत्नत्रय से विशुद्ध, पात्र-स्नेही, परमार्थ तत्त्वज्ञाता, समीचीन धर्म का पालक, मिथ्योपदेश से रहित, विषय कषायों से पूर्ण विरक्त, आडम्बर-विहीन गुरु ही व्यवहार से भवसागर से उत्तीर्ण करने में समर्थ निमित्त है और परमार्थ से निजात्मा ही भूतार्थ गुरु है। निज-उपादान की निर्मलता, भावों की विशुद्धि, रत्नत्रय की शुद्धि ही आत्म-गुरुता है, वही सिद्धि-प्रदायक आत्म-गुरु है।

16. From the empirical point-of-view, the guru who has the purity of the Three-Jewels *(ratnatraya)*, is affectionate, knower of the reality, observer of the right dharma, rid of false-preaching, detached from the senses and the passions, and unpretentious, is the instrumental facilitator for crossing the ocean of world-wandering. From the substantive point-of-view, the own-soul is the real guru. The greatness of own-soul consists in purity of the thoughts and the Three-Jewels, and such a soul is the real guru that leads to liberation.

---

17. नेत्र श्रेष्ठ है, परन्तु प्रकाशक साधन नहीं है तो अध्ययन के लिए अन्धकार में उपादानभूत नेत्र मात्र अकार्यकारी जानो। नेत्र ज्योति तभी काम में आएगी जब दीपक ज्योति होगी। इसी प्रकार ग्रंथ हो, दीपक हो, फिर भी है विद्यार्थी जीवन में अन्धकार यदि तत्त्व प्रकाशक गुरु नहीं है तो। नेत्र के लिए प्रकाशवत गुरु को जानो। यदि आत्महित आकांक्षी हो, सम्यक् तत्त्व बोध चाहिए तो किसी श्रेष्ठ ज्ञानी गुरु की शिष्यता को विनयपूर्वक सहज स्वीकार करो।

17. In darkness, even the substantive cause of good eyes becomes inconsequential in reading. Brilliance of the eyes is consequential only in presence of the light of the lamp. In the same way, even in presence of the book and the lamp there is darkness in the life of a student without the availability of the guru to illumine the reality. The guru is for the disciple what the light is for the eyes. If you want the well-being of

own-soul and acquire the knowledge of the reality accept, with humility and spontaneity, the discipleship of an excellent guru.

---

18. आत्मविकास वहीं संभव है जहाँ स्वयं विकासशीलता हो। विकसित पुरुष सभी के अन्तःकरण को आनन्द से भर देता है, उसी प्रकार से स्वयं में दर्शन-ज्ञान-चारित्र से पूर्ण विकसित सच्चे-गुरु शिष्य-हृदय को श्रुत-निधि से पूर्ण विकासमय कर देते हैं।

18. Growth in own-soul is possible only if the tendency for development exists. The matured man provides elation to all; similarly, the true guru whose heart is ripe with the trio of faith-knowledge-conduct develops fully the heart of the disciple with the treasure of the Scripture.

---

19. आत्मज्ञान, कर्त्तव्य-निष्ठता, चारित्र की दृढ़ता, बुद्धिमान जीवन जीने की विद्या, आत्मधर्मलीन परभावों से पूर्ण-उदासीन निर्ग्रन्थ-गुरु से ही मिलेगी, इसलिए निर्ग्रन्थ गुरुओं की सत्-संगति को पुरुषार्थ पूर्वक प्राप्त करो।

19. Look forward conscientiously to getting auspicious company of sky-clad *(nirgrantha)* guru who is engrossed in the meditation of own soul-nature and rid completely of external dispositions. You will receive attributes like the knowledge of own-soul, dutifulness, strength of conduct, and the art of leading a profound life, only from such sky-clad guru.

---

20. तीर्थों की वंदना कालान्तर में फलित होती है, पर तीर्थभूत गुरु की सच्ची आराधना तत्क्षण फलित होती है। गुरु प्रसाद से शान्ति, श्रुत, चारित्रादि गुणनिधि तत्क्षण प्राप्त होते हैं।

20. Worship at holy places of pilgrimage provides fruit in due course but true adoration of the guru, who himself is a holy place of pilgrimage, provides fruit instantaneously. The guru provides, instantaneously, the treasure of attributes like tranquility, knowledge of the Scripture and conduct.

---

21. सच्चा-गुरु गुणों से अनुराग तथा दोषों से हेय-बुद्धि उत्पन्न कराता है और मिथ्या-गुरु गुणों में द्वेष व दोषों में अनुराग उत्पत्ति की शिक्षा देता है। उभय गुरु के स्वरूप को जानकर स्वयं निर्णय करो कि मुझे कौन से गुरु की शरण में जाना चाहिए? जिससे मेरे अन्दर भद्रता का जन्म हो।

21. The true guru develops in you the intellect that has attraction for good qualities and aversion for blemishes. The false guru teaches aversion for good qualities and

attraction for blemishes. After ascertaining the nature of these two kinds of guru, decide for yourself who can be your refuge, so as to acquire nobility.

---

22. तत्त्वार्थ उपदेशक, मिथ्यामार्ग-उच्छेदक, सन्मार्ग-दर्शक, आडम्बर-विहीन, चारित्र में लीन, स्वपर कल्याणकारी गुरु कहीं भी मिल जायें, तो स्वर्ग का त्याग कर देना, परन्तु ऐसे सद्गुरु के चरणों में लग जाना तो वह आपको सिद्धत्व का मार्ग बता देंगे।

22. If anywhere you find an excellent guru who preaches the reality, rescinds the false-path, shows the right-path, is unpretentious, engrossed in conduct, and engaged in welfare of self and others, renounce the heaven and accept his holy feet; he will teach you the path to liberation.

---

23. कलिकाल में सद्गुरु की प्राप्ति ही सबसे बड़ा चमत्कार है। आडम्बर, सम्प्रदायों के रागियों में सद्गुरु के दर्शन कहाँ? पंथ-सम्प्रदायों से पृथक्, मठ-पीठों, गिरि-उदयों से भिन्न, एकत्व-विभक्त निज-भगवानात्मा के दर्शक गुरु पंचमकाल के अन्त तक अत्यन्त अल्प संख्या में होंगे।

23. In this *kali* age (the fifth period, called *duṣamā*), to get the right guru is the greatest miracle. How can the right guru be found among those with pretentiousness and attachment for groups? Till the end of this *kali* age there will be, but very few, gurus who maintain distance from particular sects or groups, are dissociated from hermitages, dwellings, hillocks or mounds, and viewers of own god-soul that is one, distinct from everything else.

---

24. सद्गुरु वीतराग निर्ग्रन्थ दिगम्बर आत्मानुशासक ही गुरु शब्द की लाज रख पायेंगे; अन्यथा गुरु शब्द ही रो पड़ेगा कि अहो! मेरी संज्ञा को प्राप्त लोग क्या कर रहे हैं? डाकू शब्द सुनकर जैसे लोगों के हृदय कंपित होते हैं, ऐसे गुरु शब्द सुनकर हृदय कंपित न होने लगे, इसलिए गुरुओं का कर्तव्य है कि वे गुरुता को सुरक्षित रखें, काम-कामिनी-कामना से अपने अन्तःकरण को सुरक्षित रखें।

24. Only the laudable, sky-clad gurus who are without attachment and possession, and established in the nature of own-soul, will be able to save the honour of the word 'guru'; otherwise, seeing the acts of men called guru, the word 'guru' will cry in despondency. Men get frightened on hearing the word *'dākū'* – robber. All gurus should take care that the word 'guru' does not result in the same kind of response. They should keep intact their greatness and keep their hearts protected from lust, woman and desire.

---

25. सच्चे-गुरु अनपेक्ष उपकारक होते हैं। सच्चे-गुरु पर का उपकार तो करते हैं, परन्तु बदले में कुछ भी आकांक्षा नहीं रखते हैं। एकमात्र स्वात्महित का ही सुविचार करते हैं तथा अन्य भावों से आत्मरक्षा करते हैं।

25. The true gurus are benefactors without desires. They cause the well-being of others but do not want anything in return. They are engaged only in the pious thought of the welfare of own-soul, while protecting themselves from other thoughts.

---

26. जीवन में गुण-गरुता के लिए एक श्रेष्ठ सद्गुणी गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है। जीवन जीने के महत्त्वपूर्ण रहस्य गुरु से ही उपलब्ध होते हैं। कषायपूर्ण अंतरंग पीड़ा को गुरु चरणों में ही दूर किया जा सकता है। पृथ्वी पर मनुष्य के प्रति मनुष्य का आस्था-विश्वास-श्रद्धा का कोई सम्बन्ध है, तो वह एकमात्र गुरु-शिष्य का ही सम्बन्ध है। ऐसा पवित्र सम्बन्ध मानव-का-मानव के प्रति अन्य कोई नहीं है।

26. To be able to acquire greatness of qualities, it is essential to have an excellent and virtuous guru. Important secrets of life are learned only from the guru. Internal pain due to the rise of passions can be alleviated only by taking refuge in the holy feet of the guru. If there is any man to man relation in the world that is full of regard, trust and faith, it is the relation of the guru with the disciple. There is no other relation with such piousness.

---

27. प्रबल-पुरुषार्थ दैव की युगपतता के होने पर सद्गुरु की प्राप्ति होती है, जो जीवन की दिशा और दशा दोनों को बदलने में समर्थ होते हैं।

27. Only in the simultaneous presence of strong own-effort and fate, one gets a virtuous guru who is able to mould the direction as well as the state of life.

---

28. गुरु विश्वास का होता है और शिष्य विश्वास का उपासक, यह उपास्य-उपासक भाव ही प्रभुता को प्राप्त कराता है। यदि गुरु ने जीवन विकास के सूत्र दिए हैं, तो शिष्य का कर्तव्य है कि गुरु के विश्वास का विघात न करे।

28. The guru has trust and the disciple adores trustworthiness. This relationship as the object-of-devotion and the devotee gets the disciple to godliness. If the guru has taught the rules for advancement, the disciple must not betray him.

---

29. जो गुरुत्वभार, संस्कृति को सुरक्षित सँभालकर रखते हैं, वे सद्गुरु नुति के पात्र धरातल पर धन्य हैं।

29. Hail the laudable and praiseworthy gurus on this earth who maintain their greatness while safeguarding tradition.

---

30. प्रभुत्व प्राप्ति का सम्यक्-उपाय सच्चे-गुरु बतलाते हैं, बिना सद्गुरु उपदेश के स्वप्रभु की प्राप्ति नहीं होती। स्वात्मतत्त्व की उपलब्धि हेतु, आगम-अभ्यास, स्वानुभव के साथ गुरु-उपदेश परम आवश्यक है।

30. The gurus preach the real means to attain godliness; without the preaching of the true guru own god-soul is not attained. To attain own soul-substance, reading of the Scripture, reflection on own-soul and preaching of the guru are essential.

---

31. शरीर स्वस्थ रखना है तो रोगी को वैद्य के लिए बालकवत रोग का कथन कर देना चाहिए और आत्मा को स्वस्थ रखना है तो शिष्य को बालकवत अपने मानसिक-विकल्पों को गुरु के समक्ष प्रस्तुत कर देना चाहिए। वे साधक श्रेष्ठ-सुमरण, समाधिमरण को प्राप्त होते हैं जो श्रीगुरु के चरणों में अपने कृत पापों की निश्छल भाव से आलोचना कर लेते हैं।

31. In order to keep his body healthy the sick man should narrate, like a child, the details of his sickness to the doctor. To keep his soul healthy, the disciple should narrate, like a child, his mental wanderings to the guru. Noble practitioners who confess, with clear heart, their evil deeds in front of the holy feet of the guru get excellent death with supreme meditation.

---

32. वे कर्ण-कर्ण नहीं, वे कीड़े-मकोड़ों के रहने के छिद्र हैं जो अज्ञानियों से सच्चे-गुरु की निंदा सुन लेते हैं। कर्ण तो सुकर्ण वे ही होते हैं; जो सद्धर्म, जिनवाणी, जिनदेव, सद्गुरु की स्तुतियाँ गुणकीर्तन सुनते हैं।

32. The ears which listen to the slanderous words of the unlearned for the true guru are not ears but holes which house worms and insects. Worthy are those ears which listen to the right dharma, the Scripture, the divine discourse, and the songs in adoration of the true guru.

---

33. आत्मज्योति को प्रकाशमान करने के लिए गुरु प्रबल निमित्त हैं। शिष्य को ज्योतिर्मय जीवन के लिए गुरु का अनुशासन अत्यंत आवश्यक है।

33. The guru is a strong instrumental cause for lighting the soul-lamp. The discipline of the guru is essential for the disciple to lead an illustrious life.

---

34. स्व-आगमोक्त कर्तव्यों का पालन करना एवं शिष्यों से भी आचरण का निर्मल पालन कराना गुरुओं का कर्तव्य है। सिद्धांतों का बोध, आचाराङ्ग की प्रवृत्ति गुरु पर आलम्बित है। लोक में शिष्यों की प्रवृत्ति गुरुओं के अनुकूल देखी जाती है। जैसा गुरु करेगा वैसा ही शिष्य करता है। सच्चा शिष्य, गुरु-अनुसारणीप्रज्ञा वाला होता है, इसलिए सम्पूर्ण मर्यादाओं का गुरु को ध्यान रखना चाहिए।

34. The guru himself observes the rules of conduct as outlined in the Scripture and makes the disciple follow these rules without blemish. The knowledge of the doctrine and observance of the rules of conduct depend on the guru. In the world, the disciples seem to act according to the guru; they do what the guru does. The true disciple instinctively follows the guru and, therefore, the guru must carefully observe all regulations.

---

35. गुरुजन यदि स्व-कर्तव्य से च्युत हों तो उन्हें अपने आगम-प्रायश्चित्तशास्त्र में कहा हुआ प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए, बिना प्रायश्चित्त के एक पल भी व्यतीत नहीं करना चाहिए। बिना प्रायश्चित्त के जीने वाले चाहे गुरु हों या शिष्य दोनों ही कुमरण को प्राप्त होते हैं। चित्त की शुद्धि का साधन यदि कोई है तो वह है प्रायश्चित्त और वह गुरु के सान्निध्य में ही होता है। यदि किसी के गुरु की समाधि भी हो गई है, तो वह अन्य किसी श्रेष्ठ गुरु से प्रायश्चित्त लेकर आत्मशुद्धि करे तथा विशुद्धमार्ग का उद्योतन करे।

35. If the gurus have faulted in their duty, they should undertake expiation as prescribed in the relevant scriptural text; they should not remain without expiation even for a moment. Whether it is the guru or the disciple, if he continues to live without proper expiation, he attains impious-death. If there is any means of purifying the mind it is the expiation as prescribed by the guru. If the guru has passed away, the disciple should undertake expiation from another excellent guru and thus purify his soul and continue illumining the pure-path.

---

36. जो गुरु जानकर ही शिष्यों के अपराधों की उपेक्षा करता है वह सर्व-संघ का नाश कर लेता है। श्रीसंघ के नाश से धर्ममार्ग ही नाश को प्राप्त हो जाता है। धर्ममार्ग को निर्मल देखना है, तो स्व-पर के अल्प दोषों का भी प्रायश्चित्त स्वीकार करना चाहिए।

36. The guru who knowingly overlooks the faults of the disciples destroys the congregation. With the destruction of the congregation the path leading to dharma gets destroyed. If you want to maintain clean the path leading to the dharma then accept expiation for even minor faults of self and others.

---

37. सच्चा शिष्य वही होता है जो विनय पूर्वक गुरु के सद्-उपदेशों को सुनकर उन्हें अमृत-तुल्य स्वीकारता है, गुरु के गुणों का कभी विस्मरण नहीं करता है, सतत गुरु के कृत उपकारों को याद करता है, तदनुकूल प्रवृत्ति भी करता है।

37. The true disciple is the one who after listening to the laudable teachings of the guru accepts these as nectar, never forgets the qualities of the guru, remembers constantly the favours done to him by the guru and adopts conduct accordingly.

* * *

"जो शिष्य गुरु आज्ञामृत का पान करने में अनुरक्त हैं; कर्तव्यनिष्ठ हैं, अनुशासक, आत्मानुशासक हैं, गुणों के अनुरागी हैं, गुरु-भक्ति में लवलीन हैं, हितकारी मार्ग के अभिलाषी हैं, गुरु के पीछे चलते हैं, गुरु से नीचे बैठते हैं और गुरु से नीचे स्वर में बात करते हैं, वे ही शिष्यों में शिष्योत्तम हैं।"

(आचार्य विशुद्धसागर, **'गुरवोभवन्तिशरणं'**, पृ. 27)

17

सत्यार्थ-बोध

शिष्य

The Disciple

1. शिष्य वही श्रेष्ठ होता है जो शिष्ट, सदाचारी, कर्तव्यनिष्ठ, गुरुभक्त, भव से भयभीत, तत्त्व-पिपासु, सरल स्वभावी, प्रमाद-शून्य एवं विद्यानुरागी हो।

1. That disciple is excellent who is noble, righteous, dutiful, devoted to his guru, fearful of world-wandering, thirsty for knowing the reality, simple in nature, rid of negligence and inclined towards knowledge-acquisition.

---

2. गुरुता प्राप्ति की भावना है तो सर्वप्रथम शिष्ट-श्रेष्ठ शिष्य बनने का सम्यक्-पुरुषार्थ प्रारम्भ करो।

2. If you wish to become a guru, start with genuine effort to become a noble and excellent disciple.

---

3. अनेक मूढ़ों के गुरु बनने की अपेक्षा एक श्रेष्ठ, चर्यावान, ज्ञानवान्, तपोनिष्ठ, श्रद्धानिष्ठ सद्गुरु का शिष्य बनना श्रेष्ठ है।

3. It is better to be the disciple of an excellent and laudable guru who has high conduct, is knowledgeable, is ever engaged in austerities and has right faith, than to be the guru of many dull-witted disciples.

---

4. विद्या प्राप्ति के लिए शिष्य बनना ही पड़ेगा, शिष्य बने बिना विद्यासिद्धि नहीं होती है, यह प्रसिद्ध है।

4. In order to acquire knowledge one has to become a disciple; it is well-known that without becoming a disciple no learning is accomplished.

---

5. शिष्य का प्रथम गुण गुरु-भक्ति है। जिस गुरु से आप विद्याभ्यास करना चाहते हैं उनके प्रति आपका समर्पण भाव एवं भक्ति होना चाहिए। बिना आस्था, विश्वास एवं भक्ति के विद्या की प्राप्ति नहीं की जा सकती। जो आपको सच्चा बोध दे रहा है उसके प्रति आपका समर्पण होना चाहिए।

5. The first attribute of the disciple is devotion for the guru. You should have dedication and devotion for the guru from whom you wish to gain knowledge. Without reverence, trust and devotion, knowledge does not come through. You should have dedication for the one who is providing you true wisdom.

---

6. शिष्य की विनय देखकर गुरु प्रसन्न हो जाते हैं; तब वह प्रसन्न-चित्त से शिष्य को विद्याध्ययन कराते हैं, तो वह विद्या शिष्य के अन्त:करण में प्रविष्ट हो जाती है।

6. By the humility of the disciple the guru feels elated; when the guru imparts knowledge in an elated state, the teachings go straight into the heart of the disciple.

---

7. शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु को कभी कुपित न करे, उनके प्रति विश्वासघात न करे तथा हमेशा उनकी आज्ञा का पालन करे।

7. It is the duty of the disciple never to cause anger to the guru, never to deceive him, and to always obey his commands.

---

8. विद्यानुरागी शिष्य को सम्पूर्ण काम-क्रोधादि विकल्पों से परे होकर सतत विद्याभ्यास करना ही श्रेयस्कर है।

8. It is recommended that the learner disciple should, after renouncing all dispositions of lust, anger, etc., be ever engaged in knowledge-acquisition.

---

9. श्रेष्ठ शिष्य वही है जो स्व-गुरु व आगम-आज्ञा का निर्मल पालन करे। वह स्वप्न में भी गुरु-आज्ञा भङ्ग करने का विचार नहीं लाता तथा आगम के शब्द-शब्द का विश्वास रखता है। ऐसा गुणवान शिष्य ही स्व-पर कल्याण में समर्थवान होता है।

9. That disciple is worthy who follows religiously the commands of the guru and the Scripture. Even in his dream he does not engender the thought of disobeying his guru; he has unwavering faith in each word of the Scripture. Only the disciple with such attributes is able to bring about welfare of self and others.

---

10. उग्र-स्वभावी शिष्यता के अयोग्य है, क्योंकि वह प्रथम तो विद्या को प्राप्त ही नहीं कर पाता और कदाचित् वह विद्या प्राप्त भी कर ले तो उस विद्या का सम्यक्-उपयोग नहीं कर पाता। वह उग्रता में गुरु एवं विद्या का अनादर भी कर देता है। अविनेय विद्या के मद में विवेकहीन होकर श्रेष्ठ ज्ञानवानों की भी अविनय करके कर्मबन्ध को प्राप्त होता है और फिर संसार-भ्रमण करता है।

10. A person of violent nature cannot be a worthy disciple. He is not able to acquire knowledge in the first place; if, somehow, he acquires knowledge he is not able to utilize it in the right manner. Due to his violent nature he gets disrespectful to the guru and the knowledge. The insolent, due to pride of knowledge, gets disrespectful to the excellent men of knowledge thereby causing the bondage of karmas and continuing his world-wandering.

---

11. गुरु-शिष्य के पवित्र सम्बंध से ही श्रुत परम्परा अक्षुण्ण चलती है। जहाँ शिष्य की वृद्धि होती है वहाँ धर्म एवं संस्कृति वर्धमान होती है। शिष्यों का कर्तव्य है वे अपने ज्ञान-वैराग्य की वृद्धि करते हुए; चारित्र गुण से निजात्मा को विभूषित करें, क्योंकि यह रत्नत्रय धर्म ही मुक्ति प्रदायक है।

11. The pious relation between the guru and the disciple bestows continuity to the tradition of the Scripture. Where there is growth in the disciple there is growth in the dharma and the culture. While enhancing their knowledge and detachment, the disciples have a duty to adorn own-souls with the attribute of conduct. The dharma of the Three-Jewels *(ratnatraya)* is the cause of liberation.

---

12. शिष्यों के सम्यक्-पथ पर गमन करने से गुरु एवं सनातन संस्कृति की श्रीवृद्धि यश:कीर्ति वर्धमान होती है।

12. When the disciples tread the right path, the glory and renown of the guru and the eternal culture get enhanced.

---

13. जिस देश में गौवंश एवं शिष्यसम्पदा न हो वह देश त्यागने योग्य है, क्योंकि जीवन एवं धर्म का वहाँ क्षय होता है।

13. The region bereft of bovine animals and wealth of disciples should be left because there life and dharma are ruined.

---

14. धार्मिक, सुधी, धैर्यवान, सन्तोषी, क्षमादि गुणों से विभूषित शिष्य ही भविष्य के धर्म-संस्कृति, देश-कुल-जाति के तिलक बनते हैं। ऐसे शिष्यों से सम्पूर्ण राष्ट्र आनंदित होता है और प्रत्येक विवेकी प्रज्ञावान उन शिष्यों का सम्मान करता है।

14. Only the disciples who are virtuous, learned, forbearing, contented, and adorned with qualities like forgiveness become future role models for the dharma-culture and the country-lineage-caste. Such disciples make the whole country happy and every discriminating learned man respects them.

---

15. प्रज्ञावान शिष्य श्रीगुरु के आसनों पर आसीन नहीं होता, गुरु के समक्ष उनसे ऊँचे आसन पर भी नहीं बैठता। गुरु के समीप ऊँचा आसन भी नहीं लगाता, जंघा पर पैर रखकर नहीं बैठता, अहंकारी मुद्रा भी विनयशील शिष्य गुरु के सामने धारण नहीं करता, अपितु नम्र-वृत्ति का पालन करता है।

15. The intelligent disciple does not sit on the seats of the guru; he does not sit on a seat placed higher than the seat of the guru. In front of the guru, he does not take a high seat and does not sit with the foot on the thigh. The disciple with humility does not adopt the posture of vanity in front of the guru.

---

16. योग्य शिष्य का धर्म है कि जब गुरु समझायें तब वह जिज्ञासापूर्ण मुद्रा में गुरु के मुख-मण्डल की ओर दृष्टिपात करे तथा जब गुरु डाँटें तब विनयपूर्वक उनके चरणों में दृष्टि रखे। गुरु से वाक्-युद्ध न करे।

16. The worthy disciple, as a duty, should look at the face of the guru with an inquisitive expression when he is explaining something and at the feet of the guru with a humble expression when he is reprimanding. Do not engage in word-splitting with the guru.

---

17. स्वगुरु व परगुरु से इतनी दूरी बनाकर चलें जिससे स्वयं के शरीर की उष्णता उनकी देह का स्पर्श न कर सके तथा देह-से-देह का संघटन भी न हो।

17. Maintain with own guru and with the guru of others physical distance so that the warmth of your body does not reach their bodies and collision of bodies does not take place.

---

18. अग्नि रोटीवत ही गुरु-शिष्य का व्यवहार होना चाहिए। गुरु से अति दूर व अति निकट का सम्बंध नहीं होना चाहिए। प्रत्येक शिष्य को अपनी मर्यादा का बोध होना चाहिए।

18. Mutual interaction between the guru and the disciple should be like that between the fire and the bread *(roṭī)*. Neither be too far nor too near the guru. Every disciple should be aware of his limitations.

---

19. धर्म-श्रवण तथा धर्मग्रंथों का अध्ययन जो शिष्य गुरु-मुख से प्राप्त कर लेता है, उस शिष्य का ज्ञान प्रमाणपत्र को प्राप्त होता है। गुरु के बिना ज्ञान में दृढ़-विश्वास की न्यूनता रहती है। सर्वप्रथम गुरु-मुख से ही अध्ययन करना चाहिए।

19. The knowledge of the disciple who learns the dharma and the sacred texts from the mouth of the guru becomes valid-knowledge *(pramāṇa)*. Without the guru, the knowledge of the disciple lacks the strength of conviction. Start your learning from the mouth of the guru.

---

20. शिष्य मिट्टी के ढेले के समान है जिसे गुरु ज्ञान-नीर डालकर गीला करके, घट बनाकर, लोकशीश पर विराजमान कर देते हैं।

20. The disciple is like the clod of soil to which the guru adds the water-of-knowledge, turns it into a pot and seats it on the head of the world.

---

21. गुरु के पृच्छना करने पर शिष्य को शीघ्र उत्तर देना चाहिए। गुरु के कुछ पूछने पर शिष्य को मौन रखना हितकारी नहीं है। अल्प, मिष्ट, पथ्यकारी वचनों का प्रयोग करते हुए गुरु के कर्ण-पटल को संतोष प्रदान करना शिष्य का कर्तव्य है।

21. The disciple should respond quickly to the guru's questions. To maintain silence when the guru asks a question is not good. The disciple should provide contentment to the guru's eardrums through his concise, sweet and considered speech.

---

22. स्व-आसन अथवा शय्या पर बैठे ही बैठे गुरु से सूत्रपाठ तथा किसी कार्य की आज्ञा नहीं लेना चाहिए। गुरु से सूत्र-बोध, कर्तव्य-कार्य की आज्ञा स्वस्थान छोड़कर ही लेना चाहिए, यह शिष्ट शिष्य की पहचान है।

22. Continuing with your sitting posture, on your seat or couch, do not seek the guru's permission for the study of the sacred text or for any other task. Such

permission should be sought only after leaving your seat; this is a mark of the well-mannered disciple.

---

23. योग्य-शिष्य प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप, मन-वचन-काय से आचार्यों आदि पूज्य-पुरुषों के प्रति विनय-भाव रखते हैं तथा उनकी निन्दा भूलकर भी नहीं करते।

23. Worthy disciples maintain, directly and indirectly and with their mind, speech and body, humility for reverend men like the chief-preceptors. They never indulge in censuring them.

---

24. विवेकी, ज्ञानी शिष्य गुरु के अनुकूल ही आचरण करते हैं, वे कभी भी गुरु-भगवन्त के प्रतिकूल आचरण नहीं करते हैं।

24. The conduct of discriminating and learned disciples conforms to the wish of the guru; they never act otherwise.

---

25. शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु के समक्ष व्यर्थ के वाक्यों का प्रयोग न करे। गुरु के समक्ष अहंकार, ममकारपूर्ण चर्चा न करे। शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु-मुख से आगम सूत्रों को विनय पूर्वक श्रवण कर धारण करे।

25. The disciple should not use garrulous speech in front of the guru. His speech in front of the guru should be rid of self-aggrandizement *(ahaṃkāra)* and self-interest *(mamakāra)*. With humility, the disciple should listen to and assimilate the words of the guru elucidating the sacred texts.

---

26. शिष्य को गुरु पादमूल में रहकर श्रुताभ्यास पूर्ण-मनोयोग से करना चाहिए। जैसे कोई सम्राट् अपने राजकुमार को राज्यपद पर आसीन इसलिए करता है कि राज्य की रक्षा हो, समृद्धि हो, उसी प्रकार शिष्य को श्रुत-सम्पदा एवं संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए।

26. Sitting at the holy feet of the guru, the disciple should study the Scripture with absolute concentration. As the king installs his son on the throne for protection and prosperity of the state, in the same manner, the disciple should protect the wealth of the Scripture and the culture.

---

27. जो शिष्य गुरु के प्रतिकूल प्रवृत्ति करता है, सबल क्रिया युक्त कुत्सित चर्या युक्त है, वह निश्चित ही असमाधि को प्राप्त होता है।

27. The disciple who contravenes the guru's instructions and whose conduct is evil gets an inauspicious death.

---

28. जो शिष्य शीलव्रत सम्पन्न पंच-परमेष्ठी के गुणों में अनुरक्त गुरु के अनुकूल प्रवृत्ति करता है, सदा श्रेष्ठ ज्येष्ठों की विनय करता है, गुरु के पीछे-पीछे गमन करता है, गुरुजनों का अनादर नहीं करता है तथा श्रुत-विनय भावना सम्पन्न रहता है, वह नियम से श्रेष्ठ-समाधि को प्राप्त होता है।

28. The disciple who observes the vows, keeps his mind engrossed in the qualities of the five supreme-beings, conforms to the wish of the guru, has humble disposition for the men-of-excellence and the elderly, walks always behind the guru, does not disrespect the learned preceptors and has a disposition of submission for the Scripture, gets, as a rule, an auspicious death.

---

29. जीवन में एक श्रेष्ठ-गुरु का शिष्य अवश्य बनना चाहिए। जब जीवन में अंधकार होता है, तब सच्चे-गुरु सत्यार्थ-प्रकाश बनकर मार्ग-दर्शन करते हैं।

29. In your life, become the disciple of an excellent guru. When there is darkness in life, the true guru shows the path by spreading the light of the reality.

---

30. शिष्य की हर अच्छी-बुरी बात गुरु को ज्ञात होती है, फिर भी शिष्य पर गुरु का विश्वास होता है, क्योंकि उन्हें आस्था होती है कि यही शिष्य भविष्य में गुरुता को प्राप्त कर लोक में स्व-पर कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करेगा। गुरु-शिष्य को माँ बनकर शिशुवत पालन करते हैं और गुरुता के स्थान पर स्थापित कर देते हैं।

30. Although the guru is aware of the good as well as the bad qualities of his disciple, he maintains his faith on him. He reckons that the same disciple will in future gain strength and illumine the path of the well-being of self and others. The guru looks after his disciple like a mother and establishes him on a high pedestal.

---

31. गुरु के कठोर अनुशासन को प्राप्त करके गुरु की निन्दा नहीं करना, अपितु यह विचार करना कि गुरु हमारे उपकारी हैं, जो हमारे अंतरंग दोषों को निकालकर निर्दोषता की ओर ले जाने का पुरुषार्थ कर रहे हैं।

31. Do not denounce the guru for his strict discipline. Think that he is your well-wisher who is trying to take out your internal blemishes and make you perfect.

---

32. श्रद्धावान् शिष्य गुरु के प्रत्येक कार्य को विशिष्ट, स्व-हितकारी समझता है। वह यही दृष्टि रखता है कि गुरु मेरे उपकारी हैं। सच्चा शिष्य गुरु के प्रति हमेशा आस्तिक्य रूप ही व्यवहार करता है।

32. The faithful disciple thinks that every instruction of the guru is special and for his well-being. He always sees the guru as his well-wisher. The true disciple, in all his actions, maintains devotion for his guru.

---

33. निष्कषाय, निर्विकार, परमार्थ तत्त्व की भावना से पूर्ण, पात्र-वात्सल्य युक्त गुरु के ही शिष्य बनना श्रेयस्कर है। जो उक्त गुणों से शून्य गुरु की शिष्यता को प्राप्त करता है; वह उभयलोक में दु:ख, अशान्ति, क्लेश को प्राप्त करता है।

33. It is good to become the disciple of a guru who is without passions and blemishes, engrossed always in the thought of the true nature of the reality, and full of tender affection for his disciples. The disciple whose guru lacks such qualities gets misery, unhappiness and anxiety here and hereafter.

---

34. गुरु का असीम-विश्वास श्रेष्ठ-सच्चे शिष्य पर होता है। गुरु अपने शिष्य के अन्दर स्व को देखना चाहते हैं। जैसा बोध-बोधि का भाव मेरे अन्दर है वैसा ही मेरे शिष्य के अन्दर रहे। गुरु जिन-शासन एवं श्रीसंघ का भार योग्य शिष्य को प्रदान करते हैं। जैसा मैंने अपने गुरु के आशीष एवं आज्ञा से श्रमण-संस्कृति का संरक्षण किया है उसी प्रकार से वह शिष्य से अपेक्षा करते हैं कि वह श्रमण-संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन अत्यन्त विशुद्ध मनोयोग से करे तथा धर्म-धर्मात्मा के प्रति निस्पृहता पूर्वक निष्काम-वृत्ति से करे।

34. The guru keeps strong belief on his excellent and true disciple. He sees his own image in him. He wants in him the same disposition of knowledge-and-knower as he himself has. The guru imparts to his worthy disciple the responsibility of furthering the regime of Lord Jina and the tradition of asceticism. As he had taken upon himself the responsibility of furthering and protecting the tradition of asceticism, he expects his disciple to do the same with pure thoughts for the dharma and the virtuous, free from desires and self-interest.

---

35. गुरु की आभा शिष्य में झलकती है। प्राय: शिष्य का जीवन गुरु के जीवन का अनुकरण करता है, अत: श्रेष्ठ-गुरु के शिष्यों को गुरु-सदृश्य श्रेष्ठता प्राप्त करनी चाहिए।

35. The aura of the guru gets reflected in the disciple. The life of the disciple follows the life of the guru; therefore, the disciples of the excellent guru should acquire his excellence.

---

36. शिष्य का कर्तव्य है कि वह जिन-शासन की प्रभावना हेतु सर्वप्रथम सम्पूर्ण-कार्यों को विराम देकर श्रीगुरु मुख से शब्दागम, तर्कागम, परमागम का तलस्पर्शी स्वाध्याय करे, इसके उपरान्त प्रभावना के मार्ग का विचार करे। गंभीर-गहन अध्ययन के बिना न कोई वक्ता बने, न लेखक और न ही प्रभावक।

36. The disciple should first, renouncing all other activities, study deeply, from the mouth of the guru, the Scripture in its three manifestations – the literal meaning *(śabdāgama)*, the logical meaning *(tarkāgama)*, and the transcendental meaning *(paramāgama)*. Only after doing this he should think of the path to propagation of dharma. Without deep study, do not become a preacher, a writer or a propagator.

---

37. गुरु-शिष्य परम्परा त्रैकालिक है। इस परम्परा से ही श्रुत-परम्परा जीवित रही है। श्रुत की रक्षा से ही शासन सुरक्षित रहता है, इसलिए गुरुजनों का कर्तव्य है कि श्रेष्ठ शिक्षाशील शिष्यों का सृजन करें।

37. The tradition of the guru and the disciple is eternal. Only due to this tradition the flow of the scriptural-knowledge has continued. Protection of the Scripture is the only way to protect the regime of Lord Jina; therefore, the gurus should dutifully carve out excellent and scholarly disciples.

* * *

18

सत्यार्थ-बोध

अध्यात्म-योग

The Soul-yoga

1. मन-वचन-काय की क्रिया का निरोध कर एक स्वरूप में निश्चल स्थिरतापूर्वक आत्मा के उपयोग को आत्मा में ही लीन करना 'अध्यात्म-योग' है।

1. Curbing activities of the mind, the speech and the body and getting established steadily in own-nature, i.e., fixing the cognition *(upayoga)* of the soul on own-soul, is the soul-yoga.

---

2. स्व उपयोग को स्व में स्थिर कर; पर-भावों से निज-भाव को भिन्न कर जो एकत्व-विभक्त भाव की लीनता है, वही अध्यात्म-योग है। अध्यात्म-योग का साधक पंथ-सम्प्रदाय परम्पराओं से भिन्न जीवन जीता है। एकमात्र ध्रुवज्ञायक की अनुभूति उसके पास होती है। वह स्व संवेद्य ही अपना स्वलक्ष्य बनाकर साध्य-सिद्धि में लवलीन रहता है।

2. In the soul-yoga, the soul's cognition *(upayoga)* is fixed on the own-soul; the 'own' dispositions are segregated from the 'other' dispositions and the soul gets engrossed in the one-and-distinct own-soul. The practitioner of the soul-yoga is detached from all sects, groups and traditions. He experiences own-soul purely and solely as the 'knower' *(jñāyaka)*. His aim is to experience own-soul and remains engrossed in attaining this aim.

---

3. विश्व की परा विद्या 'अध्यात्म विद्या' है। विश्व की विविध विद्यायें भोग की ओर ले जाती हैं और

अध्यात्म-विद्या योग में लीन करती है। परमात्म पद को प्रदान करने वाली तथा निज-ज्ञायक से मिलन कराने वाली परम विद्या 'अध्यात्म-विद्या' है।

3. Soul-knowledge is the supreme learning in the world. Various kinds of learning in the world direct you toward sensual-enjoyment; the learning of the soul directs you toward own-soul. Soul-knowledge is supreme as it makes you a supreme-being and unites you with your knower-self.

---

4. शरीर इन्द्रियों से परे अतीन्द्रिय-आनन्द का वेदन कराने वाली 'अध्यात्म-विद्या' है।

4. Soul-knowledge provides the experience of sense-independent happiness that is beyond the body and the senses.

---

5. लौकिकता दूर कर लोकोत्तराचार की ओर ले जाने वाली 'अध्यात्म-विद्या' है। यह विद्या जिस भव्यात्मा को प्राप्त हो जाती है, वह आधी-व्याधि से शून्य परमानंद का भोक्ता होता है।

5. Soul-knowledge takes the conduct to the transcendental level, away from the ways of the world. The potential soul that acquires this knowledge enjoys the supreme happiness, rid of mental and physical agony.

---

6. आधी-व्याधि से शून्य यदि कोई सुख है तो 'अध्यात्म-सुख' है। अध्यात्म का आश्रय लेकर साधक महा-पीड़ा को भी प्रसन्नचित्त से सहन कर लेता है, साधक दु:ख-पीड़ा-कष्टों को उपहार मानता है।

6. If there is any happiness that is rid of mental and physical agony, it is the soul-happiness. Taking refuge in the soul, the ascetic endures even major sufferings gleefully; he considers misery, pain and hardships as gifts.

---

7. अशान्त-चित्त को शान्त करने की विद्या 'अध्यात्म-विद्या' है। अध्यात्मिकता के बिना शान्ति, आनन्द का वेदन सम्भव नहीं है। अध्यात्म सम्पूर्ण परभावों से निजभाव को भिन्न दिखाता है। जब परभाव मेरा ध्रुव-स्वभाव नहीं है, तो फिर व्यर्थ में उनके प्रति ममत्व स्थापित कर निज का भव-सागर क्यों वृद्धिंगत करें?

7. The science that provides tranquility to the restive mind is the soul-knowledge. It is not possible to experience tranquility and happiness without the soul-knowledge. The soul-knowledge makes distinction between the 'self' and the 'other'. When the 'other' is not my eternal nature, why should I unnecessarily have a sense of attachment for it and extend my world-wandering?

---

8. अध्यात्म में जीने वाले साधक लोक में सभी से मिलकर तो रहते हैं, परन्तु मिलते किसी में नहीं। वे अपने तत्त्वज्ञान के बल से जगत् के सम्पूर्ण पर-द्रव्यों से उपेक्षा-भाव को स्थापित करके स्वानन्द में आनन्दित रहते हैं।

8. In the world, the practitioners of soul-knowledge live with others but do not become one with them. On the strength of their knowledge of the reality, they remain indifferent to everything 'other' and establish themselves in the happiness appertaining to own-self.

---

9. अध्यात्म अंतरंग की विशिष्ट साधना है, जिसमें सत्यार्थ तत्त्व का दर्शन होता है, आत्मशान्ति प्राप्त होती है तथा क्लेश से मुक्ति प्राप्त होती है। जो साधक प्रतिक्षण अभिनव-अभिनव आत्म-सुख का वेदन करता है उसे मान-अपमान किञ्चित् भी प्रभावित नहीं कर पाते। अध्यात्म का साधक स्वसुख की अनुभूतियों के रसपान में निमग्न रहता है तथा वह परभावों, प्रपंचों से पूर्ण उपेक्षा रखता है।

9. The soul-knowledge is an internal exertion that highlights the reality, provides tranquility and washes out anxiety. Worldly dispositions of respect or disrespect do not affect a bit the practitioner of the soul-knowledge; he experiences, every moment, renewed soul-happiness. He remains engrossed in drinking the nectar of own-happiness, away from all other dispositions and ostentations.

---

10. जो साधक अध्यात्म-शून्य होकर साधना करता है; वह शारीरिक, मानसिक पीड़ा से पीड़ित रहता है। वह अपमान पर पीड़ित होता है, खिन्न होता है और सम्मान पर प्रसन्न होता है, इस प्रकार आर्त-रौद्र दुर्ध्यानों में ही उसका चित्त स्थापित रहता है। परमार्थ-तत्त्व से उसे कोई प्रयोजन नहीं रहता। यहाँ तक कि परमार्थभूत सत्यार्थ-तत्त्व को सुनना भी नहीं स्वीकारता। साधनों में जीवन स्वाहा कर लेता है, साध्य पर उसका लक्ष्य ही नहीं जाता है।

10. The practitioner who exerts without the soul-knowledge experiences bodily and mental agony. He is anguished when disrespected and pleased when respected; his mind thus remains established in sorrowful *(ārta)* and cruel *(raudra)* meditation. He has no concern about the nature of the reality. He does not even want to listen to the nature of the reality. He wastes his entire life on the means *(sādhana)* without ever thinking about the object-of-attainment *(sādhya)*.

---

11. आत्मशान्ति, सन्तोषी जीवन जीने की महान् कला 'अध्यात्म' है। अध्यात्मिक-पुरुष हर-पल संतोष का जीवन जीता है। उसे न कोई शत्रु और न ही मित्र प्रतीत होते हैं, वह समत्वभाव से सब पर सम-दृष्टि रखता है। संसारी प्राणियों को संतोष, सन्तुष्टि से बड़ी अन्य कोई वस्तु नहीं है।

11. The great art of leading the life of inner happiness and contentment is the soul-

knowledge. The man with soul-knowledge experiences contentment every moment. He does not see either a friend or a foe in anyone but, through his disposition of equanimity, sees all as same. For the worldly men, there is nothing more important than the sense of contentment.

---

12. वस्तु का यथार्थ-बोध होते ही अध्यात्म-दृष्टि बनने लगती है। यथार्थ-बोध के लिए सतत अध्यात्म-शास्त्रों का स्वाध्याय, चिंतन-मनन की आवश्यकता है। अध्यात्म-चिंतन के बिना समता जीवित रख पाना कठिन है।

12. As soon as one grasps the nature of the reality, the manifestation of the soul-knowledge begins. One must incessantly study the Scripture and reflect on it in order to grasp the nature of the reality. Without reflection on the self, it is difficult to maintain equanimity.

---

13. श्रुतामृत पान सतत अनिवार्य समझना चाहिए, जैसे शिशु को दुग्धपान अनिवार्य है, उसके बिना शिशु का जीवन जीना कठिन है। इसी प्रकार से श्रुतामृत पान साधक के लिए अनिवार्य है। अध्यात्म के बिना, स्वाध्याय के बिना वैराग्य जीवित रख पाना दुर्लभ है।

13. Treat the incessant study of the Scripture essential, as milk is for the infant; it is difficult for the infant to survive without milk. In the same way, it is essential for the ascetic to drink the nectar of the Scripture. It is extremely difficult to keep alive the disposition of world-detachment without the soul-knowledge and the study of the Scripture.

---

14. सम्यक् तत्त्व-प्रबोधक प्रमाणित-आचार्यों के ग्रंथों का स्वाध्याय सर्वप्रथम करना चाहिए, अन्य का बाद में, क्योंकि वक्ता की प्रमाणिकता ही वचनों को प्रमाणित बनाती है।

14. Before studying anything else, study the scriptural texts composed by authentic preceptors *(ācārya)* that impart right knowledge of the reality. Only the authenticity of the speaker validates his words.

---

15. समता भाव, परभावों में उपेक्षा, निज स्वभाव की अपेक्षा, रत्नत्रय धर्म में तत्परता, विषयों से विरक्ति, जिन-भक्ति में दृष्टि, अल्प-आहारी, सदानन्दी ही परम-अध्यात्म के सार को प्राप्त होता है।

15. These qualities – equanimity, indifference to the 'other', inclination to the 'self', wakefulness in the dharma of the Three-Jewels *(ratnatraya)*, detachment to sensual-pleasures, devotion to Lord Jina, reduced diet, and ever-blissfulness – get to the essence of the supreme soul-realization.

---

16. वचन प्रसार का निरोध अध्यात्म साधक के लिए अनिवार्य अंग है। वचन-वृत्ति से चित्त भ्रान्त होता है और चित्त की भ्रान्ति अध्यात्म-योग को भङ्ग कर देती है, इसलिए साधक को सर्व-प्रकार से मौनव्रत धारण करना चाहिए।

16. Restriction in speech is an essential limb for the person aiming at soul-realization. The tendency to speak activates the mind and an active mind vitiates the soul-yoga. Therefore, it is essential for the person aiming at soul-realization to observe the vow of silence.

---

17. अध्यात्मिक जीवन पवित्र-जीवन है। कतक (फिटकरी) के संयोग से जैसे पानी स्वच्छ होता है वैसे ही अध्यात्मिक जीवन स्वच्छ-शीतल समरस युक्त होता है; जो परभावों से पूर्ण परे है।

17. The life directed toward the soul is pristine. As water gets purified in association with alum, in the same way, the life directed toward the soul becomes filled with the pure and soothing water of equanimity when distanced completely from the thought of the 'other'.

---

18. जो साधक विषय-कषाय से शून्य रहकर, भेद-विज्ञान का आश्रय लेकर, परमब्रह्म अध्यात्मविद्या में प्रतिक्षण लीन रहते हैं; वही अपनी आत्म-प्रज्ञा की रक्षा करते हैं।

18. Only those practitioners are able to protect their soul-intellect who, while keeping themselves away from the passions and the senses and taking refuge in the science-of-discrimination, are engrossed incessantly in the supreme state of soul-knowledge.

---

19. पाप प्रवृत्ति का जहाँ नव-कोटि से पूर्ण त्याग है, तत्त्वाभ्यास में चित्त लीन है, विश्वमैत्री का भाव है, हास्य-कर्कश-मर्मभेदी शब्दों का जहाँ प्रयोग नहीं, वहीं जिन-शासन का अध्यात्म है।

19. Where there is complete renunciation of the evil-tendencies, where the mind is engrossed in study of the nature of the reality, where the disposition of world-brotherhood exists, and where the words that are ridiculing, anguishing and heartrending are not used, exists the soul-knowledge, as promulgated by Lord Jina.

---

20. विभिन्न कष्टों के मध्य भी जो आनन्दपूर्ण जीवन जीने की कला है; वही अध्यात्म है। वस्तु स्वतंत्रता का जहाँ पाठ पढ़ाया जाता है; वहीं अध्यात्म होता है।

20. The art of living happily in midst of various hardships is soul-realization. Where the independence of each substance is taught, there exists soul-realization.

---

21. ज्ञान की विशालता में सम्पूर्ण-ज्ञेय प्रविष्ट हो जाते हैं, ज्ञान समाप्त नहीं होता, ज्ञेय अल्प अवश्य होते हैं।

21. All objects-of-knowledge *(jñeya)* get entry into the expanse of knowledge *(jñāna)*; knowledge is infinite, objects-of-knowledge are finite.

---

22. आध्यात्मिक ज्ञानी पुरुष निन्दा-कषाय जयी, मितभाषी, मितभोजी होता है।

22. The knowledgeable, soul-directed man vanquishes passions arising out of calumny, talks sparingly and takes reduced diet.

---

23. बहुप्रलापी ज्ञानी कहाँ? ज्ञानी के बहुप्रलाप कहाँ?

23. How can the talkative be knowledgeable? How can the knowledgeable be talkative?

---

24. विज्ञजन विचारों से भी निस्पृह जीवन जीते हैं, क्योंकि बहु-विचार आत्म-क्लेश के कारण हैं।

24. Since excessive thinking causes anguish to the soul, learned men live a life where thoughts are restrained.

---

25. जाति, कुल, वंश, परिवार, सम्प्रदाय, पंथ ये सत्यार्थ वस्तु-स्वभाव नहीं, अपितु कर्म कषाय-पुंजतंत्र हैं। चैतन्य-पुंज, जीवत्व-भाव एकमात्र अध्यात्म है।

25. Caste, lineage, race, family, group and sect are not the true nature of objects; these are entanglement of the karmas and the passions. The soul-knowledge consists only in the disposition of own conscious-soul.

---

26. चैतन्यधातु ज्ञायक का शुद्ध धर्म है, अन्य मिश्र का परिणमन है, असमानजातीय का कर्म है।

26. The element of consciousness is the pure attribute of the knower-soul. Rest everything is the result of the union of other elements, i.e., the result of the union of different classes of substances.

---

27. व्यवहार में कुल-जाति-वंश-परिवार-सम्प्रदाय-पंथ हैं, परमार्थ में सबसे शून्य सत्-सत्-सत् ही है, शुद्ध वस्तुत्व-भाव।

27. Empirically lineage, caste, race, family, group and sect exist; in reality only and only the eternal *(sat)* – the soul – exists in its pure manifestation termed *vastutva*.

---

28. ज्ञानी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का अधिक विचार नहीं करता, क्योंकि उसकी सत् पर दृष्टि होती है। उत्पाद-व्ययादि पर्याय हैं, पर सत्पना त्रैकालिक है।

28. The knowledgeable man does not deliberate much on origination *(utpāda)*, destruction *(vyaya)* and permanence *(dhrauvya)*; he sets his eyes on the eternal *(sat)*. Origination and destruction, etc., are modes *(paryāya)*, the eternal exists in the three times.

---

29. प्रवाहीमान लोक के प्रवाह से जो आत्म-रक्षा कर लेता है, वह आत्मलोक में विशिष्ट स्थान को प्राप्त होता है और फिर वही विश्व में 'अध्यात्म-गुरु' संज्ञा को सहज ही प्राप्त कर लेता है।

29. The one who saves his soul from the current of the streaming-world attains a place of distinction in the soul-world. He, naturally, is known in the world as the 'soul-guru'.

---

30. न किसी को प्रभावित करो, न किसी से प्रभावित होना, उभय अवस्थाएँ आत्मशान्ति को भंग करने वाली हैं। एकमात्र निजात्म-ब्रह्म से ही प्रभावित रहो, यही 'अध्यात्म-दशा' है।

30. Neither try to impress anyone, nor get impressed by anyone; both these states perturb the peace of own-soul. Remain impressed by the supreme own-soul; this is the state of soul-realization.

---

31. प्रेममार्ग से उपेक्षा, श्रेयमार्ग में लीनता तभी सम्भव है जब व्यक्ति का चित्त अध्यात्म-विद्या की ओर आकर्षित हो। मात्र शरीर की साधना करने वाले कर्तापन के बोझ से युक्त रहते हैं और जो अध्यात्म-साधना में लीन होते हैं वे कर्तापन के भार से शून्य निजानन्द से पूर्ण रहते हैं।

31. Indifference to the path leading to attachment and immersion in the path leading to liberation is possible only when the mind is attracted towards the soul-knowledge. Those who concentrate only on the body are burdened with the sense of 'doer'; those who concentrate on the soul are free from the sense of 'doer' and are immersed in own-soul-happiness.

---

32. जिसकी अछेद्य-अभेद्य चिद्ब्रह्म आत्मप्रभु पर अनिमेष, अपलक दृष्टि है वह अध्यात्मसार को प्राप्त होता है। ऐसा योगी सम्पूर्ण विषय-कषाय-संज्ञाओं से भिन्न होकर एकत्व-विभक्त अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता हुआ परम-सुख को प्राप्त होता है।

32. The one who concentrates unblinkingly on the supreme own-soul that cannot be pierced or broken attains the essence of the soul-knowledge. Such a *yogī* separates his soul from all sensual-pleasures, passions and instincts; thereupon experiencing the one and only sense-independent bliss, he attains the supreme happiness.

---

33. कर्म-विपाक काल में भोले प्राणी के लिए अन्य कोई नाथ नहीं होता, जो उसके कर्म-विपाक को परिवर्तित कर दे, एकमात्र आत्म-धर्म ही है।

33. For the ignorant living-beings, there is no refuge that can alter the impact of fruition of karmas; soul-dharma is the only refuge.

---

34. अध्यात्म ध्यान-साधना से साधक संसार में रहते हुए संसारातीत की अनुभूति को प्राप्त कर लेता है, फिर बाह्य पाप-प्रवृत्तियों से पूर्ण उपेक्षा भाव को प्राप्त होता है। जगत् की कामनाएँ और कामनियाँ उस साधक को लेश मात्र भी मानसिक क्लेश नहीं दे सकती हैं।

34. Through soul-meditation, the practitioner, while living in the world, attains unworldly experience; he subsequently sheds all external evil-inclinations. Worldly longings and women no longer cause him mental agony.

---

35. अनुत्पन्न, अहेतुक वस्तु का पारिणामिक भाव सदा उत्पाद-व्यय-ध्रुवभूत है, स्वाश्रयी भाव है। वस्तु के वस्तुत्व पर लक्ष्य रखना अध्यात्मिक-पुरुष की सार्थक-दृष्टि है।

35. The object *(vastu)* that is uncreated and sovereign exhibits constantly transformations in form of origination, destruction and permanence; these transformations are self-dependent. The vision of the soul-directed man aims at the object-reality *(vastutva)*.

---

36. जो साधक पूजा में उन्नत भाव नहीं रखता, निंदा में अवनत भाव नहीं लाता, एकमात्र सहज-सरल परिणाम रखता है वही अध्यात्म-विद्या के पुष्कल फल को अविराम प्राप्त होता है।

36. Only the practitioner who is not elated on reverence and depressed on censure,

but maintains natural and simple disposition, attains incessantly the excellent fruit of soul-knowledge.

---

37. धन-धरती, पूजा-प्रतिष्ठा का राग व्यक्ति के चित्त को चलायमान कर देता है। चित्त की अस्थिरता में अध्यात्म फलित नहीं होता, इसलिए आत्म-साधक इनके स्वामित्व से भिन्न रहकर साधना करता है।

37. Attachment for wealth and land, and reverence and glory, stirs up the mind of the practitioner. Soul-realization does not take place in the stirred up mind; the practitioner of soul-realization, therefore, remains aloof from the acquisition of such objects.

* * *

"तुमने घर छोड़ दिया, परिजन-पुरजन छोड़ दिए हैं, परन्तु उनका राग नहीं छोड़ पा रहे हो। बाहर के भोग छोड़कर आ गए, पर भोगों की आकांक्षा से लिप्त हो, भावों में भोग चल रहा है। तुम अभी अध्यात्म-योग से अत्यंत दूर हो।"

(आचार्य विशुद्धसागर, **'अलिंगग्गहणं'**, पृ. 397)

19

सत्यार्थ-बोध

संस्कार

Soul-impressions

1. मानव जीवन में महानता व दीनता संस्कारों से ही आती है। सुसंस्कारों से मानव जीवन महानता को प्राप्त होता है और कुसंस्कारों से हीनता को प्राप्त होता है। निर्णय आपको स्वयं करना है कि आपको महान् बनना है या दीन?

1. Greatness or lowliness in human life comes from soul-impressions *(saṃskāra)*. Virtuous soul-impressions result in greatness and wicked soul-impressions in lowliness. Decide yourself whether you wish to become great or lowly.

---

2. कुसंस्कार, अग्नि-अजगर-सिंह-विष से भी अधिक आत्मा के लिए अहितकारी हैं। सिंहादि क्रूर प्राणी मात्र वर्तमान तन का ही नाश करते हैं, परन्तु कुसंस्कार आत्मानन्द को भव-भव में विकृत करता है।

2. Wicked soul-impressions harm the soul more than the fire, the python, the lion and the poison. Cruel animals like the lion destroy the present body but wicked soul-impressions destroy the soul-happiness birth-after-birth.

---

3. कुसंस्कार यश:कीर्ति, ज्ञान-विज्ञान, कुलीनता, साधुता सबका युगपत् नाश कर देता है।

3. Wicked soul-impressions destroy simultaneously the renown and glory, the knowledge temperament, the nobility, and the asceticism.

---

4. जैसा संस्कार जीवन में आता है वैसा ही भविष्य बनता है। यदि अशुभ कर्म के कुसंस्कार जीवन में एक बार भी प्रवेश कर गए, तो व्यक्ति कुसंस्कारों के कुफल को जानता हुआ भी वही कार्य करता है, जिससे कुगति में जाना पड़े।

4. The soul-impressions determine the future. If wicked soul-impressions that encourage evil karmas take shape in the life of a man only once, he knowingly indulges in activities that bring about the lowly state-of-existence.

---

5. संस्कारमय जीवन हमेशा आनन्दमय होता है। बाल-गोपाल उस व्यक्ति के प्रशंसक होते हैं जिसका जीवन सुसंस्कारों से पूर्ण होता है। श्रेष्ठ संस्कार श्रेष्ठ-जनों में ही दृष्टिगोचर होते हैं, हीन-जनों में सुंसस्कारों की गन्ध भी नहीं होती है।

5. The life with right soul-impressions is always blissful. The kin praises the person whose life is filled with virtuous soul-impressions. Virtuous soul-impressions are visible only in virtuous men; the lowly men do not even smell of virtuous soul-impressions.

---

6. श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ सुसंस्कारों से युक्त जीवन जीने की आवश्यकता है। लोकप्रियता, जगत् पूज्यता उन्हें ही प्राप्त होती है जो सुसंस्कारों से भरित जीवन जीते हैं।

6. To attain excellence, it is essential to lead life with right soul-impressions. Those who lead life that is full of virtuous soul-impressions become well-known and are esteemed in the world.

---

7. संस्कार-हीन व्यक्ति को मार्ग की धूल-तुल्य जानो। मार्ग में पड़ी धूल लोक में पैरों से रौंधी जाती है, वही धूल मिट्टी कुम्भकार के द्वारा संस्कारित कर पात्र बना दी जाती है और बाजार में मूल्यवान बन जाती है। उसी प्रकार संस्कारवान पुरुष मूल्य को प्राप्त होता है, इसलिए सज्जनों को स्व-जीवन को श्रेष्ठ-सुसंस्कारों से भावित करना चाहिए।

7. The man without right soul-impressions is like the soil-dust found on the path. The soil-dust on the path is crushed under the feet; the same soil-dust, when moulded into a pot by the potter becomes valuable. In the same way, the man with right soul-impressions becomes valuable. The noble men should embellish their lives with excellent soul-impressions.

---

8. साधक का धर्म है कि वह प्रतिक्षण स्वात्महितकारी सूत्रों से निजात्मा को संस्कारित करता रहे।

8. The ascetic should, through study of aphorisms that are beneficial to the soul, constantly mould own-soul with right impressions.

---

9. तुच्छ जनों के सहवास से कुसंस्कार आ ही जाते हैं और महाजनों के साथ रहने से श्रेष्ठ संस्कार प्राप्त होते हैं, इसलिए महाजनों के साथ ही सहवास करना चाहिए, जिससे सुसंस्कारों की वृद्धि हो।

9. The company of lowly men gets you wicked soul-impressions and the company of noble men gets you excellent soul-impressions; therefore, stay always in the company of noble men.

---

10. स्थापना निक्षेप की पूज्यता मात्र मंत्र-संस्कारों पर आलम्बित है। मंत्र-संस्कारों के माध्यम से पाषाण धातु की प्रतिमा भी पूज्यता को प्राप्त हो जाती है, तो फिर संयम-तप-त्याग के संस्कारों से यह आत्मा पूज्यता को प्राप्त क्यों नहीं होगी? अवश्य ही होगी।

10. The worshipfulness in an idol comes through installation *(nikṣepa)* in form of representation *(sthāpanā)* and purification through incantation of mantras. When an idol of stone can get worshipfulness through incantation of mantras, why would the soul not get worshipfulness when purified through impressions of self-restraint, austerity and renouncement?

---

11. संस्कारवान सर्वत्र सम्मान को प्राप्त होता है और संस्कारहीन सर्वत्र अपमान को प्राप्त होता है।

11. The man with virtuous soul-impressions is revered everywhere and with wicked soul-impressions is disrespected everywhere.

---

12. धन-धरती से भी अर्घवान यदि कुछ है; तो वह सु-संस्कार है। धन-धरती स्वग्राम मात्र में ही दृष्टिगोचर होती है, परन्तु संस्कार सर्वत्र दिखाई देते हैं।

12. Virtuous soul-impressions are more precious than wealth and land. Wealth and land are visible only in own village but the soul-impressions are visible everywhere.

---

13. धनवान स्वदेश में ही सम्मान को प्राप्त करता है, पर सुसंस्कारवान मनीषी सर्वदेशों में विनय एवं पूज्यता को प्राप्त करता है।

13. The wealthy gets respect only in his own country but the man with virtuous soul-impressions is revered and worshipped in all countries.

---

14. श्रेष्ठ संस्कार शत्रु के पास ही क्यों न हों उन्हें भी आदर के साथ स्वीकार करना चाहिए और कुसंस्कार मित्र के पास ही क्यों न हों उन्हें तिरस्कार के साथ छोड़ देना चाहिए।

14. The virtuous soul-impressions of even a foe should be accepted gracefully and the wicked soul-impressions of even a friend should be rejected scornfully.

---

15. धर्म एवं श्रेष्ठ-विद्या का वास वहीं रहता है जहाँ सुसंस्कार होते हैं। सुसंस्कारवान के पास जब धर्म और विद्या स्थिर हो जाती है तब सम्मान व श्री स्वयमेव आ जाती है।

15. Dharma and excellent learning stay where the virtuous soul-impressions are found. When dharma and excellent learning get stabilized, respect and wealth come on their own.

---

16. कुसंस्कारों से प्रभावित जीवन लज्जा, कुलीनता, सद्विचार-शून्य हो जाता है। वहाँ सम्पूर्ण श्रेष्ठ-गुण नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

16. The life affected by the wicked soul-impressions gets devoid of modesty, nobility and good-thoughts. All excellent qualities get destroyed.

---

17. साधुजनों की संगति से सुसंस्कारों का जन्म होता है। संस्कारशील सर्वत्र सम्मान को प्राप्त होता है, जबकि संस्कारहीन का सर्वत्र अपमान और अपयश होता है।

17. The company of noble men gives birth to virtuous soul-impressions. The man with virtuous soul-impressions is revered everywhere and the man with wicked soul-impressions is disrespected and denounced everywhere.

---

18. कुसंस्कारों के विष से साधक को प्रतिक्षण सावधान रहने की आवश्यकता है। विष की कणिका भी मृत्यु का कारण बन जाती है, इसी प्रकार क्षण-भर के अशुभ संस्कार भी प्राणी के संयम के प्राण ले लेते हैं।

18. The practitioner should beware, every instant, of the poison of wicked soul-impressions. A droplet of poison can cause death; in the same manner, wicked soul-impressions of even an instant can cause death of man's self-restraint.

---

19. साधना और समाधि की सिद्धि चाहिए; तो सुसंस्कारों से स्वात्मा को संस्कृत करो, कुसंस्कारों से स्वात्मा को सुरक्षित करो।

19. For the attainment of religious observances and meditation, refine own-soul with virtuous soul-impressions while protecting it from wicked soul-impressions.

---

20. धर्म, यश, सम्पत्ति और संस्कृति की रक्षा तभी संभव है; जब देश, राष्ट्र, समाज में सुसंस्कारों की रक्षा होगी।

20. Protection of the dharma, renown, wealth and culture is possible only in the country, nation and society where virtuous soul-impressions are protected.

---

21. गुण ग्रहणता का संस्कार व्यक्ति को महान् बना देता है, इसलिए प्रतिक्षण गुण ग्राह्य दृष्टि बनाकर चलो। अवगुणियों में भी गुण देखना प्रारंभ करो, स्वयमेव ही आत्मविकास होगा।

21. The soul-impression of adopting good-qualities makes the man great; therefore, keep an eye, every moment, on adoption of good-qualities. See good-qualities even in wicked persons; your soul will automatically get developed.

---

22. संस्कारवान ही संस्कृति की रक्षा कर सकता है। संस्कारहीन स्वयं की रक्षा नहीं कर पाता, फिर वह संस्कृति की क्या रक्षा करेगा?

22. Only the man with virtuous soul-impressions can protect the culture. When the man with wicked soul-impressions cannot protect himself, how can he protect the culture?

---

23. संस्कारहीनों की संगति श्रेष्ठ जनों को भी अपयश का कारण बन जाती है। श्रेष्ठ-जनों को किसी भी स्थिति में पुण्यक्षीण एवं संस्कारहीन की संगति नहीं करना चाहिए।

23. Company of those with wicked soul-impressions brings disrepute to even excellent men. Noble men should never be in the company of men without merit and with wicked soul-impressions.

---

24. आगमज्ञान, निर्दोष-चर्या संस्कारशील के पास ही रहती है। कुशल-ज्ञाता वे ही हैं, जो आत्म संस्कार युक्त हैं।

24. Scriptural-knowledge and unblemished conduct are found only in men with virtuous soul-impressions. Skillful men of knowledge are those with virtuous soul-impressions.

---

25. संस्कारहीन की जननी-माता ही साथ नहीं देती, फिर अन्य किसी से सहयोग की क्या कल्पना करें?

25. Even his mother deserts the man with wicked soul-impressions, how can anyone else provide him support?

---

26. यदि आत्म विकास की भावना है और यदि जनप्रियता भी चाहते हो तो संस्कार प्रियता प्राप्त करो। संस्कारहीन स्वजनों का ही प्रिय नहीं होता; फिर जनप्रिय कहाँ बनेगा?

26. If you wish soul-development and also love from the people, develop liking for virtuous soul-impressions. The man with wicked soul-impressions is not liked even by his kin, how can he win love from the people?

---

27. यदि आप धर्म-धर्मात्मा के मध्य स्थान बनाना चाहते हो, तो संस्कारवान बनो।

27. If you wish a place among the dharma and its observers, adopt virtuous soul-impressions.

---

28. सुसंस्कारों की हानि से मानव की मानवता की ही हानि है। पशु और मानव में संस्कार का ही अन्तर है। मानव विवेकशील प्राणी है, वह प्रत्येक कार्य सुविचार, सुविवेक का आश्रय लेकर करता है, जबकि पशु विवेकहीन होकर लोक में अपनी संज्ञाओं की पूर्ति करता है, इसलिए मानवता जीवित रहे ऐसा कार्य करो।

28. The loss of virtuous soul-impressions amounts to the loss of the humanity. The difference between the animal and the human is due to their respective soul-

impressions. The human has the power of discrimination and does every work after due deliberation while the animal just satisfies its instincts *(saṃjñā)*, without discrimination. Therefore, engage in such works that help humanity survive.

---

29. संस्कारवान लज्जावान भी होता है। बिना लज्जा-गुण के संस्कारों की रक्षा होना अत्यंत दुर्लभ कार्य है। लज्जाशील, कुलवन्त जीव, स्वकुल जाति के अपयश हेतु कोई भी अशुभ कार्य नहीं करता है।

29. The man with virtuous soul-impressions has modesty too. It is extremely difficult to protect the virtuous soul-impressions without the attribute of modesty. The man with modesty and nobility does not engage in any task that may bring disrepute to his dynasty and caste.

---

30. कुलीन-नर अपने प्राणों की चिन्ता नहीं करते, अपितु अपने सुसंस्कारों की हमेशा सुरक्षा करते हैं।

30. The noble men do not worry about their life but protect incessantly their virtuous soul-impressions.

---

31. सुसंस्कार तभी तक सुरक्षित रहते हैं; जब तक कषाय-भाव की पुष्टीकरण के निमित्तों से जीव अप्रभावित है। कषायपोषण के निमित्तों से प्रभावित होते ही जीवन में सुसंस्कारों का अभाव होने लगता है। निर्लज्ज खुलकर कुसंस्कारों से प्रभावित होकर कुकृत्यों में उन्मत्त हो जाता है।

31. The virtuous soul-impressions remain protected so long as the man is not affected by the causes of strengthening the passions *(kaṣāya)*. When the man starts getting affected by the causes of strengthening the passions, the virtuous soul-impressions start disappearing. The ignoble, under the spell of the wicked soul-impressions, openly and frenziedly gets involved in evil activities.

---

32. सुसंस्कार-शून्य जीव कदाचित् पूर्व-पुण्य के नियोग से उच्च पद पर पहुँच जाए, पर फिर भी वह उच्चता को प्राप्त नहीं कर पाता, अपितु लोक में उपहास को प्राप्त कर अंतरंग दु:ख की वेदना को प्राप्त होता है।

32. If somehow a man without virtuous soul-impressions, but due to his earlier meritorious *(puṇya)* karmas, reaches a high position, still he does not attain laudability. He gets ridiculed in the world and suffers from internal anguish.

---

33. उन कुसंस्कारों से आत्म रक्षा प्रतिक्षण करनी चाहिए जो क्षण-क्षण में चित्त को संतापित करते हैं, क्योंकि संताप की पीड़ा को पीड़ित ही समझता है, वह जीते-जी मृत्यु से अधिक पीड़ा को सहन करता है।

33. Protect your soul, every moment, from those wicked soul-impressions that cause constant mental anguish. Only the man down with such anguish knows the suffering involved; while living, he bears more pain than the pain of death.

---

34. कुसंस्कार अहोरात्र, मानसिक, शारीरिक, वाचनिक कष्ट देते हैं। कुत्सित-चित्त से स्वात्म-विशुद्धि, परम निर्मल-सुख कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

34. The wicked soul-impressions cause, day and night, the suffering of the mind, body and speech. With a despicable mind one can never attain the purity of own-soul and pristine happiness.

---

35. संस्कारहीन परम ज्ञान-धन से दरिद्री होता है, वह ज्ञानियों की सभा में भिखारी बनकर रहता है।

35. The man with wicked soul-impressions is utterly poor; he is like a beggar in the assembly of the learned.

---

36. यदि आप धर्म-धर्मात्माओं के मध्य सम्माननीय बने रहना चाहते हो, तो सुसंस्कारों का धन संग्रह करो।

36. If you wish respectfulness amidst the followers of the dharma, collect the wealth of virtuous soul-impressions.

---

37. संसार में वे ही जीव धन्यवाद एवं पूज्यता के पात्र होते हैं, जो सदा कुसंस्कारों से पृथक् रहकर सुसंस्कारों को सम्मान देते हैं। सुसंस्कारित सज्जन पुरुष जहाँ-जहाँ पहुँचे हैं वहाँ-वहाँ वात्सल्य के अश्रुजल से उनके चरण पखारे जाते हैं।

37. Only those men receive gratefulness and worshipfulness in the world who remain always away from wicked soul-impressions and value virtuous soul-impressions . The feet of the men with the virtuous soul-impressions, wherever they may be, are anointed with the tears of tender affection.

* * *

20

सत्यार्थ-बोध

आत्म-तत्त्व

Soul-substance

1. जो सत्-चित्-आनन्दमय है, परभावों से भिन्न स्वभाववान, ज्ञान-दर्शनस्वभावी है, जड़त्वशून्य, चैतन्यभूत है, वह आत्म-द्रव्य है।

1. That which is ever engrossed in happiness, has nature that is distinct from external dispositions, has knowledge and perception as its nature, is not inanimate and is with consciousness, is the soul-substance.

---

2. स्पर्श, रस, गंध, वर्णादि से रिक्त ज्ञान-दर्शन धर्म से युक्त जो द्रव्य है, वही आत्म-द्रव्य है।

2. The soul-substance is void of qualities like touch, taste, odour and colour, and is with attributes of knowledge and perception.

---

3. परमब्रह्म का उपासक, उपास्य-भाव को जो प्राप्त होता है, वही आत्म-तत्त्व है।

3. The soul-substance is the worshipper of the supreme-soul, and itself attains the status of the object-of-worship.

---

4. जगति पर स्थावर जंगम पदार्थों का जो ज्ञाता-दृष्टा है, वही आत्म-तत्त्व है।

4. The soul-substance knows and sees all immobile and living substances in the world.

---

5. चैतन्य का जो स्वभाव है वही चेतनत्व आत्म-तत्त्व है।

5. Consciousness, the nature of the living, is the soul-substance.

---

6. विश्व में दो ही मुख्य तत्त्व हैं, एक चेतन-तत्त्व दूसरा अचेतन-तत्त्व।

6. There are two principal substances in the world, one with-consciousness and the other without-consciousness.

---

7. चेतन-तत्त्व अर्थात् जीव-तत्त्व जिसे आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञ, ज्ञानी, क्षेत्रज्ञ, प्राणी, भूत, सत्व, जीवादि नामों से जाना जाता है।

7. The substance with-consciousness is the soul-substance *(jīva tattva)*, known also by names including *ātmā, antarātmā, jña, jñānī, kṣetrajña, prāṇī, bhūta, satva,* and *jīva.*

---

8. संसार में जितने भी दर्शन एवं सम्प्रदाय हैं, वे सभी दो तत्त्वों की ही स्व-स्व बुद्धि से मीमांसा करते हैं, परन्तु सत्य-सत्य ही होगा।

8. All philosophies and religious groups reflect deeply on these two substances as per their own intellect, but the truth prevails.

---

9. तत्त्वों के सत्यार्थ-बोध के लिए पूर्ण-ज्ञाता बनना पड़ेगा, अल्प इन्द्रिय-ज्ञान से पूर्ण-सत्य का बोध सम्भव नहीं है। कैवल्यज्ञान से वस्तु की पूर्ण-सत्यता सकल-प्रत्यक्ष जान सकते हैं।

9. To understand the reality of substances, one has to become a perfect knower; it is not possible to know the reality of substances completely through the miniscule sensory knowledge. Through the perfect-knowledge *(kevalajñāna)* the reality of substances can be known completely and directly.

---

10. सम्पूर्ण-विश्व को तत्त्वमय समझना चाहिए। एक भी ऐसी वस्तु नहीं है जो तत्त्वभूत न हो, जो वस्तु का स्वभाव है वही तत्त्व है। आत्मा तत्त्व भी है, पदार्थ भी है, द्रव्य भी है।

10. The whole world comprises substances called the reality *(tattva)*. No substance is outside the realm of the reality; the very nature of the substance is the reality. The soul *(ātmā)* is a reality *(tattva)*, an object *(padārtha)* and also a substance *(dravya)*.

---

11. विश्व में सबसे महत्त्वशील श्रुतज्ञान है; जो कि कैवल्यज्ञान पर्याय के प्रकटीकरण का कारण है।

11. In the world, scriptural-knowledge *(śrutajñāna)* is of utmost importance as it is the cause of the manifestation of the mode *(paryāya)* with perfect-knowledge *(kevalajñāna)*.

---

12. आनन्दमयी और शान्तिपूर्ण जीवन तत्त्वज्ञानी का ही निकलता है। तत्त्वज्ञानी पर-भावों से सदा ही निज को भिन्न देखता है और आत्मगुण-वैभव का अनुभवन प्रतिक्षण लेता है।

12. Only the man who knows the reality leads a blissful and peaceful life. He always sees himself as distinct from 'other' dispositions and experiences incessantly the glory of own-soul.

---

13. तत्त्वज्ञानी संकटों की बेला में भी हर्षित-भाव का अभाव नहीं होने देता। माध्यस्थ-भाव तत्त्वज्ञ का मूलमंत्र है।

13. Even in times of distress, the man who knows the reality maintains his blissful disposition. The disposition of neutrality is his primary mantra.

---

14. तत्त्वज्ञान के साथ क्रियाधर्म अमृतभूत हो जाता है। तत्त्वज्ञान से शून्य क्रियाधर्म कषाय का भी साधन बन जाता है।

14. The activities performed with the knowledge of the reality become like nectar. The activities performed without the knowledge of the reality also cause the rise of the passions *(kaṣāya)*.

---

15. तत्त्वज्ञानी सुख-दु:ख में साम्यभाव का आश्रय लेता है। तत्त्वज्ञान शून्य हर्ष-विषाद कर संक्लेशता पूर्ण जीवन जीता है, जो अकाल-मरण एवं दुर्गति का कारण है।

15. The man with the knowledge of the reality adopts equanimity in times of happiness and misery. The man without the knowledge of the reality is either elated or dejected during such times; he thus leads a life full of anxiety, causing to himself untimely death and evil state-of-existence.

---

16. जगत् के सम्पूर्ण तत्त्वों में हेय-उपादेय, उपेक्षा-दृष्टि की योग्यता एकमात्र आत्म-तत्त्व में ही होती है, लोक में अन्य कोई ऐसा तत्त्व नहीं है जो हेय-उपादेय, उपेक्षा-भाव को जानता हो।

16. Only the soul-substance *(ātma-tattva)* has the capability to see all substances *(tattva)* in the world with the disposition of acceptance, rejection or indifference. No other substance in the world knows these dispositions.

---

17. आत्म-तत्त्व को आत्म-तत्त्व ही जानता है, अन्य तत्त्वों में जानने की योग्यता का अभाव है। जब आत्म स्वात्म-तत्त्व में लीन होता है तब जगत् के जड़तत्त्वों से दूर रहता है। साधक जाग्रत रहकर अन्तःकरण का प्रबल निर्णय करता है तब वह स्वात्मद्रव्य की स्वाधीनता को समझ पाता है, पश्चात् वह विश्व-व्यवस्था को देखकर माध्यस्थ हो जाता है।

17. Only the soul-substance *(ātma-tattva)* knows the soul-substance; other substances lack the capability to know. When the soul-substance is engrossed in own soul-substance it maintains distance from all inanimate substances. The practitioner, remaining awake, determines through strong concentration the independence of the own soul-substance. Later on, seeing the world-system, he adopts the disposition of neutrality.

---

18. आत्मब्रह्म वेत्ता सर्वतत्त्व वेत्ता है। जगति पर निजस्वरूप मात्र आत्मब्रह्म है। जो उसे जान लेता है, फिर अन्य को जानने की आवश्यकता नहीं होती। जिसने आत्मतत्त्व को नहीं जाना उसने अपने जीवन में कुछ भी नहीं जाना।

18. The man who knows the own supreme-soul knows every substance. In this world, only the own supreme-soul is the own-nature. The one who knows the own-nature does not need to know anything else. The one who has not known the own-nature has not known anything in his life.

---

19. जिसमें स्वप्रमेय नहीं; उन प्रमेयों में ज्ञानीजन स्वप्रज्ञा को व्यर्थ नष्ट नहीं करते। ज्ञानी-पुरुष शान्तचित्त से तटस्थ रहकर स्वतत्त्व, स्वप्रमेय को जानकर भिन्न लोक में चित्त नहीं लगाता।

19. The learned men do not waste their intellect on the objects-of-knowledge that do not comprise the own soul. With tranquil and unbiased mind they gain knowledge of the own soul-substance, i.e., the own object-of-knowledge, and withdraw their mind from everything external.

---

20. अनन्त गुणों से युक्त आत्म-तत्त्व है जो कि स्वयं में ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय है, प्रमाण-प्रमाता-प्रमेय है। परमार्थ दृष्टि से स्वात्मतत्त्व को जानने के लिए अन्य ज्ञाता व ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। स्व-पर प्रकाशत्व धर्म जैसे दीपक में है वैसे ही आत्म-तत्त्व के अन्दर भी है।

20. The soul-substance has infinite attributes and, in itself, is the knowledge *(jñāna)*, the knower *(jñātā)* and the object-of-knowledge *(jñeya)*; it also is the validity *(pramāṇa)*, the knower of validity *(pramātā)* and the object-of-validity *(prameya)*. From the real point-of-view, no other knower or knowledge is required to know the own soul-substance. As the lamp has the attribute of illumining the self as well as the others, the soul also has the attribute of illumining the self as well as the others.

---

21. बहिर्-विकल्पों से शून्य होने पर ही आत्म तत्त्व का ज्ञान होता है। स्वात्म-तत्त्व स्वसंवेदन से ही जाना जाता है, पर-संवेदन से आत्म-तत्त्व नहीं जाना जाता है। प्रत्येक जीव स्व का ज्ञाता है।

21. The knowledge of the soul-substance can be got only after getting rid of all external thoughts. The own soul-substance is known only through own experience; it is not known through the experience of others. Each soul *(jīva)* is the knower of the self.

---

22. अंतरंग की विशुद्धि, निर्मल परिणामों की प्रकृष्टता आत्मतत्त्व को सहज अनुभव करा देती है। सहजानन्दानुभूति का दृढ़ संवेदन वासनाओं-कामनाओं से भिन्न कर देता है। साधक का कर्तव्य है कि वह सहज स्वभाव पर लक्ष्य रखे।

22. In presence of internal purity and intense pristine dispositions the soul-substance is experienced naturally. Deep experience of natural-happiness keeps the practitioner away from lust and desires. It is essential for him to concentrate on his own-nature.

---

23. जब आत्मा परम समरसी भाव को प्राप्त होता है; तब राग-द्वेष, क्लेश, विकारी भाव आत्मा को प्रभावित नहीं कर पाते। संसार में रहते हुए भी जीव संसार से भिन्नत्व का संवेदन करता है; यह समरसी भाव का प्रभाव है।

23. In presence of supreme tranquility, the dispositions of attachment and aversion, anxiety and perversion fail to affect the soul. Such a soul, although living in the world, experiences distinctness from it.

---

24. आत्म तत्त्व की भूतार्थता का वेदन वही विवेकीजन कर पाते हैं जो कामादि विकारी-भावों से आत्मरक्षा कर लेते हैं, पर-भावों की पर्यायों पर जो स्वप्न में भी कुदृष्टि नहीं करते, अहर्निश संवेग, निर्वेद भावना का सम्यक् चिंतन एवं निजशुद्धत्मा का ध्यान करते हैं, राग-द्वेष कुकथाओं से सदा स्वयं दूर रहते हैं।

24. Only those discriminating men are able to experience the reality of the soul-substance who: protect themselves from imperfect dispositions like lust; do not set, even in dream, their concocted sight on modes due to 'other' dispositions; meditate incessantly on the dharma and its fruit, renunciation of desires and own pure-soul; keep themselves aloof from stories of attachment and aversion.

---

25. आत्मा संसारी-मुक्त के भेद से जाना जाता है। संसारियों में संज्ञी-असंज्ञी दो भेद हैं। मन सहित संज्ञी, मन रहित असंज्ञी। सम्पूर्ण मुक्त जीव एकत्वभूत हैं, उनमें कोई भेद नहीं है। सभी सिद्ध स्व-स्व द्रव्यत्व की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु सभी सिद्ध जीवों के लक्षण एकत्वभूत ही हैं।

25. Souls are of two kinds, the transmigrating *(saṃsārī)* and the liberated *(mukta)*. The two divisions among the transmigrating souls are: with-mind *(saṃjñī)* and without-mind *(asṃjñī)*. All liberated-souls are similar; there is no distinction between them. They are distinct in respect of their individual soul-substance but are similar in respect of their marks *(lakṣaṇa)*.

---

26. आत्मद्रव्य पुरुषार्थशील द्रव्य है। शुभ-पुरुषार्थ से शुभ-गति व अशुभ-पुरुषार्थ से अशुभ-गति प्राप्त होती है तथा शुद्धात्म-पुरुषार्थ से शुद्धोपयोगी आत्मा ही सिद्ध परमात्म पद को प्राप्त करता है।

26. The soul-substance has to be worked on. Auspicious effort results in auspicious state-of-existence and inauspicious effort results in inauspicious state-of-existence. Pure effort, directed on own pure-soul, results in attainment of the supreme state-of-liberation *(siddha)*.

---

27. आत्मसिद्धि हेतु पुण्यात्मा जीव ही भाव विशुद्धिपूर्वक निर्दोष संयमाचरण का पालन कर पाता है। क्षीण-पुण्य पुरुष की प्रवृत्ति शुद्धात्म-तत्त्व पर जाना तो अत्यन्त कठिन है ही, अपितु शुभाचरण में भी नहीं ठहरती। उसकी अशुभ-अशुभ कर्म के प्रति ही बुद्धि चलती है। जब निजभावों में धर्म वात्सल्य भाव का जन्म हो तब समझ लेना मेरा पुण्योदय प्रबल चल रहा है।

27. Only meritorious men are able to observe, with purity, unblemished conduct of self-restraint and attain thereby own-soul nature. It is extremely difficult for those lacking merit to engage in pure own-soul; they are not able to engage even in auspicious conduct. They think only of the inauspicious karmas. The rise of affection for the dharma in own dispositions is the sure sign of the fruition of strong meritorious karmas.

---

28. सर्व-विज्ञता प्राप्त जो द्रव्य है; वह आत्म-द्रव्य सर्वज्ञ-संज्ञा को प्राप्त होता है और जो सर्व-विज्ञता को प्राप्त नहीं है, सीमित द्रव्यों की अवस्थाओं को जो आत्मद्रव्य जानता है, वह छद्मस्थ-संज्ञा को प्राप्त होता है। सकल द्रव्यों की सम्पूर्ण गुण-पर्यायों को जो युगपत् जानने वाला सर्वज्ञ है, वही केवलज्ञानी परमात्मा है।

28. The soul-substance that has the capability to know all substances is called the 'all-knowing' *(sarvajña)*. The soul-substance that does not know all substances but only some states of a few substances is called the 'part-knowing' *(chadmastha)*. The 'all-knowing', who knows simultaneously all qualities *(guṇa)* and modes *(paryāya)* of all substances *(dravya)*, is the supreme-soul *(paramātmā)* called the possessor of perfect-knowledge *(kevalajñānī)*.

---

29. मूढ़मति आत्मतत्त्व की सत्यार्थता को जाने बिना देह में ही आत्मबुद्धि रखता है और वह कष्ट का मूल कारण है। परम सुख की इच्छा है, तो सर्वप्रथम देह से आत्मबुद्धि का त्याग करो।

29. The dumb-witted, not knowing the true nature of the soul-substance, mistakes the body for the soul; this is the main cause of his distress. If you wish supreme-happiness, first renounce the thought that the body is the soul.

---

30. देह आत्मा को एकत्व-भाव से अज्ञानी ही देखता है। ज्ञानी तो देह-आत्मा को विभक्त ही देखता है। दो द्रव्य कभी एकत्व को प्राप्त नहीं होते हैं।

30. Only the ignorant sees the body and the soul as one. The knowledgeable man makes distinction between the body and the soul. Two substances never unite as one.

---

31. आत्मा की सर्व जघन्य अवस्था निगोद है। जहाँ पर एक श्वास प्रमाण काल में जीव अठारह बार जन्म-मरण कर लेता है। जन्म और मरण की वेदना को कर्मफल-चेतना के साथ भोगता है।

31. The lowest state of the living-being is the non-evolved state, called *'nigoda'*. In this state, the *jīva*, is born and dies eighteen times in the time taken by a breath. It has only the fruit-of-karma-consciousness *(karmaphalacetanā)* to experience the pain of birth and death.

---

32. आत्म-तत्त्व की सर्वोत्कृष्ट अवस्था कर्म-शून्य सिद्ध दशा है। जहाँ घातिया-अघातिया दोनों ही प्रकार के कर्मों का पूर्ण अभाव है। कृत्यकृत्य अवस्था है, अनन्त गुणों की प्रकट दशा है। संसारातीत, अपुनर्भव को प्राप्त अवस्था। अमूर्तिक शुद्धात्मा की उपलब्धि सिद्ध पर्याय में प्रकट हो जाती है, अब वह जीव कभी भी अशुद्धि को प्राप्त नहीं होगा, शुद्ध ज्ञान-चेतना युक्त है।

32. The highest state of the soul-substance is the state of liberation *(siddha),* void of all karmas. In this state nothing remains to be done and infinite qualities get manifested. It is beyond the world and without rebirth. This state is the accomplishment of the pure, non-corporeal soul that will never again become impure; this is the state of knowledge-consciousness *(jñānacetanā)*.

---

33. तत्त्वबोध की अनुपम विद्या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आनन्द-दायक है, संसार में पतित प्राणियों के लिए परम अमृत रसायन है। लोक में भ्रम, क्लेश, अशान्ति, अप्रीति का मूल कारण आत्मतत्त्व का सम्यक्-बोध न होना है। जिसको सम्यक्-तत्त्व का बोध हो जाता है, वह संसार की सम्पूर्ण स्थितियों में आनन्द का जीवन जीता है।

33. The unique science of soul-realization provides happiness to the whole world; it is the supreme nectar for the downtrodden beings. Lack of right knowledge of the soul-substance is the primary cause of confusion, anguish, unrest and hostility in the world. The one with right knowledge of the substances lives a happy life in all situations.

---

34. पूर्वकृत कर्मोदय से तत्त्व-ज्ञानी के समक्ष भी विषमताएँ आती हैं, उन्हें महापुण्यशाली भी नहीं टाल पाये, परन्तु वे तत्त्वज्ञान के बल पर विषमताओं से प्रभावित नहीं होते। फलतः विषमताएँ ही विषमता को प्राप्त हो जाती हैं।

34. Even those with right knowledge of the substances face adversities due to the fruition of their past karmas; even the most meritorious men could not escape from such adversities. But on the strength of their knowledge of the substances they do not get affected by adversities; in their case, adversities get defeated by themselves.

---

35. आत्मतत्त्व ज्ञाता तटस्थता का आनन्द प्रतिक्षण लेता है, वह सर्व लोक व्यवस्था को साक्षी भाव से देखता है। पर से प्रभावित होकर ही जीव हर्ष-विषाद अवस्था को प्राप्त करता है।

35. The man with the knowledge of the soul-substance enjoys neutrality every moment; he sees the world as the onlooker. Only when the man gets affected by the 'other' does he feels elation and dejection.

---

36. पर से प्रभावित होना, अपने सामान्य परमानन्द से पृथक् होना है। सहज जीवन का जो सुख है वह अलौकिक है, उससे भिन्न जगत् में अन्य कोई आनन्द ही नहीं है। मानसिक दुःख से मुक्ति का भाव है, तो मुमुक्षु को एकान्त में सहजता में प्रवेश का अभ्यास सतत करना चाहिए।

36. To get affected by the 'other' is to get away from own natural supreme-happiness. The happiness appertaining to the natural self is divine; there is no other happiness like it. If the ascetic wishes to get rid of mental agony he should practise entry into naturalness, in solitude.

---

37. आत्मद्रव्य अनेकानेक गुण-पर्यायों का समूह है। पर्याय द्रव्य से सर्वथा सर्वदा भिन्न भी नहीं, अभिन्न भी नहीं, अपितु भिन्नाभिन्न है। सम्पूर्ण द्रव्यों की गुण-पर्यायों को जानने की योग्यता भी आत्म द्रव्य में ही है, अन्य किसी भी द्रव्य में ज्ञातापन नहीं है। ज्ञातापन तो मात्र आत्मद्रव्य में है और वह उसका त्रैकालिक स्वभाव है।

37. The soul-substance is the aggregate of many qualities *(guṇa)* and modes *(paryāya)*. The modes are not altogether and eternally different from the substance nor are these altogether and eternally same as the substance; these are, in some respect, different from the substance as well as same as the substance. Only the soul-substance has the capability to know the qualities and modes of all substances; no other substance has this capability of knowing. The capability of knowing is the eternal nature of the soul-substance.

* * *

21

सत्यार्थ-बोध

सहज-जीवन

Innate Life

1. सहजता मानव जीवन की पहचान है। माया, छल-कपट में मानवता का अंश भी नहीं होता। सच्ची मानवता को प्राप्त करना है तो सहज जीवन जीना सीखो।

1. Innateness *(sahajatā)* is the mark of human life. Humanity does not exist, even in part, in deceitfulness and dupery. If you wish to attain humanity, learn to live an innate life.

---

2. सहजता का जीवन जीना व्यक्ति के लिए एक बड़ी तप साधना है। हीन-भावना शून्य हुए बिना, इच्छा निरोध के बिना सहज-जीवन नहीं जिया जा सकता है। सहज-जीवन जीने के लिए व्यक्ति के अन्दर आर्जव, मार्दव धर्म की आवश्यकता है। मानी-मायावी दोनों ही सरलता व सहजता से जीवन नहीं जी पायेंगे, सहज-जीवन जीने के लिए मान-माया का त्याग करना होगा।

2. It is great austerity on part of the man to lead an innate life. One cannot lead an innate life without getting rid of the inferiority complex and restraining desires. For leading an innate life, two qualities, straightforwardness *(ārjava)* and modesty *(mārdava)*, are essential. Men full of arrogance and crookedness cannot lead an innate life; both these, arrogance and crookedness, must be renounced.

---

3. भव्य जीव को भावों में सहजानन्द से पूर्ण, चेतन्यरस के आनन्द का भान जब होता है तब राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन सोलह भंगों से

स्वात्मदेव को भिन्न वेदता है। ये सोलह भंग आत्मा के सहजभाव नहीं, ये तो कर्मज-भाव हैं। शुद्धनय से त्रैकाली शुद्धात्मा कर्मज-भाव के कारण संसार गर्त में प्रतिक्षण मान-अपमान की पीड़ा से पीड़ित हो रही है।

3. When the potential *(bhavya)* soul experiences the natural-happiness of the juice of soul-consciousness, it reckons own-soul as distinct from these sixteen limbs: attachment *(rāga)*, aversion *(dveṣa)*, anger *(krodha)*, pride *(māna)*, deceit *(māyā)*, greed *(lobha)*, karma *(karma)*, quasi-karma *(nokarma)*, mind *(mana)*, speech *(vacana)*, body *(kāya)*, touch *(sparśana)*, taste *(rasanā)*, odour *(ghrāṇa)*, sight *(cakṣu)* and hearing *(śrotra)*. These sixteen limbs are not the innate dispositions of the soul but are karma-generated. The soul which is eternally pure from the transcendental point-of-view suffers incessantly, in its worldly existence, the pain of respect and disrespect due to its karma-generated dispositions.

---

4. आध्यात्मिक सहज-जीवन और सांसारिक सहज-जीवन इन दोनों में बहुत अंतर है। पर-भावों से पूर्ण निरपेक्ष, एकत्व-विभक्त निज-ध्रुव ज्ञायक-भाव की लीनता, उदासीनता पूर्ण जो है; वह आध्यात्मिक सहज जीवन है। दिखावे का अभाव, सामान्य भोजन, सामान्य वस्त्राभरण, मृदुभाषण तथा प्राणिमात्र के साथ वात्सल्य के साथ जीवन जीना यह सांसारिक सहज-जीवन है। आध्यात्मिक सहज-जीवन ही मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत है, जहाँ राग-द्वेषादि से पूर्ण शून्यता प्राप्त हो सके।

4. There is great difference between the spiritual innate life and the worldly innate life. Away from all 'other' dispositions, engrossed in own one-and-distinct knower-soul, and rid of all attachment is the spiritual innate life. The life that is marked by the absence of flamboyance, taking ordinary diet, wearing simple clothes, softness in speech, and affection for all living-beings, is the worldly innate life. The spiritual innate life is purposeful in the path to liberation as it aims at ridding the soul of attachment and aversion.

---

5. सहजता एक अमूल्य साधना है। साधक धीरे-धीरे उस साधना में उत्तीर्णता को प्राप्त करता है। सहजता की साधना से व्यक्ति स्वयं में उतरकर स्वयं का निर्णय करता है।

5. Innateness is an invaluable observance. The practitioner slowly succeeds in his observance. In the observance of innateness the man draws himself inward and decides about own-self.

---

6. साधक को विवेकपूर्वक इतनी सरलता लाना चाहिए जितनी सरलता नवजात शिशु में होती है। यथाजात बालकवत जो अपना जीवन बना लेता है वह भूतार्थ सहज-साधना को प्राप्त कर लेता है। यदि मुक्ति की

वरमाला चाहिए, तो विकारी भावों से अपने को पृथक् कर, शील-माला को धारण कर, प्रतिक्षण जागृति पूर्वक अनर्घवान शील-माला की रक्षा करनी चाहिए।

6. The practitioner of innateness should become as naive as a newborn child. The one who makes his life as simple as a newborn child accomplishes real innateness. If you wish to be garlanded by Lady Liberation, distance yourself from the tainted dispositions, adorn the garland of pious vows, and protect, every instant, this priceless garland.

---

7. सहज-जीवन का आनन्द जो भव्य जीव ले लेता है; उसके सामने सम्पूर्ण माया जीर्णतृणवत दृष्टिगोचर होती है। सहज-जीवन जीने से सत्य-बोध सहज ही हो जाता है।

7. The potential *(bhavya)* soul who has experienced the happiness of innateness sees all deceitfulness as mere useless blade of grass. The knowledge of the reality comes naturally to him who lives the life of innateness.

---

8. अज्ञ प्राणी पर से प्रभावित होकर असहज होकर क्लेश, अशान्ति को प्राप्त होता है तथा आत्म-शान्ति से तो वह अपरिचित ही रहता है। सबसे भिन्न होकर ही सहजता की उपलब्धि होती है, स्त्री-पुत्र, वस्त्राभूषणों के राग में द्वेषता की प्राप्ति होती है। पर से ममत्व सहजता को भङ्ग कर देता है।

8. The ignorant man, on getting impressed by the others, loses innateness and thereby becomes anxious and restive; soul-happiness remains a stranger to him. Innateness is attained on distancing yourself from everything 'other'; attachment for wife, son, clothes and ornaments gives rise to aversion. Infatuation for the 'other' destroys innateness.

---

9. सहज जीवन अंतरंग आत्म-विकास के लिए अमृत सिंचनवत है। जैसे समय-समय पर भूमि में यदि शुद्ध पानी की सिंचाई अच्छे से होती रहे तो धान्य-वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार मानव के अन्दर जितनी विशिष्ट सहजता होगी उतनी ही विशिष्टता युक्त आत्म-विकास होगा।

9. The life of innateness is like irrigating with nectar the field of internal soul-development. As harvest grows when the land is irrigated, time-to-time, by pure water, similarly, exceptional soul-development takes place in the man to the extent he develops exceptional innateness in him.

---

10. सहज-जीवन जीने के लिए निर्लोभता, निहंकारता होना चाहिए, लोभी-अहंकारी कभी भी सरलता, सहजता को प्राप्त नहीं कर पाता। सहज-सरल वही हो सकता है जिसने लोक में एकमात्र निजात्मा को छोड़ अविशेष सम्पूर्ण पर-पदार्थों को पर मान लिया, तृणमात्र भी पर-द्रव्य निजात्मभूत नहीं है, इस प्रकार पर-ममत्व शून्य जीव ही सहज-जीवन जी पाता है।

10. To be able to live the life of innateness generosity and modesty are required; the greedy and the arrogant can never attain innateness. Innate and simple is the man who, save his own-soul, considers all external substances as 'other'. He reckons that not even a blade of grass belongs to him; only such a man, void of all infatuation, can lead the life of innateness.

---

11. व्यक्ति की आकांक्षाएँ जितनी न्यून होती जाती हैं उतनी ही व्यक्ति के अन्दर सरलता, सहजता वर्धमान होती जाती है। व्यक्ति बढ़ती इच्छाओं से सहज नहीं रह पाता, क्योंकि इच्छाओं की पूर्ति के लिए अनेक मायाभाव के उपक्रम व्यक्ति को अपनाना पड़ते हैं।

11. As desires get reduced in a man, qualities of simplicity and innateness grow in him. The man with inflated desires cannot remain innate; to satisfy his desires, he must perform many acts that involve deceitfulness.

---

12. जीवन में महानता और विश्व-प्रियता प्राप्त करना है, तो सबसे प्रियभाषण, प्रसन्नचित्तता से सहज-जीवन जीना सीखो। आपकी मृत्यु के उपरान्त भी लोग आपके प्रशंसक रहेंगे।

12. If you wish greatness and love of the world, learn to live the life of innateness adorned with sweet speech and joyous heart. People will praise you even after your death.

---

13. क्रोधी, लोभी, मायावी, मानी, कामी, क्रूर-व्यवहारी, निष्ठुर, असहज-जीवन जीने वाले को अपने भी नहीं अपनाते हैं।

13. Even the kin does not own the man whose life lacks innateness but is full of anger, greed, deceit, arrogance, lust, cruelty and harshness.

---

14. अपने जीवनकाल में घोर-उपसर्ग, कष्ट, अपमान की पीड़ा को सहन कर लेना, परन्तु सरलता, सहजता कभी नहीं छोड़ना। जीवन की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति सहजता है।

14. Endure the pain of great calamities, sufferings and humiliation but never leave simplicity and innateness. Innateness is great wealth of life.

---

15. सहज-जीवन स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से शून्य तथा आत्मानन्द रस से पूर्ण होता है।

15. The innate life is void of touch, taste, odour and colour; it is full of the juice of soul-happiness.

---

16. सहज-जीवन वही जीव जी पायेंगे जिन्होंने अपने अन्दर निस्पृहता के देवता को स्थापित कर लिया हो, वसुन्धरा की किसी भी वस्तु के प्रति जिनकी स्पृहा न हो, एकमात्र निज चिद्ब्रह्म-भाव पर ही एकत्वभूत दृष्टि हो, अन्य भावों से सदा भिन्न दृष्टि हो, ऐसा एकत्व-विभक्त से जीने वाला भव्य मुमुक्षु जीव ही स्व-जीवन को सहज-जीवन बनाकर गद्‌गद् भाव से जी सकता है, अन्य नहीं।

16. Only those who have established within them the divinity of contentment, do not have the desire for anything on this earth, have their eyes set only on the one and only eternal-soul, see themselves distinct from all 'other' dispositions, such potential *(bhavya)*, discerning ascetics, and no one else, make their life innate and enjoy bliss.

---

17. लोक में वे ही दु:खी हैं जो सहजता से दूर हैं। सहजता के लिए अन्य की कोई आवश्यकता नहीं होती है। स्वयं का आनन्द ही उसका सहजानन्द है। सहज-जीवन में हर्ष-विषाद के कारणों का भी अभाव है, मान-अपमान का कोई हेतु नहीं। असहजता के जीवन में पग-पग पर अन्य की आवश्यकता रहती है, उसे हर्ष-विषाद, मान-अपमान पग-पग पर दृष्टिगोचर होता है। असहजता का जीवन दु:ख, क्लेशपूर्ण होता है।

17. Only those in this world who are away from innateness suffer misery. Innateness does not rely on anything external. Own-happiness is innate-happiness. In the life marked by innateness there are no causes of elation and dejection, respect and disrespect. In the life void of innateness the 'other' is required at every step, such a life experiences constantly elation and dejection, respect and disrespect. The life void of innateness is full of misery and anguish.

---

18. प्रत्येक भव्य-जीव को जीवन में प्राणान्त के पूर्व एक बार सहजता का आनन्द लेने का पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए।

18. Every potential *(bhavya)* living-being, before the end of life, should once make effort to enjoy bliss appertaining to innateness.

---

19. स्वयं में प्रतिपल आनन्द-यात्रा में वही जीता है; जो अपने आपको सहज देखता है। सहजता का वेदन तभी सम्भव है; जब व्यक्ति किञ्चित् मात्र भी चित्त में अशुद्ध-भावों को स्थान नहीं देगा।

19. Only the person who regards himself as innate can tread the journey of life with incessant bliss. Innateness can be experienced only when the person does not allow impure dispositions to set in his mind.

---

20. जीवन में अल्प-से-अल्प भूल भी क्लेश उत्पन्न करने में समर्थवान है। क्लेश के साथ विशुद्धि कहाँ? विशुद्धि के अभाव में सहजता कहाँ? सहजता के बिना सत्यार्थ सहज आत्मानन्द कहाँ? आत्मानन्द चाहिए; तो जीवन में संयम के साथ आत्म विशुद्धि को जीवन्त रखो।

20. The minutest of errors is capable of causing anguish in life. With anguish, where is the purity? Without purity, where is the innateness? Without innateness, where is the real and natural soul-happiness? If you wish soul-happiness keep alive, with self-restraint, the purity of your soul.

---

21. पर वस्तु का राग व्यक्ति को सहज-जीवन से दूर रखता है। सहजता में ममत्व नहीं और ममत्व-भाव में सहजता का प्रवेश ही नहीं, इसलिए विज्ञ-प्राणी का कर्तव्य है कि वह अपनी सहजता की रक्षा करे।

21. Attachment for the 'other' keeps the man away from innateness. In innateness there is no infatuation; in infatuation there is no innateness. The learned man, therefore, should protect his innateness.

---

22. पर-विकल्पों में स्वयं की सहजता का विसर्जन नहीं करना चाहिए। प्रत्येक कार्य के काल में स्व-स्वतंत्रता का ध्यान रखना चाहिए। सर्वलोकाचार देखते हुए भी, पर के राग व द्वेष के कारण, स्व निर्दोष परमात्मा के साथ दुर्व्यवहार नहीं होना चाहिए।

22. In thoughts of the 'other' the innateness of the self should not be sacrificed. While doing any work, keep in mind self-independence. While observing the ways of the world, do not have attachment and aversion for the 'other' and thus mistreat the unblemished supreme-soul of the self.

---

23. आत्म-सहजता की रक्षा तभी संभव है जब ज्ञाता सम्पूर्ण जड़ व चैतन्य पर-ज्ञेयों से निज को भिन्न देखेगा। पर-ज्ञेयों के प्रति राग-वृत्ति चित्त को चलायमान कर देती है और चंचल-चित्त में सहजता की स्थिरता का होना असंभव कार्य है।

23. The innateness of the self can only be protected when the knower sees himself distinct from all inanimate and animate objects-of-knowledge. Attachment for the external objects-of-knowledge causes perturbation in the mind and it is impossible to establish innateness in a perturb mind.

---

24. जो साधक स्वप्रज्ञा व स्वानुभव से एकत्व-विभक्त्व भाव का अनुभवन क्षण-क्षण में लेते हैं; वे राग-द्वेष-मोह से रिक्त होकर सहजस्वरूप में मग्न होकर परम-समरसी-भाव का आनन्द ले, जन्म-जरा-मृत्यु रोग-त्रय का नाश कर सिद्धत्व को प्राप्त कर लेते हैं।

24. The ascetics who, every instant, by own intellect and learning, experience oneness and distinctness of their soul, get rid of attachment, aversion and delusion, get engrossed in own soul-nature, enjoy the joy of supreme equanimity, destroy the threesome disease of birth-decay-death, and attain the state of liberation.

---

25. सहज-ज्ञाता ज्ञेय-ज्ञाता भाव का अभाव तो नहीं कर सकता, परन्तु धर्म-अधर्म-आकाश, काल-पुद्गल और स्व से भिन्न अन्य जीवों को आत्मभूत भी नहीं कर सकता और न ही वे आत्मभूत हो सकते हैं। ऐसा तत्त्व निर्णय, जो भव्य कर लेता है वह पर-ज्ञेयों के ममत्व से निर्ममत्व होकर तद्-संबंधी आस्रव-बंध से आत्मरक्षा कर लेता है।

25. The innate knower cannot get rid of the disposition of the knower of the objects-of-knowledge but he cannot see his soul as one with the medium-of-motion *(dharma)*, medium-of-rest *(adharma)*, space *(ākāśa)*, time *(kāla),* matter *(pudgala)* and other souls; these can never be one with own-soul. The potential *(bhavya)* soul that makes such a determination gets detached from all external objects-of-knowledge and saves self from consequent influx and bondage of karmas.

---

26. सहज-ज्ञाता आत्म-स्वतंत्रता को वेदता हुआ पूर्ण शांत हो जाता है। वह एकत्व के आनन्द में निमग्न होता हुआ, संसार में रहते हुए भी संसारातीत का अनुभव प्राप्त कर लेता है।

26. The innate knower, while experiencing soul-independence, gets absolutely tranquil. Absorbed in the bliss of oneness, he experiences transcendence while living in the world.

---

27. सहजता के जीवन में साधक को कोई भी विषय आश्चर्य में नहीं डालता है। उसका कारण यह है कि वह स्वभाव-भाव, विभाव-भाव, क्षयोपशमिक, औदयिकादि भावों को अच्छी तरह से जानता है और दैव एवं पुरुषार्थ पर विश्वास करता है।

27. Nothing surprises the ascetic with innateness. The reason is that he understands well all kinds of dispositions including those that are natural, unnatural, destruction-cum-subsidential *(kṣayopaśamika)*, and due to fruition-of-karmas *(audayika)*, besides having faith on fate *(daiva)* and own-effort *(puruṣārtha)*.

---

28. सहज साधना के साधक को कर्मज-भावों पर हर्ष-विषाद करना किञ्चित् मात्र भी स्वीकार नहीं होता, क्योंकि किसी भी विषय को दीर्घ समय तक चित्त में रखना अर्थात् विशुद्धि का घात, संक्लेशता, आत्मक्लेश, दु:ख-संतापादि प्राप्त करना ही है।

28. The ascetic who practices innateness does not undergo a bit either elation or dejection due to the karma-generated dispositions. He knows that thinking long on any subject amounts to loss of purity, anxiousness, soul-angst, misery and woe.

---

29. सहजता व्यवहार से परमार्थ तक की यात्रा में सहकारी है। परमार्थ में सहज होते-होते साधक एक ऐसी भूमिका में प्रविष्ट हो जाता है; जहाँ एकमात्र निज-चैतन्य वस्तु से भिन्न कुछ भी अनुभव में नहीं आता है। मात्र चिद्-चिद् शेष रहता है, अन्य नहीं, अन्यथा नहीं।

29. From the empirical point-of-view, innateness is helpful in man's journey to attain the real-soul. With the help of innateness, as he gets established in the real-soul, he reaches the stage where nothing but own-consciousness is experienced. No other substance, nothing but the real-soul, remains.

---

30. सहजता आत्मोन्नति का परम बीज है, इसके बिना मोक्षफल असम्भव है। व्यवहार में इतने सरल हो जाओ कि लोग पानी की शीतलता को भूलकर सहज पुरुष का ही उदाहरण देने लगें।

30. Innateness is the supreme seed for self-development; the fruit of liberation is impossible without it. Become so innate in your behaviour that, forgetting the coolness of water, people start giving the example of the innate man for coolness.

---

31. सहजता, शीतलता, धैर्य और गंभीरता व्यक्ति को उत्तीर्णता के पास पहुँचा देती है; वहीं भावों की वक्रता, स्वार्थी भाव, छल-परिणति जीव के प्रति अविश्वास खड़ा कर देती है।

31. Innateness, coolness, forbearance and seriousness get the man near success; crookedness in thoughts, selfishness and deceitfulness create distrust for him.

---

32. विश्व में विश्वासपात्र बनना चाहते हो तो सहजता लाओ। सहजता, सरलता, माया रहितता के बिना आप अपने सम्बंधियों के विश्वासपात्र भी नहीं बन सकते हो, फिर विश्व के विश्वासपात्र कैसे बनोगे?

32. If you wish to be trustworthy bring in innateness. Without innateness, simplicity and straightforwardness you cannot win the trust of your kin, what to talk of the world?

---

33. व्यक्ति की इच्छायें सहजता का घात करती हैं। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अन्य को मत दबाओ, यदि दबाना ही है तो स्वयं की इच्छाओं का दमन करो, सहजता की सुगंध प्रारंभ होने लगेगी।

33. Desires of the man destroy his innateness. Do not suppress others to fulfill your desires; if something is to be suppressed, it is your own desires. The flavour of innateness will start emanating.

---

34. सहज व्यक्ति सभी का प्रिय और आदर्श होता है और उसके लिए सभी सहज ही तत्पर रहते हैं।

34. All love the innate man and he is their ideal; all are naturally enthusiastic about him.

---

35. सहजता का जीवन समरसी भाव का जीवन, जगत से समझपूर्वक अपरिचितता का जीवन। निज से पूर्ण परिचय, अहो अलौकिक जीवन! सहज जीवन।

35. The innate life is the life of tranquility; the life thoughtfully unacquainted with the world. Fully acquainted with the self; O supernatural innate life!

---

36. आनन्द कन्द ज्ञानघन चिद्पिण्ड निज-भगवानात्मा का अनुभवन प्रत्यक्ष प्रमाण से करने के लिए सहज समाधि का पुरुषार्थ करना ही होगा। साधना का सामान्य जीवन जीना भिन्न विषय है। सहज-योग की अनुभूति, समाधिमरण करना ही श्रेष्ठ-मार्ग है। कोटि-कोटि साधकों में विरले ही साधक सहज-समाधि को प्राप्त होते हैं जिसके प्रभाव से स्वर्ग एवं मोक्षपद प्राप्त होता है।

36. To experience own god-soul that is a cave of happiness, full of knowledge, and a lump of consciousness, it is essential to practise innate-meditation. To live the normal life of observances is a different matter. To experience innate-meditation and thereby attain pious death is the excellent path. Only a few out of millions and millions of observers reach the stage of innate-meditation that is the harbinger of the heavenly abode and liberation.

---

37. सहज जीवन तत्त्व ज्ञान की उत्तीर्णता, कर्म निरपेक्ष, एकमात्र त्रैकालिक शुद्ध-परम-पारिणामिक भाव पर लक्ष्य रखना, उसी का अनुभवन लेना, जगत् के सम्पूर्ण विकल्पों से उपेक्षा कर चिद्ब्रह्म मात्र का ही आश्रय लेना, ज्ञाता-दृष्टा भाव से माध्यस्थ भाव का पूर्ण आलम्बन लेना है।

37. The life of innateness means to acquire the knowledge of the reality, to aim only at the eternally pure soul's inherent-nature that is karma-independent, to experience only such a soul, to take refuge only in the eternal supreme-soul with indifference to all worldly thoughts, and to adopt as the knower and the seer the disposition of neutrality.

* * *

"जहाँ करने के विकल्प का अभाव है, रखने के विकल्प का अभाव है। जहाँ संग्रह के विकल्प का अभाव है, जहाँ माँगने के विकल्प का अभाव है, जहाँ देने के विकल्प का अभाव है, वही साधु-स्वभाव है। यही यथार्थ सहज-जीवन है।"

(आचार्य विशुद्धसागर, **'सैंतालीस शक्तियाँ'**, पृ. 545)

22

सत्यार्थ-बोध

पुण्य-पाप
Merit-Demerit

1. प्रज्ञ-पुरुष पर के सुख-दु:ख में ही नहीं, अपितु स्वयं के सुख-दु:ख में भी हर्ष-विषाद भाव को प्राप्त नहीं होता। वह इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि संसार का इन्द्रिय जन्य सुख व दु:ख आत्मा की सहज दशा नहीं है, यह तो कर्मजभाव है, कर्म-सापेक्ष अवस्था है। इसमें क्या हर्ष? क्या विषाद? जो है सो है।

1. The learned man does not experience elation or dejection not only in happiness or misery of others but also of self. He knows well that the worldly, senses-based happiness or misery are not the innate nature of the soul but are karma-generated; it is the karma-dependent system. Why elation? Why dejection? That is, what it is!

---

2. मन-वचन-काय के नियोग से आत्म प्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, वह योग है। इस योग से कर्मों का आस्रव होता है, शुभ योग से शुभास्रव व अशुभयोग से अशुभ-आस्रव होता है।

2. Vibration in the space-points of the soul due to the activity of the mind, the speech and the body is yoga. Due to yoga, influx *(āsrava)* of the karmas takes place; auspicious activity is the cause of the auspicious influx and inauspicious activity of the inauspicious influx.

---

3. शुभास्रव पुण्योदयभूत फलित होता है तथा अशुभास्रव पापोदयभूत फलित होता है। पुण्योदय से संसार में इन्द्रिय-सुख की सामग्री तथा सुखानुभूति की प्राप्ति तथा पापोदय से इन्द्रिय-सुख सामग्री की अनुपलब्धि रहती है, फलत: जीव दु:खानुभूति को प्राप्त होता है।

3. Auspicious influx results in merit *(puṇya)* and inauspicious influx in demerit *(pāpa)*. Merit bestows to the living-being objects of sensual-pleasure and thus worldly happiness; demerit causes the non-availability of the objects of sensual-pleasure and thus worldly misery.

---

4. अज्ञानी प्राणी दोनों ही आस्रवों के काल में प्रभावित रहता है, वह आत्मा की स्वतंत्र अवस्था का चिंतन ही नहीं करता। वह हर्ष-विषाद के विकल्पों में निजात्मा की वंचना करता है। सुख व दु:ख को आत्मभूत मानकर बहिरात्मभाव को प्राप्त कर संसार में भ्रमण करता है।

4. The ignorant man is affected by both kinds of influx as he does not reflect on the independence of the soul. In his thoughts of elation or dejection he neglects own-soul. Mistaking worldly happiness and misery for own soul-nature, he becomes an extroverted-soul *(bahirātmā)* and thus wanders in the world.

---

5. संसार में पर के सुखों तथा अपने दु:खों को देखकर प्रभावित मत होना, क्योंकि सुख-दु:ख पूर्वकृत कर्मबंध का विपाक है। वर्तमान को सहज धर्ममयी वातावरण के साथ जियो, विशुद्ध भाव करो; वर्तमान का पुरुषार्थ पवित्र करो तो आपका भविष्य स्वयमेव ही उज्ज्वल हो जाएगा।

5. In the world, do not get affected by happiness of others and misery of self; these are due to the fruition of the past karmas. Live the present in an environment of dharma, maintaining the purity of thoughts; if the effort in the present is auspicious, the future will automatically lighten up.

---

6. संसारी प्राणियों के साथ लोक में सर्वत्र पुण्य-पाप का उदय कार्य कर रहा है, जो विवेकी इस सत्यार्थ को जानता है वह अपना जीवन संकल्प-विकल्प शून्य जीता है।

6. The worldly beings everywhere are affected by the fruition of merit and demerit; the discriminating man who knows this truth lives life free from the disposition of volitions and inquisitiveness *(saṃkalpa-vikalpa)*.

---

7. पुण्य की प्रबलता में असत्य भी सत्य हो जाता है। शत्रु भी मित्रवत व्यवहार करता है, सूली भी सिंहासन बन जाती है, मरघट भी महलवत सुख देता है, काँटे भी फूल बन जाते हैं, नाग भी हार बन जाता है, अग्नि की ज्वाला भी जल में परिवर्तित हो जाती है, यह सब कुछ पुण्य की लीला है।

7. When the force of merit is in operation even the untruth becomes the truth. The

foes treat you like a friend, the scaffold turns into a throne, the cremation-ground imparts happiness as if a palace, the thorns turn into flowers, the cobra turns into a garland, the fire turns into water; all this is the magic of merit.

---

8. पापोदय की प्रबलता में सत्य भी असत्य हो जाता है। शत्रु तो शत्रु रहते ही हैं, अपितु मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, सगे भी पर हो जाते हैं, औषधि भी विष बन जाती है, महल भी मरघट बन जाते हैं, जन्मदात्री भी प्राण लेती है, पुष्पहार भी कालानाग बन जाता है, शीतल-जल भी ज्वाला में बदल जाती है, चंदन भी दाह उत्पन्न करता है, पूर्णिमा की चाँदनी भी उष्ण प्रतीत होती है, विषहर मंत्र भी विषदायक हो जाते हैं, सम्पूर्ण अनुकूलताएँ प्रतिकूलताओं में संक्रमित हो जाती हैं, यह सब पापकर्म की महिमा है, इसीलिए सज्जन-पुरुषों को पुण्य-पाप में हर्ष-विषाद न करते हुए, माध्यस्थ-भाव का आश्रय लेकर अपनी आत्मविशुद्धि की रक्षा करनी चाहिए। पुण्य व पाप दोनों पुद्गल कर्मों की अवस्था हैं, यह आत्म-धर्म नहीं है।

8. When the force of demerit is in operation even the truth becomes the untruth. The foes remain as foes but even friends become foes, even blood-relatives desert you, even the medicine turns into poison, even the palace turns into a cremation-ground, even the birth-giver turns into a life-taker, even the garland turns into a black cobra, even the cool water turns into flames, even the sandalwood starts scorching, even the light of the full-moon feels hot, even the charm for curing the snake-bite turns into poison; everything favourable turns into unfavourable. All this is due to the fruition of evil karmas. The noble men, therefore, should renounce elation or dejection on the rise of merit or demerit, take refuge in the disposition of neutrality and protect their soul-purity. Merit and demerit are the stages of material-karmas; these are not the soul-nature.

---

9. अहो मानव! पुण्य विपाक पर मत करो उन्माद, क्योंकि समय परिवर्तन स्वभावी है। मालूम नहीं समय कब परिवर्तित हो जाये? कहीं पुण्य-विपाक संक्रमित होकर पाप-विपाक में न बदल जाये, इसलिए पुण्य-पापोदय पर मध्यस्थ हो जाओ। सबके दिन एवं सब दिन एक से नहीं होते।

9. O man! Do not get intoxicated on fruition of your merit; change is the nature of time. You never know when time changes and fruition of your merit gets transformed into fruition of demerit; therefore, adopt neutrality on merit and demerit. Days of everyone are not the same; all days are not the same.

---

10. पापोदय पर विषाद की आवश्यकता नहीं। वर्तमान की पर्याय एवं परिणाम पर विचार करो, दोष सम्प्रति अवस्था का नहीं। प्रसन्न चित्त जीवन जियो। भूत का किया कर्म आज भले ही कष्ट दे रहा हो, परन्तु वर्तमान के सुकृत्य भविष्य में पुण्योदय रूप नियत से फलित होंगे।

10. Do not get dejected on fruition of demerit. Think about the present mode and dispositions, not about the current state of imperfections. Live with a happy heart. The karma of the past may be causing you pain but the virtuous karmas of the present will, in future, certainly get to fruition in form of merit.

---

11. हीन-पुण्य के क्षीण होने में अधिक समय नहीं लगता, इसलिए प्रतिक्षण जाग्रत रहने की आवश्यकता है। सम्पत्तियाँ कब विपत्तियों में संक्रमित हो जाएँ? इसलिए सज्जनों का कर्तव्य है कि वे अपने जीवन को समीकरण बना कर जियें।

11. Low-level merits disappear fast; remain alert at all times. You never know when wealth gets transformed into misfortune. Noble men should lead a balanced life.

---

12. वसुन्धरा पर प्रबल पुण्यात्मा भी पुण्यक्षीण होते देखे गए, पुष्पों पर विश्राम करने वाले सूलों पर चलते देखे गए, दण्ड देने वाले भी दंडित होते देखे गए। कर्म विपाक विचित्र है!

12. On this earth disappearance of even high-level merit is seen; those resting on the flowers are seen walking on the thorns, those imparting punishment are seen getting punished. The fruition of the karmas is amazing.

---

13. पुण्योदय की तीव्रता में अपुण्य परिणाम एवं अपुण्य कार्य न हो, यह जीव की विशिष्ट तप साधना है। इस साधना में उत्तीर्णता तभी सम्भव है; जब जीव प्रतिक्षण पापोदय की पीड़ा का ध्यान रखेगा। पुण्योदय के अल्प-काल में अधिकांशत: जीव पापोदय की पीड़ा को भूल जाते हैं, अल्प इन्द्रिय सुख के कारण तीव्र दु:ख को प्राप्त करते हैं।

13. To desist from evil dispositions and activities when fruition of merit is in operation is a special observance of austerity. It is possible to get success in such observance only when the man keeps in mind the pain of fruition of demerit. Most men, during the short period of fruition of merit, forget about the pain of fruition of demerit; for the sake of sensual-pleasures they undergo great suffering.

---

14. पुण्य-पाप दोनों ही कर्मज भाव हैं, नाशवंत हैं। उभयशून्य चैतन्य ही ध्रुव है, उसी का आश्रय लेना श्रेयस्कर है। नाशवंत पर आत्मविशुद्धि का क्षय करना उचित नहीं है।

14. Both merit and demerit are karma-generated dispositions that are destructible. The conscious-soul, rid of both these, is the only eternal substance; take refuge in it only. It is not worthwhile to sacrifice the purity of your soul on something that is destructible.

---

15. पुण्योदय पर इतने हर्षित मत हो जाना कि जिससे आत्म-विशुद्धि का ही लोप हो जाए। पुण्य भी पर द्रव्य ही है, अभिन्न द्रव्य तो एकमात्र निज-भगवान्-आत्मा ही है, जो त्रिकाल अविनाशी है, वही सत्यार्थ में उपादेयभूत है, शेष तो हेय, ज्ञेय, उपेक्ष्य हैं।

15. Do not get so elated on fruition of merit that you lose the purity of your soul. Merit too is 'other' substance, the only substance that belongs to you is the own god-soul that is indestructible in three times; in true sense, it is the only substance worth accepting, rest all are worth rejecting, knowing and ignoring.

---

16. जो पुण्य इन्द्रिय-सुख प्रदान करता है; उस सुख भोग से पुनः नवीन कर्मों का आस्रव होता है, उस आस्रव से पुनः इन्द्रिय सुख भी प्राप्त होते हैं, फिर पुनः भोग। इस प्रकार संसार भ्रमण का अन्त नहीं होता, संसार का अन्त चाहिए तो पुण्योदय पर भी माध्यस्थता का व्यवहार करना चाहिए।

16. Merit is the cause of the availability of sensual-pleasures and indulgence in these causes influx of fresh karmas; due to this influx, again, sensual-pleasures are obtained and then, again, indulgence in these. This way, wandering in the world continues; if you wish to end world-wandering observe neutrality on the fruition of merit too.

---

17. परमार्थ-दृष्टि से पुण्य-पाप दोनों ही कर्मों का उदय संसार का कारण है और संसार बंध पूर्वक ही चलता है। पुण्य-पाप के फल में हर्ष-विषाद भाव से बंध होता है। जो भव्य जीव भवातीत होना चाहता है, उसे पुण्य-पाप के विपाक से आत्मरक्षा का उपाय खोजना चाहिए। विशुद्धि की वृद्धि, संक्लेशता की हानि जिस उपाय से हो वही श्रेष्ठ उपाय है।

17. From the transcendental point-of-view fruition of the karmas of both merit and demerit is the cause of world-wandering; the soul's world-wandering is due only to the bondage of karmas. The dispositions of elation or dejection on fruition of merit or demerit cause bondage. The potential soul that wishes to end world-wandering should look for means to protect itself from such dispositions. Whatever results in increase in purity and decrease in anxiety is the excellent means.

---

18. हर्ष-विषाद भाव से रिक्त मौन-साधना साधक के लिए अमृत-तुल्य है। अमृतपान करने वाले देवों का अकाल-मरण का अभाव है, परन्तु जो मौन-साधक की साधना का अमृत है वह जन्म-जरा-मृत्यु का क्षय करा देता है। कर्तापन से रहित एकत्वभाव से भावित होकर जो जीवन जीता है, वह संसार की लता को जड़मूल से उखाड़कर परम-समरसी-भाव के आनन्द का पान करता है।

18. The vow-of-silence, rid of the dispositions of elation and dejection, is like nectar for its practitioner. The devas do not meet untimely death but the man who drinks the nectar of the vow-of-silence causes the destruction of birth, decay and death. The one who lives with the disposition that the self is not the 'doer' but the 'one-and-only' uproots the creeper of world-wandering and enjoys the drink of supreme-tranquility.

---

19. तत्त्वज्ञ जीव पुण्योदय व पापोदय दोनों में ही सामान्य भाव रखता है, वह जानता है कि दोनों ही पुद्गल का विकार हैं। ध्रुवज्ञायक आत्मा का स्वभाव, आत्म-स्वभाव तो ज्ञान-दर्शन है।

19. The man who knows the reality maintains equanimity in fruition of merit as well as demerit. He knows that both these are imperfections of the matter *(pudgala)*. The own-nature of the eternal knowing-soul is knowledge and perception.

---

20. पुण्योदय पर अशुभ कराने वाले भी शुभरूप परिणत होते हैं, प्रबल पुण्य की महिमा ही ऐसी है और पापोदय पर अच्छा भी करे फिर भी फल अशुभ ही घटित होता है। समय, कर्म तथा तदा काल में द्रव्य की योग्यता भी तद् रूप परिणत होती है।

20. In time of the fruition of merit even inauspicious causes turn auspicious; such is the glory of the strength of merit. In time of the fruition of demerit even good efforts give inauspicious results. The time and the karmas have bearing on the present manifestation of substances.

---

21. पुण्योदय के काल में जीव को प्रत्यय व समुत्पत्ति दोनों ही कषाय के भाव नहीं होते। यदि हुए भी तो अल्पकाल, क्योंकि पुण्यवन्त पुरुष मन्द-कषायी तथा भद्र-परिणामी होते हैं।

21. In time of the fruition of merit the man does not have the dispositions of passions *(kaṣāya)* both due to own-karmas *(pratyaya)* and due to 'other' *(samutpatti)*. If at all these arise, it is for a short while since the man with merit exhibits mild passions and noble dispositions.

---

22. पर-भावों के नियोग से जो कषाय उत्पन्न होती है; वह समुत्पत्ति कषाय कहलाती है। संयमी विवेकवान पर-हेतुओं को पर स्वीकार कर, निजात्मदेव के स्व परिणामों की कषाय-ज्वाला से रक्षा करता है।

22. The rise of passions *(kaṣāya)* in which the 'other' dispositions are instrumental is termed *'samutpatti'*. The man with self-restraint and discernment accepts all

'other' dispositions as not belonging to own-soul and thus saves his dispositions from the fire of passions.

---

23. एक द्रव्य में कार्य-कारण भाव जहाँ घटित होता है; वहाँ प्रत्ययपना है। आत्मा में कषायिक-भावों का आना स्व-कर्मोदय से है, परन्तु प्रबल पुण्यात्मा के प्रत्यय कषाय भी मन्द होती है, जो न के समान है, इसलिए पुण्योदय पुण्य-बंध श्रेष्ठ है, यदि पुण्य का प्रयोग पाप-बंध में नहीं किया तो।

23. The cause-effect relationship in a substance is due to *'pratyaya'*. The rise of the passions *(kaṣāya)* in the soul is due to the rise of own-karmas but in case of the man with strong merit this cause of passions, the *'pratyaya-kaṣāya'*, is negligible; therefore, merit-bondage, rather than demerit-bondage, is worthwhile during the fruition of merit.

---

24. परमाणु-प्रमाण पाप-प्रकृति भी जीव के दुःख में कारण बन जाती है, इसलिए प्रत्येक भव्य-जीव का कर्तव्य है कि वह पापकर्म प्रकृति के बंध-भूत निमित्तों से क्षण-क्षण में आत्मरक्षा करे। अन्य-अन्य का कुछ भी नहीं कर पाते, पुण्य-पाप के उदय काल में, स्व का आत्म-पुरुषार्थ ही कार्यकारी है अन्य तो निमित्त मात्र ही जानो और मानो।

24. Even an iota of demerit can cause suffering; every potential soul should, each instant, protect itself from the instrumental causes of the karmas that result in demerit. During the fruition of merit and demerit, others cannot help; only the effort of the self is effective. Others are to be known and accepted just as instrumental causes.

---

25. पर-कृत उपकार व अपकार में हर्ष-विषाद मत करो। प्रत्यक्ष में परकृत अवश्य दिखता है, परन्तु परोक्ष में देखने पर स्वकृत दर्शन होने लगेंगे। निमित्त पर-रूप दिखता है, पर उपादान स्व का ही होता है। भूतप्रज्ञापन से भी देखो वर्तमान, जो भी वर्तमान में पर-कृत उपकार-अपकार है वह तेरे ही शुभाशुभ कृत पूर्व-कर्मों का ही विपाक है।

25. Do not feel elated or dejected on favour or disfavour of others. Outwardly, these appear to be caused by others but, seen inwardly, these appear to be caused by self. The instrumental cause appears outwardly but the substantive cause lies in the self. If the present is seen through past-analysis, whatever favour or disfavour of others is seen today, it is the fruition of your past auspicious and inauspicious karmas.

---

26. स्व कर्मोदय पर चिंतन करने से समत्व का जन्म होगा, परकीय-कर्तापन से दृष्टि पृथक् होगी और हर्ष-विषाद का विराम होगा।

26. By reflecting that own-soul is responsible for the fruition of the karmas one develops equanimity, stops seeing others as the 'doers', and refrains from getting elated or dejected.

---

27. पुण्योदय पर पुण्यभावों को सुरक्षित रखना प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है। पुण्योदय के काल में विवेक का विसर्जन कर, उन्मत्त होकर सर्वाधिक जीव पापाचार में प्रवृत्त होकर अशुभ-कर्म का बंध कर भावी-दु:ख को निमंत्रण देते हैं।

27. It is the duty of every man to keep his dispositions of merit safe in time of the fruition of merit. Most people, in time of the fruition of merit, shed discrimination, and in exaltation get involved in evil activities, thus causing bondage of inauspicious karmas that must engender future suffering.

---

28. धन्य-धन्य-धन्य वे जीव जो पुण्योदय पर भी विवेक के साथ अपना जीवन जीते हैं और पुण्यफल को युक्ति से भोगकर भविष्य की भी सम्यक्-व्यवस्था कर, समाधि से युक्त मरण कर, दुर्गति से स्वात्मा की रक्षा करते हैं।

28. Hail those men who, in time of the fruition of merit, live with discrimination, enjoy judiciously the fruits of merit and thus securing their future attain a pious meditative death and save their souls from evil states-of-existence.

---

29. पुण्योदय के काल में विवेक के साथ जो जीते हैं; उन भव्यों के साथ अपना जीवन जियो। पुण्य की युवावस्था में जिनके पास प्रज्ञा-वृद्ध है; वे मानव ही लोक-पूज्य हैं।

29. Live in company of those potential men who live with discrimination in time of the fruition of merit. The men whose merit is young and intellect is full-blown are worthy to be revered in the world.

---

30. परिणामों के विकृत होते ही जीव के पुण्य में विकार उत्पन्न हो जाता है। जैसे दुग्ध में अम्ल के मिश्रण से विकार उत्पन्न होता है; वैसे ही विशुद्धि घटने पर पुण्य की धारा भंग हो जाती है। भावों की विशुद्धि की सुरक्षा से ही पुण्य का रक्षण सम्भव है। हर समय अशुभ-भावों से भिन्न होकर व्यक्ति को अपने परिणाम निर्मल रखना चाहिए।

30. When the dispositions of the man get perverted, imperfections appear in his merit. As milk gets sour on addition of an acidic substance, similarly, on decrease of purity of dispositions, disturbance takes place in the stream of merit. Only by maintaining purity of dispositions can merit be protected. Detached, every instant, from all evil dispositions, the man should maintain purity of his dispositions.

---

31. विशिष्ट योग एवं योग्यता की सिद्धि भी विशिष्ट पुण्योदय पर ही होती है। पुण्य की क्षीणता पर बनते कार्य भी अन्त में बिगड़ते देखे जाते हैं।

31. On special fruition of merit, exceptional yoga and abilities are accomplished. On decay of merit, efforts that appear to be fructifying end in disaster.

---

32. ज्ञानीजन कार्य की पूर्णता न होने तक अपने कार्य के रहस्य को गूढ़ रखते हैं। अज्ञ-जन कार्य कम करते हैं, प्रचार अधिक, परिणामतः कार्य की असफलता पर जगत् में हास्य को प्राप्त होते हैं। जग-हँसी से आत्मरक्षा के भाव हैं तो सर्वप्रथम स्व-योग्यता, पुण्य-पापोदय पर विचार अच्छे से करना चाहिए। कार्य सिद्धि होगी या नहीं इसका अवलोकन पूर्वक ही कार्य प्रारंभ करें।

32. Learned men keep the task-on-hand a secret till its completion. Ignorant men work less and publicize more; they get ridiculed on their failures. If you wish to save yourself from ridicule, first think-through your capability, merit and demerit. Whether the work is realizable or not should be thought-through before its start.

---

33. अज्ञ प्राणी, जीवन के अमूल्य क्षणों को पर के पुण्य-पाप पर विचार कर व्यय करता है। वह पर-निन्दा के पाप का संचय कर नीच-गोत्र का बंध कर दीर्घ-संसार में भ्रमण कर क्लेश को प्राप्त करता है।

33. The ignorant man expends his invaluable time thinking about merit and demerit of others. By censuring others he accumulates demerit, cause of low status *(gotra)*, and suffers long as his wandering in the world gets extended.

---

34. प्रज्ञ-पुरुष स्वात्महित के एक क्षण काल को भी परभावों में व्यय नहीं करता है; वह क्षण-क्षण में स्वात्महित पर ही विचार करता है। संसार-सागर से आत्मदेव उत्तीर्ण कैसे हो, पाप-पंक से कैसे बचे, श्वास-श्वास में पाप कर्म से आत्मरक्षा हो, श्रुति में रमण तथा कुश्रुति से रक्षा हो, ऐसे पवित्र-भाव भव्य-जीव के ही होते हैं।

34. The learned man does not expend even one instant of his time on disposition of 'other'; he thinks incessantly on own soul development. The potential and auspicious man thinks like this: how can my soul-divinity cross the worldly-ocean; how can it be saved from the mud of demerit; how to save it, every breath, from the evil-karmas; and how to get engrossed in the Scripture and disengage from the false-teachings?

---

35. पुण्यात्मा जीव की निन्दा करने से स्वपुण्य का क्षय होता है। पूज्य पुरुषों का सदा विनय करो। पूज्यों के गुणगान करो, अपूज्यों पर माध्यस्थ भाव व सद्भावना रखो। स्वभाव में मृदुता का अभ्यास सतत करो, इससे स्वात्मा पुण्य-गुणों से पूर्ण होता है तथा कर्म से शून्य होता है।

35. Denouncement of the man-of-merit results in the decay of self-merit. Always respect the reverend men. Hail the reverend and be neutral and considerate on those not worthy of reverence. To increase merit of own-soul and to make it free from the karmas, practise incessantly pleasantness in nature.

---

36. पुण्य-पुरुषों का गुणगान भव्यों की भाव विशुद्धि में साधन है। वह विशुद्धि अशुभ भावों से आत्मरक्षा करती है तथा अशुभ कर्मों की निर्जरा कराती है, शुभ कर्मों का आस्रव कराती है तथा परम्परा से मोक्ष का साधन है।

36. Applaud of the men-of-merit results in purity of dispositions of the potential souls. This purity saves the soul from evil dispositions, helps in shedding of inauspicious karmas, causes influx of auspicious karmas, and, by convention, is the cause of liberation.

---

37. शुभाशुभ शब्दों का श्रवण भी पुण्य-पाप के उदय से होता है। पुण्योदय पर प्रतिक्षण सुन्दर-सुवाक्, गुण-कीर्तन सुनने को मिलते हैं, शत्रु-गृह में भी प्रशंसा-वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। पापोदय में स्वगृह में भी अशुभ-शब्दों का श्रवण करना पड़ता है, स्व-जननी एवं जनक भी दुर्वचन बोलकर बुलाते हैं। पापोदय पर मर्मभेदी शब्दों को सुनकर जीवन जीना पड़ता है।

37. One hears auspicious and inauspicious words on fruition of merit and demerit. On fruition of merit one hears pleasant words of praise even in the house of the enemy. On fruition of demerit one has to hear damning words even in own house; even own parents use admonishing words. On fruition of demerit one has to hear, all the time, distressing words.

* * *

23

सत्यार्थ-बोध

आस्था

Trustfulness

1. आस्था की डोर दिखती नहीं, परन्तु अंतरंग का दृढ़-बंधन है; जो कि हाथियों से भी नहीं तोड़ा जा सकता है। सत्यार्थ-मार्ग पर की गई आस्था व्यक्ति को लोक में महान् ही नहीं, अपितु भगवान् बना देती है।

1. The rope of trustfulness is not visible but it makes such a strong bond that even elephants cannot snap. Trustfulness on the path of the reality does not only make the man great but a god.

---

2. विश्वास के साथ किया गया कार्य स्वयमेव ही पूर्ण होता है, पर कार्य क्षमता के प्रति पूर्ण आस्था होना अनिवार्य है। जैसे-जैसे विश्वास वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे-वैसे कार्य क्षमता एवं लग्न बढ़ती चली जाती है। फलत: कार्य पूर्णता में व्यक्ति उत्तीर्णता को प्राप्त कर लेता है और वह प्रसन्नता को प्राप्त करता है।

2. If there is complete trustfulness in the capability of the self, any task undertaken with confidence automatically gets completed. As the confidence increases, the capability and the dedication keep on increasing. As a result, the man attains success in its completion and gets happiness.

---

3. मोक्षमार्ग का रास्ता, सत्यार्थ-मार्ग उसी को दिखता है; जिसके पास सम्यक्-आस्था हो। आस्था-विहीन सुख से विहीन जीवन जीता है। आस्था स्व-पर कल्याणी एवं उभय लोक में सुखप्रद होती है।

3. The path to liberation, or the path of the reality, is visible only to the one with right trustfulness. The life of the man without trustfulness is devoid of happiness.

Trustfulness is propitious for self and others, and bestows happiness in this life and hereafter.

---

4. जिनेन्द्र प्रभु की देशना उन्हें ही फलित होती है, जो जिन-देशना पर आस्थावान होते हैं। जिन जीवों के हृदय में भूतार्थ-मार्ग, तत्त्व एवं सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर निर्मल आस्था ही नहीं है उन्हें जिनवर-वाणी का क्या सुफल मिल पाएगा?

4. The preaching of Lord Jina is fruitful for those who have trustfulness. What fruit will the preaching of Lord Jina bear for those who do not have pristine trustfulness in their heart for the true path, for the reality and for the true deity, the Scripture and the guru?

---

5. जहाँ व्यक्ति की आस्था विद्यमान रहती है वहाँ गुण-ही-गुण दृष्टिगोचर होते हैं और जहाँ पर आस्था नहीं है वहाँ गुणों का समुदाय होने पर भी दोष ही दिखाई देते हैं, इसलिए सर्वगुणों में प्रधान गुण आस्था है। आस्था के अभाव में किसी भी गुणी के गुणों का कीर्तन नहीं किया जा सकता है।

5. In presence of trustfulness one has eyes only for good qualities; in absence of trustfulness only blemishes that form a small part of the heap of good qualities are seen. Therefore, trustfulness is the foremost quality. Without trustfulness the praise of the virtuous man is not possible.

---

6. सम्बंध के बिना भी श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बंध हो सकता है। सम्बंधी का सम्बंध विच्छेद को प्राप्त हो सकता है, परन्तु जीवन पर्यन्त श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बंध का विच्छेद नहीं होता है। श्रद्धा वह अमृत है; जो अविश्वास के विष से रक्षा कर लेता है।

6. The causality between faith and object-of-faith can exist without a relationship. The relationship may end but the causality between faith and object-of-faith persists lifelong. Faith is the nectar that protects the man from the poison of distrust.

---

7. कषाय की तीव्रता में व्यक्ति की आस्थाएँ नष्ट हो जाती हैं, कषाय के मंदोदय में ही आस्था, आस्थावान, आस्थेय दिखाई देता है। आस्था के बिना मोक्षमार्ग का प्रारम्भ ही नहीं होता। कषाय व्यक्ति के जीवन को खोखला कर देती है। आस्था को सुरक्षित रखना चाहते हो, तो कषाय को परिवर्तित करो।

7. Trustfulness vanishes in presence of severe passions; only when the rise of passions is mild the trustfulness, the trusty and the object-of-trust are seen. Without

trustfulness journey to the path to liberation does not even begin. Passions make the life of the man hollow. If you wish to secure trustfulness, transform your passions.

---

8. धर्म-धर्मात्मा पर आस्था उन्हीं की होती है जो कषाय रूपी कालकूट से सुरक्षित रहते हैं, जहाँ कषाय विष है वहाँ पर आस्था के प्राण संकट में पड़ जाते हैं।

8. Only those who are rid of the deadly poison of passions can have trustfulness on the dharma and its followers. The life of trustfulness is in danger in presence of the poison of passions.

---

9. सत्यार्थ-मार्ग पर जुड़ी आस्थाओं को तोड़ना, तुड़वाना महाहिंसा है। अनादि-अविद्या के वश हुआ प्राणी सम्यक्-श्रद्धान को बहुत ही कठिनाई से प्राप्त कर पाता है। जब जीव का प्रबल-पुण्य व पुरुषार्थ साथ देता है तभी सम्यक्-मार्ग पर आस्था प्रकट होती है।

9. To shatter or get shattered trustfulness on right path to reality is great violence. Due to beginningless ignorance it is extremely difficult for the man to acquire right faith. Trustfulness on right path is manifested only in presence of strong merit and effort.

---

10. सम्यक्-धर्म एवं धर्मात्माओं के प्रति आस्था-भाव प्रबल पुण्योदय पर ही संभव है। पुण्य की क्षीणता में मिथ्या धर्म एवं धर्मात्माओं के प्रति आस्था उत्पन्न होती है। विवेक-ज्ञान की सत्ता में व्यक्ति सत्य-मार्ग का आश्रय लेता है।

10. Trustfulness on right dharma and its followers is manifested only on the rise of strong merit. On decay of merit, trustfulness on false dharma and its followers is manifested. In presence of discriminatory knowledge, the man takes refuge in the path to reality.

---

11. आस्था, विश्वास, श्रद्धा, प्रतीति के माध्यम से व्यक्ति आनन्द को प्राप्त होता है। लोक में जो भी पदार्थ सुख के साधन हैं; वे सब, तभी तक सुख के साधन हैं जब-तक उनके प्रति आस्था है। आस्था के अभाव में लोकवर्ती कोई भी वस्तु सुख व आनन्द का कारण नहीं हो सकती है, इसलिए आस्था को दृढ़ रखने की आवश्यकता है।

11. Trustfulness, confidence, faith and belief provide delight to the man. All objects that are means of happiness in the world provide happiness as long as the man has

trustfulness on these. Without trustfulness nothing in the world can provide happiness and delight; therefore, make your trustfulness strong.

---

12. जितनी गहरी आस्था होगी उतना ही गहरा आनन्द होगा। विश्वास से भावों में परिवर्तन होता है, भावों के परिवर्तन से सर्वाङ्ग में परिवर्तन होता है और आस्था से चित्त भी प्रसन्न होता है।

12. The depth of delight will be according to the depth of trustfulness. With confidence, dispositions change and the change in dispositions brings about all-round change in the man. Trustfulness makes the mind happy.

---

13. ऐसा आचरण करो जिससे आस्था-विहीन भी सत्-पथ पर आस्था पूर्वक लग जाए, तत्त्वार्थ से टूटे हृदय भी तत्त्वार्थ-श्रद्धान से युक्त हो जाएँ। आपके समीचीन-आचरण का अवलोकन कर एक जीव भी सत्यार्थ-मार्ग पर लग गया तो समझ लेना आपने कोटि-कोटि यज्ञों का फल प्राप्त कर लिया है।

13. Observe such conduct that puts even the man without trustfulness on the right path; may those astray develop faith on the reality. If by your observance of right conduct even one man is led to the true path, understand that you have earned the fruit of millions and millions of oblations.

---

14. जहाँ आस्था है वहाँ प्रीति उत्पन्न होती है और जहाँ प्रीति रहती है वहाँ सुख स्वयमेव उत्पन्न हो जाता है। जहाँ अप्रीति है वहाँ दु:ख है। दु:खी प्राणी आस्था को स्वस्थ नहीं रख पाता है।

14. In presence of trustfulness develops love and in presence of love develops happiness, automatically. Where there is hatred there is misery. The miserable man cannot keep his trustfulness healthy.

---

15. स्वयं के प्रति विश्व की आस्था जीवित रखने के परिणाम हैं, तो विश्व में विश्वास के साथ जियो, स्व के आचरण को छल-कपट रहित आचरित करो। साधना के क्षेत्र में वर्धमानता रहनी चाहिए। हीयमान साधना साधक की उन्नति का नाश कर अवनति करा देती है।

15. If you wish to develop trustfulness of the world for yourself, live life with confidence; make your conduct rid of deceitfulness. Your observances should be on the rise. Declining observances destroy the progress of the observer and start his downfall.

---

16. जीवन में उत्कर्ष देखकर अभिमान नहीं करना। उत्कर्ष मान से नहीं, अपितु सत्यार्थ-मार्ग की आस्था से हुआ है। जिसके माध्यम से उत्कर्ष के चरण मिले उन चरणों के हेतुओं के चरण नहीं छोड़ना। जो हमेशा एक सा जीवन जीता है वही लोक में अपनी पूज्यता को जीवित रख पाता है।

16. Do not become haughty on your rise. The rise is not due to your pride; it is due to your trustfulness on the true path. Do not leave the feet of the cause that has made your feet rise high. Only the man who lives a consistent life is able to keep alive his reverence.

---

17. जिसके अन्दर सत्यार्थ-तत्त्व के प्रति आस्था है; वही विश्व में मृत्यु के उपरान्त भी जीवित रहता है।

17. In the world, only the one who has trustfulness on the true path remains alive even after death.

---

18. जिसके प्रति लोक आस्थावान है उसे लोक की आस्था पर करुणा करनी चाहिए, आस्थाओं का घात नहीं करना चाहिए। जिस वृत्ति से विश्व आस्था पर पहुँचे हो उस वृत्ति की रक्षा जीवन पर्यन्त करना। उन्नति की रक्षा करना आपका कर्तव्य है, वे जीव अज्ञ हैं जो अपनी उन्नति की रक्षा नहीं कर पाते हैं।

18. The man on whom the world has trustfulness should have consideration for it and not destroy it. The traits that have earned you trustfulness of the world should be protected throughout life. The rise needs to be protected; those men are ignorant who are not able to protect their rise.

---

19. आस्था वह अमृत है जिसकी मिठास आस्थावान ही जानता है। अनास्था विष है; जो आनन्द को भंग कर देता है।

19. Trustfulness is the nectar whose sweetness only its possessor knows. Lack of trustfulness is the poison that disrupts the feeling of joy.

---

20. वे पुरुष प्रज्ञावन्त हैं जो अपने जीवन से भी श्रेष्ठ अपनी उन्नति को समझते हैं। स्व के प्रति जो लोक की आस्था है वह नष्ट न हो, इसलिए प्रज्ञजन हमेशा सावधान रहते हैं। जीवन में श्रद्धेय होने के लिए कठोर साधना करना पड़ती है। श्रद्धा के नाश में समय नहीं लगता।

20. Those men are intelligent who consider the rise in life more important than the life itself. They are ever watchful to protect the trustfulness of the world for them.

Severe observances are required to earn the reverence of the world. It takes no time to destroy it.

---

21. ऐसा जीवन जियो की शरीर छूटने पर भी आस्था के हृदयों में आपका जीवन अंकित रहे। आपका नाम कागजों, पत्थरों, धातुमय पत्रों पर नहीं, अपितु प्राणिमात्र के हृदय में रहे। आचरण पावन रहे, तो नाम अमिट रहेगा।

21. Live such a life that it leaves a mark, even after your death, on the hearts of those with trustfulness on you. Your name should be written on the hearts of the living-beings, not on papers, stones and metal-leaves. If the conduct is pure, the name remains indelible.

---

22. महापुरुष घर-घर नहीं जाते, उनकी महानता स्वयमेव ही घट-घट में पहुँच जाती है। चारित्र एवं वृत्ति व्यक्ति को महान् बना देती है। श्रेष्ठ-चारित्र एवं श्रेष्ठ वृत्तिवान पर दुनिया की आस्था होती है, धन-धरतीवान पर किसी की आस्था नहीं होती है।

22. Great men do not go house to house; their greatness automatically reaches everywhere. Conduct and observances make a man great. The world has trustfulness on those whose conduct and observances are laudable, not for those who have wealth and land.

---

23. जगत् करे मेरे ऊपर विश्वास ऐसी भावना मत भाओ, अपितु जगत् में विश्वसनीय कार्य करो तो जगत् का विश्वास आपके प्रति स्वयमेव हो जाएगा। आपको अपना चित्र कहीं भी नहीं लगाना पड़ेगा, आप तो लोक के चित्तों में ही लग जाओगे। भवनों की दीवार पर नहीं, हृदय की दीवार पर होंगे आप।

23. Do not long for trustfulness of the world; only your trustworthy acts will earn you that. Your photograph will then be marked on the hearts of the people, not pasted on the walls of houses.

---

24. लोक प्रसिद्धि पर लक्ष्य न कर आत्म-सिद्धि पर जो लक्ष्य रखता है; उसे लोक-प्रसिद्धि स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। इस सिद्धान्त पर जो विश्वास रखता है; वही साधक निस्पृह-भाव से साधना कर पाता है। स्पृहता साधना में धान्य में घुन के कीड़े के तुल्य है।

24. The man who aims at soul-realization, not at world-fame, automatically gets world-fame. Only the practitioner who has faith on this dictum can practice observances without desires. Desires are like worms that infest the grain.

---

25. धन्य-धन्य-धन्य वे साधक जिनकी मोक्ष प्राप्ति की भावना के साथ निस्पृहता पर दृढ़ आस्था है। बिना निस्पृहता के साधु-मार्ग एक ढोंग के अलावा कुछ नहीं, पर भावों से स्पृहता साधना की शत्रु है।

25. Hail the ascetics on path to liberation with deep faith on desirelessness. Without desirelessness, treading the path of asceticism is nothing but hypocrisy; the desire for the 'other' is the enemy of asceticism.

---

26. जो शास्ता पर आस्था रखता है वह परम शान्ति को प्राप्त होता है। पुण्य-पुरुषों के गुण स्मरण, गुण कीर्तन करने से पाप कर्म का नाश होता है, पुण्य कर्म की वृद्धि होती है। दीर्घ संसारी पुण्य-पुरुषों की कथा श्रवण में रुचि नहीं रखते, जिनका संसार भ्रमण अल्प है वे ही सज्जन शास्ता पर अपनी दृढ़ आस्था रखते हैं।

26. The one with trustfulness on the World Teacher *(śāstā, āpta)* gets supreme happiness. By recalling and singing the qualities of the men with merit evil karmas are destroyed and virtuous karmas increase. Those with prolonged world-wandering do not have interest in the stories of the men with merit; noble men with short world-wandering maintain strong trustfulness on the World Teacher.

---

27. भगवद् आस्था स्व-भगवत्ता को प्रकट करा देती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-वैभव की भावना रखते हुए परमात्म-भक्ति में चित्त स्थापित करना चाहिए।

27. Trustfulness on the Supreme Being manifests in self-supremacy. Every man, while reflecting on own-glory, should establish his heart in adoration of the Supreme Being.

---

28. सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जीव द्रव्य ही ऐसा द्रव्य है जो जानने-देखने की शक्ति युक्त है, शेष द्रव्य ज्ञान-दर्शन शून्य हैं। हेय-अहेय का विवेक भी जीव के पास है, किस पर आस्था की जाये और किस पर नहीं यह विवेक होना चाहिए। अपूज्यों के प्रति पूज्यता का व्यवहार करना भी अज्ञानता है तथा पूज्यों को अपूज्य कहना महामूढ़ता है।

28. In the whole universe the soul is the only substance that has the power to see and know; the remaining substances are void of knowledge and perception. It has the discriminatory power to know what is to be accepted and rejected and also what is worthy for trustfulness and what is not. To adore the unworthy is ignorance and to disrespect the adorable is great ignorance.

---

29. जो वस्तु जैसी होती है विवेकशील उस पर वैसी ही आस्था रखता है। विपरीत आस्था ही मिथ्यात्व है, जो लोक में बहुत कष्टकारी है, इसीलिए मिथ्यात्व-भाव से स्वात्मा की रक्षा करो।

29. The trustfulness of the man with discrimination is according to the merit of the object. Adverse trustfulness is delusion, which is extremely painful; protect your soul from the disposition of delusion.

---

30. जैसी परमात्मा के प्रति आस्था रखते हो वैसी ही स्वात्मा के प्रति भी आस्था रखो। परमात्मा उत्तम है, महान् है श्रद्धा-श्रद्धेय की दृष्टि, परन्तु परमार्थ से स्वयं के लिए कल्याणकारी यदि कोई है तो वह स्वयं की चैतन्य शक्ति। चैतन्य तत्त्व की स्वात्मानुभूति ही श्रेष्ठ है, वह स्वहितकारी, परमोपकारी है। अन्य-तो-अन्य ही है, यही सत्यार्थ जानो।

30. Have the same kind of trustfulness on own soul as on the Supreme Being. The Supreme Being is laudable and great is the perspective of adoration and adorable but, from the spiritual point-of-view, the only propitious object is the own soul's consciousness. To realize own soul-consciousness is excellent, favourable to the self and supremely propitious. The other remains the other; know this truth.

---

31. प्रत्येक पदार्थ को आस्था से देखो, कोई भी पदार्थ अवस्तु नहीं है। प्रत्येक पदार्थ वस्तु है, स्वयं में कर्ता-भोक्ता भाव से युक्त है, पारिणामिक भाव युक्त है।

31. Have trustfulness on every object; no object is a non-object *(avastu)*. Every object *(vastu)*, in itself, is endowed with dispositions of the doer and the enjoyer and also with inherent nature or capacity.

---

32. जीवन में स्वकार्य की उत्तीर्णता के लिए स्व-भाग्य एवं पुरुषार्थ पर आस्था होना अनिवार्य है। स्व पुरुषार्थ एवं भाग्य पर विश्वास किए बिना किसी भी क्षेत्र में व्यक्ति सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता, वह असफलता की दाह में जलता रहेगा।

32. For success in life, it is essential to have trustfulness on own-fate and effort. Without faith on effort and fate, man cannot achieve success in any field; he has to burn in the fire of failure.

---

33. व्यक्ति को सर्वप्रथम अपनी योग्यता पर आस्था होना चाहिए। योग्यता समझे बिना भावी कार्य करने का निर्णय एवं सिद्धि नहीं होगी। ज्ञानी पुरुष स्वयोग्यता का परीक्षण कर कार्य करने का पुरुषार्थ प्रारंभ करते हैं।

33. First, have trustfulness on your capability. Do not undertake any work without understanding your capability as it will not get accomplished. Knowledgeable men start a work only after assessing their own capability.

---

34. आप पर-से स्व-के प्रति जैसी आस्था चाहते हो वैसे अपने परिणाम रखो। जो व्यवहार आपको पर-से पसन्द नहीं है, वैसा व्यवहार आप पर-के प्रति मत करो। स्व से भिन्न पुरुष में जीवत्व, विवेक एवं स्वाभिमान स्वीकार करो, यदि आपमें मानवता है तो।

34. The kind of trustfulness that you expect for self from others should be your disposition. Do not treat others in a manner that you would not like yourself to be treated. If you have humanity, accept life, power-of-discrimination and self-respect in others.

---

35. भव्यवर पुंडरीक मोक्ष तत्त्व पर यदि आस्था रखता है, तो वह सर्वप्रथम मोक्षमार्ग पर आस्था रखता है। जिसके पास मोक्ष प्राप्ति का उपाय ही नहीं; वह उपेय मोक्ष पर आस्था रखकर करेगा ही क्या? मोक्ष की प्राप्ति तभी होगी जब मोक्षमार्ग को स्वीकार करेगा, तदनुकूल-पुरुषार्थ भी करेगा। बिना सम्यक्-पुरुषार्थ के साध्य सिद्धि असंभव जानो।

35. If the potential *(bhavya)* man has trustfulness on the reality of liberation he first develops trustfulness on the path to liberation. What will the man attain if he has trustfulness on the goal, i.e., reality of liberation, but not on the means, i.e., path to liberation? Liberation can be attained only by accepting the path to liberation and then making effort accordingly. It is impossible to attain the goal without right effort.

---

36. जिसके प्रति आप आस्था स्थापित करना चाहते हो सर्वप्रथम उस आस्थेय को पहचानो, हमारा आस्थेय आस्था का पात्र है या नहीं? कहीं आस्था का घात न हो जाये! वह तत्त्वज्ञान की कसौटी पर उत्तीर्णता को प्राप्त है या नहीं? व्यक्ति को नहीं; व्यक्तित्व को पहचानो, अपने स्वरूप को जानो।

36. First examine the object-of-trustfulness for its worthiness. Make sure that trustfulness is not destined to be shattered. Examine whether or not the person passes the test of the knowledge of the reality. Examine the personality not the person; know your own-nature.

---

37. जो सच्चे आप्त-आगम-तपोभृत हैं उन पर आस्था करो। सत्यार्थ-बोध के बिना अपनी आस्था प्रकट करना, यह स्व की अज्ञानता है। अपनी विज्ञता व अज्ञता व्यक्ति स्वयं ही प्रकट कराता है। पर तो पर हैं, वे

निमित्त मात्र हैं। निमित्तों पर कर्तापन का आरोप होता है, कार्य तो निज उपादान में ही होता है। संसार-भ्रमण, संसार-मुक्ति ये दोनों ही आत्म-पुरुषार्थ से होते हैं। सम्यक्त्व धर्म भी आत्मविशुद्धि से ही फलित होता है, अन्य कारण तो पराश्रय हैं, भिन्न हैं, साक्षात् कारण तो आत्म-परिणाम ही है। इसी प्रकार से ज्ञान एवं चारित्र में समझना चाहिए।

37. Have trustfulness on the true Sect-founder, Scripture and Preceptor. It is ignorance to exhibit trustfulness without first knowing the truth. The man himself is responsible for his intelligence or ignorance. Others are others; they are just the instrumental causes. Instrumental causes are conventionally called the 'doer' but the real or substantive 'doer' is the self. Both, wandering in the world or liberation, depend on own-effort. Even the virtue of right-belief is manifested due to purity in the self; the real cause is soul-transformation, other causes are dependent on the 'other' and are distinct. The same is true for knowledge and conduct.

* * *

24

सत्यार्थ-बोध

कर्म

Karma

1. जीव जो भी शुभ-अशुभ क्रिया करता है वह कर्ता-जीव तथा कर्म का भी बोध करा देता है। बिना कर्ता एवं कर्म के विश्व में कोई भी क्रिया सम्भव नहीं है। प्रत्येक जीव-द्रव्य स्व के कर्ता-कर्म-क्रिया का अधिकारी है, पर का कर्तापन क्रिया कर्मपना स्व के सुख-दु:ख का हेतु नहीं है। जो प्राणी दु:ख-सुख का वेदन करता है वह स्वात्मा के कर्ता-कर्म-क्रिया से बंध किए हुए कर्मों के दु:ख-सुख का भोक्ता जीव है, कर्ता स्वयं-का-स्वयं है, तो भोक्ता भी जीव स्वयं के कर्मों का स्वयं ही है। पर-कृत कर्म पर को सुख-दु:ख क्यों देंगे?

1. The auspicious and inauspicious activities of the living-being indicate the existence of the doer-soul and the karma. Without the doer and the karma no activity is possible in the world. Every living-being is responsible for own doer-karma-activity; the doer-karma-activity of the other is not the cause of own happiness or misery. The enjoyment of happiness or misery is due to bondage of the karmas; the bondage is the result of own doer-karma-activity. The self is the doer of the self and the self is the enjoyer of own karmas. How can the karmas of others give happiness or misery to others?

---

2. स्वयं कर्म करे, कर्ता किसी को कहे यही महा-मूढ़ता है। अन्य-द्रव्य अन्य-द्रव्य के सुख-दु:ख का कर्ता नहीं होता, स्व का उपादान स्व में ही रहता है, पर में नहीं।

2. It is a great folly to call other as the doer of the karma that you have done. Other is not the doer of the happiness or misery of the other; the real or substantive cause rests in self, not in other.

---

3. पर कृत कर्म पर के ही होते हैं, वे कर्म स्व से भिन्न पुरुष के सुख-दु:ख के कारण नहीं होते। अज्ञ प्राणी पर के सुख-दु:ख में स्वकर्तापन को स्थापित कर स्व की अज्ञानता का ही प्रचार कर लोक में हास्य का पात्र बनता है।

3. The karmas of the others belong to the others; these do not cause happiness or misery to the other. The ignorant man thinks himself to be the doer of happiness or misery of the other; he thus establishes own-folly and becomes a subject of ridicule in the world.

---

4. शुभाशुभ कर्मों से आत्मरक्षा का भाव है; तो शुभाशुभ क्रिया एवं परिणामों से प्रतिक्षण आत्मरक्षा करो।

4. The man with disposition of protecting self from auspicious and inauspicious karmas should protect himself from auspicious and inauspicious activities and soul-transformations.

---

5. कर्म से पीड़ित प्राणी को देखकर हास्य मत करो, आपकी हँसी से उसे और अधिक कष्ट होगा, पीड़ा होगी, यह भी मानसिक हिंसा है। जो स्व-पर की मानसिक हिंसा नहीं करता वही भव्यवर कर्म-बंध से अपनी रक्षा करता है।

5. Do not ridicule the man suffering due to his karmas; you will cause him greater pain and agony and also psychic injury to self. The potential man who refrains from committing psychic injury to self or others protects himself from bondage of the karmas.

---

6. कर्म विपाक के काल में कर्मबंध का भी ध्यान रखो, अशुभ-बंध न किया होता तो अशुभ-उदय कैसे आया? अशुभ-उदय के काल में भी रुदन नहीं चिंतन करो, अशुभ-बंध स्वयं कर्मों का न किया होता तो सम्प्रति उदय में क्यों आता? तुम्हारे कर्म-विपाक का कारण अन्य नहीं, तुम स्वयं ही हो।

6. Beware of the bondage of fresh karmas during the fruition of past karmas. Had you not bound yourself with inauspicious karmas, how could these have come to fruition? During the fruition of inauspicious karmas do not cry but reflect thus: "Only my previously committed inauspicious karmas are causing me misery now. I am the cause of the fruition of my karmas."

---

7. पुद्गल-पिण्ड कार्माण-वर्गणा उपादान-दृष्टि से स्वयं ही कर्मरूप परिणत होती है, परन्तु निमित्त-दृष्टि से देखें तो जीव के परिणाम निमित्त हैं। जीव परिणाम हेतु न बनें तो कर्मवर्गणा कभी भी कर्मरूप परिणत न हों, ऐसा सिद्धांत का त्रैकालिक नियम है, इसलिए कर्मविपाक से भयभीत पुरुष को स्व भाव-कर्म पर नियंत्रण रखना चाहिए।

7. Minute karmic particles of physical matter turn into the karmas due to own substantive cause; dispositions of the soul are the instrumental cause. In absence of the instrumental cause, karmic particles never turn into karmas; this is the eternal rule of the Doctrine. Therefore, the man afraid of fruition of the karmas should control own dispositions.

---

8. पर के भाव नहीं स्वयं के परिणाम ही जीव को शुभाशुभ कर्मास्रव एवं बंध के कारण हैं। बंध होगा तो उदय भी आएगा। उदय काल में यदि जीव स्वपरिणाम को सँभाल नहीं पाया तो पुनः नवीन आस्रव-बंध को प्राप्त करेगा। जीव को स्व-भावों को सँभालने का गंभीर पुरुषार्थ प्रतिपल करना ही श्रेयस्कर है। बिना भाव-कर्म निरोध के द्रव्य-कर्मों का निरोध सम्भव नहीं है।

8. Own dispositions, not of others, cause the influx and bondage of auspicious and inauspicious karmas. Bondage of karmas is followed by fruition. If the man is not able to control own dispositions during fruition of karmas, he will cause fresh influx and bondage. It is, therefore, worthwhile to make effort, every instant, to control own dispositions. Material-karmas cannot be controlled without the control of psychic-karmas.

---

9. लोक में जो भी जीव साधना के मार्ग को प्राप्त हो रहा है वह साधना यदि परिणाम विशुद्धि पूर्वक होगी तो सम्पूर्ण साधना कर्मक्षय का साधन बनेगी। कुछ साधना अशुभ कर्म का ही क्षय कर पाती है, कुछ साधना अशुभ मात्र का निरोध कराती है, कुछ विशिष्ट साधक की विशिष्ट-साधना विशिष्ट रूप से शुभाशुभ कर्मों का क्षय करा देती है।

9. If the observances of the man are associated with purity of own dispositions, these will result in destruction of the karmas. Some observances are able to destroy inauspicious karmas, some result in shielding him from inauspicious karmas, and some special observances of extraordinary ascetics destroy both, auspicious and inauspicious karmas.

---

10. परमार्थ से कर्म का परिणमन स्वतंत्र है और आत्मा का स्वतंत्र। कर्म अपनी योग्यता से परिणमन कर रहे हैं तथा आत्मा संसार में स्वकीय विभाव-शक्ति से भ्रमण कर रही है। व्यवहार दृष्टि से जीव के परिणामों के

निमित्त से कार्माण वर्गणा कर्मरूप परिणत हो रही है और कर्म के निमित्त से जीव संसार में भ्रमण कर रहा है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है।

10. From the real point-of-view, transformations of both, the karmas and the soul, are independent. The karmas get transformed due to own capability, and the soul is wandering in the world due to transformations that are result of its imperfections in the worldly state. From the empirical point-of-view, due to the instrumental cause of the dispositions of the soul, minute karmic particles turn into karmas and get bound with the soul; these bound karmas are responsible for the soul's wandering in the world. Such is the cause-and-effect relationship.

---

11. लोक में पुद्गल का भ्रमण कालाधीन है और जीव का भ्रमण कर्माधीन, ऐसी व्यवस्था जीव और पुद्गल की त्रैकालिक है, ईश्वर कृत नहीं स्व कृत है।

11. In the world, the change in the physical-matter is dependent on the time *(kāla)* and in the soul on the karmas. This is the eternal system for the physical-matter and for the soul; self, rather than a supreme-god, is the doer.

---

12. अज्ञ प्राणी कर्मोदय, कर्मबंध, सत्वादि को न जानता हुआ जगति पर भूत-प्रेतादि की उपासना में अपना अमूल्य समय एवं श्रद्धा का व्यय करता है, जबकि संसार के सुख एवं दुःख कर्म विपाक हैं, जो कि स्वयं के द्वारा पूर्वकृत कर्म का ही परिणाम है, अन्य किसी भूत-व्यन्तर का फल नहीं। व्यन्तरादि भी सुख-दुःख में निमित्त बनते हैं तो वह भी पूर्वकृत स्वकर्मोदय का ही परिणाम जानो।

12. The ignorant man, unaware of the truth of fruition and bondage of the karmas and existence, spends his invaluable time and faith in adoration of demons and evil-spirits; the truth is that worldly happiness and misery are due to fruition of the self-bound past karmas, not due to any demons or evil-spirits. Even if the peripatetic *(vyantara)* devas cause happiness or misery, that is due to fruition of own past karmas.

---

13. कर्म-सिद्धांत के बोध के अभाव में जीव संसार में अनेक प्रकार के क्लेश को प्राप्त कर रहा है और मिथ्या-आस्था में डूबकर सम्यक्त्व का नाश कर रहा है।

13. Without the knowledge of the doctrine of the karmas, the man is subjecting himself to many kinds of distress and, immersed in false-belief, he is destroying right-faith.

---

14. अशुभ कर्मोदय पर शान्त जीवन जीना ही श्रेयस्कर है क्योंकि उस समय जो भी पुरुषार्थ करोगे उसमें अनुत्तीर्ण ही होना पड़ेगा। प्रभु भजन करो, अशुभ क्रियाओं से आत्मरक्षा करो, रत्नत्रय धर्म का आलम्बन लो, संकल्प-विकल्प की ज्वालाओं से सुरक्षित रहो। अशुभ भी शुभरूप में परिवर्तित हो जाएगा। सब दिन एक से नहीं होते, सबके दिन भी एक से नहीं होते, ऐसा प्रकृति का सनातन धर्म है।

14. Maintain tranquility during fruition of inauspicious karmas because all your effort is bound to meet failure at such time. Worship Lord Jina, save self from inauspicious activities, take refuge in the dharma of the Three-Jewels *(ratnatraya)* and keep distance from the flames of volitions and inquisitiveness *(saṃkalpa-vikalpa)*. The inauspicious will turn into auspicious. All days are not the same and the days of all are not the same; this is the eternal law of the nature.

---

15. पुण्य कर्म के उदयकाल में स्वयं को सँभालकर रखना अनिवार्य है, क्योंकि उस समय सम्पूर्ण विषयों की सामग्री सुलभता से प्राप्त हो जाती है। उस समय उसमें लिप्त नहीं होना। विरक्त चित्त से पापों से आत्मरक्षा कर अपने पूर्वकृत पुण्य को सुरक्षित रखना, नवीन पुण्य का बंध करना, जीर्ण पापकर्म की निर्जरा करना, ज्ञानीजनों का यही श्रेयस्कर कार्य है।

15. It is essential to control self during the fruition of merit since all objects of sensual-pleasures are easily available at that time. Do not get engrossed in these. Keep your merit protected through detachment and thus saving self from demerit. It is worthwhile to earn fresh merit and shed decaying karmas of demerit.

---

16. आत्मधर्म की रक्षा वे ही भव्य जीव कर पायेंगे जो कर्म-बंध एवं कर्म-उदय की पीड़ा को समझते हैं। वचनों में नहीं, निज भावों में। जिसे अशुभ कर्मों से दुर्गति और शुभ कर्मों से सुगति का विश्वास है, दृढ़ आस्था है तथा चारों गतियों की सत्ता को जो जानता है वही संसार के भ्रमण से भयभीत हो सकता है।

16. Only those potential men who understand the suffering associated with karma-bondage and karma-fruition will be able to save their soul-dharma. Not in words but in own-disposition! Only the man who believes that inauspicious karmas lead to evil state-of-existence and auspicious karmas to virtuous state-of-existence, and knows the four states of existence, will be scared of transmigration.

---

17. कर्मोदय की तीव्रता में जीव विवेक-शून्य उन्मत्तवत हो जाता है, हेय-उपादेय पर तो लक्ष्य ही नहीं ले जाता। जैसा मन में आता है वैसा कार्य करता है। अनर्थ के बाद उसे अर्थ की सुध आती है, तब तक सब नष्ट हो चुका होता है।

17. During the period of severe karma-fruition the man becomes as if inebriated, void of discrimination; he does not think about what is worth accepting and rejecting. He acts according to his whims. By the time he realizes his folly he loses everything.

---

18. अज्ञ प्राणी कर्मोदय को देख-देख रोता है, हाय-हाय करता है। मेरे ऊपर महाकष्ट, महावेदना आ गई है, पर यह नहीं विचारता है कि इस कष्ट को देने वाला कौन है? ईश्वर, परमात्मा, विधि, ब्रह्म, अरे भाई! अन्य कोई ईश्वर नहीं है, कर्मोदय कर्म बंध के बिना नहीं आता। कर्म बंध अन्य ने नहीं किया, स्वयं का कर्म, कर्ता जीव स्वयं है, व्यर्थ में पर को दोष मत दो।

18. On fruition of karmas the ignorant man weeps and bawls. He moans the great pain and hardship that has befallen him without reflecting as to who was responsible for it. He blames god, fate and divinity! O brother! No god is responsible; fruition of karmas does not take place without prior bondage. Bondage of karmas has not been affected by others; do not unnecessarily blame others as own-soul is the doer and thus responsible.

---

19. कर्म सिद्धान्त का बोध व्यक्ति की सोच को शौच बना देता है। जो पुरुष अपने सुख व दु:ख का कर्ता अन्य को देखता था वह स्वयं को देखना प्रारम्भ कर देता है, स्व अनादि-अविद्या का त्याग कर स्वतंत्रता का वेदन करने लगता है। उसे निर्णय हो गया कि बंध स्वयं ने किया था तो कर्मफल भी स्वयं ही भोगना होगा तथा कर्म नाश भी स्वयं के पुरुषार्थ से स्वयं ही करना होगा। अन्य कोई पुरुष विशेष या परमात्मा मेरे सुख व दु:ख का कर्ता-भोक्ता नहीं है। यह बात पूर्ण ध्रुव सत्य है, शेष तो जो है सो है।

19. The understanding of the doctrine of karmas purifies thinking of the man. He starts seeing self, and not others, as the doer of his happiness and misery; as he renounces his beginningless ignorance, he starts enjoying a sense of independence. He reckons that when he is responsible for bondage, the fruit must be enjoyed by him only and also that destruction of karmas can take place only through own effort. No other man or god is the doer or enjoyer of his happiness and misery. This is the whole, eternal truth; rest everything is as it is.

---

20. भव्य प्राणी स्वयं के कर्मफल को स्वाश्रित ही स्वीकारता है तथा बंध-निर्जरा के विधान को भी जानता है। कर्म बंध के हेतुओं से आत्म-रक्षा का उपाय खोजता है, साथ ही कर्म-निर्जरा तथा मोक्ष उपाय का पूर्ण पुरुषार्थ करता है। भावों की दशा पर प्रतिक्षण तत्त्व चिंतन करता है।

20. The potential man reckons that he himself is responsible for fruition of karmas; he understands the rules of bondage and shedding of karmas. He seeks ways to

protect own soul from the causes of bondage of karmas and, simultaneously, makes sincere efforts to shed karmas and attain liberation. He reflects, every instant, on the state of his dispositions.

---

21. जीव के सुख-दु:ख में कर्म ही निमित्त है, उसे ही विधि, ब्रह्म, ईश्वर, भगवान्, परमात्मा, विभु, दैव, भाग्य, विरंच, कृतांत आदि नामों से जाना जाता है। अन्य कोई विभु, ईश्वर या परमात्मा प्राणी के लिए दु:ख-सुख प्रदान करने नहीं आते, यह सनातन सत्य है।

21. The karmas are the instrumental cause of man's happiness and misery. The same cause is given names like *vidhi, brahma, īśvara, bhagavān, paramātmā, vibhu, daiva, bhāgya, viraṅca* and *kṛtāṅta*. No external *vibhu, īśvara* or *paramātmā* comes to provide man happiness and misery; this is the eternal truth.

---

22. पाप कर्मास्रव से आत्मरक्षा के भाव हैं; तो व्यर्थ के पाप कर्मों का बुद्धिपूर्वक त्याग कर देना चाहिए। ऐसे कर्म मत करो जो आत्मविशुद्धि पूर्वक किसी से नहीं कह सको, ऐसे कर्म करो जिनके कहने में न रुको, न विशुद्धि का नाश हो, न कुल में कलंक लगे और न ही पाप का आस्रव हो।

22. If you wish to protect your soul from influx of evil-karmas, renounce assiduously all useless and evil activities. Do not indulge in activities that you would not be able to mention, with pure heart, to others; indulge in activities that are worthy of mention by you and others, that do not destroy the purity of your soul, that do not tarnish your lineage and that do not cause influx of evil-karmas.

---

23. स्वयं का ही चित्त जिसे सहसा न स्वीकारे वही तो पाप कर्म है। चित्त पानी तुल्य है। गहरा पानी मध्य में से कचड़े को या मनुष्यादि प्राणियों को उछाल देता है, उसी प्रकार अशुभ कर्मों को चित्त उछाल देता है, फिर साधक का चित्त स्वच्छ रहता है।

23. That which the own heart does not accept at once is the evil-karma. The heart is like deep water. As deep water throws up to the surface the dirt and living-beings like humans found in its midst, in the same way, the heart throws out the inauspicious karmas and thereupon it becomes clean.

---

24. ऐसा कर्म करो जिससे अभ्युदय-नि:श्रेयस की सिद्धि हो। वह कर्म कभी मत करो जिससे अशुभ-कर्म का बंध हो, उभयलोक में पीड़ा की प्राप्ति हो, जिससे अभ्युदय व नि:श्रेयस दोनों ही सुखों का अभाव हो और जिससे जगति पर हँसी हो।

24. Indulge in activity that accomplishes prosperity and liberation. Never indulge in activity that causes bondage of inauspicious karma, suffering in this world and the next, deprivation from the happiness of prosperity and liberation, and ridicule in the world.

---

25. अशुभ का बंध तो विग्रह करके फलित होता है, परन्तु अशुभ-बंध के योग्य लोक में जो जीव क्रिया करता है; वह तो लोक में शीघ्र ही प्रचार को प्राप्त हो जाती है, चाहे वह प्रशस्त हो अथवा अप्रशस्त, प्रचार तो होता ही है। प्रशस्त की अपेक्षा अप्रशस्त का प्रचार और द्रुतगति से होता है।

25. The fruition of the bondage of inauspicious karmas takes place on body-transition but the activity that caused the bondage gets publicized in the world fast; whether auspicious or inauspicious, it gets publicized. Publicity of the inauspicious activity is faster than of the auspicious activity.

---

26. पर-भावों से स्वयं का और स्वयं-से पर भावों का कर्तापन कर्मबंध का प्रधान-कारण है। कर्तापन से ही जीव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग में प्रवृत्ति करता है। कर्तापन का अंतरंग से अभाव हो जाए और तदनुकूल प्राणी अपनी वृत्ति कर ले तो निश्चित ही त्रिलोक्यपति पद पर विराजमान हो जाए।

26. The disposition that the others are the doer of the self or the self is the doer of the others is the main cause of bondage of karmas. Only due to this disposition of doer the soul engages in wrong-belief, non-abstinence, negligence, passions and activities. If the soul gets rid of the disposition of doer, and adopts conduct accordingly, it is certain to get to the status of the lord-of-the-three-worlds.

---

27. कर्म सहित संसार है, कर्म रहित मुक्ति। पुरुषार्थ पुरुष के हाथ है। स्वर्ग-मोक्ष, नर-नारक, तिर्यंचादि अवस्थाएँ मानव की विशुद्धि व संक्लेशता पर आलंबित हैं, स्व पुरुष के पुरुषार्थ पर निर्भर हैं।

27. With karmas is world-wandering, without karmas is liberation. The effort is in man's hands. States of the soul in heaven and liberation, as human and infernal-being, as plant and animal, depend on its purity and mental-anguish; on own-effort.

---

28. अन्तर्मुहूर्त काल के परिणामों को जीव सँभाल ले, तो दीर्घकाल तक संसार से कर्मोदय के कारणभूत घनघोर संकटों का दर्शन करना न पड़े। कषाय की तीव्रता एवं भोगलिप्सा व्यक्ति को सत्यार्थ के दर्शन नहीं होने देती है, फलतः जीव विषयों में भावुक होकर अशुभ-कर्म करके, अशुभ-कर्म के बंध बांधकर चिरकाल तक संसार में महा-दुःखों को प्राप्त होता है।

28. If the man is able to control his dispositions during a period of just forty-eight-minutes *(antarmuhūrta)*, he saves himself from great agony due to fruition of the karmas in his prolonged worldly existence. Intense passions and craving for sensual-enjoyment do not allow him to know the truth and, as a result, he indulges in inauspicious activities of sensual-enjoyment, suffers bondage of inauspicious karmas, and subjects himself to intense worldly misery for a very long time.

---

29. वासना क्रूर होती है; जो जीव को अशुभ-कृत्यों में लगाकर संसार में महादु:खी बनाकर रखती है। वासना में लीन जीवों को कम-से-कम स्वात्मा पर तो करुणा आना चाहिए।

29. Lust is cruel; it keeps the man engaged in inauspicious activities and subjects him to great suffering. The men engrossed in lust should at least have mercy on own soul.

---

30. कर्म वह शक्ति है, जो जीव को संसार में बांधकर रखती है और कर्म से मुक्त होते ही आत्मा सिद्धत्व को प्राप्त करती है।

30. The karma is that energy which keeps the soul bound to the world; as the soul gets rid of the karma, it attains liberation.

---

31. एक बार भी किया गया अशुभ आचरण जीव को मिथ्या-भाषण, मिथ्या-भावों को उत्पन्न करा देता है। जगति पर मिथ्या-भाव कर्मों की विशाल सेना खड़ी कर देता है। अशुभ-कर्मों के बंध से भय है, तो अशुभ आचरण एवं अशुभ-भावों से निज को भिन्न करो।

31. A single inauspicious activity causes the man to indulge in evil speech and thoughts. A large army of evil psychic-karmas appears in his world. If you are fearful of bondage of inauspicious karmas distance yourself from inauspicious conduct and thoughts.

---

32. आत्म स्वतंत्रता का चिंतन-मनन व्यक्ति को कर्मों से स्वतंत्र होने का संस्कार प्रदान करता है। चिंतन की धारा के अनुकूल व्यक्ति की जीवन-धारा निर्मित होती है। श्रेष्ठ चिन्तन, श्रेष्ठ जीवन।

32. Reflection on soul-independence grooms the man to attain independence from karmas. The direction of his reflection determines the direction of his life. Excellent reflection leads to excellent life.

---

33. जीव का आत्म-पुरुषार्थ प्रबल है, तो कर्मों को भी शिथिल होना पड़ता है। मयूर की आवाज से सर्प शिथिल हो जाते हैं, इसलिए प्रत्येक भव्य जीव का कर्तव्य है कि वह आत्मविशुद्धि पूर्वक मोक्षमार्ग में लीन रहे, परन्तु लौकिक कार्यों से अप्रभावित रहकर।

33. When the self-effort of the man is strong, the karmas must loosen up. The scorpion loosens up its grip as it hears the voice of the peacock; every potential man, therefore, should steadfastly and with purity of his soul tread the path to liberation, remaining aloof from worldly chores.

---

34. तत्त्व निर्णय-पूर्वक तत्त्वज्ञानी जीव ही वस्तु के वस्तुत्व को समझकर समूल-कर्मों का क्षय कर, अनादि-अविद्या से रिक्त होकर आत्मविद्या के बल से, कर्मरिपु का क्षय कर, सदा परमानन्द का अनुभव कर शिव-सुख को निर्बाध्य वेदता है।

34. The man who knows the reality assimilates the nature of objects, uproots the karmas, sets himself free from beginningless wrong-learning, destroys the karma-enemy by the force of his soul-knowledge, and enjoys uninterrupted supreme happiness of liberation.

---

35. कर्म का उदय आता है इस बात का ध्यान रखते हुए जीव कर्म करे। ऐसा मत समझ लेना कि जो शुभाशुभ हम कर रहे हैं वर्तमान में वह वर्तमान का ही है। यह भूल है, क्योंकि भविष्य में वर्तमान में किया गया कर्म बंध ही उदय में आएगा, फिर नयनों से नीर बहेगा। अहो प्रज्ञ! वर्तमान में प्रशस्त कर्म करो; जिससे भावी काल में आँखों से पानी न आए।

35. While engaging in any activity beware that karmas come to fruition. Do not think that your present auspicious and inauspicious activities are going to affect your present only. It is a misconception; your karma-bondage of the present will only come to fruition in the future and bring you tears. O knowledgeable man! Spend your present in laudable activities to make your future tear-free.

---

36. अनावश्यक कार्यों से जीव अधिक कर्म का आस्रव-बंध कर लेता है। विषय-कषाय एवं पर पदार्थों की न्युनता करते हुए त्याग करना चाहिए। इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं, शरीर-मन श्रान्त है, फिर भी जीव व्यसन एवं संस्कार-वश विषय-कषाय रूप पाप परिणाम एवं पाप क्रिया में लीन रहकर क्रूर कर्मों का बंध कर भव-भव में क्लेश का पात्र बनता है।

36. By indulging in unnecessary activities the man causes the influx and bondage of numerous karmas. First minimize and then renounce sensual-inclinations, passions

and all external objects. Due to his sensual-inclinations and wont, even with dilapidated senses and worn-out body and mind, the man continues to engage in evil thoughts of lust and passions causing thereby the bondage of cruel karmas and distress in many future lives.

---

37. जीवन में संसार के क्लेशों से मुक्ति की भावना है तो परमात्मा एवं सद्गुरु का यही उपदेश है कि दृढ़तापूर्वक पापास्रव निरोधिनी, संवर एवं निर्जरा-वर्धनी संयम-समताकरी चर्या को स्वीकार करो, सद्-संगति, सद्-साहित्य, सद्क्षेत्र का आश्रय लो, जिससे पापकर्म से आत्मरक्षा हो सके।

37. If you wish to get rid of worldly distress the only preaching of the Supreme Being and the Teacher is that in order to save your soul from evil karmas accept resolutely the conduct of self-restraint and equanimity that blocks the influx and hastens the stoppage and shedding of karmas, and take refuge in good company, good literature and good location.

* * *

25

सत्यार्थ-बोध

अप्रमाद

Non-negligence

1. कुशल कार्यों में आलस्य नहीं करना, उत्साहपूर्वक प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान को पूर्ण करना, पन्द्रह प्रमादों से प्रतिक्षण आत्मरक्षा करना 'अप्रमाद' है। इससे विपरीत कुशल कार्य अर्थात् पुण्य कार्यों में आलस्य वर्तना, संवेग भाव-शून्य क्रिया करना 'प्रमाद' है।

1. Non-negligence is not to be indolent in laudable activities, to participate enthusiastically in religious undertakings and to protect every instant own-soul from the fifteen kinds of negligence. Contrary to this, negligence is to be indolent in laudable or virtuous activities and working without enthusiasm.

---

2. प्रमादी को किसी भी वस्तु की समीचीन उपलब्धि नहीं होती, प्रमाद में हेय-उपादेय के विवेक का भी भान नहीं रहता। प्रमादी प्रतिक्षण उन्माद में लीन रहता है, वह विवेक-भाव का तो घात ही कर लेता है। प्रमाद जीव का घोर शत्रु है।

2. The negligent man is not able to accomplish anything; he loses discrimination between what needs to be accepted and rejected. Engrossed, every instant, in insanity, he destroys his sense of discrimination. Negligence is a grave enemy of man.

---

3. जो पुरुष दिन-रात प्रमाद में सुप्त से रहते हैं; वे लौकिक एवं पारमार्थिक उभय-उन्नति का नाश करते हैं। प्रमाद उन्नति का क्षय कराता है। विकास उनका होता है, जो प्रमाद का त्याग कर सदा जाग्रत रहते हैं। उनके श्रीचरणों में संसार का सम्पूर्ण-वैभव सिर झुकाता है।

3. Those who feel sleepy, day and night, due to their negligence destroy both types of progress, worldly and spiritual. Negligence destroys progress. Only those who renounce negligence and remain awake always achieve progress. All grandeur of the world bows down at their feet.

---

4. जो सूर्योदय के उपरान्त उठते हैं; वे क्या जीवन में विकास कर पायेंगे? जो प्रमाद का आश्रय लेता है, वह मानवता-शून्य हो जाता है। जो प्रमाद का त्याग कर लेता है, वह पूर्वोपार्जित-कर्मों का क्षय कर देता है।

4. What progress can those men achieve who get up late, after sunrise? The man with negligence becomes void of humanity. The man who renounces negligence destroys his past-earned karmas.

---

5. प्रज्ञावन्त प्रमाद को ऐसे त्याग कर देते हैं जैसे सद्श्रावक अभक्ष्य, अन्याय, अनीति का त्याग कर देता है। प्रमाद स्व-संवेदन के लिए अभक्ष्यवत है। प्रमाद स्वात्मा के लिए पूर्ण-अन्याय है, मोक्षमार्ग में बाधक है।

5. Intelligent men renounce negligence as a worthy householder renounces non-edibles, injustice and impropriety. For introspection, negligence is like a non-edible. Negligence is great injustice to own-soul and is an obstacle in the path to liberation.

---

6. जो इहलोक एवं परलोक में आत्म विकास की भावना रखते हैं, उन्हें प्रमाद के त्याग की भावना प्रतिपल भाना चाहिए। लोक में उच्च पदों पर वे ही बैठते हैं; जो प्रमादी नहीं होते। चाहे वह स्थान लौकिक हो, चाहे परमार्थभूत हो।

6. Those who wish for self-development in this world and the next should, every instant, think of renouncing negligence. Only those who are not negligent occupy high position in this world. This is true for worldly as well as spiritual position.

---

7. परमानन्द की अनुभूति प्रमाद में नहीं होती है, आनन्द के वेदन के लिए प्रमाद अर्गला है। परमानन्द का अनुभवन अप्रमत्त-दशा में ही होता है, अप्रमत्त हुए बिना आत्मानन्द नहीं मिलता है। प्रमाद हटाओ, परमानन्द पाओ।

7. Supreme bliss is not experienced in the state of negligence; negligence is an obstruction in the experience of bliss. Supreme bliss is experienced only in the state of non-negligence; without being non-negligent the bliss appertaining to the soul is not attained. Renounce negligence, get supreme bliss.

---

8. प्रमाद, आलस्य व अशुभ-आदत इन तीनों में से यदि एक भी जीवन में आ जाए तो जीवन का विकास रुक जाता है, फिर जिसके पास तीनों ही हैं उसका विकास कहाँ और कैसे सम्भव है? यह स्वयं ही सोचना पड़ेगा, पर का विचार न किसी की वृद्धि का कारण है न ही हानि का।

8. Even if one of these three, negligence, indolence and bad-habit, is present in life its progress gets blocked; how and where can the one who has all three progress in life? You will have to think it over for yourself; the thoughts of others do not result in your progress or downfall.

---

9. प्रेक्षावान पुरुष स्व जीवन के बारे में स्वयं ही निर्णय लेते हैं और प्रमाद एवं प्रमाद के कारणों से प्रतिक्षण आत्मरक्षा करते हैं, पग-पग पर क्षण-क्षण में सावधानी का वर्तन करते हैं। प्रज्ञपुरुष आलस्य व प्रमाद को जीवन की एक बहुत बड़ी दुर्घटना मानते हैं। तत्त्व ज्ञान, तत्त्व निर्णय उनका प्रण व प्राण है। प्रमादी एवं प्रमाद से दूरी बनाकर चलना प्रेक्षावान की मूल-पहचान है।

9. Conscientious men take their own decisions of life; they protect themselves, every moment, from negligence and its causes, and remain ever vigilant. Knowledgeable men consider indolence and negligence as major accidents in life. Their resolve and lifeblood is the knowledge and understanding of the reality. Their basic mark is that they maintain distance from the negligent man and negligence.

---

10. अप्रमत्त जीवन विश्व का पवित्र जीवन है। आत्मा को परमात्मा बनाने का श्रेष्ठ जीवन आत्महित भाव पर अखण्ड ध्रुव दृष्टि, परभावों से भिन्न दृष्टि जहाँ रहती है, वहाँ पर आत्महित है।

10. The non-negligent life is the life marked by purity. The way to make your soul the supreme-soul is to live a life where unwavering and constant sight is on soul-benefit, away from everything 'other'.

---

11. आत्मा में गद्‌गद्-भाव विवेकज्ञान के सद्‌भाव में प्रकट होता है। विवेकज्ञान शून्य वात-कफ प्रकृति से परिणत शरीर वाला व्यक्ति प्रतिक्षण हीन-भावना से ग्रसित रहता है। उसका मूल कारण है कि आलस्य-प्रमाद उसका साथ छोड़ता नहीं है, जिससे कार्यक्षमता बढ़ती नहीं है। कार्य कुशलता के अभाव में परमार्थ एवं लौकिक उभय मार्ग में हीन भावना के क्लेश का दु:ख प्रतिपल प्राप्त करता है।

11. The disposition of delight in the soul is manifested in presence of discriminatory knowledge. The man without discriminatory knowledge is like the body with imbalance of wind *(vāta)* and phlegm *(kapha);* he remains incessantly under the spell

of inferiority complex. The reason is that indolence and negligence do not leave him and, as such, he is unable to increase his work-efficiency. Due to low work-efficiency he has to suffer every moment the agony of inferiority complex in his worldly as well as spiritual pursuits.

---

12. कालकूट विष से भी अधिक विषाक्त कोई विशिष्ट विष है; वह प्रमाद और हीन-भावना है। जो हीन-भावना को सहने में असमर्थ होते हैं वे कायर का जीवन जीकर मृत-तुल्य जीवन जीते हैं। उनकी समाज, देश, राष्ट्र में कोई भी कीमत नहीं होती है, उन्हें सर्वत्र अपमान सहना पड़ता है।

12. If there is a poison deadlier than the *'kālakūṭa',* it is negligence and inferiority complex. Those who are unable to cope with inferiority complex live the life of a coward; like a dead man. They have no value in society or in country or nation; they are subjected to disgrace everywhere.

---

13. जो दु:ख व क्लेश शत्रु के द्वारा नहीं होता उससे अधिक दु:ख प्रमाद देता है। प्रमाद भव-भव में आत्मा को पीड़ित करता है। प्रमाद जो है वह उन्नति मार्ग के द्वार पर भी खड़ा नहीं होने देता है। आत्महित क्या है? इसे तो विचार का विषय ही नहीं बनने देता है, विकथाओं में भेज देता है। कषाय के पथ पर धकेल देता है। आत्म हितैषी को कषायों से अपनी रक्षा करना चाहिए, प्रमाद को छोड़ना चाहिए तथा विवेक को जाग्रत रखना चाहिए।

13. Negligence causes more misery than the suffering and agony caused by the enemy. Negligence troubles the man life after life. It does not allow him to tread the path to progress. It does not allow him to think about the welfare of own-soul; he gets involved in evil stories. He is pushed on to the path of passions. The man desirous of the welfare of own-soul should protect self from passions, renounce negligence and keep awake his discrimination.

---

14. जो प्रमाद के अधीन है उसे स्वहित भावना के लिए समय ही नहीं मिल सकता है। प्रमाद से अपने आपको स्वतंत्र करो, स्वाधीनता में सुख है। पराधीनता में सुख की कल्पना हो सकती है, परन्तु सुख नहीं मिल सकता।

14. The man subjugated by negligence does not find time for the welfare of own-soul. Free yourself from negligence; happiness lies in independence. One may seek happiness in dependence but cannot get it.

---

15. प्रमदा के प्रेम प्रमाद में कितने जीवों ने पर-के प्राणों का नाश किया, कितनों ने स्व-के प्राणों का ही नाश कर लिया, महा-संग्राम हो गए, इसलिए प्रमाद का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

15. Due to negligence caused by the love for woman, many have killed others, many have killed themselves and wars have taken place. Renounce negligence.

---

16. धर्म-धन-यश तीनों के क्षय में प्रबल कारण स्नेह-प्रमाद है, जो भी व्यक्ति विवेक-शून्य होकर पर-स्त्री पर स्नेह को प्राप्त होता है, उसका धर्म, धन एवं यश क्षण-मात्र में विलीन हो जाता है।

16. The cause of destruction of all three – dharma, wealth and renown – is the negligence due to love. The dharma, wealth and renown of the man who, void of discrimination, breeds love for the wife-of-other get destroyed instantly.

---

17. प्रज्ञावन्त-पुरुष प्रतिक्षण जाग्रत होकर जीते हैं; वे विषय-कषाय की मदिरा से आत्मरक्षा करते हैं। कौन-सी कषाय, क्या अनर्थ करा दे? कुछ नियत नहीं, इसलिए कल्याणेक्षुक भव्यात्माओं को प्रतिक्षण पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। अंतरंग रूप से भी जो विषय-कषाय से प्रभावित नहीं होता; वही सच्चा प्रज्ञावन्त है।

17. Knowledgeable men remain awake every instant; they protect themselves from the intoxication of lust and passions. You do not know what passion will cause what harm; therefore, potential men desirous of own-welfare should incessantly remain active. The man who does not get influenced, even internally, by lust and passions is the real knowledgeable man.

---

18. प्रमादी-मानव मानवता को भूल जाता है। प्रमाद का उन्माद दीर्घकाल तक प्रभावी होता है। पर-पदार्थों के संयोग-वियोग में क्लेश-बुद्धि यह स्नेह-प्रमाद का ही प्रभाव है। प्रमाद में लीन पुरुष पर-पदार्थों में आत्म-बुद्धि तो कर सकता है, परन्तु पर-पदार्थों को आत्मभूत नहीं कर सकता है।

18. The negligent man forgets humanity. Inebriation due to negligence continues for a long time. Getting anxious on union or separation of external objects is the effect of negligence due to love. The man engrossed in negligence due to love can think about external objects but cannot relate these to own-soul.

---

19. राग-प्रमाद के कारण जीव बड़े-बड़े अनर्थ कर देता है, कोटि-कोटि जीवों का घात कर देता है। जिससे राग था उसे ही मार दिया। विचार करो, राग व्यक्ति से था या वासना से? यश-कीर्ति के पीछे व्यक्ति किसी का

भी घात कर देता है। वासना की चाह में वध कर देता है। एक पाप को छुपाने के पीछे दूसरा घोर-पाप हिंसा कर देता है। ऐसे राग को ही धिक्कार हो जो अनर्थों की जड़ है।

19. Because of negligence due to love, the man indulges in grave improprieties; he kills millions and millions of living-beings. He kills the one he loves. Think; was his love for the person or for lust? The man kills another for renown and glory. He kills for his lust. To hide one evil he indulges in another grave evil of murdering other. Fie on such love, the root of improprieties!

---

20. कितने बाल; बालाओं के स्नेह से नष्ट हो गए तथा कितनी ही बालाएँ बालों के राग में नष्ट हो गईं। राग अन्ध होता है, वहाँ धर्म-यश-कुल-जाति-पद आदि की गरिता (गरिमा) तो दिखती ही नहीं है। मनुष्य की वृत्ति श्वान जैसी हो जाती है। कामसेवी क्षण-भर में अपना सर्वनाश कर शोक को प्राप्त होता है।

20. Many lads destroy themselves in love of dames and many dames in love of lads. Love is blind; it fails to see the importance of dharma, renown, lineage, caste and status. The behaviour of man becomes like that of a dog. The lustful man, in an instant, loses everything and comes to grief.

---

21. प्रमादी पर में दोष देखता है, उसे तत्त्व का भूतार्थ-बोध कहाँ? स्वयं का सुख-दु:ख पर-निमित्तों में खोजता है, जबकि उपादान सशक्त होता है निमित्त तटस्थ, इसलिए उपादान सँभालो।

21. Unaware of the truth of the reality, the negligent man finds faults in others. He seeks happiness and misery in external instrumental causes. The substantive cause is potent, the instrumental cause is indifferent; be watchful of the substantive cause.

---

22. उल्लसित-भाव, प्रमाद-शून्यता व्यक्ति के जीवन-विकास का विशिष्ट आयाम है। खिले पुष्प को पथिक भी प्रेम से देखता है तथा प्रसन्न-पुरुष को सम्पत्तियाँ भी देखती हैं। जाग्रत-पुरुष को देखकर चोर भाग जाते हैं, उसी प्रकार प्रसन्न चित्त को देखते ही विपत्तियाँ भाग जाती हैं।

22. Delightfulness and non-negligence are special extensions for progress in life. The stroller gets enchanted by the blossoming flower; the wealth gets enchanted by the delightful man. As thieves run away from the awakened man, the troubles run away from the delightful man.

---

23. प्रमाद का परिहार कर, उत्साह पूर्वक सतत स्वाध्याय व ध्यान करने से सामान्य व्यक्ति भी महान् ज्ञानी-ध्यानी बनकर स्व-पर कल्याण कर लेता है। प्रमाद सर्वगुणों का क्षय करा देता है, इसलिए दोनों बातों को समझकर स्वयं निर्णय करो अपने जीवन का।

23. By renouncing negligence and engaging enthusiastically and constantly in study and meditation an ordinary man becomes great; with his knowledge and thoughtfulness he benefits self and others. Negligence causes destruction of all virtues; determine the course of your life after evaluating both aspects.

---

24. अप्रमत्त दशा ही उत्कृष्ट एवं सर्व-कल्याणों की परम दशा है, आत्मा का विकास प्रमाद में नहीं अप्रमत्तता में है। अज्ञ-प्राणी प्रमाद में डूबकर धर्म-यश का नाश कर लेते हैं, वहीं योगीजन प्रमाद का त्याग कर परमात्म-अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।

24. The state of non-negligence is the supreme state of propitiousness. Soul-development consists in non-negligence, not in negligence. Ignorant men, immersed in negligence, destroy their dharma and renown. On the other hand, the *yogī* renounces negligence and attains the supreme state of his soul.

---

25. प्रमाद जीवन-उत्थान में महाशत्रु है। एक व्यक्ति प्रमाद-शून्य होकर सम्यक्-पुरुषार्थ करे, तो वह विकास को प्राप्त कर लेगा। मानव-मस्तिष्क सम्पूर्ण-जीवों में विशिष्ट होता है, इसलिए सम्यक्-उपयोग की आवश्यकता है।

25. Negligence is a great enemy in life's progress. The man who renounces negligence and makes right effort can achieve progress. The mind of the man is special among all living-beings; he has to make right use of it.

---

26. विकासशील मानव अपनी प्रज्ञा-को व्यर्थ के विषयों में नहीं लगाता। वह विशिष्ट स्थानों पर ही अपनी प्रज्ञा का प्रयोग करता है, जिसमें स्व-पर का हित निहित होता है। लोक में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो मानव के ज्ञान से बाहर हो।

26. The progressive man does not waste his intellect on worthless things. He uses it selectively on subjects that bring about the well-being of self and others. There is nothing in the world that is out of the purview of man's knowledge.

---

27. उत्साह एक अलौकिक शक्ति है, जो कि जीव को अनन्तानन्त शुद्ध-सिद्ध परमात्माओं के मध्य स्वतंत्र परमात्मा बना देती है, इसलिए प्रमाद का त्याग कर अप्रमत्त होने का सम्यक्-पुरुषार्थ करो।

27. Enthusiasm is a supernatural power that establishes the soul as an independent supreme soul in midst of infinite-times-infinite pure, supreme souls. Renounce negligence and make the right effort to adopt non-negligence.

---

28. प्रमाद-से-प्रमाद की वृद्धि होती है और उत्साह-से-उत्साह की। एक बार किया गया प्रमाद अनेक बार करने योग्य प्रमाद के संस्कारों को जन्म दे देता है, इसलिए प्रज्ञ-पुरुषों का कर्तव्य है कि वे एक बार भी प्रमाद न करें। प्रमाद-शून्य होकर स्व-पर हितकारी मार्ग को प्रशस्त करें तथा श्री जिनशासन का उद्योतन करें।

28. Negligence thrives on negligence and enthusiasm thrives on enthusiasm. Negligence of one time gives birth to a series of negligence; therefore, knowledgeable men should renounce negligence at all times. Renouncing negligence, they should tread the path that is beneficial to self and others, and brighten up the regime of Lord Jina.

---

29. पुरुषार्थ एवं उत्साह जीवन में कभी नहीं छोड़ना चाहिए। भले ही अभी कार्य की पूर्णता न भी हो, तब भी कार्यपूर्णता के लिए पुरुषार्थ करना, क्योंकि भविष्य में वही पुरुषार्थ कार्य-सिद्धि का कारण बनेगा। प्रमाद नहीं, पुरुषार्थ करो।

29. Do not ever leave effort and enthusiasm in your life. Even if the task was not completed, continue making effort; your effort will lead to the accomplishment of the task. Shed negligence; make effort.

---

30. विषयों की लिप्तता, कामादि विकारों की तीव्रता यह जीवन का महा-प्रमाद है। जब-तक जीव कामादि भावों से आत्मरक्षा नहीं करेगा तब तक प्रमाद का अभाव नहीं होगा और प्रमाद का अभाव हुए बिना मोक्ष तत्त्व की सिद्धि नहीं होगी।

30. Craving for sensual-pleasures and intense lustfulness are sources of great negligence in life. As long as the man does not protect himself from these he will not be able to overcome negligence; without overcoming negligence liberation cannot be attained.

---

31. प्रमाद के वश होकर जीव विवेक-शून्य हो जाता है। उसे बोध ही नहीं रहता है कि मेरी प्रमाद चर्या से अनेक जीव क्लेश को प्राप्त हो रहे हैं। प्रमाद के उन्माद से आत्मरक्षा किए बिना, अहिंसा परम-धर्म का पूर्णत: पालन सम्भव नहीं है। धर्म के मूल की रक्षा करने के भाव हैं तो प्रमाद छोड़ो।

31. Due to negligence the man loses discrimination. He fails to realize that his negligence is causing distress to many living beings. Without protecting self from the intoxication of negligence, it is not possible to observe fully the dharma of non-injury. If you wish to protect the root of dharma, renounce negligence.

---

32. प्रमाद का जीवन उन्माद और बेहोशी का जीवन है। उन्मत्त के पास विवेक नहीं होता, प्रमादी भी विवेक शून्य होता है। प्रमादी व उन्मादी दोनों की एकता है। उन्माद छूटे तो प्रमाद छूटे और प्रमाद छूटे तो उन्माद छूटे।

32. The negligent man lives the life of inebriation and faintness. The inebriated man has no discrimination; the same is true for the negligent man. In this respect, the negligent man and the inebriated man are one. Leave inebriation to leave negligence; leave negligence to leave inebriation.

---

33. प्रमादी को कोई सज्जन अपना मित्र नहीं बनाता और प्रमादी किसी को मित्र नहीं बनाता। यदि कदाचित् कोई मित्र बन भी गया तो शीघ्र ही मित्रता टूट जाती है। दीर्घकाल तक प्रमादी का कोई साथ नहीं देता, सगे भी दूर हो जाते हैं, फिर अन्य की क्या बात कहें?

33. No one befriends the negligent man and the negligent man does not befriend anyone. If by chance he befriends someone, the friendship soon comes to naught. No one remains for long with the negligent man; even his family leaves him, what to talk of others?

---

34. सिद्धि प्रदायिनी वृत्ति वैराग्यपूर्ण निष्प्रमाद वृत्ति है। जो व्रतों से युक्त थे, वे ही भव्यवर सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। पर-भावों में आसक्त चित्त वाला प्रमादी दीर्घसंसारी जीव होता है, वह प्रमाद एवं आसक्ति का त्याग करके ही मुक्ति को प्राप्त कर पाएगा।

34. The conduct based on detachment and non-negligence leads to liberation. Only those virtuous men who were equipped with observances have attained liberation. The negligent man with fondness for the 'other' wanders long in the world. Only by renouncing negligence and fondness can he attain liberation.

---

35. जीवन में उत्साही स्वभाव श्रेष्ठ-उपहार है या कहें उत्कृष्ट वरदान, जो कि प्रतिपल वर्धमानता की ओर ले जाने के लिए नवीन-नवीन उमंग-तरंगों को प्राप्त कराता है। उन्नति के लिए प्रत्येक पल उत्साहपूर्ण हो और वह भी हीन-भावना से शून्य।

35. Enthusiasm is the excellent gift, nay, the excellent boon, in life; it bestows ever new vibrations of ambition to take the man, every instant, to greater height. For progress, every instant should be full of enthusiasm, rid of inferiority-complex.

---

36. सम्पूर्ण प्रमाद आत्मविशुद्धि के घातक हैं, मोक्षमार्ग में बाधक हैं, विनाशक हैं। फिर भी यदि कषाय प्रमाद पर नियंत्रण हो जाए तो शेष प्रमाद भी नियंत्रित हो सकते हैं। कषाय-प्रमाद की उग्रता वात्सल्य का घात कर अविश्वास को जन्म दे देती है, जिससे व्यक्ति अकेला रह जाता है। अन्य कोई सज्जन-पुरुष उसको सहयोग देना भी पसन्द नहीं करता तब फिर उसके अन्दर हीन-भावना एवं संक्लेशता प्रविष्ट कर जाती है, परिणामत: वह स्वात्मघात का भी विचार करने लगता है।

36. All kinds of negligence destroy soul-purity, obstruct the path to liberation, and cause devastation. However, if negligence due to passions is controlled, other kinds of negligence can be controlled. Severe negligence due to passions destroys affection and gives birth to mistrust; the man becomes lonely. Since other noble men do not like his company, inferiority-complex and distress set in him. As a result, he even starts contemplating suicide.

---

37. निष्प्रमाद दशा ही जीव को उभय-लोक में सुख-प्रदायक, त्रिलोक्य पूज्यता प्रदान करती है। निर्दोष धर्म साधना अप्रमत्तता से ही सम्भव है, इसलिए प्रत्येक भव्यवर मुमुक्षु के लिए प्रमाद त्याग करते हुए प्रतिक्षण पुरुषार्थ पूर्वक निष्प्रमादता की साधना करना चाहिए। प्रमाद भव-वर्धक है, निष्प्रमादता ही भव क्षय का प्रबल साधन है, ऐसा जिनोपदेश है।

37. Non-negligence in man bestows him happiness in both worlds and worshipfulness in the three worlds. Faultless observance of the dharma is possible only in the state of non-negligence. Every potential ascetic should, therefore, renounce negligence every moment and practice non-negligence. Negligence extends transmigration while non-negligence shortens it; this is the preaching of Lord Jina.

* * *

26

सत्यार्थ-बोध

सोच

Thought

1. व्यक्ति का व्यक्तित्व स्वयं के सोच पर निर्मित होता है। सर्वप्रथम अपने सोच को सम्यक् करना चाहिए। दूसरों को देखने की अपेक्षा, सर्वप्रथम स्वयं को देखना चाहिए। व्यक्ति का सोच ही ह्रास एवं विकास का कारण है।

1. The personality of the man depends on his thought. As a first step, make your thought right. Rather than looking at others, look at yourself. The thought is responsible for the man's growth and decline.

---

2. व्यक्ति के सोच पर ही बंध और मोक्ष आलम्बित है। सोच के अनुसार ही जीवन बनता है। वर्तमान सोच पर ही भविष्य के जीवन की उज्ज्वलता निर्भर है।

2. Bondage and liberation depend on the man's thought. Thought determines his course of life. Future brightness depends on today's thought.

---

3. यदि स्वयं का सोच पवित्र है तो प्रत्येक वस्तु व व्यक्ति गुणवान् दिखेगी और जिसकी सोच ही विकृत है उसे व्यक्ति हो या परमात्मा सभी में दोष-ही-दोष दिखते हैं।

3. If own-thought is pure, every object and person appear to be decent; to the person with perverted thought, every person, and even god, is full of faults.

---

4. व्यक्ति एवं वस्तु को ठीक मत करो; वह तो पर-पदार्थ है। स्व का सोच ठीक करो, वह तो स्व का ही विचार है। यदि व्यक्ति स्वयं के सोच को ठीक करने का निर्णय कर ले, तो क्षण-क्षण में उन्नति प्रारम्भ हो जाएगी।

4. Do not correct another man or object; that is 'other' than the self. Correct your thought; it is your own. If the man decides to correct own-thought, his incessant progress will start.

---

5. उत्तम-पुरुषों की सोच भी उत्तम ही होती है और अधम-पुरुषों की सोच निम्न ही होती है।

5. The thought of noble men is refined; the thought of ignoble men is unrefined.

---

6. प्रकृति को नहीं, अपनी विकृत सोच को बदलने का पुरुषार्थ करो। यदि आप स्वयं की विकृत सोच को नहीं बदल पाये तो तुम्हारा जीवन जगति पर नवीन-नवीन विकृति खड़ी करेगा, उससे प्रभावित होकर भोले प्राणी अपना अहित करेंगे, जिसका दुष्परिणाम स्व-पर को भविष्य में भोगना पड़ेगा।

6. Make effort to change your thought, not the nature. If you do not change your perverted thinking, you will give rise to unprecedented perversions in the world causing harm to innocent men; in future, you and others will have to bear the brunt.

---

7. सोचो-जरा-सोचो, तुम्हारा सोच, शौच कब होगा? सोच की शुचिता के बिना तेरा संसार से उद्धार नहीं होगा। संसार के दु:ख एवं क्लेश से मुक्ति चाहिए तो सोच को शौच कीजिए।

7. Think; just think! When will your thought be pure? Without purity of thought, there is no deliverance. If you wish to get rid of worldly misery and distress, purify your thought.

---

8. श्रेष्ठ, पवित्र-सोच से युक्त पुरुष ही श्रेष्ठ-कार्यों की अनुमोदना कर सकेगा। जिनकी सोच शुचिता शून्य है वह अच्छे भाव एवं कार्य की अनुमोदना भी नहीं करते, अपितु निन्दा करते हैं।

8. Only the man with excellent and pure thinking can show approval for worthy effort. Those whose thinking is rid of purity do not show approval for worthy disposition or effort; they denigrate it.

---

9. क्षीण-पुण्यात्मा के पुण्य-परिणाम नहीं होते। पुण्य-कार्यों एवं पुण्य-कार्यों की अनुमोदना के लिए भी पुण्य चाहिए, यह ध्रुव सत्य है। पुण्य-क्षीण साक्षात् विराजे तीर्थंकर की भी निन्दा करता है, उसे भान ही नहीं होता कि महा-पुण्यात्मा की निन्दा से पुण्य-क्षीण होता है तथा नीच-गोत्र का आस्रव होता है।

9. The man with decaying merit does not have virtuous disposition. For doing and approving virtuous effort, merit is required; this is an eternal truth. The man with decayed merit denigrates even the physically present *Tīrthaṅkara*; he fails to realize that by denigrating great souls own merit gets to decay and the influx of karmas resulting in low status takes place.

---

10. शरीर की चेष्टा सोच के अनुसार ही होती है और उसी से उपकार-अपकार होता है। स्वयं की सोच पर ही स्व-पर का उपकार-अपकार होता है, इसलिए सोच पर नियंत्रण आवश्यक है।

10. The bodily effort that causes favour or disfavour is according to the thought. The thought is responsible for favour or disfavour to self or others; have control on your thought.

---

11. सोच की शुचिता प्रत्येक प्राणी का कल्याण करा देती है। सोच के विकृत होते ही अकल्याण मार्ग का द्वार खुल जाता है। सर्व-उत्कृष्ट-साधना कोई है, तो वह है सोच को अस्ति में ले जाना, नास्ति से सुरक्षित रहे और सकारात्मक सोच बना कर रखे।

11. Purity of thought brings about propitiousness to every man. As thought gets perverted, the path to downfall opens up. The finest of observances is to take thought to 'yes', keep it safe from 'no', and to maintain positivity.

---

12. व्यक्ति की जीवन शैली उसके सोच के अनुसार बनती है। सोच की ऊँचाईयाँ जीवन को उच्चता पर ले जाती हैं, वहीं सोच का लाघव जीवन को लघु ही बनाता है।

12. Thought determines the lifestyle of the man. Lofty thought takes his life to a high pedestal and lowly thought pulls his life down.

---

13. व्यक्ति के भोजन, भाषण, रीति, वस्त्राभूषण और संगति से उसके सोच का बोध हो जाता है।

13. Man's food, speech, bearing, clothes and ornaments, and company indicate his thought.

---

14. जिसका सोच जैसा होता है उसके हाव-भाव वैसे ही मुख-मण्डल पर निर्मित होने लगते हैं। मुख की भङ्गिमा आंतरिक सोच का दर्पण है।

14. Thought build the facial expressions of the man. Facial expressions are the mirror of the internal thought.

---

15. भोजन और भावों की शुचिता से सोच शुचि होता है।

15. Thought is purified by the purity of food and dispositions.

---

16. सोच विकृत होते ही इन्द्रियों में विकार होने लगता है और सोच की शुचिता से इन्द्रिय संयमित होती हैं।

16. As thought gets perverted, the senses get perverted; purity of thought results in control of the senses.

---

17. पर-भावों पर गया सोच आत्मा की शुचिता को समाप्त कर देता है। अपना सोच पर-पदार्थों से भिन्न करना ही साधक का परम धर्म है। जो पर-सोच व पर-भावों से भिन्न हो जाता है उसमें आत्मशान्ति का स्रोत प्रस्फुटित हो जाता है।

17. Thought on the 'other' sullies the purity of the soul. The supreme dharma of the ascetic is to distance his thought from the 'other'. Soul-happiness springs up in him who distances himself from the thought on the 'other'.

---

18. पवित्र-सोच से विश्व-बंधुता का सूत्र उद्घोषित होता है। संकुचित-सोच सम्प्रदाय, पंथ, संतवाद में समाप्त हो जाता है।

18. Pure thought proclaims world-brotherhood. Menial thought ends in groups, sects and congregations.

---

19. जिस पुरुष का विराट्-सोच होता है; वह विश्व का मित्र बनकर जीता है और मरण के उपरान्त भी जगत् के लोगों के आस्था के हृदयों पर राज्य करता है।

19. The man with magnanimous thought lives as a friend to the world; even after death, he rules the trustful hearts of the people.

---

20. आत्म-शुचिता तभी प्रकट होगी जब प्राणी के अन्तःकरण में पवित्रता का वास होगा। तुच्छ-सोच वालों की दयनीय दशा होती है, ज्ञानीजन अपने सोच पर अवश्य ही सोचते हैं।

20. Purity in the soul will manifest only when there is purity in the heart. Men with lowly thought become miserable; knowledgeable men keep track of their thought.

---

21. तृष्णा से पीड़ित सोच संसार में जीव को सर्वाधिक क्लेश का कारण बनती है। क्लेश मुक्ति की जिसके मन में भावना है, उस भव्यवर को सर्वप्रथम स्व अन्तःकरण से तृष्णा को पुरुषार्थपूर्वक पृथक् करना होगा।

21. Thought of lustful-craving is the biggest cause of anxiety for the man. The potential man who desires to set himself free from anxiety should first make effort to rid his mind of lustful-craving.

---

22. मोही-जीव ही परिग्रह का संचय करता है। जिसके अंतरंग में मोह-लोभ से रंजित सोच होगी वही परिग्रह के संग्रह में आनन्द मानकर परिग्रहनन्दी रौद्र-ध्यान में लीन होगा तथा रौद्रकार्य करने में अग्रसर होता है।

22. Deluded man accumulates possessions. The man whose mind is sullied by delusion and greed derives pleasure out of accumulation of possessions; he thereby gets engrossed in cruel-meditation *(raudra-dhyāna)* pertaining to possession and engages in cruel activities.

---

23. व्यक्ति को अपना सोच अर्थवान बनाना चाहिए, अर्थ-विहीन सोच निन्दा-उपहास एवं क्लेश का कारण बनता है।

23. Thought of the man should be meaningful. Thought that is without meaning results in censure, ridicule and distress.

---

24. विज्ञ-पुरुष पर को अपना समय व्यर्थ में देना तो दूर, अपितु स्वयं भी व्यर्थ के सोच में समय व्यतीत नहीं करते। जो सोच बुद्धि-में विकल्प खड़ा करे, ऐसे सोच को धिक्कार है।

24. Intelligent men do not waste their time in own wasteful thought; the question of giving it unnecessarily to others does not arise. Fie on the thought that engenders wandering in the mind.

---

25. श्रेष्ठ प्रज्ञ-पुरुष ही अपना सोच शुचिमय बना पाते हैं और तदनुकूल पवित्र-आचरण करते हैं।

25. Only excellent and intelligent men are able to attain purity in thought and adopt pure conduct accordingly.

---

26. श्रेष्ठ-विचार विशिष्ट पुण्योदय के काल में ही आते हैं, पुण्य के अभाव में उत्तम-सोच उत्पन्न नहीं होता है।

26. Noble thought appear only during the fruition of special merit; without merit, noble thought do not manifest.

---

27. भावों की शुचिता सोच को शौच बना देती है। जिसका सोच पावन होता है; उसका सर्व जीवन ही पावन हो जाता है। जीवन की पवित्रता व्यक्ति के सोच पर आलम्बित है।

27. Purity of disposition makes the thought pure. The entire life of the man with pure thought becomes pure. Purity of life depends on the thought.

---

28. रक्त के दूषित होने से शरीर में रोग होते हैं और सोच विकृत होते ही चित्त-विशुद्धि का ह्रास होता है।

28. Contamination in blood causes disease in the body; perversion in thought causes decay of the purity of the mind.

---

29. अम्ल सेवन से रक्त दूषित होता है। अशुभ सोच के नियोग से चित्त दूषित होता है; इसमें संशय नहीं है।

29. Sour food contaminates blood. Inauspicious thought contaminates mind; do not doubt this.

---

30. सोच की निर्मलता के लिए सद्-शास्त्रों का स्वाध्याय अनिवार्य अंग है।

30. One necessary limb for pure thought is to engage in study of the Scripture.

---

31. विश्व-बंधुत्व की सोच सम्राट् पद की ओर ले जाती है। विराटता का विचार उसी के अन्दर प्रकट होता है जिसका विकास निश्चित है।

31. The thought of world-brotherhood takes one to the status of a king. Such magnificence of thought appears in him whose growth is certain.

---

32. अल्पधी, पुण्यक्षीण का सोच भी तुच्छ होता है। हीन-जनों का भोजन, भाषण, व्यापार हीन ही होता है।

32. Unintelligent and meritless men have low-grade thought. The food, speech and occupation of lowly men are low-grade.

---

33. व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके सोच पर निर्भर है। जैसा सोच होता है, वैसा ही व्यक्तित्व निर्मित होता है, इसलिए जिन्हें अपना व्यक्तित्व श्रेष्ठ बनाना है उन्हें सर्वप्रथम अपना सोच श्रेष्ठ बनाना चाहिए।

33. Personality of the man depends on thought; thought builds personality. Therefore, first excel in your thought to develop excellent personality.

---

34. सोच को विराट्-विशाल करो, जिसमें विश्व-बंधुत्व समाहित हो।

34. Make your thought magnanimous and broad to encompass world-brotherhood.

---

35. व्यक्ति के सोच की शुचिता यही है कि शत्रु में भी मित्र-भाव प्रकट हो जाये। प्रत्येक प्राणी के अन्दर भगवान्-आत्मा का दर्शन होने लग जाए।

35. Purity of thought means disposition of friendship even for the enemy. It means seeing the supreme-soul in every living-being.

---

36. निम्न सोच में पंथ, परम्परायें, राग-द्वेष, क्लेश, ईर्ष्या, डाह, मात्सर्य पनपता है और विराट्-सोच मैत्री, वात्सल्य, प्रमोद, करुणा, संवेग, वैराग्य को बढ़ाता है।

36. Lowly thought engenders sects, traditions, attachment and aversion, anxiety, spite and envy; magnanimous thought engenders friendship, affection, joy, mercy, love and detachment.

---

37. व्यक्ति को जब सम्राट्-पद पर सोच खड़ा हो जाता है तब मान कषाय की पीड़ा से पीड़ित होकर बिलखता है और साधु-स्वभाव में मार्दव-धर्म से आनन्दित होता है।

37. Due to thought, the emperor suffers the pain of pride-passion and laments; the ascetic, with modesty in his nature, remains joyful.

---

38. व्यक्ति का सोच पवित्र होता है तब भोजन-भाषण दोनों ही पवित्र होते हैं। स्वच्छ भोजन एवं स्वच्छ भाषण पाप-क्षय, पुण्य-वृद्धि का कारण बनता है। स्वच्छ भोजन, स्वच्छ चित्त-वृत्ति से कोरोना जैसी महामारियों से जीवों की रक्षा होती है, लोक में सुख-शान्ति की वृद्धि होती है तथा दु:ख-क्लेश की हानि होती है। अपने और अपनों के सुख-दु:ख में सोचने वाले वसुन्धरा पर बहुत हुए, पर जिनसे परिचय नहीं उनके सुख-दु:ख में सोचने वाले साधु-पुरुष बहुत ही अल्प होते हैं, जो नि:स्वार्थ वाले हों।

38. The food and speech of the man with laudable thought are pure. Pure food and pure speech are causes of destruction of demerit and growth of merit. Pure food and clear heart protects men from pandemics like the coronavirus; the world witnesses growth in happiness and peace, and decline in misery and distress. There are many who think of the happiness and misery of their kin but selfless men of nobility who think of even those they are unacquainted with are but very few.

---

39. स्वयं की पीड़ा जैसी पर-की पीड़ा पर विचार वे ही कर पाते हैं, जिन्होंने अपनी पीड़ा को अंतरंग से जाना है। पर के दु:खों पर हास्य मत करो, अपितु कर्म-विपाक का चिंतन कर अपने सोच को शौच करो। धन-धरती कुटुम्ब से वर्धमान-को वर्धमान मत स्वीकारो, अपितु जो करुणा, दया, मैत्री, वात्सल्य से पूर्ण हैं; प्राणिमात्र के प्रति प्रशस्त सोच रखते हैं वे जन ही तो बन पायेंगे सच्चे वर्धमान। परिग्रह संग्रह-वृत्ति वर्धमानता की नहीं है सम्यक्-पहचान, गुण-संग्रह ही वर्धमानता की सही-पहचान है।

39. Only those who are able to think-through own-suffering can empathize with the suffering of others. Do not ridicule the suffering of others but purify your thought by reflecting on the fruition of karmas. Do not mistake the man rich in wealth, land and kin for a god-soul; only those men rich in mercy, compassion, friendship and affection, and who think about the well-being of all living-beings, have the potential to become true god-souls. The real mark of the god-soul is the tendency to accumulate qualities, not possessions.

---

40. व्यक्ति की कार्य-शैली एवं भोजन-पद्धति व्यक्ति के सोच का बोध करा देती है, जैसा विचार होता है वैसा ही व्यक्ति का आचार बनता है। प्रत्येक कार्य में कारण निहित रहता है, यह सिद्धांत का नियम है। सोच भी पुण्योदय-पापोदय पर आलम्बन करता है; क्षीण-पुण्य पर विचार भी हीन-हीन अर्थात् पापाचार, मायाचार, कामाचार रूप होते हैं, वहीं पुण्योदय-तीव्रता पर व्यक्ति का सोच शिखर पर निवास करता है। धर्म-धर्मात्माओं के मध्य वास करने के विचार, तत्त्वज्ञान, तत्त्वनिर्णय पर दृष्टि, सदाचार सद्विचारों का उदय रहता है पुण्य के

उदय में। ज्ञानीजन अपने सोच को इतना निर्मल रखते हैं; जिससे सम्पूर्ण विश्व के प्रति बंधुता का भाव प्रकट हो जाता है। वस्तु व व्यक्ति सभी के प्रति एकत्व की स्थापना चित्त में हो जाती है। ज्ञानी अन्य जीव को तो दु:ख-क्लेश देता ही नहीं, अपितु स्वयं में भी सुखी रहता है। दु:ख-क्लेश उसके अंत:करण में स्थान ही नहीं पाते; वह पूर्ण-शांति का जीवन जीता है। सोच से व्यक्ति के भावों में ही नहीं, अपितु देह के अंग-अंग में परिवर्तन होता है।

40. The work-style and food-habits of the man indicate his thought; the thought translate into conduct. The Doctrine says that there is a cause behind every effect. The thought depend on the fruition of merit and demerit. In fruition of demerit the thought are lowly and manifest in evil, deceitful and lustful tendencies; in fruition of strong merit the thought ascend to the summit. In the latter case, the man engenders noble thought of living with the dharma and its followers, of knowing and determining the reality, and of observing right conduct. Knowledgeable men keep their thought so pure as to develop in them the disposition of world-brotherhood. They see oneness in all objects and men. The knowledgeable man does not cause suffering and distress to others; he stays happy in self. Suffering and distress have no place in his heart and he lives a contented life. Thought have a bearing not only on the man's disposition but also on every limb of his body.

---

41. व्यक्ति व्यर्थ में ही विभिन्न प्रकार के शृंगार साधनों से सुन्दरता की कल्पना करता है, जो कि सुभगता युक्त नहीं है। विशुद्ध-सोच, हर्षित-चित्त, गद्‌गद् प्रमुदित भाव-दशा अंग-अंग को आकर्षकता प्रदान करती है। अनुभव आप स्वयं-ही-स्वयं में कर सकते हैं। अन्य से प्रश्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अशुभ-सोच कीचड़ है, जो दुर्गन्ध-पूर्ण है। कीचड़ से लिप्त लोह जंग खाकर नष्ट हो जाता है; उसी प्रकार अशुभ-विचारों की जंग में सद्-विचार, उच्च-आचार, प्रज्ञा की विशदता, भावों की निर्मलता, जीवन की विकासशीलता क्षण-मात्र में नष्ट हो जाती है और जीवन कष्टमय हो जाता है।

41. The man imagines wrongly that the use of various kinds of cosmetics will enhance his attractiveness. The attractiveness of each limb of the body comes from the purity of thought, joyous heart and delightful disposition. You can experience this for yourself. Inauspicious thought is the mud that is foul-smelling. Iron gets rusted and gets destroyed when placed in the mud; similarly, rust of inauspicious thought destroys instantly the right-thinking, the high-conduct, the sound-intellect, the purity of disposition, and the progress of life. Life becomes painful.

---

42. सोच की विशालता व्यक्ति को जाति, पंथ, कुल, सम्प्रदाय, क्षेत्रता, राष्ट्रता से अत्यंत ऊँचा खड़ा कर देती है। उसे प्राणिमात्र अपना स्वीकारता है, जिसका सोच विशाल होता है। व्यक्ति को अपने सोच और स्वभाव में

परिवर्तन लाना चाहिए, एकमात्र स्वयं को ही विशेष नहीं देखना चाहिए। सामान्य भी देखो, विशेष के विकल्प में आप कहीं वात्सल्य भाव एवं करुणा से दूर तो नहीं हो रहे हो?

42. Magnanimity of thought raises the man much above caste, sect, lineage, group, regionalism, and nationalism. All living-beings wish to own the man who has broad thinking. The man should change his thinking and nature; stop seeing special in self. See ordinary also in self; make sure that by being special you are not distancing yourself from the dispositions of affection and compassion.

---

43. यदि आप समाज-बंधु, राष्ट्र-भावना से दूर खड़े हो गए, तो फिर आप हीन भावना से ग्रसित हो जायेंगे, आपकी सुख-शान्ति समाप्त हो जाएगी। अपना व्यक्तित्व विराट् बनाना चाहते हैं तो सोच की शुचिता को वर्धमान करो। व्यक्ति के सोच की लघुता पंथ, जाति, सम्प्रदाय, राग-द्वेष, ईर्ष्या-डाह को जन्म देती है, फिर वह जगति को दु:ख के महागर्त में डाल देती है। व्यक्ति के सोच की यही शुचिता है, जो कि शत्रु के अन्दर भी मित्र-भाव उत्पन्न कर दे। प्राणिमात्र में भगवानात्मा का बोध करा दे, स्व जैसा व्यवहार पर के प्रति भी प्रकटा दे तथा स्वार्थीजनों की दुर्गन्ध को समाप्त करा दे।

43. Those void of the sense of social-brotherhood and nationalism suffer from inferiority complex. Their happiness and peace evaporates. If you wish to expand your personality, increase purity of thought. Mean thought give rise to sect, caste, group, attachment and aversion, and envy and spite, which throw the man in the deep pit of worldly suffering. Purity of thought generates disposition of friendship even in the enemy. Purity of thought prompts man to see god-soul in all living-beings, treat others as he wishes himself to be treated, and destroy the stench of selfishness.

* * *

27

सत्यार्थ-बोध

अनुग्रह
Beneficence

1. उन जीवों का जीवन ही धन्य है जो अपने जीवन के अंश-अंश को अर्थात् प्रत्येक क्षण को स्व-पर उपकार में लगाए हैं। उपकार भाव के बिना न संसार-सुख की प्राप्ति होती है न परमार्थ सुख की। उपकार के परिणाम पुण्यात्मा भव्य-जीव के ही होते हैं, पुण्यहीन किसी का उपकार भी नहीं कर पाएगा। उपकार-शून्य व्यक्ति के दोनों हाथ बकरों के गले में लटके दो-स्तनों के समान हैं जो मात्र गले के भार हैं; किसी को दुग्ध प्रदान नहीं करते, उसी प्रकार उपकार-हीन पुरुष पृथ्वी पर भार हैं। करुणाशील, उपकारी-जन हरे-भरे तरु-तुल्य हैं, जो पर-उपकार हेतु स्वयं को फलों के भार से युक्त किए हैं, वह स्वयं फल सेवन नहीं करते। इसी तरह सच्चे उपकारी वे होते हैं जो स्वयं के परिग्रह को पर-उपकार में समर्पित कर देते हैं। सज्जन-पुरुष स्वयं कष्ट सहन करके भी पर-का उपकार करते हैं, फलदार वृक्षवत। जैसे फलवान वृक्ष पथिकों के पत्थरों की मार सहकर भी जगत् को स्वादिष्ट, मधुर, रसपूर्ण फल प्रदान करते हैं।

1. Hail those men who employ every instant of their life in beneficence, for self and others. Without beneficence neither worldly happiness nor soul-happiness can be attained. Only the potential and meritorious man engenders the thought of beneficence; the man without merit cannot have beneficence. The two hands of the man without beneficence are like the two breast-like abscesses on the neck of the goat, which have no milk and are just a burden on the neck; the man without beneficence is similarly a burden on the earth. Kind and beneficent men are like the verdant tree which carries on itself the burden of fruit only for others. In the same way, the true beneficent men devote their possessions for the benefit of others. Like the fruit-laden tree, noble men help others even if it causes them discomfort. The fruit-laden tree provides to the world tasty, pleasant and juicy fruit even when the wayfarers pelt stones on it.

2. सज्जन, उपकारी-मनुष्य अनेक प्रकार के कष्ट सहन कर; अपने प्राणों की भी चिंता छोड़कर पर के प्राणों की रक्षा करते हैं, महामारी में वैद्यों के समान। सच्चा-उपकारी ही नरोत्तम होता है; जो कि उपकार के बदले में प्रति-उपकार की भावना नहीं रखता है, अपितु निःस्वार्थ भाव से पर का उपकार करता है। बिना उपकार के न व्यवहार धर्म पलता, न ही परमार्थ, उपकार-भाव भी वस्तु का धर्म है। प्रत्येक द्रव्य में उपकार-भाव त्रैकालिक होता है। जगत् में बुद्धि एवं अबुद्धिपूर्वक उपकार करते हुए द्रव्य देखे जाते हैं। अनुग्रह धर्म विराट् है; एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उपकार करता है तथा स्व-स्व का भी उपकार करता है। सज्जन एवं दुर्जन दोनों को चैन नहीं पड़ती; एक को पर-उपकार किए बिना और दूसरे को पर-अपकार किए बिना। ऐसा क्यों होता है? तो इसका उत्तर यही है कि सज्जन को उपकार करने का पूर्व-अभ्यास है, उससे प्रेरित होकर वह उपकार-ही-उपकार करता है तथा दुर्जन को भी पर-अपकार करने का पूर्व-अभ्यास है, इसलिए उसे अनुपकार किए बिना शान्ति नहीं मिलती, पूर्वाभ्यास की यही महिमा है। वे जन ही श्रेष्ठ हैं; जो सदा ही सुकृत्य का संस्कार अपने अन्दर डालते हैं। एक बार खोटा संस्कार आत्मा में आ गया वह जीवन में नहीं मालूम कब उदय में आ जाए? जीवन के चरम-उत्कर्ष-काल में खोटा पूर्वाभ्यास कहीं आ गया, तो सम्पूर्ण उत्कर्ष क्षण मात्र में पतन में बदल जाता है। जहाँ जय-जयकार चल रही थी, वहीं पर हा-हाकार होने लगती है, इसलिए सदा श्रेष्ठ-कार्य करो जिससे श्रेष्ठता ही प्रकट हो। जीव के अन्दर यदि उपकार करने के संस्कार आ गए तो वह अंतिम श्वास तक परोपकार ही करेगा। मृत्यु के उपरांत भी उपकार करने वाले का यश जीवन्त रहता है। आकाश द्रव्य का उपकार प्रत्येक द्रव्य को अवकाश-दान करना है, जो भी जड़-चैतन्य पदार्थ हैं उन सबका अवकाश स्थान आकाश-द्रव्य है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व-अपरत्व काल-द्रव्य का उपकार है। जो भी समय का बोध होता है, वह काल-द्रव्य के द्वारा होता है। भूत-भावी-वर्तमान, घड़ी, घण्टा, मिनिट, पल, निमेष, आवली, युग, संवत्सर, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, हुंडावसर्पिणी, कल्पकाल ये सब व्यवहार काल के भेद हैं तथा वर्तना लक्षण 'निश्चय-काल' है। आयु-काल, कोई छोटा, कोई बड़ा यह सब काल-द्रव्य का उपकार है।

2. Noble and beneficent men, while enduring several kinds of hardships and not bothering about own life, save lives of others; like the doctors during pandemics. The man with real beneficence is the excellent man; he helps others without selfishness and expecting anything in return. Without beneficence neither the empirical dharma nor the spiritual dharma can be observed; the disposition of beneficence is the dharma of substances. The substances in the world are seen to help one another, deliberately or naturally. The scope of the dharma of beneficence is wide; one substance helps another, and it also helps self. Both, the noble and the ignoble, remain restive; the noble for not being able to help other, and the ignoble for not being able to harm other. Why does this happen? The noble has past learning of helping others and he continues to do so; the ignoble has past learning of harming others and he continues to do so. This is the importance of past learning. The men who keep themselves busy in meritorious activities are excellent. If only once evil tendency gets established in the soul, it can come to fruition any time. If evil tendency come to fruition during supreme ascendency of the soul, it can cause its downfall in no time. Words of praise turn into words of censure; therefore, engage only in

meritorious deeds. The man who has learnt beneficence will continue helping others till his last breath. His glory remains alive even after death. The beneficence of the substance of space is to provide accommodation to all other substances, animate and inanimate. Assisting substances in their continuity of being through gradual changes, in their modification, in their movement, in their endurance and in their non-endurance is the beneficence of the substance of time *(kāla)*. The knowledge of conventional time is due to the substance of time. Past, future and present, *ghaḍī, ghaṅṭā, miniṭa, pala, nimeṣa, āvalī, yuga, sambatsara, utsarpiṇī, avasarpiṇī, huṅḍāsarpiṇī* and *kalpakāla* are all marks of conventional *(vyavahāra)* time *(kāla)*. *'Vartanā'* is the mark of the real *(niścaya)* time *(kāla)*. The life-span, small and large, is the beneficence of the substance of time *(kāla)*.

---

3. जीव एवं पुद्गल को गमन में उपकारी 'धर्म-द्रव्य' है। लोक एक ऐसा द्रव्य है जो क्रियावर्ती शक्ति सम्पन्न है। धर्म द्रव्य जीव-पुद्गल को उदासीन निमित्त से उपकाररत है गमन क्रिया में, जैसे मछली के लिए सहकारी पानी होता है। जहाँ तक धर्म द्रव्य है, वहाँ तक ही जीव एवं पुद्गल-द्रव्य का गमन है, उसके आगे नहीं।

3. The beneficence of the substance of medium-of-motion *(dharma dravya)* is to assist the souls and the matter in their movement. The souls and the matter found in the universe are characterized by activity *(kriyā)*. The substance of medium-of-motion is an inactive facilitator in the movement of the souls and the matter; just as water facilitates the movement of the fish. The souls and the matter can have movement up to the place where the substance of medium-of-motion is found, not beyond.

---

4. जीव एवं पुद्गल द्रव्य को ठहरने में कोई उपकारी द्रव्य है, उसका नाम है अधर्म द्रव्य। अधर्म द्रव्य उदासीन रूप से सहकारी होता है ठहरने में, जैसे पथिक के लिए वृक्ष की छाया। स्वेच्छा से पथिक छाया में रुकना चाहता है, तो वृक्ष की छाया उपकारी है बलात् नहीं। जड़-द्रव्यों से भी चैतन्य का उपकार होता है।

4. The beneficence of the substance of medium-of-rest *(adharma dravya)* is to assist the souls and the matter in their rest. The substance of medium-of-rest is an inactive facilitator in rest of the souls and the matter; just as the shade of tree for the rest of the traveller. Only if the traveller wishes to rest the shade of tree helps him; it does not force him to rest. The inanimate substances also are helpful to the animate souls.

---

5. संसार में संसारी-जीवों के लिए पुद्गल-कृत बहुत उपकार हैं। इन्द्रिय जन्य सुख-दु:ख, जीवन-मरण, शरीर, मन, वचन, प्राण-अपान ये सब पुद्गल-कृत जीव का उपकार है। भोजन-पानी आदि के माध्यम से संसार में जीव अपने द्रव्य-प्राणों की रक्षा करता है, यह रक्षा भी पुद्गल-कृत ही है। द्रव्य-प्राण भी पुद्गलभूत है। बंध को प्राप्त आत्मा संसार में इन सबके द्वारा उपकृत है, इसलिए जीव का उपकार पुद्गल के द्वारा होता है, इसे अनेकान्त दृष्टि से समझना चाहिए।

5. In the world, the substance of matter *(pudgala dravya)* is of great beneficence for the worldly-souls. Sensual pleasures and pain, life and death, body, mind, speech, and respiration are beneficence of the substance of matter for the souls. The souls protect their physical life-principles through food and water, etc.; this also is due to the substance of matter. Physical life-principles are based on the substance of matter. The soul, bound with the karmas, thus receives beneficence from the substance of matter; this should be understood from the point-of-view of multiplicity of the reality.

---

6. पुद्गल द्रव्य पुद्गल का भी उपकार करता है जैसे कि दुग्ध के द्वारा शक्कर का मल हटता है, साबुन से वस्त्रों का मल हटता है, बालू-सीमेन्ट के संयोग से भवन शक्तिमान बनता है, जूठे बर्तनों को राख से स्वच्छ किया जाता है, यह सब पुद्गल-कृत पुद्गल का अनुग्रह है। परस्पर में जीव-भी-जीव का उपकार करता है। गुरु शिष्य को तत्त्वज्ञान प्रदान करके, दीक्षा-शिक्षा संस्कार देकर उपकार करते हैं तथा शिष्य गुरु-आज्ञा का पालन कर उनकी सेवा कर गुरु का उपकार करता है। माता-पिता संतान को जन्म देकर पालन-पोषण कर उपकार करते हैं तथा संतान माता-पिता की सेवा-सुश्रुषा कर कुल-परम्परा की रक्षा कर उनका उपकार करती है। गाय को गोपाल ने घास-पानी देकर उपकृत किया; तो गाय द्वारा दुग्ध, गोबर, बछड़े देकर उपकृत किया जाता है। किसान वृक्षों को खाद-पानी देकर उपकृत करता है। वृक्ष किसान को फल-पुष्प, ईंधन आदि देकर उपकृत करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परस्पर उपकार देखा जाता है। मानव का धर्म है, उपकारी के उपकार को स्वीकार कर कृतज्ञता के धर्म को पालन कर मानवता का परिचय दे, यही साधुता है।

6. The substance of matter has beneficence also for the substance of matter; like milk removes impurities from raw-sugar, soap cleans clothes, sand and cement make the building strong, and ash cleans stained utensils. The soul *(jīva)* provides mutual beneficence to the other souls. The guru helps the disciple by initiating him on to the sacred path and providing him the knowledge of the reality. The disciple helps the guru by following his orders and by rendering him service. The parents help their children by giving them birth and then bringing them up; the children help their parents by serving and obeying them and protecting their lineage. When the keeper helps the cow by feeding it with grass and water, the cow helps the keeper by providing him milk, dung and calves. The farmer helps the trees by nourishing these with manure and water; the trees help the farmer by giving him fruit, flowers and

firewood. This way, there is mutual beneficence in the whole universe. The noble man should accept beneficence from others with gratitude.

---

7. संसार में पापी-जीवों की संख्या तो प्रचुर है ही, परन्तु महापापी भी कम नहीं हैं। पाँच पाप करे तो पापी होते हैं, पर जो उपकारी के उपकार को काम निकलते ही शीघ्र भूल जाते हैं, वे मूढ़-जन महापापी संज्ञा को प्राप्त होकर पृथ्वी पर भार बनकर जीते हैं।

7. The men of demerit are many but no less are those with great-evil. Those who do not observe the five vows are the men of demerit but those who forget the beneficence of their benefactor soon after receiving it are the deluded men of great-evil; they are a burden on earth.

---

8. सज्जन-पुरुष कभी भी अपने उपकारी के उपकार का विस्मरण नहीं करते हैं, उपकारी के उपकार को हर-समय ध्यान में रखते हैं। वे ही जीवित-साधुता का दर्शन भूलोक को कराते हैं। ऐसे पवित्र-हृदयी लोगों से ही वसुन्धरा की शोभा है। उपकारी के उपकार भूलकर जो कृतघ्नी पृथ्वी पर जी रहे हैं वे मही पर काँटों के तुल्य हैं, वे सज्जनों के हृदय में चुभन उत्पन्न कर तीव्र-पाप का बंध कर दुर्गति के पात्र बनेंगे। ऐसे पुष्प का जीवन स्वीकार करो जो माली से पानी लेता है और बदले में सुगंध देता है। गन्ने के समान बनो; जो नीर ग्रहण कर मधुर रस देता है। गाय बनो; पानी पीकर दुग्ध देती है, परन्तु बैल मत बनो, उसे पानी क्या रस भी दो, फिर भी मात्र मूत्र ही देता है। काल-नाग विषधर भी मत बनो, वह मधुर-दुग्ध पीकर भी विष ही उगलता है।

8. Noble men never forget the beneficence of their benefactor; they constantly keep in mind the beneficence of their benefactor. They exhibit live virtuousness to the world. The earth is embellished by such men of pure heart. The ungrateful men who forget the beneficence of their benefactor are like thorns on this earth; by causing pain in the hearts of noble men and consequent severe bondage of evil karmas, they are destined to fall into a lowly state-of-existence. Live the life of a flower which receives water from the gardener and gives back fragrance. Live like the sugarcane that receives water and gives back sweet juice. Live like the cow that receives water and gives back milk; do not become a bull that on receiving water or even juice gives back only urine. Do not become a black scorpion that spits only poison even after drinking milk.

---

9. परोपकारी उभय-लोक में सुखी होता है। वर्तमान में निर्लोभता से युक्त होकर यशधन से युक्त होकर सुखी होता है तथा भविष्य पर्याय में सुकृत्य शुभ-भावों के योग से स्वर्गादि के सुख को प्राप्त करता है। प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह धरती पर भार बनकर न जिए, अपितु स्व-पर दोनों पर उपकार कर धरती पर सुन्दर

उपहार बने। करुणापूर्ण सहृदयी जीवों के अंत:करण में ही पर-उपकार के भाव आते हैं, स्वार्थी, लोलुपी, विषयों में आसक्त चित्त वाले मनुष्यों के अन्दर किसी के उपकार करने के भाव ही नहीं होते। स्व-परिणामों से मिलो; आपकी भाव दशा क्या है?

9. The benefactor remains happy in both worlds. In the present, he is happy due to absence of greed and presence of wealth-of-renown; in the future, due to his virtuous and auspicious dispositions, he will get happiness appertaining to the heaven, etc. Every man should ensure that he is not a burden on earth but a beautiful gift that helps self and others. Only men with hearts full of compassion have the disposition of helping others; men with hearts full of selfishness, voraciousness and lust do not have the disposition of helping others. Meet your own-disposition; watch its state.

---

10. अहो मानवो! मानवता न रोने पाए; परस्पर उपकार-भाव का त्याग मत कर देना। त्याग करने के भाव उत्पन्न हों हृदय में, तो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, ईर्ष्या, डाह, मात्सर्य का त्याग कर देना, लेकिन उपकार-भाव को सुरक्षित रखना। पर-उपकार पर धर्म-भावना रखना, पर-उपकार का अहसान मत दिखाना, उपकार-भावना आत्म-भावना से प्रकट करना, उपकृत को हीन-भावना उत्पन्न मत कराना। आज आपने पर का उपकार किया है, समय आने पर वह भी आपका उपकार करेगा। ज्ञानी! सबके दिन एक-से नहीं होते, इसलिए अहं में नहीं मृदुता में जियो।

10. O men! Let humanity not cry; do not shed the disposition of mutual beneficence. As the thought of renunciation appears in your heart renounce injury, untruth, stealing, lust, possessions, envy, spite and jealousy, but keep the disposition of beneficence intact. Make beneficence your dharma, do not show it off to the recipient, let it be your soul-disposition and do not generate inferiority-complex in the recipient. Your beneficiary will repay you in fullness of time. O knowledgeable man! The days of all are not the same; live with modesty, not haughtiness.

---

11. ज्ञानियो! प्रकृति से कुछ तो शिक्षा ले लो; प्रकृति अपना उपकार करना बंद कर दे, तो क्या आपका जीवन चलेगा? प्रात: से शाम तक आप प्रकृति से उपकृत होते देखे जाते हैं। सूर्य का प्रकाश, आकाश का आच्छादन, चन्द्रमा की चाँदनी, धरती पर उगती वनस्पति, कल-कल रव-युक्त सागर, सरिताओं-सरोवरों का शीतल नीर, पर्वतों की शृंखलाएँ, वन-उपवन, बीहड़-जंगल, वनचर, जलचर, थलचर, नभचर, नागरिक, वनवासी ये सभी तो उपकार करते हैं। यदि प्रकृति का उपकार हट जाए, तो यह धरा मानव-शून्य हो जाएगी। मात्र उपकार के भोक्ता बनकर ही मत जियो, उपकार के कर्ता भी बनना सीखो। प्रकृति से यही भूतार्थ-शिक्षा प्राप्त करो।

11. O knowledgeable men! Learn something from the nature; can your life continue if it stops its beneficence? Morning to evening you are benefitted by the nature. The

sunlight, the shelter of the sky, the moonlight, the vegetation on the earth, the noisy oceans, the cool water of the rivers and lakes, the ranges of the mountains, the woodlands and gardens, the thick forests, and the habitants of forests, water, land, sky, cities and woods, all these are your benefactors. Do not live just as recipients of beneficence; do beneficence. This is the real learning from the nature.

---

12. कर्म की प्रबलता में जीव कष्टों के पर्वतों पर आरोहित होता है, उस काल में प्रज्ञा भी कार्य करने में असमर्थता प्रकट करने लगती है, सम्बंध भी विच्छिन्न होने लगते हैं। जैसे जीर्ण-भवन की दीवारें गिरने लगती हैं, वैसे बने कार्य भी बिगड़ने लगते हैं। इस स्थिति में टूटती मानवता पर करुणा एवं उपकार की औषधि का प्रयोग करना अनिवार्य है। समय का संक्रमण विचित्र ही होता है, आपके पास सामर्थ्य है, उसका उपयोग भरपूर करो। दु:खीजनों का उपकार आपके पुण्य एवं यश-वृद्धि का कारण है।

12. On strong fruition of evil karmas the man reaches the peak of the mountain of difficulties; during this time the intellect stops functioning and the relations start getting snapped. Just as the walls of a dilapidated building start crumbling, even the works near completion start collapsing. In such a situation, use the medicine of compassion and beneficence. Time has its own amazing ways; you have the ability, make full use of it. Helping those in distress is the cause of your merit and renown.

---

13. जो स्वयं में करुणा से आर्द्र-चित्त होता है वही परोपकार के भाव उत्पन्न कर पाता है। उपकार स्व-कारुण्य, दु:खभूत आंतरिक पीड़ा का प्रतिकार है। उपकार-शील दूसरे की पीड़ा को गंभीरता से विचारता है, पीड़ित की पीड़ा को समझकर उसकी पीड़ा-हरण का पुरुषार्थ करता है। अशुभोदय पर आवश्यकताएँ तो रहती हैं, पर वस्तुएँ अनुपलब्ध रहती हैं, उस समय हृदय पर क्या बीतती है? इस अनुभूति के साथ उपकारी परोपकार का प्रयत्न करता है। अहो प्रज्ञात्मन्! सबके दिन एक से नहीं होते, समय बदलता है, भाग्य भी बदलता है। इस सूत्र को हमेशा स्मरण में रखो।

13. Only the one whose heart is moist with the water of compassion can engender the disposition of beneficence. Beneficence is the antidote to own internal suffering. The benefactor thinks seriously about the suffering of the other, empathizes with him and makes effort to alleviate it. During the fruition of inauspicious karmas necessities of the man persist but not fulfilled; imagine what goes on in his heart. Thinking exactly like this the benefactor engages in beneficence. O intelligent soul! The days of all are not the same; time changes; fate too changes. Remember this, always.

---

14. लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों ही क्षेत्रों में उपकार की आवश्यकता है। स्व-परोपकार के नियोग से निश्चय तथा व्यवहार धर्म चलता है। जो पारमार्थिक जीवन जीते हैं उन्हें पारमार्थिक दृष्टि का उपकार करें, जो व्यवहार जीवन जीते हैं उन्हें व्यवहार रूप से उपकृत करना अपना कर्तव्य स्वीकारना चाहिए। पुण्य से प्राप्त भोग-सामग्री भोग में ही नहीं परोपकार में भी व्यय करो, जो कि भावी पुण्य-बंध कराके पुनः अभ्युदय का कारण बनेगी। जो भव्य अपने प्राप्त द्रव्य को सात क्षेत्रों में लगाता है; वह सप्त-परम-स्थान को प्राप्त होता है।

14. Beneficence is required from both, the worldly and the spiritual, angles. Beneficence on self and on others constitutes the spiritual and the empirical dharma. Beneficence from the spiritual angle is to be adopted for those leading spiritual life, and beneficence from the empirical angle is to be adopted for those leading conventional life. Use the objects of enjoyment that you possess due to your merit not only in own enjoyment but also in helping others. This will bring you further merit and prosperity in future. The potential soul that uses its belongings in seven areas attains the seventh supreme state.

---

15. उपकार करने के क्षेत्र अनेक हैं; वहाँ-वहाँ दया-दान के रूप में उपकार करना चाहिए। भूखे को भोजन, प्यासे को पानी देना, रोगी को निर्दोष निरामिष औषधि देना, ज्ञान-पिपासु को शास्त्र प्रदान करना, भयभीत को निर्भय कराना, प्रत्येक प्राणी के प्राणों की रक्षा करके अभय-दान करना, अग्नि से पीड़ित, पानी की बाढ़ आदि से पीड़ित, मानवों-पशुओं-भूतादि से पीड़ितों को, प्राकृतिक-विपदाओं से पीड़ितों को, चाहे वे मनुष्य हों या तिर्यंच उनकी स्व-योग्यता, यथा-शक्ति पीड़ा का प्रतिकार करें। ये सब उपकार क्षेत्र हैं।

15. There are many areas of doing beneficence; do it through compassion and giving gifts. Giving food to the hungry, water to the thirsty, right and pure medicine to the sick, scriptural texts to the one thirsty for knowledge, fearlessness to the fearful, life to the living beings through protection of their lives, and helping, according to own capability and strength, men and animals suffering from fire, from flood, etc., from humans, animals and demons, and from natural calamities. These are the areas of beneficence.

---

16. उपकार भाव उत्कृष्ट रखना चाहिए, क्योंकि उपकार करने वाले को प्रतिक्षण पुण्यास्रव होता है। उपकृत वही हो पाएगा जिसका जितना भाग्य होगा, भाग्यहीन का परमात्मा भी उपकार नहीं कर पाएगा। सागर विशाल है, पर पानी तो उतना ही ला पाओगे जितना बड़ा पात्र है। भोजनशाला में भोजन तो प्रचुर है; मूढ़ लालसा तो बड़ी कर सकता है, परन्तु भोजन उतना ही कर पाएगा जितना उदर है। ज्ञानी जन पात्र की योग्यता देखकर उसमें वस्तु रखते हैं, बिना पात्र-परीक्षा के जो अपनी अभीष्ट वस्तु रख देते हैं वे बाद में पछताते हैं। मलिन, भग्न व अन्य विकृत-पात्र में विवेकी-जन कीमती स्व-द्रव्य का निक्षेप नहीं करते। उसी प्रकार प्रज्ञ-पुरुष जिसका

उपकार करते हैं उसकी योग्यता का भी ध्यान रखते हैं। पुण्यक्षीण को अल्प-द्रव्य देकर ही उपकार करें, बहु-द्रव्य का वह क्षय कर देगा। अभक्ष्य-सेवी का उपकार उसके अभक्ष्य सेवन का त्याग कराके ही करें, सप्त-व्यसनी के सप्त-व्यसन का त्याग कराएँ, अन्यथा किया गया उपकार आपका ही अपकार कर देगा। पापी से पापों का त्याग कराना भी उपकार ही है। अन्य द्रव्य देने से बड़ा उपकार यही है कि सर्वप्रथम निर्व्यसनी बनाना, क्योंकि दु:खी होने का मूल कारण व्यसन ही हैं। सच्चा उपकारी कभी भी पापी के पापों की पुष्टि नहीं करता है।

16. Your disposition of beneficence should be of high order; it causes you influx of merit every instant. A man can receive beneficence only according to his fate; even god will not be able to help the man without fate. Water in the ocean is immense but you can take only as per the capacity of your jar. Food in the kitchen is abundant but you can eat only as per the capacity of your stomach. Intelligent men give as per the capability of the recipient; those who give without first examining the capability of the recipient have to regret their action. Give only a little to the man without merit; he will destroy excessive largesse. Help the man who consumes non-edibles only after he renounces the eating of non-edibles and help the man with seven kinds of addictions only after he renounces the addictions; otherwise your beneficence will turn into disfavour. To make the man free from evil tendencies is also beneficence. It is a greater beneficence to make the man addiction-free than to give him largesse; the main cause of his suffering is addiction. The true benefactor never approves of the evil tendencies of the recipient of beneficence.

---

17. दु:खी, धन-हीन, पुण्य-हीन, साधर्मी-धर्मात्मा का अनुग्रह (उपकार) करना धर्म का ही अनुग्रह है। धर्मात्मा सुरक्षित रहेगा तो धर्म सुरक्षित रहेगा। संख्या की दृष्टि से विश्व में देखा जाए तो मध्यम वर्ग एवं गरीबों की संख्या ही अधिक है। यदि धनिकों द्वारा इनका उपकार हुआ तो विश्वास रखो हमारे धर्म और धर्मात्माओं की ही सुरक्षा है। धनीजन, ज्ञानीजन, साधुजन, वैद्य, गुरु ये सब हमारे राष्ट्र की शोभा हैं, इसलिए इनका भी यथा-योग्य सत्कार होना अनिवार्य है। जिस देश में, राष्ट्र में, सम्प्रदाय में, कुल-परम्परा में, जाति में, समुदाय में, अनुग्रह-भाव जीवित है, परस्पर उपकार के परिणाम हैं, वही देश-राष्ट्रादि उन्नतिशील, सुहृदयवान होते हैं। उपकारी जन लोक में यश-ख्याति को प्राप्त होते हैं। उपकारी-जनों का नाम उनकी मृत्यु के उपरांत भी जन-सामान्य जनों के श्रीमुख में जीवित रहता है।

17. Being beneficent toward the co-followers of the dharma and the virtuous men who are miserable, poor and unfortunate is beneficence toward the dharma. If virtuous men remain safe, the dharma will be safe. The middle-class and the poor outnumber the others in the world. Beneficence of the wealthy men toward the middle-class and the poor men amounts to saving the dharma and its followers. The rich, the knowledgeable, the virtuous, the doctors, and the guru adorn our nation;

they should also be suitably honoured. Only the country, the nation, the religion, the lineage, the caste or the group in which the disposition of beneficence is alive and mutual help exists, remain progressive and tender-hearted. The beneficent men get renown and glory in the world. Their names remain alive in the mouths of the common men even after their death.

---

18. उन धनिकों का धन किस काम का जो विपत्ति में किसी के काम न आ सके, उनका धन मात्र पुण्य का मल है जो महामारी जैसी विश्वव्यापी विपत्ति में किसी के काम न आ सके।

18. Of what use is the wealth of the rich that does not come to the rescue of someone in distress? The wealth not used to assuage someone affected by world-calamities like a pandemic is just the dirt of merit.

* * *

28

सत्यार्थ-बोध

धर्म

Dharma

1. धर्म सम्प्रदाय नहीं, अपितु धर्म तो वस्तु का भूतार्थ, सत्यार्थ-स्वभाव है। जो स्वभाव-भूत वस्तु-धर्म है उसे सभी सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं, परन्तु सभी सम्प्रदायों में परस्पर विरोध है, इसलिए सम्प्रदायों को मानने वाले अल्प ही हैं। सम्प्रदाय लघु-लघु ही होते हैं, धर्म विराट् होता है तथा उसे मानने वाले भी विराट् ही होते हैं।

1. The dharma is not a religious group; it is the real and true nature of substances. The natural attribute of substances is accepted as dharma by all religious groups but their views differ; therefore, those following particular religious groups are not many. Each religious group constitutes a small number of followers but the dharma is all-embracing and those following it are all-encompassing.

---

2. जल का स्वभाव शीतल है, अग्नि का स्वभाव उष्णता है, जीव का स्वभाव चेतना एवं जानना-देखना है, इसे विश्व में कौन नहीं स्वीकारता? सभी स्वीकारते हैं। बाल-गोपाल वस्तु स्वभाव धर्म को जानता है; इसमें भेद नहीं, भेद तो सम्प्रदायों में है।

2. Who in this world does not accept that the nature of the water is coldness, the nature of the fire is hotness, and the nature of the soul is to know and see? All accept, without any contradiction, such nature of substances; contradictions lie in religious groups.

---

3. संसार से दु:खी प्राणियों को दु:ख से निकालकर सच्चे-सुख को प्राप्त करा दे; उसका नाम धर्म है। जहाँ प्रत्यक्ष में मूक पशु-पक्षियों को पीड़ित किया जा रहा हो, बुद्धि-पूर्वक प्राण-हरण किए जा रहे हों, ऐसे बलि

कर्म युक्त क्रिया करने वाला धर्मात्मा कैसे? वह क्रिया भी धर्म संज्ञा को कैसे प्राप्त कर सकती है? कभी भी नहीं। वर्तमान, भावी एवं भूत त्रैकालिक जो सुख-शांति का हेतु है वही धर्म है; अन्य नहीं, अन्यथा नहीं। प्रवृत्ति मूलक, निवृत्ति मूलक स्वभाव-दशा, विभाव-दशा, क्रिया-दशा ये धर्म की धाराएँ हैं, अतः तत्त्वान्वेषी को मध्यस्थ होकर धर्म का सत्यार्थ-बोध करना चाहिए। पंथों, परम्पराओं, सम्प्रदाओं में धर्म-पक्ष को समझने का सम्यक्-पुरुषार्थ करना चाहिए। किस सम्प्रदाय में धर्म की बात कहाँ तक है?

3. The dharma is that which releases living-beings from the worldly suffering and establishes these in the state of true happiness. How can the person who is seen to be engaged in sacrificial activities that cause injury to dumb animals and deliberately deprive these of their lives, be called the follower of the dharma? How can such activities get the name 'dharma'? Never. That which brings about happiness in the three times, present, future and past, is the dharma; nothing else, not otherwise. That which relies on inclination and disinclination, natural and unnatural states, and activities are streams of the dharma; the investigator of the nature of the reality should unbiasedly acquaint him with the truth. He should earnestly try to understand the truth of the dharma within sects, traditions and religious groups. To what extent does the dharma exist in each of these?

---

4. निजी पुष्टिकरण कितना है? भोग वृत्ति का पोषण कहाँ तक है? राजनीतिकरण कितना है? सामाजिकता कितनी है? दण्डनीति, अर्थनीति, स्वार्थसिद्धि कितनी है? भौतिकरूप है या पौराणिक? योग-साधना, ध्यान-धारणा यम-नियम, संयम, तप-त्याग, दान-दमन, दया-अहिंसा, परमब्रह्म की उपासना कहाँ तक है? शूद्रों-नारियों-पशु-पक्षियों पर करुणा है या अत्याचार? वनस्पति, कीट-पतंगे, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीवों तक क्या व्यवस्था है? भोजन-वसन कैसा है? संस्कृति क्या है?

4. How much of it is self-vindication? To what extent does it promote sensual-enjoyment? How much of it is politicization? How much of it is socialization? To what extent there is the law-of-punishment, economics, and self-realization? Is it worldly or historic? To what extent there is the control of yoga, meditation, vows, self-restraint, austerities, giving-of-gift, compassion and non-injury, and adoration of the supreme-self? Is it compassionate or repressive toward the low-caste, women, animals and birds? How does it treat the insects and moth, and one-sensed to five-sensed living-beings? Of what kind is the diet and clothing? What is its culture?

---

5. उल्लिखित पक्षों पर निष्पक्ष चिंतन करना चाहिए। सामाजिकता, राजनीति, दण्ड-नीति इन सबको समाज एवं राज्य-व्यवस्था का अंग बनाकर देखना चाहिए, न कि धर्म का अंग। सम्प्रदायिक नियमों को सम्प्रदायिक ही कहा जाए उसे धर्म न कहा जाए। धर्म को अपमानित न किया जाए, धर्म एक शुद्ध-अवस्था है जो विशुद्धता

से प्रारंभ होता है। स्व विचारधारा मात्र धर्म का रूप नहीं है, क्योंकि विचारधाराएँ व्यक्ति विशेष से पुष्ट व युक्त होती हैं। धर्म-व्यक्तिवाची नहीं है, धर्म तो वस्तु के वस्तुत्व से युक्त है।

5. Think about the aforementioned points in an unbiased manner. Socialization, politicization and law-of-punishment are parts of social- and state-milieu, not of the dharma. The rules of religious groups are made by these groups; do not call these the dharma. Do not undermine the dharma; the dharma is the pure state that starts with purity. Own-thoughts are not the nature of the dharma; these belong to and are nourished by individuals. The dharma does not belong to any individual; it manifests in the nature of the substance.

---

6. प्रत्येक पदार्थ धर्म-दृष्टि से धर्मात्मा है, ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो कि धर्म से रिक्त हो। स्व स्वभाव रूप धर्म तो जड़-चैतन्य सभी द्रव्यों में सदा विद्यमान रहता है; ऐसा कोई भी काल नहीं आता जब स्वभाव धर्मत्व से पदार्थ भिन्नत्व को प्राप्त होता हो। हाँ, इतना अवश्य है कि जीव एवं पुद्गल स्वभाव में रहेगा या विभाव धर्म में, परन्तु रहेगा स्व-धर्म में।

6. From the point-of-view of attributes – dharma – every substance is a possessor-of-dharma; no substance is void of the dharma. Own natural attributes are present at all times in all animate and animate substances; at no time the substance gets separated from own natural attributes. The soul and the matter may exist in their pure or impure attributes; still these exist in own natural attributes.

---

7. धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल ये चार द्रव्य स्व-धर्म में ही सदाकाल रहते हैं, इनका विभाव रूप परिणमन नहीं होता। त्रिकाल शुद्धार्थ-पर्याय के परिणमन से युक्त रहना इन चार-द्रव्यों का स्वभाव है और स्वभाव स्वभाववान में सनातन रहता है। स्व गुण-पर्याय से द्रव्य लोक में हमेशा रहेंगे, द्रव्यत्व की हानि तो कभी भी नहीं होगी। परिणमन-शीलता विनाश नहीं है, अवस्थान्तरता वस्तु के वस्तुत्व की नाशक नहीं है, अपितु नवीन पर्याय की उत्पत्ति ही है। इस परमार्थ वचन को भी समझो।

7. These four substances – the medium-of-motion, the medium-of-rest, the space and the time – maintain their own natural attributes at all times; these do not get transformed into impure states. To remain in their pure modes in the three times is the nature of these four substances; this is their eternal own-nature. The substances exist with their qualities and modes eternally in the universe maintaining their substantiveness. Transformation is not the destruction of substantiveness; it is the origination of a new mode. Understand this doctrine.

---

8. स्वभाववाची धर्म कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में परस्पर संयोग-संश्लेष को प्राप्त होने पर भी स्व-स्वभाव का त्याग नहीं करता। किसी भी लोकवर्ती-द्रव्य में वह क्षमता नहीं है जो अपने रूप पर-द्रव्य को परिणत करा ले अथवा स्व को पर-द्रव्यभूत परिणत कर ले। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में तथोपपत्ति सम्बंध नहीं होता, अपने-अपने स्वरूप ही द्रव्य का अवस्थान है। कर्मों से संसार अवस्था में जीवों का अनादि सम्बंध है, फिर भी जीव कर्म को जीव रूप नहीं कर सका तथा पुद्गल कर्म भी जीव को पुद्गल कर्म रूप परिणत नहीं कर सके। अतुल बलधारी, ईश्वर-परमात्मा, परम-देवाधिदेव अरिहंत तीर्थंकर भगवंत भी किसी द्रव्य को पर-द्रव्य रूप नहीं कर सके, न ही भविष्य में कर पाएँगे और न कभी भूत में किया है।

8. The own natural attributes of substances do not ever get destroyed; substances may unite or mix with each other but still do not leave their own nature. No substance has the power to transform another substance into own-nature, or itself into the nature of other substance. There is no universal togetherness – *tathopapatti;* to exist certainly in presence of another – between one substance and another substance; each substance remains in own nature. The material *(pudgala)* karmas have beginningless togetherness with the worldly souls; still neither the souls have been able to transform the karmas into own-nature, nor have the karmas been able to transform the souls into own-nature. Even Supreme Lord Jina, the *Tīrthaṅkara* with unparalleled strength and glory, does not have the power to transform one substance into another, in the three times.

---

9. अहो! अहो! अहो! यह द्रव्य की क्या अतुल सहज योग्यता; कभी पर रूप परिणत नहीं होता, अपने सत्-धर्म का नाश नहीं होने देता। द्रव्य उत्पाद-ध्रुवात्मक अवश्य है, परन्तु पर रूपता को प्राप्त नहीं करता, यही द्रव्य स्वधर्म की स्वतंत्रता है। पदार्थ स्वधर्म की स्वतंत्रता का लोप नहीं करता, विभाव दशा में मिश्रता को प्राप्त अवश्य होता है, कर्मों के आश्रय को प्राप्त हो जाता है, फिर भी स्व-धर्मत्व पर अचल रहता है। योगीश्वर अचल, अतुल, अनुपम स्वधर्म के आलम्बन से ही तो कर्म क्षय कर पूर्ण स्वतंत्र शुद्ध सिद्धत्व-दशा को प्राप्त कर कृत्य-कृत्य अशरीरी निष्कलंक निकल-परमात्मा बन जाता है। अहो! यही है द्रव्य की स्वधर्मत्व शक्ति; इसके समक्ष अन्य किसी की कुछ भी नहीं चलती।

9. A substance does not get transformed into another substance and never leaves its dharma of existence; what an extraordinary capability! The substance definitely undergoes origination and permanence but never ever attains the nature of another substance; this is the independence of the own nature of the substance. In its impure state, the soul-substance mixes with another substance and gets into bondage with the karmas; still it remains steadfastly in own-nature. The supreme *yogī*, taking refuge in the immutable and unparalleled own-nature, destroys the karmas and attains pure and independent state of liberation; he thus attains the supreme state where nothing remains to be done, which is free from material body, devoid of the dirt

of karmas, and utterly pristine. This is the power of the own-nature of substances; no one has the power to override this.

---

10. परम-अध्यात्म तत्त्व में लवलीन योगीश्वर जिस धर्म का आश्रय लेते हैं; वह धर्म क्या है? वह धर्म तो वही है - 'जो है सो है'। योगीश्वर अन्य किसी भी पर-वस्तुभूत धर्म का आश्रय नहीं लेते; जब स्वरूप लीन होते हैं तो मात्र निज गुण-पर्याय में लीन रहते हैं। मैं एक चैतन्य-चिन्मय ज्ञायक स्वभावी ध्रुवधाम, टंकोत्कीर्ण परमात्मा हूँ। मेरे से भिन्न अन्य, अन्य ही है; अन्य का मैं न द्रव्य हूँ, न गुण हूँ, न ही पर्याय। मैं तो स्व-द्रव्य-गुण-पर्याय युक्त स्व-चतुष्टय में पूर्ण हूँ। मैं आनन्दकन्द, ज्ञानघन पर-भावों से पूर्ण शून्य हूँ। एक हूँ, एक था, एक ही रहूँगा, मैं ज्ञायक! ज्ञायक! ज्ञायक! ज्ञायक! ज्ञायक ही हूँ, पर का कर्ता नहीं, पर भी मेरा कर्ता नहीं, न था, न होगा, यह ध्रुव सत्य है। स्व-स्वभाव में ही परिणमनशील हूँ; सद्भूत व्यवहार से। स्वसत् से भिन्न कभी हुआ नहीं, होऊँगा नहीं, हूँ नहीं, ऐसा ही परमेश्वर ने कहा है। परमेश्वर ने कहा है; इसलिए नहीं हूँ, ऐसा मेरा स्वभाव ही है, इसलिए परमेश्वर ने कहा। परमात्मा ज्ञाता है, ज्ञाता ही रहेंगे, ज्ञाता ही थे। वे किसी के कर्ता-हर्त्ता न थे, न हैं, न होंगे।

10. What is that dharma whose shelter the supreme *yogī* takes while getting engrossed in own supreme soul-substance? That dharma is just 'That is, what it is.' The *yogī* does not take shelter in the dharma, the attributes, of any other substance; when engrossed in own-soul, he just thinks of its qualities and modes. He thinks thus: "I am the supreme-soul, one, with consciousness and intelligence, of the nature of knowledge, and am permanent. All others are only others; I am not the substance, quality or mode of the others. I have my own substance, quality and mode, complete with my own-quaternary. I am of the nature of happiness and knowledge, absolutely free from all foreign dispositions. I have been one, am one and will be one. I am the knower. Just the knower. Being just the knower, I am not the doer of the other, and the other is not my doer. The other has never been my doer and will never be; this is the eternal truth. From the *sadbhūta vyavahāra naya*, I undergo transformations in my own-nature. I have never got separated from my own existence, and will never get separated; this has been said by the Supreme Lord. Not because the Supreme Lord has said this; but because it is my own-nature. The Supreme Lord is the knower, will remain as the knower and has always been just the knower. He is not the doer, has never been and will never be.

---

11. व्यवहार धर्म क्रिया-प्रधान धर्म है, वह भी दो प्रकार - लौकिक-व्यवहार और परमार्थ-व्यवहार। लौकिक-व्यवहार से तात्पर्य लोक-परम्परा का पालन करना, माता-पिता-शिक्षक आदि की विनय करना, मान्यजनों का सम्मान रखना, राजा एवं राज्य-पुरुषों, वैद्यादि का आदर करना, विद्वानों का सत्कार करना, भेंटादि प्रदान करना, यह लोक में लोक-व्यवहार धर्म है। इससे सम्यक्त्व-मिथ्यात्व का कोई सम्बंध नहीं है, मात्र लोकोपचार विनय

है। कुटुम्ब-परिवार, राज्य व्यवस्था, विद्या-दान, भृत्य कर्मादि ये सब लौकिक-व्यवहार का धर्म है, मोक्षमार्ग से भिन्न है।

11. The empirical dharma, based mainly on activity, is of two kinds: the worldly dharma and the spiritual dharma. Worldly dharma follows the traditions of the world, like venerating the parents and teachers, giving respect to the reputable men, the king, the ministers, the doctors and the learned, and giving of gifts. This dharma does not have any relation with right-belief or wrong-belief; the activities mentioned above are just conventional modesty. Traditions like the family, the state-establishment, the education, the giving of gift, the employment, involve worldly dharma and do not constitute the path to liberation.

---

12. परमार्थ-व्यवहार जो कि सम्यक्-मिथ्यात्व से प्रयोजनवान है। वीतरागता से युक्त मार्ग को स्वीकारना सम्यक्त्वभूत है तथा सरागता को स्वीकारना मिथ्यात्व है। पंच-परमेष्ठी की विनय करना, सद्-पात्रों को भक्ति एवं विनय पूर्वक दान देना, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पूजन करना, अष्ट मूल गुणों का पालन करना, यह अविरत सम्यक्त्वी का धर्म है। अणुव्रत, शिक्षाव्रत एवं गुणव्रतों का पालन करना व्रती-श्रावकों का व्यवहार धर्म है।

12. The spiritual dharma refers to the mixed-right-and-wrong-belief *(samyag-mithyātva)*. Right-belief *(samyaktva)* is to the extent the path of detachment is adopted and wrong-belief *(mithyātva)* to the extent there is attachment. Venerating the five Supreme Beings, giving gift with devotion and veneration to the worthy recipients, worshipping the true deity, the Scripture and the guru, and observing the eight basic-qualities *(mūlaguṇa)*, constitute the dharma of the householder without-vows but with right-belief. To observe the small-vows *(aṇuvrata)*, the *śikṣāvrata* and the *guṇavrata* constitutes the empirical dharma of the householder.

---

13. कषायिक-भावों, कर्म-प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम एवं क्षय करना, स्व-स्व गुणस्थान व स्वरूप-दृष्टि से यह परमार्थ-धर्म है। निर्ग्रन्थ मुनि-दीक्षा धारण कर जिनलिङ्ग से मूलोत्तर गुणों का पालन करना, यह निग्रन्थों का व्यवहार धर्म है। वह अशुभ से निवृत्ति, शुभ में प्रवृत्ति-जन्य धर्म है। व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह-जय भूत है।

13. To affect subsidence, destruction-cum-subsidence and destruction of the passions and the karmas is the spiritual dharma from the perspective of the stages-of-spiritual-development *(guṇasthāna)* and own-nature *(svarūpa)*. For the ascetics, the empirical dharma consists in observing the primary and the secondary rules-of-conduct after adoption of the sky-clad asceticism that is the mark of Lord Jina. This

dharma is based on refraining from the inauspicious and engaging in the auspicious. It constitutes vows *(vrata)*, carefulness *(samiti)*, control *(gupti)*, virtue *(dharma)*, contemplation *(anuprekṣā)*, and conquest-by-endurance *(parīṣaha-jaya)*.

---

14. निश्चय-धर्म क्रिया-शून्य, स्वरूप लीनता भूत है। ज्ञानी-योगियों के गोचर, व्यवहारी जनों के मात्र श्रद्धा का विषय है, भावना का विषय है तथा तपोधनों को अनुभूति का विषय है। अंतरंग-बहिरंग क्रियाओं का जहाँ पर निरोध है, भव के कारणों का जहाँ पूर्ण क्षय हो चुका है। निर्विकल्प ज्ञान-दर्शन-चारित्र की धारा; पर-भावों से पूर्ण भिन्नत्व का वेदन, संकल्प-विकल्प शून्य, एकमात्र स्व-एकाकी निज-आत्मवैभव का संवेदन, चिद्-ब्रह्म का अनुभव मात्र जहाँ अवशेष है, सम्पूर्ण पर-विशेषों से रिक्त एकमात्र स्व-सामान्य-विशेष से युक्त टंकोत्कीर्ण ज्ञायक-ध्रुव-स्वभाव वेदन, परमार्थ-लीनता, निश्चय धर्म यही है। साक्षात् मोक्ष का कारण, सत्यार्थ धर्म, अन्य नहीं अन्यथा नहीं।

14. The real *(niścaya)* dharma is to get engrossed in own-nature, rid of all activities. The real dharma is the subject of the knowledgeable *yogī* and only he can experience it; others can just have devotion and veneration for it. There is complete stoppage of all activities, internal and external, and causes of world-wandering get to complete destruction. In the real dharma flows the stream of pure knowledge, perception and conduct, and the *yogī* separates himself completely from all thoughts of the 'other'. There are no thoughts of volitions and inquisitiveness *(saṃkalpa-vikalpa)*, just the sensation of own soul's glory and its eternal supremacy. The *yogī* gets engrossed in the real-self, rid of all particularities of the 'other'; there is sensation only of own eternal knower-soul endowed with general and particular qualities. This is the real and true dharma, the direct cause of liberation; nothing else, not otherwise.

---

15. आत्म धर्म ही मुख्य धर्म है; उस धर्म की प्राप्ति हेतु शेष धर्म हैं। साध्य-धर्म कर्मातीत अवस्था, जहाँ पर एकमात्र परमब्रह्म चैतन्य-चैतन्य ही रहता है। न नय का विकल्प, न प्रमाण का विकल्प, न निश्चय धर्म का विकल्प, न व्यवहार धर्म, यही है परमात्म-दशा। आत्मा अपने सहज-धर्म को प्रकट कर लेता है, असहजता के सम्पूर्ण-हेतुओं का पूर्ण अभाव हो जाता है। अष्ट-कर्म-शून्य, अष्ट-गुण-युक्त, केवलज्ञान-दर्शनादि आत्म-गुणों की विभूति मात्र शेष, यह आत्मा की अंतिम दशा है, पूर्ण कृत्य-कृत्य दशा। जो चैतन्य-द्रव्य का भूतार्थ धर्म था वह उपलब्ध हो चुका। अब आत्म-द्रव्य के लिए कोई भी पुरुषार्थ अवशेष नहीं बचा, लोकाग्र पर विराजमान हो गए। कितने ही कल्पकाल बीत जाएँ, परन्तु प्रकट-परमात्मा अवतार को प्राप्त नहीं होंगे।

15. The real dharma is the soul-dharma; all other dharma are for its realization. The goal is the state of the soul in which only the supreme consciousness, rid of all karmas, remains. In this state of the soul, there are no considerations of *naya, pramāṇa,* real-dharma and empirical-dharma. The natural-dharma of the soul is

manifested; it is rid completely of all unnatural states. This is the final state of the soul after which nothing remains to be done; this state is rid of the eight karmas, endowed with the eight qualities and shines in its glory of own-attributes of perfect-knowledge, perception, etc. The real dharma of the conscious-soul is attained. The substance of soul does not have to engage in any effort; it gets established at the summit of the universe. Never in future, not even in aeons, it will descend again on this earth.

---

16. उपशम-भाव और तप-साधना से उक्त निकल परमात्म-अवस्था प्राप्त होती है, इसलिए प्रत्येक साधक को देह-धर्म के पालन के साथ आत्म-साधना, कषायिक भाव के उपशम-भाव की विशुद्ध-भावों से साधना की अनिवार्यता है। आत्म-साधक पर-धर्मों से अप्रभावित होकर जीता है, जो पर-धर्मों से प्रभावित होता है वह आत्म-धर्म की साधना से शून्य रहता है। पर-भावों का ज्ञान व श्रद्धान आत्म-साधना में बाधक नहीं है, अपितु पर-भावों के धर्म में लीन होना आत्म-साधना में पूर्ण बाधक कारण है। एकत्व निज-धर्म परम सुन्दर है।

16. The above-mentioned state of the soul, rid of all encumbrances, is attained through the disposition of subsidence and austerities. While observing his duty toward the body, every ascetic should practice, with pure heart, soul-realization and subsidence of the passions. The practitioner of soul-realization remains unaffected by the dharma of the 'other'; the one affected by the dharma of the 'other' gets void of soul-realization. The knowledge of the dharma of the 'other' is not an obstruction to soul-realization; however, to get engrossed in the dharma of the 'other' is an obstruction to soul-realization. The one and only, own-dharma is supremely beautiful.

---

17. पर-भावों का राग बंध का कारण है, इसलिए स्वभाव-सिद्धि की भावना रखने वाले आत्म-साधक के लिए निर्विकल्प भाव से स्व-साधना का अभ्यास सतत करते रहना चाहिए। आत्म-पुरुषार्थ मात्र स्व-पुरुष के लिए होना चाहिए, पर-पुरुष के लिए किया गया पुरुषार्थ साक्षात्-सिद्धि का कारण नहीं है। जब भी आत्म-सिद्धि होगी वह स्व के लिए स्व में किए गए पुरुषार्थ का ही परिणाम होगा। एकत्व-विभक्त भाव में जाने के लिए किसी अन्य का आश्रय नहीं चाहिए, स्वाश्रयी स्वधर्म यह सिद्धान्त अकाट्य है।

17. Attachment for the 'other' is the cause of bondage; therefore, the practitioner who wishes soul-realization should incessantly concentrate on the self. The effort on the soul should only be on the own-soul, not on the other-soul; the effort on the other-soul is not the direct cause of soul-realization. Soul-realization, whenever it takes place, will be by the effort of the own-soul on the own-soul. To get established in disposition of the one, other than all 'other', no outside support is required; it is an inviolable doctrine that the own-dharma is dependent only on the self.

---

18. सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्रभूत जो रत्नत्रय लक्षणात्मक धर्म है, जो कि उपाय तत्त्व है तथा मोक्ष तत्त्व की प्राप्ति उपेय तत्त्व है। बिना उपाय के उपेय की सिद्धि नहीं होती, अनुपाय-सिद्धि परमात्म की नहीं है, उपाय अर्थात् पुरुषार्थ और पुरुषार्थ ही पुरुष का धर्म है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चार पुरुषार्थों की सिद्धि जो करता है वही वीर पुरुष है। अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष है, वह भी उपाय से ही सिद्ध होगा। मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि से तात्पर्य परमात्म-पद की सहज उपलब्धि। परमात्म के दर्शन तो जीव के पुण्य-योग से प्राप्त होते हैं। परमात्म पद की साधना के लिए भी पुण्य चाहिए, परन्तु परमात्म-पद जो पूर्ण शुद्ध-अवस्था है वह पुण्य-पाप दोनों के अत्यन्त क्षय से प्राप्त होता है। परमात्मा पूर्ण निरंजन, निष्कलंक, निरामय दशा से युक्त होते हैं।

18. The dharma of right perception, knowledge and conduct, called the Three-Jewels, is the means to attain the goal of liberation. Without means, goal cannot be attained; soul-realization is not without means which involves effort to be put up by the man. The gallant man makes the four kinds of efforts that lead him to the dharma, the wealth, the worldly-enjoyment and the liberation. The last effort for liberation will also require proper means. The effort for liberation means natural attainment of the supreme state of the soul. The sight of the supreme state of the soul is incumbent on merit. Merit is required also for making effort for attainment of the supreme state of the soul. However, the supreme state of the soul is the pure state of the soul that is attained on destruction of both merit and demerit. The supreme-soul is unstained, pristine and salubrious.

---

19. दया धर्म है अंतरंग करुणा-दृष्टि, प्रशस्त-राग से युक्त परिणाम, दु:खी प्राणियों पर कृपा-भाव का उत्पन्न होना, उपकार करना, उनके कष्ट दूर करना, स्वरक्षा के साथ। स्वयं ही सुरक्षित नहीं रहे, तो फिर अन्य जीवों पर करुणा कैसे कर पाओगे? स्व-रक्षा पर भी सजगतापूर्ण दृष्टि होना चाहिए। योग्य-पुरुष जो शासन की सेवा कर सकता है, वह अयोग्य नहीं कर सकता है, इसलिए अपनी योग्यता को सुरक्षित रखो, यही विवेकशील करुणावंत की पहचान है।

19. The dharma of pity involves compassion, the disposition of commendable attachment, mercifulness, benevolence, and alleviating the suffering of those in distress while protecting self. If you are not able to protect yourself, how will you protect others? Only the capable man can serve the state; therefore, make yourself capable. This is the mark of the man of discrimination with compassion.

---

20. काषायिक-भावों का उपशमन होते ही आत्म-गुणों का सहज उत्पादन होने लगता है, यही सत्यार्थ आत्म-सुख का उपादान है। यथार्थ में दु:ख व सुख कोई अन्य वस्तु नहीं है; अपितु आत्मा में कषाय की तीव्रता बढ़ती जाए तो प्राणी दु:खी होने लगता है और कषाय शान्त हो जाएँ, क्षमादि दस-धर्म प्रकट होते जाएँ वहीं से आत्म-सुख प्रकट होने लगता है। आत्म-सुख की लीनता से, कर्म निर्जीर्ण कर मानव भगवत्ता की सिद्धि कर लेता है।

20. As the dispositions of passions subside, the soul's attributes get manifested; this is the substantive cause of soul-happiness. In fact, misery and happiness are not external; as the passions become severe man experiences misery and as the passions get to quiescence with the rise of the ten kinds of dharma, like forbearance, man starts experiencing soul-happiness. When engrossed in soul-happiness, the man sheds karmas and attains the supreme state of the soul.

उत्तम क्षमा-धर्म

Supreme Forbearance

21. बहिरंग शत्रुओं को जन्म देने वाले भी अंतरंग शत्रु ही हैं। अंतरंग में कषायिक भाव उत्पन्न न हों तो अन्य किसी के प्रति क्रोधादि प्रकट न करें। दूसरे के प्रति जो अशुभ-भाव उत्पन्न होता है, उन्हीं भावनाओं से उत्प्रेरित भिन्न-जन शत्रुता का व्यवहार करने लगते हैं। सर्वप्रथम स्व के अन्दर कालुष्य-भावना का अभाव करना होगा, क्योंकि कालुष्यता की अनुत्पत्ति क्षमा है, परकृत कष्ट देने पर भी जो पर को कष्ट देने के भाव ही न लाए वही उत्तम क्षमा धर्म है। क्रोध का अभाव जहाँ होगा, वहीं क्षमा-धर्म होगा।

21. External enemies are only the result of internal enemies. Without internal passions, anger does not manifest. Due to own inauspicious dispositions for others one starts treating them as enemies. It is necessary to first get rid of the disposition of malevolence in the self as non-rise of malevolence is forbearance. Not engendering the thought of inflicting pain on even those who have caused you pain is supreme forbearance. Where there is the absence of anger there is the dharma of forbearance.

---

22. देह-साधना करके व्यक्ति कितना ही शरीर सुखा ले; यदि आत्म-साधना नहीं है तो परमार्थ-पद मिलना असम्भव है। यदि कोई शरीर से प्रचंड तपस्या कर रहा है, परन्तु उपशम भाव का अभाव है तो उसका नाम क्षमाशील के बाद ही आएगा। क्षमा अंतरंग-धर्म है। शत्रु-भाव का अभाव जिसके चित्त में है वह पृथ्वी पर चलता हुआ भावी-सिद्ध-भगवान् है। ऐसे साधकों द्वारा ही पृथ्वी पवित्र हो रही है। धरती इन्हीं साधकों के स्पर्श से अपना अहो भाग्य स्वीकारती है, कामी-क्रोधी-दंभी लोगों से नहीं, वे पापीजन तो धरती पर भार हैं।

22. One may wither one's body by observing physical-austerities but without effort on soul-realization the supreme status cannot be attained. If someone observes severe physical-austerities but without disposition of subsidence, his name will be taken only after the one who observes forbearance. Forbearance is an internal dharma. The one whose heart is rid of the disposition of enmity is a future liberated god treading the earth. The earth gets purified by such men. The earth considers

itself fortunate on being touched by such men; not by the touch of lustful, angry and haughty men who are a burden on it.

---

23. आत्मार्थी भव्य-जीवों के लिए तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने जो सत्यार्थ तत्त्वोपदेश दिया है वह सम्प्रति काल में अत्यंत आवश्यक है। उन उपदेशों को वही पाल पाएगा जिसके भीतर स्व-पर करुणा, दया और क्षमा होगी। जिस व्यक्ति के अन्दर स्व के प्रति क्षमा-भाव नहीं, करुणा, दया-भाव नहीं, वह सम्यक्-उपदेशों को सुन भी नहीं पाएगा, फिर उनके अनुसार चलना तो अत्यंत कठिन कार्य है। जो सदोपदेश के अनुसार चलता है वह स्व-पर का हित कर लेता है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच-पापों का आश्रय वही लेता है जो क्षमाधर्म से अनविज्ञ है। वह मोहवश स्वयं-ही-स्वयं का शत्रु बनता है, स्वयं-ही-स्वयं से वैर धारण किए है, कारण पाँच पाप करेंगे तो संसार की नरकादि दुर्गतियों में नारकी, पशु-पक्षी बनकर किस प्रकार से पीड़ित किए जाएँगे, यह सभी जानते हैं। कर्म का फल स्वयं को ही कष्ट देगा।

23. The teachings, for potential and introverted souls, of *Tīrthaṅkara* Lord Mahāvīra on the true nature of the reality are extremely important in the present time. Only the one who has in him compassion, pity and forbearance for self and others can translate these teachings into conduct. The one without forbearance and pity for self will not be able to even listen to these teachings; to translate these into conduct is a far cry. The one who translates these teachings into conduct benefits self and others. Only the man ignorant of the dharma of forbearance takes to these five evils: injury, untruth, stealing, lust and possessions. Due to delusion he becomes an enemy of self and harms self; due to indulgence in the five evils he is destined to suffer the agony of hell or life as an animal or bird. The karmas engender agony for self.

---

24. अभक्ष्य-भोजन, असत्य कर्कश आदि भाषण, तन एवं मन दोनों को ही विकृत करते हैं, फलतः उससे महामारी जैसे महारोग उत्पन्न होते हैं। मानव की मानवता फिर सिसक-सिसक कर रोती है, हाय! हाय! करती है। अहो आत्मन्! स्व-पर पर करुणा करो, स्व को क्षमा करो। स्वच्छ भोजन, स्वच्छ भाषण करो। व्यर्थ में संचरण मत करो। दृष्टि में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद, चर्या में अहिंसा जहाँ होगी वहाँ विश्व की सम्पूर्ण आपत्तियाँ स्वतः समाप्त हो जायेंगी। जो शासन-आज्ञा स्व-पर हितकारी है उसे आस्था पूर्वक पालन करना चाहिए। कष्ट के काल में परस्पर उपकार भाव रखना। सबके दिन एक से नहीं होते, सब दिन एक से नहीं होते, ये दिन भी चले जाएँगे। धैर्य अनिवार्य है। स्व-पर दोनों के प्रति क्षमा धारण करो।

24. Consuming inedible food and speaking untrue and harsh words vitiate the body and the mind; the result is the outbreak of pandemics. The humanity then cries and wails. O soul! Have mercy on self; forbear self. Consume pure food; speak laudably. Do not move about unnecessarily. In presence of *anekānta* (multiplicity of the reality)

in vision, *syādvāda* (the doctrine of conditional predication) in speech and *ahiṃsā (*non-injury) in conduct, all calamities in the world will disappear. All state orders that are for the benefit of self and others should be followed faithfully. Observe mutual beneficence during the time of suffering. All days are not the same and the days of all are not the same; these days will also go. Patience is essential. Adopt forbearance on self and others.

---

25. गुणी-जनों से प्रेम, दु:खी जनों पर करुणा, प्राणी-मात्र पर मैत्री भाव तथा विपरीत मार्ग पर चलने वालों पर माध्यस्थ भाव धारण करो, यही समीचीन धर्मोपदेश है, वीर का। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह - ये पाँच सिद्धांत विश्व-कल्याण के अंग हैं, यही स्वयं पर परम-क्षमा-भाव है।

25. Lord Vīra has preached to have disposition of joy for the virtuous, compassion for the afflicted, benevolence for all living-beings, and tolerance for those treading the wrong-path. Non-injury, truthfulness, non-stealing, celibacy and non-possession are the five limbs of the Doctrine to benefit the world; these constitute supreme-forbearance on self.

---

26. क्षमा, सहिष्णुता, अनुकंपा ये तीन जहाँ होंगे, वहाँ प्रभुत्व-सत्ता खड़ी स्वत: हो जाएगी। तीन में से एक भी कम हुआ, वहाँ प्रभुत्व-सत्ता शीघ्र पलायन कर जाएगी। इन तीन में से एक भी कम नहीं करना। हाँ, एक गुण अधिक बढ़ा कर रखना चाहिए जिसका नाम है जितेन्द्रियता, सत्ताधारी के लिए यह गुण अनिवार्य है। इस गुण के अभाव के कारण ही तो रावण की सत्ता नष्ट हो गई और राम की सत्ता प्रभाववान् हो गई। विश्व में जिनेन्द्र देव का शासन जितेन्द्रियता के कारण ही वर्धमानता को प्राप्त है।

26. In presence of the qualities of forbearance, endurance and compassion, supremacy reigns. In absence of even one of these three, supremacy soon goes away. Do not shed any of these. Cultivate one more quality and that is the control of the senses; this too is essential for supremacy. Due to the absence of this quality, Rāvaṇa's supremacy descended, while Rāma's supremacy ascended. In the world the reign of Lord Jina has witnessed ascendency due to his doctrine of the control of the senses.

---

27. क्षमा निर्बलों का बल है तथा वीरों का आभूषण। लोक में वे लोग सर्व-सामान्य जनों के मध्य भी पूज्यता को प्राप्त होते हैं जो धैर्य और क्षमा के साथ दूसरे की बात सुनते हैं। अपनी बात बतलाते तो हैं, परन्तु बलात् किसी पर थोपते नहीं हैं, बल पूर्वक आरोपित नहीं करते हैं। सत्य तो यही है कि अपनी भावना रखनी चाहिए, परन्तु दूसरे की भावना को समझना चाहिए। आपके विचारों से भी अधिक दूसरे के विचार अधिक हितकारी,

भूतार्थ एवं श्रेष्ठ हैं तो उन्हे आस्थापूर्वक शीघ्र स्वीकार कर लेना चाहिए। इसमें अपना छोटापन नहीं मानना और आपकी बात लोग सुन रहे हैं तो मान नहीं लाना चाहिए।

27. Forbearance provides strength to the weak and is an embellishment of the brave. Those who listen to others with patience and forbearance are adored by the masses. They express their views without imposing these on others. The truth is that you must express your views while understanding the views of others. If the views of others are more beneficial, truthful and laudable, accept these with trustfulness. Accepting the views of others does not belittle you; also, do not become overbearing if others listen to you.

---

28. क्रोधाग्नि महा-ज्वाला है; जिसमें किसी की भी रक्षा संभव नहीं है। इस ज्वाला में जो-जो प्रविष्ट होगा उन सबके सद्गुणों का भस्म होना नियतता को प्राप्त है। बड़े-बड़े राजे-महाराजे, साधु-त्यागी-तपस्वी, धनपति-भिखारी, बाल-युवा-वृद्ध, ज्ञानी-पंडित, अज्ञानी-मूढ़ इनमें से जो भी क्रोध-हुताशन में जाता है; वह एक ही अवस्था को प्राप्त होता है और वह है संताप। अग्नि में जो भी वस्तु आती है; उन सबकी एक-ही दशा होती है, उसका नाम राख भस्म है, इसी प्रकार से क्रोधाग्नि में गया प्राणी अपनी सद्गति, सद्गुण, मैत्री-भाव, प्रेम-स्नेह, वात्सल्य-प्रीति आदि गुणों को क्षण मात्र में राख कर लेता है।

28. The fire of anger is fierce; nothing that enters it can be saved. The virtues of the man who enters the fire of anger must burn to ashes. Great kings, ascetics, men-of-wealth, poor, children, young and old, men-of-knowledge, ignorant and deluded men, whoever enters the fire of anger gets to just one result, and that is agony. As everything that enters the fire must turn to ash, the man who enters the fire of anger turns to ash, instantly, his virtuous future, laudable qualities, brotherhood, love and affection, etc.

---

29. अग्नि का शमन नीर से होता है, बिना पानी के अग्नि शान्त करना असम्भव है। क्रोधानल को शान्त करने के लिए क्षमा सलिल की आवश्यकता है; बिना क्षमा पयस के क्रोध-ज्वाला का उपशमन नहीं हो सकता है, जिन्हे भी अपनी संयम-भावना एवं उसमें शोभते सद्गुण-मणियों की रक्षा का भाव हो तो वह क्षमा वारि का प्रयोग करें, यही सत्यार्थ-बोध है।

29. The fire is extinguished by the water; it is impossible to snuff the fire out without the water. To extinguish the fire of anger, the water of forbearance is required; without the water of forbearance the fire of anger cannot be snuffed out. Those who wish to save their disposition of restraint and the jewels that adorn it should use the water of forbearance; know this as true.

---

30. सार यही है कि- क्षमा आत्म शांति का परम द्वार है, इसलिए प्रत्येक हितेच्छु को क्षमा-भाव धारण करना चाहिए।

30. In essence, forbearance is the supreme gate to enter soul-happiness; everyone who desires own-welfare should adopt forbearance.

उत्तम मार्दव-धर्म

Supreme Modesty

31. मानव जीवन में जन्म से प्राप्त कषाय का नाम 'मान-कषाय' है। मानव की श्वास-श्वास में 'मान' झलकता है। इस बात का मानव को 'सत्यार्थ-बोध' होना चाहिए कि हम किस बात पर घमंड कर रहे हैं? अहो प्रज्ञ! विचार कर; जिस पर मान-कषाय इठला रही है वह वस्तु तेरे से अत्यन्त भिन्न है और जो अभिन्न है उस पर तेरा लक्ष्य नहीं है। शुद्ध-ज्ञान, शुद्ध दर्शन; ये जीव द्रव्य के अभिन्न गुण हैं। यदि जीव स्व-गुणों पर विवेकपूर्ण विचार कर ले तो अभिमान क्षण मात्र में विलीन हो जाए। अहो आश्चर्य! अहं भाव में जीने वाले पर त्रास आता है; ज्ञायक भावी निज-भगवान् को कषायी बनाकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। मानव को स्व प्रज्ञा का थोड़ा तो प्रयोग करना चाहिए। कषायी प्रशंसनीय कैसे हो सकता है? कषायी तो निंदनीय ही होता है। मानी स्व-पर को प्रतिपल क्लेश प्रदान करता है; कभी हँसता है, कभी रोता है, बिचारे के भाग्य में यही लिखा है।

31. The passion that the man is endowed with by birth is the passion of pride. Pride mars his every breath. What is there for him to be proud of? O man! Think! The thing that you are proud of is utterly different from you; you fail to reflect on the thing that is essentially yours. Pure knowledge and pure perception are own-qualities of the substance of soul. If the man is able to reflect on own-qualities, his pride will vanish instantly. What a surprise! Pity on the man living on false pride! He is drawing pleasure out of maligning his own god-soul with passions! Use a bit of your intellect. How can the man with passions be laudable? He is just deplorable. The man with pride lives every instant with agony; he laughs, he cries. This is his fate.

---

32. सत्यार्थ तत्त्वार्थ का निर्णय मान के निर्हरण, मार्दव-धर्म के सद्भाव में ही सम्भव है। शीतल नीर में मुखावलोकन होता है; उष्ण उबलते पानी में मुख नहीं दिखता उसी प्रकार से जब चित्त कषाय की गर्मी से शान्त होता है, सामान्य अवस्था में होता है तभी वस्तु के यथार्थ-वस्तुत्व का निर्णय होता है, इसलिए तत्त्व-निर्णय के पूर्व अपने आपको पूर्ण सहजता में स्थित करें, फिर आप निर्णय करेंगे तो आपका निर्णय विशिष्टता से युक्त विराटता को प्राप्त करेगा। लोक के हर व्यक्ति की बात को सुनना आवश्यक नहीं है, उस

पर विचार करना भी अनिवार्य नहीं है यदि स्वयं की प्रज्ञा विशिष्ट है तो। भद्र-भावों से युक्त शान्त-परिणामी पुरुष ही विशद तत्त्व-निर्णय की भूमिका में प्रवेश कर पाता है और फिर उसके निर्णय को जगति के लोग पूजते हैं। सर्वज्ञता की सिद्धि जिस जीव को होती है वह सम्पूर्ण कषाय एवं इन्द्रिय विषयों पर विजय प्राप्त किए होता है। जितेन्द्र संज्ञा जिनको प्राप्त होती है ऐसे वे जिन होते हैं। ऐसे जैनों के वचन सदा वंदनीय होते हैं। यहाँ जैन जिनदेव को समझना; सामान्य जैन तो वे हैं जिनके देव जिन हैं। जैनत्व की भूतार्थता विचार करेंगे तब आप पायेंगे कि जित-कषाय, जितेन्द्रिय, जित-मोह, समीचीन-दृष्टि की सर्व-सिद्धि का अधिकारी है।

32. Determination of the true nature of the reality is possible only in absence of pride and presence of modesty. Just as one can see his face in cool water and not in boiling water, only when the mind is cool and in its natural state, rid of the heat of passions, can it determine the true nature of the reality. Therefore, become thoroughly natural before deciding on the nature of the reality; only then your decision will be commendable. If your own intellect is sound, it is not necessary to listen to what others in the world say, not even to reflect on what they say. Only the man with laudable disposition and tranquil mind can establish himself in the role of the decision-maker on the true nature of the reality; his decisions become adorable in the world. The man who attains the status of the *'sarvajña'* – the all-knowing – vanquishes all passions and sensual-inclinations. He is called the 'Jina', the victor. The words of such a 'Jaina' are always laudable. Here, take 'Jaina' as Lord 'Jina'; in common parlance, the word 'Jaina' denotes the follower of Lord 'Jina'. The real meaning that Jainism implies is that the follower of Lord 'Jina' vanquishes passions and senses, and is endowed with right perception.

---

33. ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप एवं शरीरादि में जो अहं भाव नहीं रखता तथा इन मदों से रहित होकर जो जीवन जीता है, उसी को साक्षात् मोक्ष-तत्त्व का परम बंधु मार्दव-धर्म प्रकट होता है। मान के अभाव में ही मार्दव-धर्म होता है।

33. In the one who lives without the pride of knowledge, reverence, lineage, caste, strength, accomplishment, austerities, and body, etc., manifests supreme modesty, the direct ally of liberation. Supreme modesty manifests only in absence of pride.

---

34. जब व्यक्ति के विनाश का काल आ जाता है तब उसका मान वृद्धिमान होने लगता है। जैसे दीपक बुझने के समय उसकी लौ और अधिक तेज होने लगती है, ऐसे-ही मृत्यु के काल में श्वासें तेज होने लगती हैं, इसलिए विवेकशील नरों को चाहिए कि वह अपनी रक्षा करें। अपने ही द्वारा अपने विनाश से बचें। मानी को न गुरु दिखते हैं, न प्रभु! मान-कषाय से प्रभावित व्यक्ति प्रतिक्षण यही सोचता है कि मेरे मान की पुष्टि कैसे हो? और फिर वह मान की पुष्टि के लिए मायाचारी भी कर लेता है। वह ख्याति, पूजा, लाभ के लिए अपनी सम्पत्ति

भी दूसरों को दे देता है। साधु-भेषी मान के वश होकर अपनी सत्यार्थ-साधना के काल का भी बलिदान करने को तत्पर हो जाता है। जैसे भूखा पशु भोजन के लिए कान उठाता है कि कहीं से भोजन प्राप्त हो जाए, ऐसे ही मान का भूखा साधु-भेषी भी चौकन्ना रहता है कि मेरी ख्याति का कोई साधन मिल जाए। उसे कोई प्रयोजन नहीं रहता इस बात से कि हमने जिनदीक्षा मोक्ष-तत्त्व की प्राप्ति के लिए स्वानुभूति के लिए ली है कि मानानुभूति के लिए।

34. As the time of man's downfall approaches, his pride is on the increase. When a lamp is about to extinguish its glow increases momentarily, similarly, at the time of death man's breathing hastens. Men with discrimination should remain safe and not be self-destructive. The man with pride sees neither guru nor god. He thinks just of nourishing his pride. For this, he engages in deceitfulness. For the sake of renown, reverence and gain he even parts with his wealth. The ascetic, subjugated by pride, sacrifices his time earmarked for understanding the reality. Just as the animal hungry for food is ever alert for obtaining food, similarly, the ascetic hungry for pride is ever alert for obtaining some means of renown. He forgets that he ordained himself for attaining liberation through soul-realization and not for nourishing his pride.

---

35. अहो आश्चर्य! मान कितनी क्रूरता उत्पन्न करा देता है? साधक भी साधना छोड़कर भगवान् बनने के लक्ष्य को छोड़कर, मान की पुष्टि के लिए जीवन जीता है। ओहो! प्रभावना के नाम पर वह आत्म-प्रभावना छोड़ बैठता है। धर्म-प्रभावना के लिए तो साधक की बाह्य-साधना ही बहुत है, उसके लिए नाना प्रकार के व्यर्थ के प्रपंच की आवश्यकता नहीं है।

35. What a surprise! How cruel the man becomes for the sake of pride! Even the ascetic leaves his goal of becoming god; he starts living for the sake of his pride. For his glory he sacrifices the glory of own-soul. For propagation of the dharma just the external observances of the ascetic are enough; no useless ostentation is required.

---

36. मोक्षमार्गी जिनशासन की प्रभावना तो करता है, परन्तु ख्याति-लाभ पूजा से दूर होकर जो प्रभावना का भाव रखते हैं उन्हें सर्वप्रथम इस बात का चिंतन कर लेना चाहिए कि मेरे भाव स्वदेह प्रचार के तो नहीं आ रहे? यदि आ रहे हैं तो इस इच्छा का निरोध शीघ्र करो, अन्यथा कोरोना महामारी जैसे फैल जाएँगे, फिर उन्हें रोक पाना अत्यंत कठिन कार्य हो जाएगा। आत्मार्थी मुमुक्षु एक-एक समय के आयु कर्म के निषेकों को अर्घवान समझता है, प्रत्येक समय को मोक्ष-तत्त्व की उपलब्धि हेतु आत्म-संस्कार करता है कि वे संस्कार मेरे आत्म प्रदेशों मात्र पर रहें जो कि मुझे मेरा मोक्ष-तत्त्व प्रदान करा दें, मानादि कषाय तो मल है भाव एवं द्रव्य कर्मों का, इसे अब क्या प्राप्त करना जिसने मुझे संसार के दु:खों के मध्य रोककर रखा है।

36. The ascetic treading the path to liberation does propagate the regime of Lord

Jina; still he should first reflect on this question: "I do not wish glory and gain for self but am I thinking of the propagation of own body?" If the answer is in affirmative, curb the tendency immediately or else it will spread like a pandemic, difficult to control. For the ascetic engaged in soul-development, every moment of life is valuable; he uses each moment for soul-purification wishing that such an exercise will lead him to liberation. He thinks that passions, like pride, are the dirt of psychic- and material-karmas; no use hankering after passions which have kept him in midst of worldly-suffering.

---

37. अब तो 'मार्दव-धर्म' का परम-रस विनय-गुण उससे मिलना है। किसी कार्य के लिए उसका मार्ग-द्वार खोजा जाता है, यह बात ध्रुव सत्य है। इस पर ध्यान नहीं जा रहा भव्य-भोले जीवों का। कितना ही पुरुषार्थ कर लो जब-तक जिनालय-देवालय का द्वार नहीं खुलेगा तब-तक देवाधिदेव के दर्शन कैसे होंगे? इसी प्रकार से साधक साधना कितनी ही अधिक कर ले, परन्तु जिसके भीतर पंचपरमेष्ठी, अपने ज्येष्ठ आचार्य-उपाध्याय-मुनि-भगवंतों, ज्ञानी-जनों, धर्मात्माओं की यथा-योग्य विनय भावना नहीं होगी तब-तक मोक्ष तत्त्व की सिद्धि कैसे होगी? क्योंकि मोक्ष का द्वार तो विनय है। मायाचारी रहित, भक्ति सहित जो विनय है वही मोक्ष का द्वार है। भक्ति शून्य, मायाचारी सहित विनय मोक्ष का द्वार नहीं है, इसलिए पुनः पुनः समझो, अपनी भाव-दशा का स्वयं निर्णय करो कि मेरे अंतःकरण में क्या चल रहा है? स्व की परीक्षा स्व से ही कर लें तो बहुत ही अच्छा हो जाएगा।

37. Now meet the essence of supreme modesty: the quality of reverence. It is an established fact that to accomplish any work its gateway is to be found first. Ignorant, potential men are not reflecting on this. In spite of great effort, how can one have the glimpse of Lord Jina unless the door of the temple is first opened? In the same way, in spite of great observances, how can the ascetic who does not have suitable reverence for his senior chief-preceptors, preceptors, ascetics, men of knowledge and followers of the dharma, attain liberation? The gateway for liberation is reverence. Reverence, without deceitfulness and with devotion, is the gateway for liberation. The gateway for liberation is not reverence with deceitfulness and without devotion. Think over it again and again. Evaluate your own dispositions.

उत्तम आर्जव-धर्म

Supreme Straightforwardness

38. सरलता का भाव आर्जव धर्म है। जहाँ माया-परिणामों पर नियंत्रण होता है, वक्रवृत्ति से रहित अवस्था, सहज जीवन जीने की शैली 'आर्जव-धर्म' है। मानव की मानवता के दर्शन वक्र-हृदयी में नहीं होते, मानवता

के दर्शन वहीं होते हैं जहाँ पर भावों में सरलता होती है। सत्यार्थता तो यही है कि सरलता में मानवता ही नहीं, अपितु सरलता में भगवत्ता के ही दर्शन होते हैं।

38. Simplicity in dispositions is supreme straightforwardness. Supreme straightforwardness is the natural lifestyle that has control over deceitfulness and is free from crookedness. Humanity is not found in the one with crookedness in heart; it is found in the one with simplicity in dispositions. The truth is that not only humanity but godliness manifests in the man with simplicity.

---

39. जब तक भाव-पशुता नहीं आती तब तक कोई भी जीव पशु-पर्याय को प्राप्त नहीं होता। जो जीव पल-पल में, पग-पग में मायाचारी के परिणाम रखता है, वह मानव-भेष में पशु ही घूमता है। पशु का वक्र शरीर भावों की वक्रता का कुफल है। अंग-अंग की वक्रता तिर्यंच के क्षण-क्षण के परिणामों की कुटिलता का बोध कराती है। अहो! यह वक्र शरीर सम्प्रति कार्य-रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है, इसका कारण सारा जगत् जान ले कि- "मेरे द्वारा किए गए मायाचारी के परिणाम यह तिर्यंच पर्याय है।" ऐसा विकृत-शरीर आप लोगों को नहीं चाहिए है, तो माया के भावों पर नियंत्रण कर लो। जो मनुष्य पर्याय में विचित्र, विकृत शरीराकृति वाले मिलते हैं वे सब पूर्वकृत मायाचारी का प्रसाद पा रहे हैं। देह-रचना व्यक्ति की भाव-रचना का दर्पण है।

39. So long as the man does not engender animal-instincts he is not bound with the animal state-of-existence. The man who, every instant and at every step, is seized by crooked dispositions is like an animal wandering in form of a man. Crooked body of the animal is the result of its crooked disposition. Each crooked limb of the animal points to its crooked disposition every instant. O man! The crooked body of an animal that you see today teaches you this lesson: "This animal state-of-existence is the result of my crooked dispositions." If you do not want such crooked body, control your crooked dispositions. The deformed and crooked bodies of men whom you happen to meet are the fruit of their past crookedness. The body-form of the man is the mirror of his dispositions.

---

40. मन में कुछ, वचन में कुछ, शरीर की चेष्टा कुछ भिन्न ही करें, यही मायाचारी है। ऐसी त्रि-योग की कुटिल-वृत्ति मायावी जन करते हैं, यद्यपि उन्हें भी बोध रहता है कि मेरी मायाचारी प्रकट हो ही जाती है, फिर भी बिचारे आदत के लाचार अपनी आदत के अनुसार मायाचारी करके, इस लोक में उपहास तथा पर-लोक में दुर्गति के पात्र बनते हैं। जिस पद पर जो पुरुष आसीन है, उसे उस पद के अनुकूल चर्या करना ही चाहिए। यदि व्यक्ति ऐसा नहीं करता है, तो वह मायाचारी के फल को नियत प्राप्त करेगा। धर्म का भेष बनाकर धर्मात्मा कहला रहे हैं, अतः अशुभ-कर्म न करें, क्योंकि कर्म आपको देख रहा है।

40. Crookedness means mutual contradictions in thought, speech and action. Men with crookedness adopt slyness in their threefold activity. Although aware that

crookedness is bound to get revealed, still, the unfortunate men, out of habit, adopt it and subject themselves to ridicule in the present life and to lowly state-of-existence in the next. The conduct of man should be according to his status. If he does not observe this dictum he is bound to reap the fruit of crookedness. After adoption of the mark of the ascetic, do not engage in inauspicious karmas; the karmas are ever watchful.

---

41. आर्जव-धर्म सरलता की ओर जाने का उपदेश देता है। जगति पर वे जीव ही धन्य हैं; जो अपने आपको सरलता की ओर ले जाने का प्रतिक्षण सम्यक्-पुरुषार्थ करते हैं। वे भावी भगवान् हैं; जो सज्जनों के द्वारा वन्दनीय, पूज्यनीय, स्तुत्य हैं। ऐसे सरल-स्वभावी भव्य-जीवों के द्वारा ही तो भू-मण्डल की शोभा है। सर्व-लोक-पूज्यता उनके चरणों में सदाकाल प्रणति निवेदन करती है।

41. The dharma of supreme straightforwardness teaches you to adopt simplicity. Hail those men on earth who make earnest effort to adopt simplicity, every instant. They are the future gods; noble men venerate, worship and adore them. The earth is embellished by such men of simplicity. The quality of universal veneration salutes their feet at all times.

---

42. महान् बनना है तो आज से नहीं; अभी से सरलता में जीना प्रारंभ कर दो। मायाचारी की प्रशंसा भी आपकी निन्दा ही है। अन्य को आपकी सत्यता का ज्ञान नहीं है, परन्तु स्वयं की असत्यता का स्वयं को तो बोध है।

42. If you wish to be great start leading a simple life not from today but now onwards. The praise from a crooked man amounts to your denouncement. Others may not be aware of your truthfulness but certainly you are aware of your deception.

उत्तम शौच-धर्म

Supreme Purity

43. प्रकर्ष प्राप्त लोभ की निर्वृत्ति उत्तम शौच-धर्म है। शौच-धर्म शुचिता से पूरित है। जहाँ पर होगी निर्लोभता वहीं होगा शौच-धर्म। लोभी के हृदय में कभी भी पवित्रता को स्थान नहीं मिलता, लोभी का अंतःकरण सदा अशुचिमय रहता है, भाव विशुद्धता उसके पास दुर्लभ है। सम्पूर्ण पापों का जनक लोभ है। लोभी जीव परिग्रह संज्ञा से ग्रसित होकर खोटे-से-खोटे, छोटे-से-छोटे कार्य करने में संकोच नहीं करता है। कुलीनता तो वहाँ स्वप्न में भी दृष्टव्य नहीं होती, उसके प्रतिक्षण बिलाव परिणाम रहते हैं, जैसे बिलाव के प्रतिक्षण मूषक मारने के परिणाम रहते हैं, चाहे उसे चूहा मिले या न मिले, परन्तु दृष्टि उसकी चूहे पर ही रहती है। ऐसी ही दशा

लोभी की है, चाहे धन मिले अथवा न मिले, पर वह प्रतिक्षण अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही विचार करता है, इसलिए उसे आस्रव-बंध का अभाव नहीं है।

43. Freedom from greed is the supreme purity. Supreme purity involves purification. Supreme purity manifests in absence of greed. In the heart of the greedy, purity does not exist. The heart of the greedy is always sullied; it is extremely difficult for him to have purity of thought. Greed is the originator of all evils. Due to his instinct of possession, the greedy does not shy himself away from even the most evil and lowly tasks. Even in his dream nobility does not appear; every instant his thoughts are like that of the cat scouting the rat, whether present or not. Similarly, the greedy scouts money, whether he gets it or not. He thinks constantly of fulfilling his desires; there is no dearth of influx and bondage of karmas for him.

---

44. निर्लोभता आत्म-शुचिता का मुख्य कारण है। लोक में व्यक्ति जो भी छल-कपट करता है; वह धन-धरती, परिग्रह के पीछे करता है, पर जिसने परिग्रह का ही त्याग कर दिया है उसके लिए अब छल-कपट की आवश्यकता ही क्या? इस रहस्य को ज्ञानी-ज्ञन ही समझते हैं, धन-मूढ़ इस परम-सत्य पर क्या विचार कर पाएँगे? मोही की प्रज्ञा ही कहाँ चलती है?

44. Freedom from greed is the primary means of soul-purification. Wealth and land are the main reasons behind deceitfulness of the man. The man who has renounced all possessions no more resorts to deceitfulness. Only knowledgeable men understand this secret; the men deluded with money cannot think in this fashion. The intellect of the deluded men stops functioning.

उत्तम सत्य-धर्म

Supreme Truthfulness

45. जो वस्तु-स्वभाव जैसा है उसे वैसा ही कहना; न न्यून न अधिक, यह सत्य है। पर को संतापित करने वाले वचनों का त्याग कर स्व-पर हितकारी वचनों को बोलना सत्य धर्म है। नवकोटि से सत्य को बोलना उत्तम सत्य धर्म है। जहाँ सत्य होता है वहीं विजय-यश वर्धमान होता है और जहाँ सत्य नहीं वहाँ न विजय, न यश।

45. To say the nature of a substance as it is, neither less nor more, is truth. To speak what is beneficial to self and others and which does not cause disquiet to others is truthfulness. To utter chaste words in presence of noble persons is supreme truthfulness. Where there is truth victory and glory reign supreme; without truth there is neither victory nor glory.

---

46. कर्ण-प्रिय वचनों को सम्पूर्ण-विश्व स्वीकारता है, पर कर्ण-कटु-वचनों को पशु भी नहीं स्वीकारता, फिर क्या नर क्या देव स्वीकार करेंगे? अहो मित्र! प्रिय बोलो, हितकारी बोलो, सीमित बोलो।

46. The words that are pleasing to the ears are welcomed by the whole world; the words that are harsh to the ears are not welcomed even by animals, what to talk of men and deva. O friend! Let your words be pleasing, beneficial and concise.

---

47. जिसका जीवन सत्य के साथ रहता है उन महानुभावों के साथ विश्व खड़ा रहता है, वहीं असत्यवादी के स्वबंधु भी नहीं होते, तो फिर अन्य कौन होगा? वाणी में माधुर्य, गंभीरता, सरलता, वाक्-पटुता, वचन-माधुर्य-प्रियता जहाँ है उसके समक्ष अमृत भी नीरस है। संसार में एक साथ सहस्त्रों-जीवों को सुखी कोई कर सकता है, तो वह वाणी का मधुर वाक्-रस है। वक्ता का हृदय जैसा होगा, वचनों का प्रयोग वैसा होगा। वचन अमृत का भी काम करते हैं और विष का भी। प्रिय-वाक्यों से समस्त-प्राणी संतोष को प्राप्त होते हैं और कटुक वचनों से सर्व-जगत् खिन्नता को प्राप्त होता है। कोरोना जैसी महामारी तो क्रमशः बढ़ते-बढ़ते मारती है मानव जाति को, परन्तु कटुक-वचन, अरतिकर, भीतकर, सावद्य-वचनों के द्वारा क्रोधी, स्वार्थी, वंचक, सत्य-दया-धर्म शून्य विचार, कर्म-बंध पाप-बंध के विवेक से शून्य अपने अशुभ कर्ण-शूल वचनों से एक साथ कोटि-कोटि भव्यवर पुंडरीकों के हृदय-सरोवर में खिले विशुद्धि के सुमनों को क्षण-मात्र में भस्म कर देता है। ऐसे ज्वलनशील वचनों से एवं तद्-वचनों को बोलने वाले से सदा सावधानी पूर्वक दूरी बनाकर रखना चाहिए।

47. The whole world stands with the man-of-truth and even his kin does not stand with the man-of-untruth. Even nectar loses its taste in front of the speech that has sweetness, depth, naturalness, eloquence, and pleasantness. The sweet juice of speech has the power to make thousands of people happy in one go. The form of speech depends on the heart of the speaker. Speech can act as nectar or poison. Sweet words provide contentment to the living-beings and harsh words provide discontentment. A pandemic like the coronavirus kills men gradually but harsh, unloving, dreadful and evil words of the angry, selfish, deceitful and untruthful man who has no discrimination as to the bondage of evil karmas burn instantly the flowers of purity blossoming in the heart-lakes of millions and millions of worthy and potential *(bhavya)* men. Maintain distance from such inflammable words and the men who speak such words.

---

48. भवन बनाने में कितना द्रव्य; कितना पुरुषार्थ लगता है यह विचार भवन जलाने वाले के अन्दर कहाँ? भावों की विशुद्धि में कितना पुरुषार्थ लगता है, उसकी क्या कीमत है, विशुद्ध-मोक्ष महल कैसे निर्मित होता है, यह अविचारवादी, प्रेक्षा-शून्य, कटुक हास्यवादी को क्या मालूम? जैसे आप अग्नि से दूर रहते हो; उसी प्रकार ऐसे हितकारी वचनों के दरिद्रीयों से सदा दूर रहना चाहिए, यदि स्वहित-भावना स्व के अन्दर है तो। साथ ही

ऐसे दुर्बुद्धियों पर भी करुणा एवं माध्यस्थ भाव-रखना। ऐसे जीवों के अन्दर भी सद्-भावना बनाकर चलना, जो स्वकर्मों से ही पीड़ित हैं, जो सु-स्वर नाम कर्म शून्य तथा दु:स्वर नाम कर्म के उदय से युक्त हैं। उन्हें भी शुभ-कर्मों का उदय प्राप्त हो।

48. The man who goes out to burn a building does not appreciate the amount of money and effort that goes into constructing it. The unthinking, unintelligent and cockeyed man does not appreciate the effort that goes into attaining the purity of thought, its value, and how the pristine edifice of liberation is built. As you keep distance from the fire, similarly, if you want your welfare maintain distance from those poor in kind words. But simultaneously have the disposition of compassion and neutrality for such dumb men. Think good of them as they suffer out of their own karmas; they are rid of the name karma called *'susvara'* (melodious voice) while the name karma called *'duḥsvara'* (unmelodious voice) is in operation.

---

49. प्रभावी पुण्य-पुरुष सहज-ही मित-भोजी एवं मित-भाषी होते हैं। मित-भोजन, मित-भाषण दोनों ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को वर्धमान करते हैं। जो मधुर-गंभीर आगम-सम्मत बोलता है उसे जगत् आस्था से समय निकालकर सुनता है। बहु-प्रलापी, बहु-भोजी दोनों से ही साधु आत्म-रक्षा करते हैं। उनके विचारों का स्व-परिवार में ही सम्मान नहीं रहता, फिर अन्यत्र क्या कहा जाए?

49. Influential and meritorious men, by nature, are thrifty in eating and speaking. Moderation in eating and speaking enhances the personality of a man. The world listens to the man whose words are pleasing, deep and as per the Scripture. The ascetics avert those who are garrulous and eat immoderately. The thoughts of such men do not hold any value in their own family, what to talk of other places!

---

50. जीवन में वे नर धन्य हैं जो सत्य-धर्म, भाषा-समिति, वचन-गुप्ति तथा सत्याणुव्रत का पालन करते हैं। ये सभी व्रत अनर्थों से आत्म-रक्षा कराते हैं। मौन सर्वश्रेष्ठ है जो सज्जनों की सभा में भी सम्मान प्राप्त कराता है।

50. Hail those men who observe truthfulness, regulation in speaking, control of vocal activity, and the minor-vow of desisting from falsehood. All these vows protect the man from misfortune. Silence is golden; it provides the man respect even in the assembly of noble men.

---

51. आवश्यकता पर सीमित भाषण करें। जहाँ आवश्यकता न हो वहाँ मौन-व्रत धारण करें, परन्तु जहाँ पर धर्म का नाश हो रहा हो, क्रियाओं का ध्वंस हो रहा हो, सद्-सिद्धांत का व्यपलाप हो वहाँ पर बिना पूछे भी

बोलना चाहिए, भूतार्थ सत्-सिद्धान्त की रक्षा के लिए, ऐसा आगम आदेश है। आत्म-साधक के लिए मृदु-मधुर-गंभीर, मोक्षमार्ग के पोषक वाक्यों को ही बोलना चाहिए। जिन वचनों से संशय रूप भ्रम का विच्छेद हो वही हितकर वचन बोलो। उन वाक्यों का प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिए; जिन वचनों से संशय भ्रम खड़ा हो तथा लोग विपत्ति में पड़ जाएँ, ऐसा सत्य भी नहीं बोलना।

51. Speak moderately, when necessary. Maintain silence, where required. However, it is ordained in the Scripture that in order to protect the sacred truth one should speak up, even without solicitation, when the dharma and activities are being attacked and the doctrine is being distorted. The man practicing soul-development should speak only soft, pleasing and deep words that lighten up the path to liberation. Use helpful words that clear up the doubts. Never use words that create doubts and confusion. Also, do not speak a truth that may cause trouble to others.

उत्तम संयम-धर्म

Supreme Self-restraint

52. प्राणी एवं इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्ति की निवृत्ति स्वरूप 'संयम-धर्म' है। पृथ्वीकायिक, अग्निकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक इन षट्-कायिक जीवों की रक्षा करना, इन्हें कष्ट नहीं देना, यह छह प्रकार का प्राणी-संयम है। पाँच इन्द्रिय एवं मन इन्हें वश करना, इनके विषयों से उपेक्षा भाव रखना, यह छह प्रकार का इन्द्रिय-संयम है। यह उभय-संयम मोक्षमार्गी को पालन करना अनिवार्य है। यदि दोनों ही प्रकार के संयम में से एक भी छोड़ दिया अथवा स्वीकार ही नहीं किया तो वह व्यक्ति मोक्षमार्ग से च्युत है।

52. Supreme self-restraint is to renounce inauspicious inclinations in respect of the living-beings and the senses. To protect and not to cause pain to the living-beings of six kinds of bodies – earth-bodied, fire-bodied, water-bodied, air-bodied, plant-bodied and *trasa*-bodied – is self-restraint of six kinds in respect of the living-beings. To control the five senses and the mind and to be indifferent to the objects of their enjoyment is self-restraint of six kinds in respect of the senses. This two-fold self-restrain must be followed by the one treading the path to liberation. If even one of these two kinds of self-restrain is left out or not accepted, the man is not on the path to liberation.

---

53. बिना संयम-साधना के नर पशु के तुल्य है। आहार, भय, मैथुन एवं परिग्रह ये चार संज्ञाएँ पशुओं के अन्दर भी हैं; इनमें मानव की कोई विशेषता नहीं है। इन्द्रिय विषयों से विरक्ति अर्थात् इन्द्रियों का निरोध, इच्छाओं का निरोध कर अपने अंत:करण को विशेष विवेक-पूर्वक पवित्र रखना, संयमी जीवन जीना, व्यर्थ के कार्यों से आत्मरक्षा करना, व्रतों में दोष होने पर स्वगुरु के समक्ष आलोचना कर प्रायश्चित्त स्वीकार करना, पुन: वैसा दोष नहीं लगाने की प्रतिज्ञा धारण करना, ये मानव की विशेषता है। यही विशेषता मानव को पशुओं से भिन्न करा देती है। वही मानव एक दिन महा-मानवता को प्राप्त होता है।

53. Without self-restraint the man is like an animal. The four instincts – food, fear, copulation and possession – are present in animals too. To renounce sensual-enjoyment and thereby maintain assiduously the purity of the heart, to lead the life of self-restraint, not to indulge in unnecessary tasks, to atone for transgressions in vows in front of the guru and to make a pledge not to repeat transgressions, are special to man. This speciality makes him distinct from animals. The man with such speciality one day reaches the status of the supreme being.

उत्तम तप-धर्म

Supreme Austerity

54. कर्मक्षय के लिए जो साधना की जाती है वह उत्तम तप धर्म है। बिना तपाए जैसे स्वर्ण शुद्धता को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार से तप किए बिना आत्मा भी शुद्ध परमात्म-पद को प्राप्त नहीं होती। शारीरिक-मानसिक शुद्धि का कारण तप है। अधिक भोजन से शरीर रोग-ग्रसित हो जाता है, कारण पेट में विकृत-मल का संग्रह हो जाता है। उपवास आदि तप के माध्यम से उदर को, पाचन-तंत्रों को भी विश्राम मिलता है जिससे उनकी कार्य क्षमता बढ़ जाती है तथा पेट का मल पित्त के रूप में शरीर से बाहर हो जाता है, इससे शरीर शुद्धि हो जाती है। अधिक इष्ट-गरिष्ठ भोजन से शरीर में धातु वृद्धि हो जाती है; धातु वृद्धि से व्यक्ति के अन्दर विकारी-भाव प्रकट होते हैं जिसके कारण मन में अशुद्धता जन्म लेती है। फिर व्यक्ति अशुभ-भावों के कारण अनेक प्रकार के अशुभ-कर्म करने को तैयार हो जाता है। जिसका परिणाम राज्य-दण्ड से लेकर नरकादि दुर्गतियों में जाना होता है।

54. The observances for destruction of the karmas constitute supreme austerity. As gold does not get to purity without it being subjected to heat, the soul does not get to supreme status without it being subjected to austerity. Austerity is the cause of bodily and mental purity. Overeating causes bodily disease due to accumulation of the faecal matter in stomach. Austerities, like fasting, provide rest to the digestive system enhancing thereby its efficiency, and purify the body by causing excretion of

the faecal matter. Delicious and stimulating food enhances seminal element in the body which causes aberration in thought, and mental perversion. The man then indulges in many kinds of inauspicious activities. The result is that he is subjected to state penalization, and attains evil states of existence, like an infernal being.

---

55. तप करने से मन की विकारी प्रवृत्ति का भी उपशम होता है। मन-शुद्धि विश्व की सबसे बड़ी शुद्धि है, इसलिए अंतरंग एवं बहिरंग तपों को करते रहना चाहिए। उपवास, ऊनोदर आदि बहिरंग तप हैं। प्रायश्चित, विनय आदि अंतरंग तप हैं।

55. Austerities cause subsidence of mental aberrations. Purity of the mind is the finest of purities in the world; continue, therefore, observing internal and external austerities. Fasting, reduced diet, etc., are external austerities. Expiation, reverence, etc., are internal austerities.

उत्तम त्याग-धर्म

Supreme Renunciation

56. निर्ममत्व भाव से युक्त होकर स्व-वस्तु का त्याग करना दान है अथवा संयत के योग्य आहार-औषध-अभय तथा शास्त्र; ये चार प्रकार का दान करना 'त्याग-धर्म' है।

56. To renounce, without infatuation, objects that belong to self, or, to give gift of four kinds – food, medicine, fearlessness and the Scripture – to the men-of-conduct, is supreme renunciation.

---

57. श्रावकों के द्वारा वही वस्तु व्रतियों को देना चाहिए जिससे उनके सुतप-स्वाध्याय में वृद्धि हो। ऐसी वस्तु कभी भी साधकों को प्रदान नहीं करनी चाहिए जो असंयम एवं राग-द्वेष का कारण बने। दान अहं नहीं; दान धर्म है। धर्म विवेक पूर्वक होता है। अविवेक पूर्वक दी वस्तु दान संज्ञा को प्राप्त नहीं होती, इसलिए दाता का कर्तव्य है जो द्रव्य आपके द्वारा दिया गया है उसका उपयोग क्या हो रहा है इसका भी ध्यान रखा जाना चाहिए। उर्वरा भूमि में बोया गया बीज उत्तम फल को देता है तथा ऊसर भूमि में डाला गया बीज व्यर्थ चला जाता है। साधक प्राप्त द्रव्य का उपयोग धर्म-ध्यान, तप, स्वाध्याय, जप में पूर्ण करता है, तो दाता को भी उसका फल प्राप्त होगा। यदि दाता द्वारा प्रदत्त वस्तु का प्रयोग कोई अज्ञ विषय-कषाय, काम-भोग, अभक्ष्य-भक्षण, सुरा-पान जैसे पापों में लगाता है, तो दाता को भी नियम से दुर्गति-भूत फल की प्राप्ति होगी। दान देना ही मात्र उद्देश्य नहीं होना चाहिए, अपितु देय-वस्तु के उपयोग पर पुनः-पुनः ध्यान रखना चाहिए।

57. The householders should give such gift to the ascetic that helps in furthering his austerity and study. Do not gift anything that causes non-restraint or attachment and aversion. Giving of gift is not self-aggrandizement; it is dharma. Dharma requires discrimination. The object given without discrimination is not 'gift'; therefore, the giver of gift should keep track of its use. The seed sown in fertile land gives excellent fruit but when sown in infertile land it goes waste. When the object of gift helps in meditation, austerity, study and prayer of the ascetic, the giver too receives its fruit. If an ignorant recipient uses the object of gift in sensual and passionate indulgence, lustful activities, eating unworthy food and drinking, the giver too receives fruit in form of evil states-of-existence. Giving of gift is not the sole idea; its use has to be carefully watched.

---

58. पात्रदत्ती, समदत्ती, दयादत्ती के भेद से भी दान देखा जाता है। उत्तम-मध्यम-जघन्य के भेद से तीन प्रकार के पात्रों को औषध-शास्त्र-अभय-आहार ये चार प्रकार का दान हमेशा करते रहना चाहिए। निर्दोष-निर्जन्तुक-रसायन, शुद्ध खाने-योग्य, अप्रतिष्ठित प्रत्येक-वनस्पति से युक्त औषधि पात्रों के अस्वस्थ होने पर निरोगता हेतु प्रदान करना चाहिए।

58. Gift is made to the three kinds of recipients: superior, equal and pitiable. Give constantly the gift of four kinds – food, medicine, fearlessness and the Scripture – to the excellent, average and lowly recipients. Unblemished, organism-free and plant-based medicine that is pure and edible should be provided to the sick recipients for maintaining their health.

---

59. रक्त-मांसादि जैविक अशुचिमय-द्रव्य औषधि के रूप में न तो आहार में देना और न ही लेपादि शरीर पर करना, क्योंकि अशुचि-अभक्ष्य द्रव्य अकल्याणकारी हैं। ये दान संज्ञा को प्राप्त नहीं होते। दान सदा शुचिमय द्रव्य का ही दिया जाता है। औषधदान से दाता को सुन्दर, स्वस्थ शरीर की प्राप्ति होती है तथा जिस साधक को दान दिया है उसकी साधना भी स्वस्थ होती है।

59. Medicine that contains impurities like blood, flesh and organism should be given neither as part of food nor as body-massage; substances that are impure and inedible cause unpropitiousness. Such substances do not constitute 'gift'. Gift should only be made of pure substances. To the giver the gift of medicine results in an attractive and healthy body and to the recipient ascetic healthy observances.

---

60. अरहंत-वाणी में उपदिष्ट सात-तत्त्व, नौ पदार्थ, छह द्रव्य, तीन काल, पंचास्तिकाय, षट्-लेश्यादि के कथन करने वाले चतुरनुयोगी ग्रंथों को तीनों पात्रों को प्रदान करना शास्त्र-दान है। शास्त्र दान करने से श्रेष्ठ

बुद्धि की प्राप्ति होती है, इसलिए सदा सद्-पात्रों को शास्त्र-दान करते रहना चाहिए। जो साधक को अध्ययन करना हो; ऐसे शास्त्रों को भेंट करें, अन्य नहीं। आगम-सिद्धांत शास्त्रों का प्रकाशन कराकर स्व-पर श्रुताराधना में सहयोग कर अपने श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षय करें तथा जिनालयों में ग्रंथ विराजमान कर श्रुत-भण्डारों को वर्धमान करें।

60. To present to the three kinds of recipients scriptural texts of four limbs that contain the preaching of Lord Jina in respect of seven realities, nine objects, six substances, five substances-with-bodily-existence, six thought-complexions, etc., constitutes the gift of the Scripture. Gift of the Scripture results in excellent intellect; make such gift to worthy recipients regularly. Gift only those texts that the recipient needs. Get published the scriptural texts containing the doctrine so as to help self and others; this will lead to the destruction of your knowledge-obscuring karmas. Present these to the temples and enrich their libraries.

---

61. धनहीन छात्रों को सहयोग कर अध्ययन कराएँ; उन्हें विद्वान् बनाकर देश-राष्ट्र-समाज एवं संस्कृति का विकास करें। स्वयं की प्रज्ञा पवित्र, विशद है तो आगमानुसार जगत्-कल्याणार्थ स्व-उपयोग विशुद्धि हेतु नवीन ग्रंथों का सृजन करें, परन्तु जिन-वचनों के अनुसार ही कथन करें। भाषा परिवर्तन तो करें, परन्तु सिद्धान्तों को ज्यों-का-त्यों रहने दें। सिद्धान्तों के विरुद्ध जो व्याख्या होगी, वह आगम-शास्त्र संज्ञा को प्राप्त नहीं होगी। आगम तो पूर्वापर विरोध रहित, सिद्धान्तों की ही प्ररूपणा करते हैं। आप्त कथित वाणी, अवरुद्ध-वचन जो प्रवचन है वही मात्र शास्त्र हैं। हिंसादि कर्मों की पुष्टि करने वाली पोथियाँ एवं किताबें आगम-शास्त्र संज्ञा को प्राप्त नहीं होतीं, अपितु प्राणिमात्र के प्रति करुणा की व्याख्या जिसमें है वही 'धर्म-शास्त्र' है।

61. Provide financial help to poor students so that they may study and contribute to the growth of the country, nation, society and tradition. If your own intellect is pure and sound, compose, for the good of the world and for your own purity, fresh texts based solely on the Scripture; the contents should be as per the words of Lord Jina. Let the language be different but the doctrine should not be tampered with. If the contents of your composition deviate from the doctrine it will not be treated as a scriptural text. The scriptural texts describe the doctrine without the fallacy of inconsistency between successive statements. These are based on the words of Lord Jina *(Arhat, Āpta)* and their interpretation. The literature and books that propagate evils, like injury, are not scriptural texts; only those compositions which are compassionate toward all living-beings are scriptural texts.

---

62. जिसमें परस्पर उपकार की शिक्षा हो; मानव हित ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के हित की बात जिसमें हो वही यथार्थ में 'धर्म-ग्रंथ' है। दु:ख-पीड़ा, अग्नि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, नदी-समुद्रादि की बाढ़ से

पीड़ित-जनों के प्रति उपकार करने की शिक्षा, करुणा दान के रूप में जहाँ प्रेरणा दी हो ऐसे सद्-ग्रंथों को ही शास्त्र जानो। कौटिल्य, काम-भावना एवं हिंसा-पोषक पुस्तकें सद्-शास्त्र नाम को प्राप्त नहीं हैं।

62. Scriptural texts incorporate teachings that promote helping one another; these are for the benefit of not only humans but all living-beings. Teachings in scriptural texts include promoting compassionate help to people suffering from distress, blaze, deluge, drought, pandemic, flood, etc. Books promoting cunningness, lust and violence are not scriptural texts.

---

63. सद्-शास्त्र में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक सर्व-जीवों की रक्षा का वर्णन होता है। गृहस्थ व्यर्थ में वनस्पति का भी छेदन न करें। साधु को किसी भी अवस्था में जीवों को किञ्चित् भी पीड़ित करने का आदेश नहीं है; सद्-शास्त्रों में। उन्हीं शास्त्रों का दान करें जिससे विश्व-कल्याणी प्रज्ञा का विकास हो और आतंकी, नक्सली-बुद्धि का विराम हो। राष्ट्र, देश, विश्व के प्राणियों में परस्पर वात्सल्य-भाव हो, धर्म का प्रचार हो।

63. Scriptural texts describe ways to protect all living-beings – earth-bodied, fire-bodied, water-bodied, air-bodied, plant-bodied and *trasa*-bodied. The householder should not pluck, without purpose, even vegetation. The ascetic is supposed to refrain from causing harm to the living-beings under all circumstances. Gift only those texts that help in the development of world-enriching intellect and not the terrorist- or extremist-mindset. The texts should promote mutual affection between living-beings of nations, countries, and the world; let dharma reign supreme.

---

64. प्राणिमात्र पर करुणा, सभी जीवों के प्राणों की रक्षा करना, धर्मात्माओं की सुरक्षा अभय-दान है। शाकाहार, निर्दोष-भोजन प्रदान करना दान है। उत्तम, मध्यम, जघन्य तीनों पात्रों को यथा-योग्य भक्ति पूर्वक दान देने से उत्तम, मध्यम, जघन्य फल की प्राप्ति होती है।

64. Compassionate feeling for all living-beings, protecting lives of all living-beings, and bringing in safety to all those following the dharma constitute the gift of fearlessness. Providing faultless, vegetarian food is gift of food. Giving gift, with appropriate devotion, to the excellent, average and ordinary recipients provides fruits accordingly.

उत्तम आकिंचन्य-धर्म

Supreme Non-attachment

65. शरीरादि पर-पदार्थों से पूर्ण-ममत्व का त्याग करना आकिंचन्य-धर्म है। स्वरूप में स्थिर-बुद्धि, परिग्रह-संज्ञा का विच्छेद, अपरिग्रह-भाव, अनिच्छा भाव में मग्नता, पर-भावों से पूर्ण उपेक्षा भाव की प्राप्ति ही उत्तम-आकिंचन्य धर्म है। शरीर मात्र परिग्रह जहाँ शेष है।

65. To renounce infatuation for all 'other' objects, like the body, etc., is supreme non-attachment. Getting established in own-nature, rid of the instinct of possession, with the disposition of non-attachment, engrossed in the state of without-desire, and with indifference to all external thought, is supreme non-attachment. In this state, the only possession that remains is the body.

उत्तम ब्रह्मचर्य-धर्म

Supreme Celibacy

66. जगत् की स्त्री मात्र में माँ-भगनी (बहिन) भाव का जहाँ परिणाम है, पशु-वृत्ति से शून्य एकमात्र चिद्-ब्रह्म आत्म-स्वरूप में रमण है, एकीभूत चैतन्य-विलास है, पर-भावों से पूर्ण उदास, विकारी भावों से शून्य-दशा, परम ब्रह्मचर्य धर्म है। यही आत्मा की सहज अवस्था की अनुभूति है। अन्य नहीं, अन्यथा नहीं। ऐसे वीतराग-धर्म का जो आश्रय लेता है वही भव्यवर समाधि एवं सिद्धि को प्राप्त कर, पुनर्भव का अभाव कर, कृत्य-कृत्य परमात्मा हो जाता है।

66. Supreme celibacy is seeing mother or sister in every woman, renouncing the animal-instinct, getting engrossed in own pure-soul that manifests as singular consciousness, detached to all thought of the 'other', and rid of imperfections. This is the natural state of the soul – none other and not otherwise. The potential soul that takes refuge in such dharma, marked by the absence of attachment, attains pure meditation and liberation, snaps the cycle of birth and death, and becomes the supreme soul with nothing more to accomplish.

* * *

29

सत्यार्थ-बोध

शिक्षा

Education

1. किसी देश, राज्य, प्रान्त, नगर-गाँव, जनपद, समाज, परिवार, धर्म, सम्प्रदाय का विकास निहित है तो शिक्षा से, जहाँ शिक्षा है, साक्षरता है वहाँ विकासशीलता है। शिक्षा के अभाव में किसी का विकास कर पाना अत्यंत कठिन कार्य है। सहस्त्रों शिक्षित जनों को एक मनुष्य क्षण मात्र में समझा सकता है, परन्तु एक अशिक्षित मूढ़ को सहस्त्रों शिक्षक-शिक्षित समझा पाएँ यह दुर्लभ कार्य है।

1. The development of any country, state, city, society, family, religion or community depends on education; where there is education and literacy there is development. No development takes place without education. A single man can, in an instant, instruct thousands of educated men, but it is very difficult for thousands of educated teachers to instruct an uneducated and deluded man.

---

2. एक ज्ञानी शिक्षित-गुरु का शिष्य बनकर जीना श्रेष्ठ है, सहस्त्रों-मूढ़ अशिक्षित-शिष्यों की अपेक्षा। ज्ञानियों का सम्पर्क यश-ज्ञान-सम्मान वृद्धि का कारण है, परन्तु अज्ञानियों का सम्पर्क मूढ़ता, अपयश, अपमान एवं अज्ञानता का प्रबल कारण है, इसलिए प्रज्ञ-पुरुषों को सदा ज्ञानी-सुशील जनों के साथ रहना चाहिए, अन्यथा एकाकी रहना ही श्रेष्ठ है। शिक्षित व्यक्ति की भाषा, प्रज्ञा एवं विवेक स्वस्थ होते हैं। अशिक्षित की भाषा-बुद्धि विवेक भिन्नता युक्त रहते हैं। शिक्षा के साथ बुद्धि भी प्रशस्त होनी अनिवार्य है। शिक्षा बहुत प्राप्त की, पर बुद्धि एवं विवेकशीलता प्राप्त नहीं कर सका जीव तो अच्छी शिक्षा मात्र प्रमाण-पत्रों का भार होगी, परन्तु समाज, देश, राष्ट्र, विश्व में तो क्या घर में भी उसकी कीमत नहीं होगी। शिक्षा के साथ-साथ व्यवहारिकता की शिक्षा भी समाज के मध्य रहकर लेना चाहिए। प्रत्येक स्थान पर पुस्तकीय-ज्ञान कार्यकारी नहीं होता है, सर्वत्र व्यवहारिक एवं अनुभवज्ञान के साथ पुस्तकीय-ज्ञान कार्यकारी होता है। पुस्तकीय-ज्ञान आधार होता है, पर कार्य तो अनुभवभूत ज्ञान से ही होता है।

2. It is better to live as the disciple of a learned and educated guru than as the guru of thousands of uneducated and deluded disciples. The company of the men-of-knowledge enhances glory, knowledge and esteem while the company of the men-of-ignorance imparts delusion, infamy, dishonour, and ignorance. Intelligent men, therefore, keep the company of knowledgeable and righteous men; they would, otherwise, prefer to remain alone. The language, intellect and discrimination of the educated man are robust; these are inconsistent in case of the uneducated man. Besides education, the intellect too should be sharp. Without intellect and discrimination, a high level of education amounts just to a collection of certificates; these will be of no use even in the home, what to talk of the society, country, nation or world. Besides getting educated, one must learn practicality while living among men. Bookish knowledge alone is not functional everywhere, a combination of practical, experiential and bookish knowledge is. Bookish knowledge is the substratum but the effect takes shape by the experiential knowledge.

---

3. सर्व-प्रथम इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं मेरे शत्रुओं की संख्या तो नहीं बढ़ रही है? सत्य की शिक्षा भी व्यक्ति की बुद्धि देखकर देना चाहिए।

3. First take care that you are not creating many enemies. Preaching of the truth should be according to the intellect of the recipient.

---

4. अज्ञानी रहना श्रेष्ठ है, परन्तु दुष्ट-पुरुष की सेवा करके शिक्षा प्राप्त करना अच्छा नहीं है; शिक्षा के साथ शिष्टता भी प्राप्त होना चाहिए। वह अमृत किस काम का जिसमें जहर मिला हो। दोनों ही मृत्यु के कारण हैं। ज्ञान वहाँ से प्राप्त करो जहाँ ज्ञान का फल अज्ञान की निवृत्ति, ज्ञान का फल चारित्र हो। चारित्रवान की सेवा से प्राप्त ज्ञान विद्या, यश व पूज्यता को प्राप्त कराता है, इसलिए विवेकशील लोग प्रत्येक कार्य को विवेकपूर्वक ही करते हैं। शिष्य प्रायः गुरुस्वभाव शील होते हैं, गुरुजनों की प्रवृत्ति को तो शिष्य स्वीकारते हैं, इसलिए शिक्षक, विद्वान्, नीतिज्ञ, सदाचारी, कुशल, भद्र-स्वभावी होना चाहिए जिससे उसके छात्र (शिष्य) भी तद्गुणशील होकर राष्ट्र-धर्म-समाज-कल्याण की भावना से युक्त होकर यशवान बनें।

4. It is better to remain ignorant rather than to learn from an evil man; learning must accompany nobility. Of what use is nectar mixed with poison? Both will cause death. The fruit of knowledge should be freedom from ignorance and also noble conduct. Knowledge obtained from the man of conduct results in learning, glory and worshipfulness; men of discrimination, therefore, undertake a task only after proper deliberation. The disciples usually adopt the qualities of the guru; the guru should be knowledgeable, statesmanlike, virtuous, adept and gentle in nature so that his

disciples too, after assimilating such qualities and thereby serving the country, religion and society, get to glory.

---

5. शिक्षक का कर्तव्य है कि वह शिष्य को ऐसी शिक्षा दे; जिससे वह नीतिवान-विभूतिवान होकर भी विनयवान रहे। अहंकारी-मानी की नीति-विभूति सब पुण्य का मल मात्र समझो। यदि सद्धर्म-शास्त्र गुरुजनों के प्रति विनयभाव का अभाव है, ऐसा विनयहीन शिष्य गुरु और स्वयं की हँसी का कारण बनता है वहीं सुशील, विनयवान शिष्य स्व-पर के यशवृद्धि में कारण बनता है, इसलिए छात्रों को सद्गुणी बनाने का पुरुषार्थ शिक्षक को प्रतिक्षण करते रहना चाहिए। अहंभाव, पर-निन्दा, आत्मप्रशंसा, काम-भावना, शीघ्र कोप, गुरुजनों का अपमान, लोभ-माया परिणाम - ये सब विद्या एवं बुद्धिक्षय के प्रबल कारण हैं, इन बुराईयों से गुरु एवं छात्रों को सुरक्षित रहना चाहिए। यदि उपरोक्त हेतुओं से छात्र दूर नहीं होगा तो विद्या-वृद्धि असंभव है।

5. The teacher should ensure that his disciple, in spite of being intelligent and celebrated, maintains modesty. Intelligence and glory of the haughty man are just the remainders of his past merit. The disciple without modesty for the dharma, the Scripture and the guru becomes a subject of ridicule by the guru and self; the noble and modest disciple enhances the glory of self and others. The teacher should, therefore, make effort to impart good qualities to his disciples. Haughtiness, censure of others, self-praise, lust, anger, disrespect for the guru, greed and deceitfulness are strong causes of destruction of learning and intellect. The guru as well as the disciples should keep themselves away from such evils in order to enhance their knowledge.

---

6. धर्म एवं राष्ट्र के पोषक छात्र ही होंगे। भावी समाज-राष्ट्र कैसा होगा इसका निर्णय शिक्षक एवं शिक्षा के हाथ में है। देश-धर्म की यदि आप उन्नति चाहते हैं, तो शिक्षा धार्मिक, नीति व न्यायपूर्ण हो, सम्प्रदाय परस्पर सद्भावनापूर्ण हों, उसमें ईर्ष्या भाव का अभाव हो, प्राणिमात्र में करुणाभाव उत्पन्न करने वाली हो, देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत हो।

6. The students of today will carry-forward the dharma and the nation. The teachers and their teaching determine the future state of society and nation. For progress of the country and the dharma, education should develop virtuousness, morality, justice and brotherhood, should rid the student of jealousy, and should generate in him compassion and love for the nation.

---

7. शिक्षक सद्विचार, सदाचारी, व्यसनमुक्त तथा धूम्रपानादि से रहित हो। शिक्षक मर्यादा का पालक हो, अशुभ-भावों से शून्य तथा प्रशस्त भावों को प्रकट करने वाला, महापुरुषों के प्रति आस्थावान तथा प्रत्येक छात्र

के प्रति स्नेहभाव से भरा हो। राष्ट्र के प्रति समर्पित गुरु ही राष्ट्रहित भावना से भरकर शिष्यों को विशिष्ट-शिष्ट विद्या प्रदान करता है।

7. The teacher should be right-thinking, virtuous and free from addictions, like smoking. He should observe restrictions, be rid of evil-thought, have laudable thinking, be trustfulness in great men of the past, and full of affection for each of his students. Only the teacher who is dedicated to the nation can impart education that makes the students patriotic, special and noble.

---

8. सम्पूर्ण शिक्षाओं में अध्यात्म की शिक्षा सर्वोपरि है। जिन्हें अध्यात्म-शिक्षा प्राप्त नहीं हुई वे इह-लोक, पर-लोक अर्थात् उभय लोक में दु:ख को प्राप्त करने वाले हैं। अशान्ति, क्लेश, ईर्ष्या, डाह, असूया, मात्सर्य से अपने को वे कभी रिक्त नहीं कर पाएँगे।

8. Of all education, soul-education is of utmost importance. Those who have not received soul-education get to misery in both lives, the present and the next. They cannot rid themselves of unrest, anxiety, envy, spite, malice and jealousy.

---

9. जगति पर अध्यात्म से भिन्न जो भी शिक्षाएँ हैं, वे मात्र भौतिक इन्द्रिय सुख की ही पोषक हैं; उनका मात्र एक ही उद्देश्य है कि किसी भी प्रकार से हमारे इन्द्रिय-सुखों की पूर्ति होना चाहिए।

9. All kinds of worldly education, other than soul-education, are for the attainment of sensual-pleasures. Their only purpose is to somehow provide sensual-pleasures.

---

10. राजनीति, कूटनीति, व्यापार-नीति, असि-मसि, कृषि, विद्या-वाणिज्य, कलादि जो भी शिक्षाएँ हैं, वे परमार्थ से पूर्ण पृथक् हैं, एकमात्र अध्यात्म ही परमार्थ-विद्या है। जीवन का अंत अध्यात्म-विद्या से होना चाहिए।

10. All education relating to politics, diplomacy, commerce, warfare, writing, agriculture, teaching, art, etc., is far away from soul-education; soul-education is the only supreme education. Life should end with soul-education.

---

11. लोक की कोई भी वस्तु परलोक में साथ नहीं जाएगी, यह ध्रुव सत्य है। हाय-हाय कर व्यक्ति पर-वस्तु को संगृहीत कर सकता है, पर स्थायित्व नहीं दे सकता है। वह मात्र ध्रुव ज्ञायकभाव स्व-बह्म निजवस्तुत्व को ही स्व के साथ रख सकता है। अन्य के अर्जन में जो पापास्रव कर कर्मबंध किया है उसे ही पर-भव में साथ ले जाएगा।

11. It is an eternal truth that no substance of the world goes with the man in his next life. Man can accumulate substances but cannot give these permanence. Only the eternal, own supreme-soul that has knowledge as its nature is his eternal companion. Whatever demerit he earns in accumulating substances goes with him in his next life.

---

12. एकत्व-भाव ही मात्र हमारा है, दूसरा अन्य कोई पर-भाव हमारा नहीं है। इस ध्रुव सत्य को भूल जाना, यही तो अनादि का अज्ञान-भाव है। इस अज्ञान-भाव का त्याग कर स्वात्म-सिद्धि हेतु दया-दम-त्याग-समाधि का आश्रय प्राप्त करो। एकमात्र आत्मधर्म ही साथ देगा। पक्षों, पंथों, सम्प्रदायों का राग अन्य सम्प्रदायों के प्रति द्वेष-बुद्धि तो उत्पन्न करा सकता है, परन्तु आत्म-तत्त्व के सत्य के पास नहीं ले जा पाएगा, इसलिए अध्यात्म-विद्या अमृत का पान करो एवं व्यर्थ के द्वेष-बुद्धि के पंक से बचो।

12. Only the thought, 'I am one only,' belongs to you; rest everything is 'other'. Do not forget this eternal truth; we have ignored this truth from beginningless time. Shed this ignorance and take refuge in compassion, self-restraint, renunciation and meditation for soul-realization. Only the dharma of the soul will serve you. Your attachment for the viewpoints, sects and communities can engender in you aversion for particular groups but cannot take you near the truth of soul-realization. Drink, therefore, the nectar of spiritual-knowledge and save yourself from the mire of aversion.

---

13. यथार्थ में शिक्षा की उन्नति विनयशील को ही होती है; विनयहीन विद्या एवं विद्या के फल को प्राप्त नहीं हो पाते। जीवन में श्रेष्ठ शिक्षावान्, विद्यावान् बनना चाहते हो तो विनयवान् बनो, अहंकार भाव का अभाव करो, शिक्षक के सामने अपनी विज्ञता मत दिखाओ, वहाँ तो अल्पज्ञ बनकर बैठो, तभी शिक्षक अपनी पूर्ण-विद्या आपको दे पाएगा। यदि आप शिक्षक के समक्ष अपनी विशेषता दिखाओगे तो वह फिर शान्त हो जाएगा, क्योंकि दंभी को ज्ञान कहाँ? ज्ञान में दंभ कहाँ? यह बात पूर्ण-सत्य स्वीकारो। इसमें किसी भी प्रकार की शंका न करो।

13. Only the humble disciple expands his learning; the vain disciple gets neither learning nor its fruit. To become well-educated and learned adopt humility and renounce haughtiness. To get the best out of your teacher remain always a learner and do not exhibit your knowledge in front of him. If you exhibit your knowledge in front of your teacher he will refrain from imparting you knowledge. The arrogant cannot have knowledge! No knowledge exists in arrogance! This is the truth.

---

14. शिक्षा एवं शिक्षक के प्रति आस्था, स्वयं को ज्ञानी बनाने की तीव्र-भावना, प्रमाद शून्यता, उत्साह-शक्ति की पूर्णता यदि छात्र के अन्दर कूट-कूटकर भरी है और साथ-ही-साथ क्षयोपशम विशिष्ट है, बुद्धि निर्मल है, स्वभाव शान्त है, विकारी भावों से आत्म-रक्षा करता है तो उसे ज्ञानी बनने से काई भी नहीं रोक सकता है।

14. Presence of the following qualities ensures unfailingly the acquisition of knowledge: trustfulness in education and the teacher, strong desire to become knowledgeable, lack of negligence, enthusiasm, will-power, special destruction-and-subsidence, clear intellect, peaceful disposition and protection of self from vicious thought.

---

15. मातृ-भाषा में छात्र शिक्षा-को शीघ्र ग्रहण करता है, इसलिए सर्वप्रथम-बोध मातृ-भाषा में ही देना चाहिए। स्व-भाषा में विशेषता को प्राप्त कर ले फिर अन्य भाषाओं का अध्ययन होना चाहिए। किसी भी भाषा से दूरी बनाने की बुद्धि या पक्षपात नहीं होना चाहिए। जितनी अधिक भाषाओं के आप ज्ञाता होंगे उतने भाषियों को आप स्वयं अपनी बात अच्छे से बतला सकते हैं, साथ ही दूसरे की बात अच्छे से समझ सकते हैं। विभिन्न भाषाओं के ज्ञान से विभिन्न भाषा-भाषियों से दूरी समाप्त होती है तथा स्व-पर के तत्त्वज्ञान का आयात-निर्यात भी कर सकते हैं। प्रत्येक नागरिक अपने-अपने देश व प्रदेश की भाषा का अनुरागी रहता है और उसे स्वयं की भाषा से ही आनन्द आता है।

15. As it is easy to learn in the mother-tongue, the first level of education should be in mother-tongue only. After acquiring knowledge in the mother-tongue, study other languages. Do not have aversion or bias toward any language. Knowing several languages enables you to communicate with others. You can then exchange knowledge of the reality with others. Every person has affection for the language of his country or region and enjoys using own language.

---

16. वर्तमान में आचार्य प्रवर महावीरकीर्ति जी महाराज ऐसे ज्ञानी हुए जो अट्ठारह भाषाओं के ज्ञाता थे। भगवान् तीर्थंकर देव ऋषभदेव से महावीर स्वामी पर्यन्त सम्पूर्ण तीर्थंकरों की दिव्य-देशना अट्ठारह महाभाषा एवं सात सौ क्षुद्र भाषाओं (लघु भाषाओं) में हुई है, अतः ज्ञानीजन मातृ-भाषा, राष्ट्र-भाषा पर अनुराग तो रखते हैं, रखना ही चाहिए, परन्तु अन्य किसी भाषा का विरोध करके स्वहृदय की उदार-शून्यता का परिचय नहीं देना चाहिए।

16. In the present time, *Ācārya* Mahāvīrakīrti had knowledge of eighteen languages. The divine voice of all *Tīrthaṅkara,* from Lord Riṣabhadeva to Lord Mahāvīra, is heard in eighteen major-languages and seven-hundred minor-languages. Knowledgeable men, no doubt, have affection for their mother-tongue or for the national language but do not exhibit narrow-mindedness by opposing other languages.

---

17. भाषा भावों की अभिव्यक्ति का एक उपाय है, शब्द पुद्गल की एक अवस्था (पर्याय) है। भाषा वाचक है, वक्ता भिन्न है, वाच्यार्थ भिन्न है। जिसके माध्यम से वाच्य एवं वाच्यार्थ का बोध होता है, ऐसी वाचक भाषा होती है। प्रत्येक विद्यार्थी का धर्म है कि वह राष्ट्र-भाषा का मान रखे, पर जितनी भाषाएँ सीख सको सीखो। एकमात्र भारत देश ही तो है जो बहुभाषी है।

17. Language is the means of communication; words are modes *(paryāya)* of the matter *(pudgala)*. Language is the communicator; the speaker is different; the meaning is different. The apprehension of the subject and its meaning is through the language of communication. Every student, while respecting his national language, should try to learn other languages. India is a typical multilingual country.

---

18. भाषाओं में भिन्नता है; रहेगी, परन्तु भाषा की विभिन्नताओं में देशवासियों में परस्पर विभिन्नताएँ खड़ी न हों। अनेकता में एकता, एकता में अनेकता देखने की दृष्टि बनाकर चलें। कोई भी भाषी हो हम-सब जीव द्रव्य हैं, इसलिए सभी सुखी, सदाचारी, अहिंसा धर्म में विश्वास वाले बनकर रहें। अहिंसा ही परमब्रह्म है, वही परम धर्म है। भाषा के विकल्प में विभिन्न प्रान्तों-राष्ट्रों के प्रति राग-द्वेष खड़ा कर हिंसा की वृद्धि न करें। 'जियो और जीने दो' का सूत्र घर-घर प्रेषित करें, तभी हमारी शिक्षा का सम्यक्-उपयोग होगा। मात्र शब्दों को रट लेना ज्ञान नहीं है, तदनुकूल प्रवृत्ति भी करें और जन-सामान्य को भी ऐसी भावना उत्पन्न कराएँ।

18. Differences in languages shall persist but this should not cause differences in men. Look for unity in diversity and diversity in unity. Irrespective of the language, we all are soul-substance; let all souls enjoy happiness, good conduct and faith in the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*. Non-injury is the supreme-truth and the supreme-dharma. Do not cause violence among different regions due to your attachment or aversion for particular languages. Spread the message of 'Live and let live'; this is the right application of education. Memorizing nice words is not knowledge; adopt conduct accordingly and motivate others to do the same.

---

19. शिक्षा सदाचार पूर्ण हो; बिना न्याय-नीति-सदाचार के शिक्षा सुशिक्षा संज्ञा को प्राप्त नहीं होती। सुशिक्षा में नीति-न्याय-सदाचार गर्भित रहता है, जो कि देश-राष्ट्र, समाज के हित में है। सामाजिक उन्नति का स्रोत शिक्षा पर अवलम्बित है। जहाँ की शिक्षा उच्च होगी, वहाँ विचारशीलता भी उच्च होगी। जहाँ विचार उच्च श्रेणी के होंगे, वहाँ सदाचार उच्च श्रेणी का स्वयमेव निर्मित होगा, इसलिए शिक्षा में उच्चता अनिवार्य है। शिक्षा का अर्थ-क्रिया-कारित्व छात्र और शिक्षक के सहारे चलता है अग्निवत, अग्नि को ईंधन मिलता रहेगा वैसे-वैसे अग्नि की लौ बढ़ती जाती है। यदि ईंधन विशाल स्थान को घेरे है तो धीरे-धीरे अग्नि भी विशाल स्थान को घेर लेगी। ईंधन का अभाव हो गया तो अग्नि भी बुझ जाएगी। इसी प्रकार छात्र तथा शिक्षक, गुरु एवं शिष्य के बल पर शिक्षा भी वृद्धि को प्राप्त होती है। यदि गुरु-शिष्य परम्परा का लोप हो गया, छात्र शिक्षक

समाप्त हो गए तो शिक्षा भी प्राय:कर समाप्त हो जाएगी, इसलिए विद्या के प्रसार के लिए जितनी आवश्यकता शिक्षक की होती है उतनी ही आवश्यकता छात्र की भी होती है। गुरु विद्या को तभी पढ़ा पाएगा, बढ़ा पाएगा जब योग्य विनयशील, कुशाग्र, चारित्रवान, प्रमाद-शून्य, श्रमशील, सत्यार्थ-ग्राही शिष्य-समूह होगा। कोई भी विद्यालय चले, परन्तु उसके दो प्राण हैं- छात्र एवं शिक्षक। इन दोनों में से एक का भी अभाव हुआ तो विद्यालय के अर्थ क्रिया-कारकपने का पूर्णतया अभाव हो जाएगा, इस बात को भी अच्छी तरह से समझना चाहिए। परस्पर में गुरु-शिष्य का संयोग सम्बंध है, नहीं तो विद्या विकसित नहीं हो सकती है।

19. Education should promote good conduct; education loses its worth without justice, righteousness and conduct. Worthy education brings about welfare of the country and the society. It is the source of societal-development. High education entails high thinking. High thinking automatically leads to high conduct. The activity and effect of education is based on the student and the teacher; it is like the fire which advances on availability of the fuel. When the fuel is abundant, the fire is huge; without the fuel the fire gets extinguished. On availability of the teacher and the student, the guru and the disciple, education advances; education cannot be imagined without the teacher and the student. The student is as important as the teacher. Teacher can teach only when students who are worthy, humble, bright, virtuous, non-negligent, hard-working and inquisitive for truth are available. Every school has two life-principles, the teacher and the student. It cannot run in absence of any of these two. There is the relationship of union between the two; this relationship is the driving force for development of education.

---

20. शासक, सम्राट्, सेठ, स्वामी, धर्माधिकारी, किसान-व्यापारी, भृत्याचारी कोई भी हो इन सबको गुरु-शिष्य सम्बंध को उज्ज्वल रखना होगा। दोनों का यथायोग्य बहुमान होगा तभी संस्कृति, साहित्य, शिक्षा का विकास दृष्टिगोचर होगा। जहाँ शिक्षा का विकास वहाँ पर सम्पूर्ण शेष विकासों की शोभा है। जगति पर शिक्षा एवं स्वास्थ्य की अहं भूमिका है; शरीर एवं बुद्धि स्वस्थ है जिस देश की उस देश का विकास विराम नहीं ले सकता। संस्कृति भी वहीं विकासशील रहती है जहाँ शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर विचार किया जाता है, इसलिए धर्म-संस्कृति का विकास हो, शिक्षा का प्रचार हो।

20. Everyone, including the ruler, the king, the rich, the owner, the spiritual leader, the farmer, the businessman and the employee, should brighten up the student-teacher relationship. Where both, the teacher and the student, are suitably respected the culture, literature and education see advancement. Advancement of education embellishes all other advancements. Education and health are the key elements; the country in which the body and the intellect are healthy witnesses uninterrupted development. Culture too advances in presence of concern for education and health. Develop the dharma and culture, and spread education.

---

21. पुरुष की शिक्षा के साथ-साथ नारी को भी शिक्षित होना अनिवार्य है, क्योंकि दोनों के संयोग से ही शिक्षित-परिवार बनता है। एक-एक परिवार देश के शिक्षित होंगे तो सम्पूर्ण-देश शिक्षित होगा। व्यापारिक शिक्षा के साथ समझदारी की भी शिक्षा होनी चाहिए। हिताहित विवेक की शिक्षा का होना अति-आवश्यक है, क्योंकि अधिकारों की मात्र शिक्षा देना अधूरापन है, इससे देश में संवेदनाओं का अभाव हो जाएगा। अधिकारों की लड़ाई में हिंसात्मक जीवन-शैली बन जाएगी, दया-करुणा-परोपकार की भावना विलीन हो जाएगी, इसलिए शिक्षा में कर्तव्य को संग्रह करना अनिवार्य है।

21. Education of the female is as important as of the male; both, together, comprise the educated family. Education of each family in a nation will make it an educated nation. Provide education of the intellect along with subjects like commerce. It is essential to provide education that teaches distinction between what is beneficial and what is not; providing education of just the rights is incomplete education as it will lead to loss of the sensibility. The lifestyle, where one fights for the rights without appreciation of the responsibilities, promotes violence, and suppresses the virtues of pity, compassion and beneficence. Responsibilities must be a part of education.

---

22. यदि आपको स्वयं की इच्छाओं की पूर्ति का अधिकार दिखता है, तो साथ में दूसरे की भावनाओं का भी ध्यान रखना आपका कर्तव्य है। यदि सन्तान माता-पिता से हिस्से का अधिकार चाहती है, तो माता-पिता की सेवा करने का बोध भी होना चाहिए। शिष्य गुरु-से अपेक्षा रखता है तो उसे भी अनुशासन का बोध होना चाहिए।

22. While exercising your right to fulfill desires, keep in mind the feelings of others. If the offspring has the right to parents' property, it is his duty to serve them. If the disciple has expectations from the guru, he too is supposed to maintain discipline.

---

23. **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** - परस्पर में उपकार करना जीवों का उपकार है; इस सूत्र पर भी विचार करना चाहिए। परस्पर में एक-दूसरे के प्रति उपकार-भाव तभी आएगा जब आपकी शिक्षा-प्रणाली में कर्तव्य-बोध का भी ध्यान रखा जाएगा, क्योंकि बिना कर्तव्य-बोध के मानव जीवन जीना बहुत ही कठिन है। सम्पूर्ण मानव जीवन परस्पर के आश्रित है और परस्पर के उपकार से ही देश की उन्नति सम्भव है। स्वाश्रय मात्र से जीवन जीने की बात करने वाले देश विकास नहीं कर पाएँगे, न ही उनके सिद्धान्त सम्पूर्ण-देश में लागू हो पाएँगे, क्योंकि एक ही व्यक्ति घर के पूरे कार्य करेगा तो वह बौद्धिक कार्य नहीं कर पाएगा। चार वर्ण-व्यवस्था किसी को हीन करने की नहीं हैं।

23. Think about this aphorism: 'The function of the souls is to help one another.' Without imparting the sense-of-duty through the education system, the thought of mutual help cannot be developed; without the sense-of-duty, it is difficult to lead life.

The whole of humanity is dependent on one another and the progress of the nation, too, depends on mutual help. The man who believes in self-dependence can neither contribute to development of the nation nor it is possible to apply his doctrine to the nation; anyone who does not take help from others will not be able to do much intellectual work. The system of four classes of men is not based on hierarchy.

---

24. स्व-योग्यता से कार्य-प्रणाली की व्यवस्था है। व्यक्ति की सोच, कार्य-शैली अहंता से नहीं होती, अपितु योग्यता से होती है। स्व-योग्यता से कार्य होगा, देश-धर्म-समाज व्यवस्था सुचारु रूप से चलेगी। नवीन विचार रखने वाले को सर्वप्रथम विवेक-पूर्वक स्व-विचारों में आलोचन-प्रेक्षा करना चाहिए। जीवन में एक विषय पर कोई प्रसिद्धि प्राप्त कर ले तो उसे वहीं तक स्वीकारना, उसकी प्रसिद्धि से छले नहीं जाना। अन्य कार्य की योग्यता उसके अन्दर हो कोई नियम नहीं है।

24. The work-system is based on individual-capability. The man's capability, not self-aggrandizement, should determine his thinking and working. The country, dharma and society will function well when work is apportioned on the basis of individual capability. The man trying to put forward an innovative idea should first evaluate it with due discrimination. If someone has attained excellence in one particular area, see his proficiency as limited to that area only. It is not necessary that he has the same proficiency in other areas.

---

25. एक पुरुष श्रेष्ठ-शासक हो सकता है; इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि वह श्रेष्ठ अध्यापक भी हो। विषय समझना; प्रत्येक श्रद्धेय की बातों में आकर अवनति-मार्ग को नहीं चुनना। जो कार्य आपसे बनता है उसे आप करें ओर जो कार्य अन्य से अच्छे से बनता है वह उससे ही कराएँ। अपना समय अपने कार्य को विशेष करने में लगाएँ। यह बहुत ही गंभीरता से विचारने का विषय है।

25. A good administrator need not be a good teacher. The idea is not to get misled by man's proficiency in any particular field. Do what you do best; let others do what they do best. Use your time to do what you do best. Think-through it seriously.

---

26. स्वावलम्बी जिन विषयों पर हो सकते हैं वहाँ पर ही स्वावलम्बी बनें। सेना को चरखा कातने को नहीं दिया जा सकता है। कथावाचक हो या स्वात्म-ध्यानी योगी सभी को स्वयोग्यता का ध्यान रखते हुए कार्य करना चाहिए। अपनी-अपनी क्षमता को देखो, स्वक्षयोपशम की योग्यता से ही जीव कार्य करता है, इस सिद्धांत का ज्ञान होना अनिवार्य है। श्रेष्ठ शिक्षा के लिए धर्म-ग्रन्थों का भी गंभीर अध्ययन होना चाहिए, जिससे समाज में साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध न हो। साम्य-भाव, सद्भावना का पाठ पढ़ना ही हितकारी है।

26. Be self-dependent only in areas that deserve self-dependence. The army cannot be asked to spin cloth. Whether the story-teller or the meditating *yogī*, all must perform work based on own capability. Watch your own capability and destruction-cum-subsidence; these are instrumental to work-performance. For good education, study deeply the Scripture. This will rid society of the stench of communalism. It is beneficial to learn equanimity and brotherhood.

---

27. भगवान ऋषभदेव ने अपने राज्य काल में सर्वप्रथम विश्व में नारी-शिक्षा प्रारंभ की। अपनी दोनों बेटियों को स्वयं ही विद्याभ्यास कराया। ब्राह्मी को अक्षर-विद्या एवं सुंदरी को अंक-विद्या की शिक्षा दी। सम्प्रति जो ब्राह्मी-लिपि है वह तीर्थंकर ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी के नाम पर विश्व-विख्यात है।

27. Lord Riṣabhadeva, during his kingship, was the first in the world to start education of the female. He himself taught his two daughters. He taught the skill of writing to Brāhmī and the skill of numbers to Sundarī. The Brāhmī-script that is well-know today derives its name from Brāhmī, daughter of Riṣabhadeva.

---

28. एक पाटे से गेहूँ नहीं पिसता है, उसके लिए दो पाटे चाहिए। उसी प्रकार से नारी एवं नर दोनों शिक्षित होंगे तभी देशोन्नति कर सकेगा। ज्ञान विकास से किसी के क्षेत्र का हनन नहीं किया जा सकता। सरस्वती सदा सदाचारी पर ही प्रसन्न रहती है। यदि विश्व में विद्या के स्थान को प्राप्त करने के भाव हैं, तो अपने चारित्र को सर्वप्रथम उज्ज्वल करो। किसी भी देश की उन्नति-अवनति का मापदण्ड धनबल, जनबल, सैन्यबल, अस्त्र-शस्त्र बल के साथ सबसे महत्त्वपूर्ण कोई है तो वह है प्रज्ञाबल, बुद्धि-बल, शिक्षा बल। जो देश शिक्षित है उसका विकास करना सरल है। किसी भी देश पर किसी भी राष्ट्र को विजय प्राप्त करने की इच्छा है तो सर्वप्रथम गुप्तचरों से वहाँ के राजा, आमात्य, राज-पुरोहित, राजसेठ तथा सर्वप्रजाजन का बुद्धि विकास कैसा है यह ज्ञान कर लेना चाहिए। जहाँ पर बौद्धिक विकास प्रबल है वहाँ पर सन्धि, साम्य-दामनीति से कार्य करना चाहिए, भेद और दण्ड-नीति वहाँ कार्यकारी नहीं हो सकती, क्योंकि बुद्धिमानों की शत्रुता नहीं मित्रता ही श्रेष्ठ है।

28. For grinding grain, two stones, not one, are essential. In the same way, for development of the nation both male and female must be educated. Education should pervade all regions. Goddess of Learning is pleased with virtuous men. First brighten up your conduct if you wish to acquire learning. The important factors to measure the progress of a nation are learning, intelligence and education of its citizens, besides, of course, wealth, population, army and weaponry. It is easy for an educated nation to achieve progress. If you wish to defeat an enemy-nation, first get information on intellectual development of its king, ministers, chief-priests, courtiers and citizens. If its intellectual development is strong, adopt the policy of

truce, softness and gift; the policy of division and sanction will not work. Make friends, not enemy, with the intelligent opponent.

---

29. शिष्ट-शिक्षक को कारणवश अपना अल्प-अहित स्वीकार कर लेना चाहिए, परन्तु राष्ट्र निर्माण में अपनी अहं-भूमिका निभाना चाहिए। छात्रों को किसी भी दशा में विपरीत-शिक्षा नहीं देना चाहिए। छात्र गुणवृद्धि, गुण ग्राहीपना कैसे प्राप्त करें; ऐसा शिक्षक का प्रतिक्षण प्रयास होना चाहिए, क्योंकि शिक्षा की अवनति ही राष्ट्र की अवनति है और शिक्षा की उन्नति ही राष्ट्रोन्नति है। वही शिक्षा श्रेष्ठ है; जिसमें मछली मारने की नहीं, अपितु मछली आदि जीवों की प्राण-रक्षा की शिक्षा दी जाय। पशु-पक्षियों के प्राण-हरण की नहीं, अपितु उन्हें दाना-पानी-भोजन देना सिखाया जावे। बकरी, मुर्गी, मछली की खेती नहीं उनकी रक्षा करो, उन मूक-प्राणियों की हत्या कर धन कमाना पाप है। प्राणियों की रक्षा का भाव हो, यही सम्यक्-शिक्षा है।

29. The noble teacher should accept death if occasion demands, but make significant contribution to nation-building. Never impart wrong education to the disciples. Try to teach them virtue-enhancement and virtue-acquisition; the fall of education is the fall of nation and the rise of education is the rise of nation. Education that teaches not how to kill the fish and other animals but how to save their life and feed them, is laudable. Do not teach breeding animals like goat, hen and fish for commerce as to earn money out of killing mute animals is evil. Right education consists in saving the living-beings.

---

30. जो शिक्षक अपने जीवन का सर्वस्व विद्यादान में लगाने का लक्ष्य रखेगा वही उत्तम विद्यादान कर पाएगा। शिक्षक को स्वयं ही स्वाध्यायशील, विद्याभ्यासी, विनम्र, अत्यंत-आकर्षक, वाणी में माधुर्यवान, मिश्री सा मधुर, जिसके अन्दर प्रतिक्षण विद्या-रसिकता स्रवित होती हो। शिक्षक का यशस्वी-भाल, ललाट, चमकती आँखें छात्रों को स्वत: विद्या-ग्रहण के लिए प्रेरित करें। जैसे गाय के थनों में भरा दुग्ध बछड़े को दूर से भी बुला लेता है, ऐसे ही शिक्षक का विद्या-प्रिय छात्रों पर अकृत्रिम-स्नेह स्व-सन्तानवत होना चाहिए। शिक्षक के लिए छात्र भी संस्कारभूत सन्तान है। विद्यामाता से एक शिक्षक विशाल-परिवार खड़ा कर लेता है, वह इतना बड़ा परिवार जन्म देकर नहीं कर सकता। प्रज्ञा-प्रदाता के नाम से गुरु का नाम युगों-युगों तक चलता है।

30. Only the teacher who dedicates his everything to teaching can become a laudable teacher. He should be an avid reader, a learner, and be modest, attractive, sweet and pleasing; the juice of learning should flow incessantly in him. The splendour of his countenance and the brightness in his eyes should prompt students to approach him for learning. As the milk-filled udder of the cow attracts the calf from a distance, the teacher should have the same kind of natural love for his disciples, who are like his offsprings. As the teacher brings up his disciples through

teaching, they are like his offsprings. The teacher thus raises a huge family not by giving birth but by imparting education. His name lives for a very long time.

---

31. रहस्यमय ज्ञान लेने एवं देने के लिए वातावरण भी रहस्यमय बनाना चाहिए। पाठक की मुख-मुद्रा भी रहस्यमय ही हो, सामान्य मुद्रा में रहस्यमय-विद्या का उद्‌घाटन अर्घवान् नहीं रहता, इसलिए प्रतिक्षण विषयानुकूल-मुद्रा होना अनिवार्य है। कच्ची केंरी गूढ़-पाल में पककर ही तो आम बनती है, खुले आकाश में नहीं। विद्या-मंत्र मन्त्रणा-गूढ़ता में ही सिद्ध होती है, खुलेपन में नहीं।

31. Covert knowledge should be imparted only in a masked environment. The facial expression of the reader should be secretive; normal expression makes covert knowledge valueless. To ripen the green mango it has to be wrapped and placed in a covered environment, not in the open. Similarly, covert knowledge of the mantras, etc., is attained closed-door, not in the open.

---

32. उच्च-कोटि के साधक के समान ही शिक्षक की साधना होनी चाहिए। परमेष्ठी की आराधना; शिष्य को गुरुता प्रदान करने के लिए शिक्षक को अवश्य ही करना चाहिए। मंगल-ध्वनि, मंगल-पाठ जीवन के मंगल के लिए होता है। विद्या की सिद्धि भी विघ्न रहित मंगलमय हो। पाप के गालन के लिए मंगलाचरण होना चाहिए। नास्तिकता का परिहार, आस्तिकता की पहचान, शिष्टाचार का पालन हो इस भावना से सर्वप्रथम विद्याभ्यास करने एवं कराने के पूर्व मंगलाचरण अनिवार्य रूप से करें। गुरु की प्रवृत्ति के अनुसार प्राय:कर शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है इसलिए गुरु भूल न करें, क्योंकि सम्पूर्ण साहित्य-संस्कृति, देश की रक्षा गुरु के हाथ में है। हाथ, हाथ से नहीं चलते, हाथ मानसिकता से चलते हैं। हाथों से अग्नि लगाई भी जा सकती है और बुझाई भी जा सकती है। व्यक्ति का सोच जैसा रहेगा वैसा ही वह कार्य करता है। प्रशस्त विचारवान व्यक्ति प्रशस्त ही कार्य करेगा और कराएगा।

32. The conduct of the teacher should be like that of a worthy ascetic. To impart depth of learning to his disciples, the teacher must adore the Supreme Beings. Recitation of the benediction is for attaining propitiousness in life. It helps attaining knowledge without impediment and in dissolving evils. It is necessary before every session of the learning process as it perishes atheism, corroborates theism, and develops manners. Since the students act according to their teacher, the teacher should not commit mistakes; the whole of literature, culture and security of the nation are in his hands. Hands operate according to the instruction received from the mind; hands can cause the fire or extinguish the fire. The man with excellent thinking engages only in excellent work.

---

33. शिक्षा प्राप्ति के लिए व्यक्ति को अपने आपको बाल्य समझना चाहिए। बाल्य-काल ज्ञान प्राप्ति का सुन्दर-स्वर्णमय जीवन है। बाल्य-काल स्वच्छ, निष्कषाय, भद्रतापूर्ण, चिन्तामुक्त जीवन है, न घर बसाने की चिन्ता, न घर चलाने की चिन्ता। समस्त दायित्व माता-पिता के हैं, सम्पूर्ण विकल्प-चिन्ताएँ जनक-जननी को हैं। बाल्य-जीवन साधुतावत है। चिन्ता शून्यता चिन्तन का कारण है। बालकों एवं साधकों को विषय का बोध शीघ्र हो जाता है।

33. For acquisition of knowledge, students should act child-like. Childhood is the golden period to acquire knowledge. Childhood is pristine, without-passions, full-of-gentleness, and without-worry; no worry either of raising or maintaining the family. All responsibilities rest in parents. This period has marks of asceticism. Being without-worry leads to refection. Both, children and ascetics, learn fast.

---

34. चिन्ता से ज्ञान का नाश, शारीरिक बल का क्षय, बुद्धि का ह्रास होता है तथा व्याधि उत्पन्न होती है। चिन्ता सर्व-नाश का कारण है। यदि ज्ञानी बनने की भावना है तो बालवत सर्व-चिन्ताओं का विसर्जन कर ज्ञानाभ्यास करो। ज्ञान के बिना नर जीवन पशु-तुल्य है।

34. Worry causes destruction of knowledge, bodily-strength and intellect, and opens the door for disease. In fact, worry is the cause of total destruction. If you wish to become knowledgeable, shed, like a child, all worries, and concentrate on study. Without knowledge, the man is like an animal.

---

35. गीली-मिट्टी, नवीन-पौध और बाल्य-जीवन ये तीनों विकासशील हैं; योग्यता से भरे हैं, परन्तु प्रकट कराने वाला चाहिए। जो प्रकट करा सके वह भी पूर्ण-योग्य होना चाहिए, जैसे मिट्टी को आकार देने के लिए या मूर्ति आदि बनाने के लिए कुम्भकार के अन्दर योग्यता होना चाहिए। पौधे को कैसे कहाँ-कब मोड़ना है यह वानवान् (माली) में योग्यता होना चाहिए तथा बालकों को कैसे मोड़ना है, किस प्रकार का बनाना है, यह योग्यता माता-पिता-मित्र एवं शिक्षक में चाहिए। जो बाल्य-जीवन में विकास कर लेते हैं, वही जीवन उनके अन्तिम विकास का कारण बनता है। जीवन निर्माण का सही पुरुषार्थ तो यथार्थ में बाल्यावस्था में ही होता है, अन्य अवस्थाएँ तो उस पुरुषार्थ के सुख-भोग की होती हैं।

35. The wet soil, the sapling and the child are all in a state of development that is full of potential; what is needed is the right person to mould these. The potter must have the skill to mould the wet soil into an idol or anything else. The gardener should know how to mould the sapling and the parents and the teachers should know how to mould the child. The moulding that a child receives is the source of his future development. In fact, the right effort of moulding takes place during childhood; adulthood is for the enjoyment of the fruit of that effort.

---

36. सम्पूर्ण-विश्व को जन्म घुट्टी के रूप में परोपकार की भावना पिलाने की शिक्षा देने की आवश्यकता है, यही शिक्षा कोरोना जैसी विश्व-व्यापी महामारी की विपत्ति के काल में काम आने वाली है। जैसे सम्प्रति सर्व-विश्व स्वयोग्यतानुसार परस्पर में एक-दूसरे का उपकार करते दिख रहे हैं, जहाँ पंथ-सम्प्रदाय एवं धर्म विशेष का भेद भुलाकर मानव-मानव की सेवा में संलग्न है। भावी काल में भी; भविष्य की पीढ़ी को बोध रहे, इसलिए शिक्षा-प्रणाली में परोपकार की भावना का प्रचार एवं विकास होना चाहिए। पाठ्यक्रम में परोपकार का स्वतंत्र पाठ होना चाहिए, वह भी धर्म का एक अंग है। करुणा, वात्सल्य, दया धर्म का अंग है और उसका पालन करना मानव का कर्तव्य है।

36. Every new-born infant in the world must be given, as the traditional first-drink, the medicine of helpfulness; this medicine will become handy in times when the world suffers from calamities like a pandemic. Today the whole world has forgotten differences of sect, community and religion, and is engaged in helping one another, according to capability of the self. So that people in future too acquire this quality, the education system must put emphasis on propagation and development of the quality of helpfulness. Helpfulness should be an independent part of the curriculum as it too is a limb of the dharma. Compassion, affection and pity are parts of the dharma and it is the duty of every individual to observe these.

---

37. विश्व की सम्पूर्ण-शिक्षा के फल का भोक्ता पुण्यात्मा जीव ही होता है। शिक्षा प्राप्त भी कर ली, परन्तु पुण्य-क्षीण है तो पुण्यात्मा धनपति के घर भृत्यकर्म करना होगा, अनुचर संज्ञा को ही प्राप्त कर पाएगा। पुण्यात्मा जीव की शिक्षा ऐसे उन्नति दिलाती है जैसे अंक पर शून्य, अंक की शून्य कीमत बढ़ाता है। पुण्य-हीन की शिक्षा ऐसी है जैसे शून्य-पर-शून्य। क्या प्राप्त होगा? शून्य बराबर शून्य, इसलिए विवेक का प्रयोग करो। शिक्षा कर्म के साथ विद्यार्थी जीवन में ही पुण्य-कर्म भी करते रहना चाहिए तथा अभक्ष्य-भक्षण, अण्डा-मांस-मदिरा सेवन, चोरी, परस्त्री गमन, शिकार खेलना, वेश्या-सेवन, जुआ आदि व्यसनों से पूर्ण रूप से दूर रहना चाहिए। सातों ही व्यसन महापाप हैं, पुण्यनाश के प्रबल कारण हैं, कुलीनता के घातक, संसार में दु:ख एवं अपयश को दिलाने वाले हैं।

37. The man-of-merit *(puṇyātmā)* enjoys the fruit of education in the world. Without merit, even an educated man has to work for a wealthy man-of-merit; after all, he remains an employee. The education of the man-of-merit helps in his advancement, like a zero added after a counting number. The education of the man-without-merit is useless, like a zero added to a standalone zero. Use your discretion. During your education as a student, concentrate also on merit and remain aloof from addictions like consuming non-edibles including egg, meat and wine, theft, promiscuity, hunting, visiting a harlot, and gambling. All seven addictions are great evils; these are destroyers of merit and nobility, and engender misery and ignominy.

---

38. कुत्सित-शिक्षा एवं कुत्सित-शिक्षक दोनों धर्म-देश एवं समाज के घातक अंग हैं। आज तक जो भी आतंक लोक में उत्पन्न हुआ है वह कुत्सित-शिक्षा एवं कुत्सित-शिक्षकों के द्वारा हुआ है। बाल तथा युवाओं की बुद्धि को भ्रमित कर उन्हें स्वर्ग एवं स्वर्ग की अप्सराओं का राग उत्पन्न कराकर, परमात्मा के नाम पर, परमात्मा तुम्हें सब प्रकार के सुख देगा, इसलिए जगत् को लूटो-मारो, अपने मत की वृद्धि करो, जीवों की बलि दो, सुरा-पान करो, सुन्दरियों के साथ सुख भोगो, इससे परगति में सब मिलेगा। ऐसा भ्रम फैलाकर, परस्पर के प्रेम-वात्सल्य का नाश कराकर, एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या की आग लगाकर स्वार्थ-सिद्धि में लगे लोग भोले जीवों को ठग रहे हैं।

38. Both, evil education and evil teachers, destroy dharma, country and society. All terrorism in the world is due to evil education and evil teachers. In children and youth attraction for celestial damsels is generated and they are deluded in the name of god; they are taught that god shall provide them with all kinds of pleasures in the next life and, therefore, here, in this world, rob and kill, sacrifice living-beings, engage in boozing and making love, and spread this word of god. This way, to meet own selfish ends, mutual affection and brotherhood is destroyed, the fire of hatred is kindled, and ignorant people are deluded.

---

39. हिंसादि अनाचार से स्वर्ग व स्वर्ग के सुख नहीं मिलते, अपितु नरक के महादु:ख प्राप्त होते हैं। वहाँ अंग-अंग काट-काट कर मुख में भरे जाते हैं। जो पर की स्त्री एवं बाल-कन्याओं के शील भंग करते हैं, उन नर-धमों को नरकों में लोह की गर्मागर्म रक्त पुतलकाओं से चिपकाया जाता है, ऐसे घोर-घोर दु:खों को जीव नरकों में प्राप्त करते हैं। वहाँ न खोटी-शिक्षा और न ही खोटे वंचक छली शिक्षक बचाने जायेंगे, इसलिए मेरे बाल एवं युवा हृदयो! सत्य को समझो, अपनी वर्तमान एवं भविष्य की सुख-सम्पदा का नाश मत करो।

39. Evil behaviour, like killing others, does not provide heavenly-pleasures; it provides grave sufferings of the hell. In the hell, your limbs are severed and shoved in your mouth. Those lowly men who rape innocent girls here are stuck to female-effigies made of red-hot iron. When evil men experience such great suffering in the hell, neither evil education nor evil teachers come to their rescue. O tender-hearted children and youth! Understand the truth and do not destroy your present and future wealth of happiness.

---

40. एकमात्र अहिंसा परमब्रह्म ही लोक में शरणभूत है अन्य कोई शरण नहीं। सम्पूर्ण खोटी शिक्षाएँ एवं शिक्षक आत्मा (जीव) के शत्रु हैं, इन शत्रुओं से स्व रक्षा करो। सत्य का बोध प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को होता है। ऐसा कोई संज्ञी जाग्रत-प्राणी नहीं जिसे अपने किए का बोध न हो। एक बार स्वयं के हृदय से शान्त-भाव से निर्णय लें तब आपका स्वयं का हृदय बोल देगा कि आप जो भी सोच रहे हैं, पढ़ रहे हैं, कर रहे हैं, वह अच्छा है या बुरा? जगति पर ऐसा कोई भी मानव नहीं जिसे बुरे और अच्छे का बोध न हो। चाण्डाल भी हिंसा-को-हिंसा ही

समझता है। वह भी हिंसा में अहिंसा के दर्शन नहीं करता, परन्तु कुछ जीव कर्म के प्रेरित होते हैं, कुछ स्वयं की आदत के लाचार, कुछ कुसंगति के सताए जो कुपथगामी जनों के साथ प्राप्त कुशिक्षा से प्रभावित होकर अशुभ कार्यों को करने में तत्पर रहते हैं। समझो, जब कुकृत्यों का फल पापोदय रूप में आएगा तब अन्य कोई भी खोटी शिक्षा देने वाले आपका साथ नहीं दे पाएँगे। इस बात का स्वयं ही विचार करो। अन्याश्रित जीना क्या कोई समझदारी का जीवन है? अरे मित्र! स्वयं की कषाय के अनुरूप कार्य करना, पूर्ण नासमझी है, फिर दूसरे के कहे अनुसार चलना तो घोर नासमझी है ही।

40. The only refuge in this world is the supreme truth of non-injury *(ahiṃsā)*. All evil education and evil teachers are enemies of the soul; save self from these enemies. The heart of every individual beckons the truth. There is no living-being with mind who does not understand what he is doing. Ask your heart, just once and with an unruffled mind, whether what you are thinking, reading and doing is good or bad. No man in this world is unaware of what is good and what is bad. Even the lowly man engaged in killing others knows in his heart that killing others is sinful. Some are forced to engage in sinful activities due to their karmas, some due to their habits, some due to their bad company and some due to their evil-education. Remember and reflect; while you will suffer misery due to fruition of karmas, those who taught you such evil activities will not come to your rescue. Is it wise to live a life of dependence? O friend! To act according to own-passions is grossly foolish; to act according to what others say is certainly grave foolishness.

---

41. जगति पर छली-जन सर्वप्रथम बाल एवं युवा-युवतियों की बुद्धि को ही तो छलते हैं, बुद्धि भ्रमित कर फिर उनसे और उनके साथ अशुभ करते-करवाते हैं। स्व-प्रज्ञा को जाग्रत करो, कपटी-लोगों का राग छोड़ो। ये जीव स्वयं तो अशुभ कर्मोदय से दुर्गति में जाएँगे ही और आपको अशुभ-कर्म कराकर साथ में दुर्गतियों में ले जाएँगे। मित्रो! एक-क्षण शान्त-भावों से बैठकर इस बात का चिन्तन करो कि हम क्यों अपयश का जीवन जीकर नरक जाएँ? हम भी तो सुशिक्षा पाकर श्रेष्ठ-नागरिक बनकर महाजनों में वरिष्ठता एवं यश के साथ जिएँ, सुकृत्य करके सद्गति को प्राप्त करें। मरण के उपरान्त भी लोगों के हृदय में नाम एवं यश जीवित रहे। अहो मेरे मित्रो! कुपथ-गमन से आत्म-रक्षा करो, सद्-नागरिक बनकर देश-धर्म-समाज का उद्धार करो।

41. Crooked men first corrupt the minds of children and youth; they themselves engage in inauspicious acts and prompt children and youth to do the same. Awaken own intellect; leave attraction for crooked men. Such men are bound to attain an evil state-of-existence where they will take you along. Friends! Just think for a moment; why should you live life of disrepute and then go to hell? Get fine education, become a good citizen, live life of respect among the men of renown and finally attain a worthy state-of-existence. Let your name and glory be alive in the hearts of people even after

death. O my friends! Save yourself from evil path and contribute to development of your nation, dharma and society by becoming a worthy citizen.

---

42. तीर्थंकर, चक्री, कामदेव, बलभद्र, नारायणादि महापुरुषों ने इस भूतल पर जन्म लेकर जगत्-कल्याण की पवित्र-शिक्षा प्रदान की, सबके हित, सर्व-विकास की बात की। 'जियो और जीने दो', किसी भी जीव का अहित न हो, क्योंकि सबके हित एवं विकास में ही देश-धर्म की उन्नति निहित है। सभ्य, विकासशील देश की संस्कृति सभ्य एवं विकास बनाने के लिए वहाँ की राजनीति एवं शिक्षा भी सभ्य तथा विकासशील होना अनिवार्य है। अशिक्षा तथा असभ्यता किसी भी देश-धर्म की उन्नति का कारण नहीं बन सकती है, इस बात का इतिहास साक्षी है। जहाँ-जहाँ, जब-जब असभ्यता अशिक्षा ने अपना राज्य स्थापित किया वहाँ-वहाँ तब-तब विनाश हुआ। प्रजा पर प्रेम-से जो साम्राज्य की सीमा वृद्धिंगत करता है; उसी की वृद्धि दीर्घ-कालीन होती है। असभ्यों का काल अल्प होता है, अशिक्षितों का समय प्रारम्भ होते ही नष्ट हो जाता है अथवा प्रारम्भ ही नहीं हो पाता है।

42. By taking birth on this earth, great men, like *Tīrthaṅkara, cakravartī, kāmadeva, balabhadra* and *nārāyaṇa*, have taught us the pious lesson of world well-being, welfare of all and development of all. They taught us 'live and let live' and 'do not harm any living-being', as the progress of the nation and the dharma depends on well-being and development of all. For a civil and developed country, it is essential that its politics and education should be civil and progressive. History corroborates this fact. Wherever and whenever incivility and illiteracy dominated, the country got destroyed. Expansionism through love of citizens is enduring. Life of the uncivil man is short; life of the illiterate man ends at the beginning or it does not begin.

---

43. सभ्यता शिक्षा के साथ रहती है; सुगन्धित पुष्पवत्। पुष्प सर्व-नगर को सुवासित कर देता है, इसलिए प्रत्येक राजनेताओं, अभिनेताओं के साथ समाजजनों सहित परम्पराचार्यों, धर्माचार्यों का कर्तव्य है कि वे सभ्यता-सुशिक्षा पर बल देकर भारत की विश्व-गुरुता की रक्षा करें। पूज्यजन भी यदि पक्षपात के राग से धर्मनीति एवं न्याय के विरुद्ध शिक्षा दें तो उस शिक्षा में मौन रखना चाहिए, क्योंकि पूज्यों का अविनय भी न हो पाए और साथ ही न्याय एवं धर्म के विरुद्ध कार्य भी न हो। न्याय एवं धर्म की रक्षा न राग-बुद्धि से हो सकती है, न द्वेष-बुद्धि से, राग में भी सत्य छूट जाता है और द्वेष में भी सत्य दूर रह जाता है। राग-द्वेष के मध्य जिसके परिणाम संलग्न हैं, उन व्यक्तियों को करनी-अकरनी, हेय-उपादेय का विवेक नहीं रहता। राग में रागियों का हित चाहता है; कुछ भी हो जाए। द्वेष में द्वेषियों का अहित चाहता है, लोक में कुछ भी हो जाए, अन्य उसे कोई प्रयोजन नहीं है। रागी-द्वेषी गुरुजन भी क्यों न हों; उनकी बात स्वीकार न कर, स्व-पर हितकारी शिक्षा को स्वीकार कर जीना। सत्यपूर्ण जीवन जीने वाले के मरण-उपरांत भी उसका नाम लोक के हृदयों में जीवन्त रहता है।

43. Civility and education go together, like flower and its fragrance. Every politician, actor, citizen and religious leader has the duty to save India's image of the world-guru by emphasizing on civility and right education. Adopt silence if even revered men, due to their bias, teach against the morals of dharma and justice. The idea is to maintain respect of such men but do nothing against the morals of dharma and justice. Neither attachment nor aversion can save dharma and justice; the truth takes a back seat in case of both, attachment and aversion. Those with attachment or aversion fail to discriminate between what is to be done and what not, and what is to be accepted and what not. Attachment reckons the well-being of the subject of attachment; aversion reckons ill-being of the subject of aversion, at all cost. Do not accept the preaching of even the guru if he is beset with attachment and aversion; accept only that education which benefits self and others. The name of the truthful man lives in the hearts of people even after death.

---

44. गुण-ग्राही-जन स्व-शिक्षा के साथ अन्य की विद्या को भी धैर्य से श्रवण करते हैं, वे किसी के भी ज्ञान को तुच्छ कहकर अपने दंभ के दर्शन किसी को नहीं कराते। विनय-पूर्वक अन्य के अन्दर जो भी सद्‌गुण हैं उन्हे सहर्ष स्वीकार करते हैं, गुणी-शैक्ष्य की यही तो पहचान है। किसी की वस्तु एवं व्यक्ति को पूर्ण-तुच्छ मत समझो, अभी आवश्यकता नहीं है, इसलिए उसे हमेशा के लिए अनावश्यक मत कहना। गंदा वस्त्र भी आवश्यकता पर आवश्यक हो जाता है, जो मलिन-वस्त्र संज्ञा प्राप्त कर उपेक्षित था, वही वस्त्र भवन एवं वाहन की सफाई करने के लिए आवश्यक बन गया। जो पुरुष तुम्हारे जीवित में काम नहीं आए थे, कभी उन्हीं के कन्धों पर तुम्हारी शवयात्रा जाएगी, इसलिए हर-वस्तु, हर-व्यक्ति की कीमत करो।

44. True learners listen to others with patience; they do not exhibit haughtiness by undermining knowledge of others. They accept with delight and humility qualities in others; this is the mark of the worthy academic. Do not consider any object or person totally worthless; these may of no use at present but will become useful at some time. A dirty cloth may seem useless but becomes useful for cleaning purpose. Those men who did not help you in your life help you by taking your body to the mortuary. Every object, every person has worth.

---

45. किस देश, नगर, प्रजाति-जाति के मद में जी रहे हो, नाले के किनारे एवं जंगल में खिला गुलाब गुलाब ही रहता है। आम्र वृक्ष कहीं भी उगा हो, पर फल तो आम्र-फल मधुर रसवान ही होंगे। देश-गाँव-नगर-महानगर कहीं भी ज्ञानी महापुरुष-साधु-महात्मा व परमात्मा जन्म ले सकते हैं, इसलिए जाति-कुल या नगर में ज्ञानी-महात्मा-परमात्मा मत देखो, अपितु श्रेष्ठ-कार्यशील पुण्यात्मा-महापुरुष में तथा पुरुषार्थी जीवों में महापुरुष को देखो। जो गुणवान् है; वही गुणी है। गुणहीन को गुणवान् या गुणी संज्ञा प्राप्त नहीं हो सकती है। अपने चाहने वाले लोगों से गुणी क्या प्रभु संज्ञा भी प्राप्त कर ले, तो क्या वह गुणी-प्रभु हो सकता है? कागज के साँप में मणि नहीं होती।

45. Why vain about your country, town, caste and sub-caste? A rose is a rose whether it grows near a drain or in a forest. A mango-tree gives sweet and juicy mangoes wherever it grows. Do not look for knowledgeable men, worthy-souls and supreme-souls in particular region or caste; these are found among meritorious great men of virtue and effort, irrespective of region or caste. The one with virtues is virtuous. The man without virtues cannot be called virtuous. The followers of a man may call him virtuous, and even god, but by their calling does he really become so? A paper-snake does not have the precious jewel.

---

46. ग्रंथों के ज्ञान में विराटता प्राप्त कर लेने मात्र से अपने आपको जीवन-विकास का ज्ञानी-शिक्षक मानकर मत चलना। शास्त्रों की शिक्षा प्रमाण-पत्र प्राप्त करना है, परन्तु जीवन-विकास पुस्तकीय पढ़ाई के साथ गहरे अनुभव से होगा। यदि अनुभव की गहराई जीवन में नहीं आई तो सम्पूर्ण पुस्तकीय-पंडिताई उपहास की उपलब्धि मात्र ही करा पाएगी, अन्य कोई विशिष्ट उपलब्धि नहीं हो पाएगी। इसलिए पुस्तकों की शिक्षा के साथ तद्-तद् विषय के अनुभव की भी शिक्षा प्राप्त करना चाहिए। यदि बिना विशेष पुरुषार्थ के अमूल्य निधि प्राप्त हो रही है तो उसे प्राप्त कर लेना चाहिए। किसी व्यक्ति के अनुभव मिलते हैं तो ग्रहण करो।

46. Do not consider yourself a knowledgeable teacher of life-development just on acquisition of wide knowledge of scriptural texts. Knowledge of the Scripture is like getting the certificate but to get the skill of life-development deep experience too is required. Without deep experience of life, the knowledge of scriptural texts will not help much. Along with the knowledge of scriptural texts, acquire life-experience in respective fields. If without own effort the experience of others can teach you lessons of life accept these as precious treasure, with gratitude.

---

47. मित्र! विपत्तियों के आने पर भी अपने धैर्य को सँभालते हुए वाणी-संयम को जीवित रखना, क्योंकि जहाँ वाणी-संयम नष्ट हुआ वहाँ अपना सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। वचनों को जिसने सँभाल लिया, समझो विजय भी उसने अपनी ओर बुला ली। जहाँ धैर्य का बाँध टूटा, वाणी आपकी असंयमित हुई, समझो आपने विजय अपने ही शत्रु को प्रदान कर दी। जीवन में सबसे बड़ी सीख समझना- आवेग में विवेकहीन होकर दुर्वचनों का प्रयोग किसी भी स्थिति में नहीं करना। जब-जब विपरीतता आवे तब-तब महापुरुषों का ध्यान कर लेना, उन महायोगियों के जीवन-वृत्त के दर्शन करने लग जाना जिनके ऊपर घोर-उपसर्ग हुए, फिर भी अपनी साम्यता का त्याग नहीं किया, मौन-पूर्वक क्षमा धारण कर उपसर्ग का फल आत्मोत्कर्ष प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त कर लिया और जगत् की आस्था के केन्द्र बन गए।

47. Friend! Maintain patience and restraint in speech while facing difficulties; as restraint in speech is lost, everything is lost. The man who has restraint in speech has brought victory near him. With loss of patience and speech-restraint, you accord

victory to your enemy. The greatest learning of life is not to ever become indiscriminate and use foul language. When in difficulty, remember great men of virtue and reflect on their lives; while facing calamities they did not lose equanimity, adopted silence with forbearance and, as a result, attained the supreme state of liberation. They thereby won trustfulness of the world.

---

48. जहाँ पर प्राण-घातक व्यक्ति एवं पशु-पक्षी हों, घोर अकाल, महामारी का प्रभाव हो ऐसे स्थान को छोड़ देना चाहिए। प्राण रहेंगे तो धन-धरती, पुनः प्राप्त हो जाएगी। मानव ही नहीं रहेंगे तो धर्म-संस्कृति कैसे रहेगी? इसलिए धर्म-संस्कृति के लिए अपने प्राण सुरक्षित रखना चाहिए। समय पाकर अपनी सम्पत्ति व भूमि को पुनः प्राप्त कर लेना, परन्तु जीवन रक्षा स्वयं की अवश्य ही करना। समय सबको निर्बल एवं सबल बना देता है। कुछ बातें समय पर छोड़ देना चाहिए, बड़े-बड़े गर्त, घाव-व्रण समय पर भर जाते हैं। एक दृष्टि बनाकर चलो, पुनः समझो, अधीर होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अधीरता सबसे बड़ी अज्ञानता है और धैर्य ज्ञानी जीव की प्रथम पहचान है।

48. Do not live in a place inhabited by life-threatening men and animals, affected by major famine and infested with pandemic. Wealth and land can be regained. Without life how will the dharma and the culture persist? Keep yourself safe for the sake of the dharma and the culture. Time is a big factor; it makes you weak and strong. Leave certain things on time; major failures are overcome and wounds healed over time. Learn to understand again; don't be impatient as impatience is great ignorance and patience is a mark of knowledge.

---

49. ज्ञानी, धैर्यवान, शील-सम्पन्न, विवेकी-धर्मात्मा जीवों को देव-दानव भी शीश झुकाते हैं, फिर नरों की क्या गणना, इसलिए अपने जीवन में यह शिक्षा स्वीकार करो। ज्ञान, धन-धरती के राग में आत्महत्या मत करो। शंका या संकट का समाधान मृत्यु नहीं है। जीवन है तो सब है, जीवन नहीं तो कुछ नहीं। हँसते-हँसते पुष्प-मालाओं को स्वीकार करने वाले वसुन्धरा पर बहुत हैं, पर शूलों और संकटों में जीवन प्रसन्नतापूर्वक जीने वाले वीर धरा पर विरले श्रीराम व तीर्थंकर महावीर हैं। प्रत्येक अवस्था को जानना सीखो और हर अवस्था में जीना सीखो। जो ज्ञायक भाव से जीता है उसे कष्ट भी आनन्द देने लगते हैं, यह कथा नहीं जीवन का सत्यार्थ-बोध है, जीते-जी अनुभव करो। जियो और जीने दो।

49. Even celestial-beings bow down in front of knowledgeable, patient, moral and discriminating men of dharma; what to talk of the men? Cultivate these virtues. Do not commit suicide due to attachment for knowledge, wealth or land. Death is not a solution for any misgiving or trouble. Life means everything; death means loss of everything. On this earth there are many who accept with joy garlands but very few, like Lord Rāma and *Tīrthaṅkara* Mahāvīra, who accept with joy onslaughts and

calamities. Know every situation and learn to live in every situation. Even troubles provide joy to the man who lives just as the knower. This is the truth of life; the living experience. Live and let live!

* * *

"कुम्भकार तुरन्त मिट्टी घोलकर के चाक पर मटका नहीं बनाता। पहले मिट्टी को पानी में गलाता है, फिर रौंदता है, फिर लौंदा बनाकर छोड़ देता है। मिट्टी के अन्दर थोड़ा लोच बढ़े, संस्कार पड़ें, फिर लौंदा बनाकर चाक पर रखता है। ऐसे ही जो शिक्षा तुम ग्रहण कर रहे हो, उससे आपके अन्दर आत्म-संस्कार पड़ रहे हैं। पढ़ते-पढ़ते एक दिन आप भी शिक्षक बन जाओगे। यह सब शिक्षा और संस्कार का फल है।"

(आचार्य विशुद्धसागर, **'अध्यात्म वचनामृत'**, पृ. 50)

30

सत्यार्थ-बोध

व्यसन

Addictions

1. व्यसन वह आदत है जो जीवन में एक बार लग जाए, फिर बार-बार उसे करने के भाव होते हैं। बुरे-व्यसनों में व्यक्ति अपना सर्वस्व नाश कर बैठता है, व्यसन विष से भी अधिक घातक हैं। विष एक बार मारता है, परन्तु व्यसन तो क्षण-क्षण में मारता है। धर्म-यश-कुल-सम्पत्ति का एक साथ क्षय कराने वाली महामारी व्यसन है।

1. Addiction is the habitual misconduct that the person indulges in over and over again. A person with addiction destroys himself completely; addiction is more lethal than poison. Poison kills only once while addition kills every instant. Addiction is an epidemic that destroys dharma, renown, lineage and wealth simultaneously.

---

2. अपने कुल-जाति-धर्म की पवित्रता को सुरक्षित रखने के भाव हैं, तो अहो मित्र! व्यसन-विष से सदा विरक्त रहना। व्यसनों का सेवन तो नाशक है ही, अपितु दर्शन ही पीड़ा दे देगा। व्यसनी को कोरोना जैसी महामारी शीघ्र प्रभावित करती है और फिर वह तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ता है, इसलिए व्यसन एवं व्यसनी दोनों से ही दूरी बनाकर चलो, सुरक्षित रहोगे। सुखमय जीवन को दु:ख, चिन्ताओं के गर्त में डालने वाली कुटेव (खोटी आदत) का नाम व्यसन है, मंगलमय जीवन को अमंगलमय बनाने की विधि का नाम व्यसन है। निर्व्यसनता का जो आनन्द है वह अवाच्य है। व्यसनी व्यक्ति की जो अंतरंग वेदना है वह भी अवाच्य है। वह स्वयं-ही-स्वयं अशुभ सोचता है। व्यसन महा-पाप सर्व-संबन्धों व परिवार को नष्ट कर देता है, व्यसनी के जीवन की पवित्रता का तो पता ही नहीं चलता कि कहाँ विलीन हो गई? व्यसनी सोचता है कि वह अनुभूति एवं शक्ति कब मिलेगी जो निर्व्यसन-काल में आलोकिक, विशिष्ट-आनन्द की धारा स्वात्म-प्रदेशों में बहती थी। वह स्रोत अब बंद हो गया। मित्रों! ज्ञानीजनों, गुरुजनों के मध्य जाने की शक्ति क्षीण हो गई, भय संज्ञा प्रतिपल साथ रहने लगी, मेरी कुबुद्धि पर लोग हँसते हैं। जीवन-मरण दु:खमय हो गया। हाय! हाय!! हाय!!!

2. O friend! If you wish to protect the purity of your lineage, caste and dharma keep away from the poison of addiction. Indulging in an addiction causes certain destruction; even watching it is agonizing. Pandemics, like coronavirus, affect easily a person with addiction; he gets a painful death. To keep safe, maintain distance from the addiction as well as the addicted person. Addiction is the evil habit that converts a happy life into misery and worry; it is the means to convert a propitious life into an unpropitious life. The happiness appertaining to the man without addiction cannot be put in words. The internal agony of the addicted man too cannot be put in words. On his own, he thinks only of evil. Addiction destroys relations and family; purity vanishes from the life of the addicted person. The addicted person laments the experience and strength that he used to enjoy earlier, and the stream of divine and special joy that used to flow through his heart. "That stream has ceased to flow now. Friends! I have no strength left in me to go in midst of the knowledgeable men and the guru, the fear-instinct haunts me every instant and people laugh at my folly. Both life and death are agonizing for me. Alas! Alas! Alas!"

---

3. कल्याण-मार्ग से जो पतित करे, सद्मार्ग से दूर करे, कुमार्ग में रख दे, सद्गुरुओं एवं सद्गुणों से जो मिलन न करने दे, वह महाभयंकर कष्ट-प्रदाता व्यसन है। जीवन को दुष्टता में बदलने का जो कार्य करता है, वह व्यसन है। व्यसन धन से लेकर तन तक क्षीण करा देता है। व्यसन नगर, देश और विश्व में अपयश दिला देता है, दाने-दाने की भीख मँगवा देता है व्यसन। साधु को दुर्जन बना देता है व्यसन, मधुर सम्बंधों में विष घोल देता है व्यसन।

3. Addiction causes grave agony; it leads you astray the path of propitiousness and well-being, directs you to the evil path, and debars you from the company of right guru and right qualities. It transforms your life into evil. It destroys wealth and body. It causes you abasement in town, country and world; it makes you beg for a grain to eat. It converts an ascetic into a wicked man and poisons sweet relations.

---

4. आत्मा के अन्दर जो भी काम-क्रोध-मान-माया-लोभादि आन्तरिक शत्रु हैं, उन सबको जाग्रत करा देता है- व्यसन, इसलिए सर्व-पापों में महापाप है- व्यसन। तत्त्वज्ञानी, तत्त्वप्रेमी-जनों की यदि व्यसनों में दृष्टि भी जा रही हो तो स्व-पर हितार्थ व्यसनों को शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए। लोक में कितने भी जप-तप-उपवास, तीर्थवंदना, दान-पूजनादि सत्कार्य कर लो, परन्तु एक व्यसन में भी लग गए तो सम्पूर्ण धर्म-कर्म उभय-लोक में अहित से नहीं बचा पाएगा। व्यसनों के कारण अशुभ-अशुभ रोग; मानसिक एवं शारीरिक-पीड़ा देते हैं। व्यसनी को श्रेष्ठीजन अपने पास भी नहीं बैठने देते हैं। जो व्यसनी होता है उससे सज्जन-लोग अपनी संतान को सिंह-सर्पादि जैसे दूर रखते हैं। घर-घर में चर्चा-वार्ता चलती है कि- अमुक व्यक्ति से बच्चों को दूर रखना, उसे अपने घर नहीं बुलाना, उसके घर अपने बालकों को नहीं भेजना, अन्यथा कुसंस्कारों को प्राप्त हो जाएगा।

यदि एक व्यसनी समाज में हो गया तो वह महामारी कोरोना जैसे हजारों को व्यसनी बना देगा, इसलिए व्यसन-सेवी से कोरोना-रोगी जैसी दूरी बनाकर रखनी चाहिए।

4. Addiction is the king of all evils; it arouses all internal enemies, like lust, anger, pride, deceit and greed, of the soul. The man who knows and loves the reality should, for the benefit of self and others, not even look at addictions. Overcome by just one addiction all your virtuous activities, including incantations, austerities, fasting, pilgrimage, giving of gift and prayers, will not be able to save you from ill-being in both worlds. Addictions cause you vicious diseases, and mental and bodily pain. Noble men do not allow the addicted man sit near them. They keep their children away from the addicted man, as from a lion or a snake. Every family is afraid that the company of the addicted man will have evil influence on their children. One addicted man in society may spread his addiction to thousands, like the spread of the coronavirus pandemic. Maintain distance from the addicted man as from the man suffering from an infectious disease.

---

5. 1) जुआ खेलना, 2) मांस खाना, 3) मदिरा पीना, 4) वेश्या सेवन, 5) शिकार खेलना, 6) चोरी करना, 7) पर-स्त्री सेवन करना - ये सात व्यसन हैं, ये जगत् प्रसिद्ध हैं। इनमें से एक भी ऐसा नहीं है; जिसके सेवन से व्यक्ति की महानता का बोध हो सकता हो, सातों-के-सातों ही निकृष्टता से युक्त हैं।

5. The well-known addictions in the world are seven: 1) gambling; 2) eating flesh; 3) drinking alcohol; 4) sexual intercourse with a harlot; 5) hunting; 6) stealing; 7) sexual intercourse with wife of another. None of these points to greatness of the man; all seven are most degrading.

---

6. आचार्य प्रवर सोमदेव सूरि ने प्रसिद्ध नीति-शास्त्र 'नीति-वाक्यामृतम्' में अठारह प्रकार के व्यसनों की व्याख्या की है। 1) स्त्री-आसक्ति, 2) मद्यपान, 3) शिकार खेलना, 4) द्यूत क्रीड़ा, 5) पैशून्य (चुगली),दिन में शयन, 7) पर-निन्दा, 8) गीत श्रवण में आसक्ति, 9) नृत्य-दर्शन में आसक्ति, 10) वादित्र-श्रवण में आसक्ति, 11) व्यर्थ गमन, 12) ईर्ष्या, 13) साहस अथवा पर-स्त्री सेवन व कन्या दूषण, 14) अर्थ-दूषण, 15) अकारण वध, 16) द्रव्य-हरण, 17) कर्कश-वचन, 18) दण्ड-पारुष्य।

6. *Ācārya* Somadeva Sūri, in his well-known treatise, *'Nīti-vākyāmṛtam'* has outlined eighteen addictions: 1) excessive indulgence in women; 2) drinking alcohol; 3) hunting; 4) gambling; 5) backbiting; 6) sleeping in daytime; 7) censuring others; 8) excessive listening to songs; 9) excessive watching of dance; 10) excessive listening to music; 11) aimless moving about; 12) jealousy; 13) recklessness or indulgence in others' wives and spoiling of virgins; 14) squandering wealth; 15) aimless killing of

living-beings; 16) snatching wealth of others; 17) harsh words; 18) punishing others unlawfully.

---

7. नीति-निपुण सज्जन-पुरुषों को उक्त व्यसनों को स्वेच्छा से शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए, समय प्रमाण काल भी इन्हें नहीं स्वीकारना चाहिए। व्यसन धर्म-कुल-यश का पल मात्र में नाश कर देंगे। जिन-जिन लोगों ने इनका सेवन किया उन सबका नाश ही हुआ है, इतिहास साक्षी है। पुराण ग्रंथों में सबकी कथाएँ लिखी हैं और जो वर्तमान में व्यसन-सेवन कर रहे हैं, उनका जीवन ही कथा है, वे स्वयं ही समझें। पर से पाप छुपा सकते हैं, पर स्वयं एवं स्वयंभू से क्या छुपा पाएँगे? दो से कोई बात गुप्त रहती ही नहीं- स्वयं एवं स्वयंभू। स्व के जीवन का बोध सभी को रहता है कि मैं क्या हूँ? परमात्मा को सबका ज्ञान है कि- लोक में कौन क्या है? इसलिए व्यर्थ के काम करके अपने आपको अपने से ही पापी मत कहलाओ।

7. Thoughtful and noble men should leave, by own will, such addictions; get rid of these every second. These addictions destroy the dharma, lineage and renown instantly. History testifies that all those who succumbed to these addictions were destroyed. Scriptural texts on lives of great men of the past have stories of destruction of the men-of-addiction. The life of the man who presently is indulging in addiction is a story in itself; he should understand this. One can hide evil from others but not from the self and the all-knowing supreme-being. Every man knows what he actually is. The all-knowing supreme-being knows who is what in this world. Do not, therefore, indulge in worthless activities and fall in your own eyes.

---

8. सर्वप्रथम जुआ आदि सात व्यसनों को क्रमशः समझें, फिर समझेंगे अठारह को। इन खोटी-आदतों का सम्बंध किसी धर्म-पंथ-सम्प्रदाय से नहीं है, ये सातों ही अथवा अठारह ही व्यक्ति की स्वयं की परिणति हैं, इन्हें कोई धर्म नहीं स्वीकारते और न ही पन्थ-सम्प्रदाय।

8. First understand the seven addictions, then eighteen. These evil habits do not relate to any religion, sect or community; these addictions, seven or eighteen, are own transformations in the man. No religion or sect or community accepts these.

---

9. यदि व्यसन सेवन को ही कोई धर्म स्वीकारे तो उससे बड़ा अधर्म एवं अधर्मी पृथ्वी पर अन्य कौन हो सकता है? ऐसे अज्ञ को तो अपने मुख को सिल ही लेना चाहिए। बोलने का उसे अधिकार ही नहीं होना चाहिए।

9. If a religion accepts any addiction as dharma nothing on this earth can be more irreligious or void of dharma. The ignorant man who preaches any addiction as part of religion should stitch up his mouth; he does not have the right to speak.

---

10. इन व्यसनों, महापापों को धर्म कहने वालों पर राज्य-शासन, केन्द्र शासन को राज्य व राष्ट्रहित में रोक लगाकर, व्यसन-मुक्त देश का आदेश ही नहीं, आवश्यक नियम ही लगा देना चाहिए। देश का आर्थिक, शारीरिक तथा मानसिक विकास होना प्रारंभ हो जाएगा।

10. Making it unlawful to call any addiction a part of dharma, the central and state governments, in the interest of the nation and the state, promulgate orders and laws to ban all addictions. The country will start witnessing growth in economy, health and intellect.

जुआ व्यसन

Gambling

11. हार-जीत के लक्ष्य को लेकर, शर्त लगाकर जो भी खेल खेले जाते हैं या कार्य किए जाते हैं वे सब जुआ हैं। जुआ (द्युत-क्रीड़ा) ऐसा कीड़ा है जो व्यक्ति का सर्वस्व क्षय कर देता है, करोड़पति भी रोड पर आ जाते हैं, राजा को रंक बनते देर नहीं लगती। जुआ आशा की आग उत्पन्न करता है और अन्त में निराशा की राख मात्र अवशेष रहती है। जुआ में अंध जुआरी, दाँव पर धन-धरती, वस्त्र-आभूषण क्या, अज्ञ-प्राणी पत्नी तक दाँव पर लगा बैठते हैं, फिर उनके पास रोने के अलावा शेष बचता ही क्या है?

11. All sports and activities performed with the object of winning or losing and with stakes constitute gambling. The worm of gambling infests everything of a man. Gambling turns the multi-millionaire into a pauper and the king into a beggar. Gambling starts with the fire of hope and ends with the ash of distress. The man blinded by gambling, puts on stake not only his wealth, land, clothes and ornaments but even wife; nothing but wails remain for him.

---

12. युधिष्ठिर जैसे सत्यवादी, जो धर्मराज संज्ञा को प्राप्त थे, वे भी जुआ के कारण जगति पर अपयश को प्राप्त हुए, क्योंकि उन्होंने विवेक खोकर धन-धरती और नारी तक को दाँव पर लगा दिया था। ओहो! जुआरियों की माया में फँसकर अन्त में राज्य से ही निकलना पड़ा। द्यूत-क्रीड़ा मात्र धन हानि का ही कारण नहीं है, अपितु स्वास्थ्य, बुद्धि-विवेक, सुख शांति की भी हानि करता है। धन का अभाव परिवार की एवं स्वयं के जीवन की व्यवस्थाओं को भी प्रभावित करता है। योग्य-व्यवस्थाओं के अभाव में चित्त में खिन्नता उत्पन्न होती ही है, उससे मानसिक विकल्प होता है, शरीर भी अस्वस्थता को प्राप्त करता है। देह एवं मुख-मण्डल की सम्पूर्ण-आभा विलीन हो जाती है। परिवार, कुटुम्ब, पड़ोसी, माँ, बहिन, मित्र, पुत्र तो क्या पत्नी भी विश्वास करना छोड़ देती है। ओहो! जुआरी से क्या प्रीति करना? अभागा मेरे वस्त्राभूषण, मंगलसूत्र तक दाँव पर लगा आएगा, इसलिए जुआ से पृथक् जीवन जीना ही श्रेष्ठ है। सज्जनों को घोर-घोर विपत्ति की खान जुआ को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

12. Yudhiṣṭhira, the epitome of truthfulness, had to face ignominy on this earth due to gambling; losing all discrimination, he had put on stake not only wealth and land but wife too. Alas! In the end, he had to part with his kingdom. Gambling not only causes loss of wealth but also of health, intellect, peace and happiness. Loss of wealth affects the lifestyle of the self and the family. As a result, mental agony comes in and health goes down. The body and the face lose glow. No one – kin, neighbour, mother, sister, friend and son – trust the gambler; even his wife loses faith in him. "He will put on stake my clothes, ornaments, and even my sacred nuptial-thread; why to love him?" Noble men should remain far aloof from gambling, the mine of grave troubles.

---

13. जुआरी का वर्तमान जीवन तो कष्टमय है ही, परन्तु आने वाला भविष्य का भव भी कष्टमय ही होगा। अशुभ-कर्मों की गति अशुभ ही तो होगी। तृष्णा-आशा एवं निराशा की आँधी में जीनेवाला विशुद्ध-भावों से नहीं जीता, वह संक्लेशता में जीवन जीता है और नहीं सुधरा तो अंतिम श्वास तक संक्लेश-भाव से ही रहेगा। संक्लेश-परिणामों से भरा प्राणी नरक, पशु आदि खोटी गतियों को ही प्राप्त करेगा और छेदन, भेदन, मारन-ताड़नादि घोर-दु:खों को प्राप्त होगा। अन्य कोई भी रक्षा करने नहीं आएगा। इसलिए स्वात्मा पर दया करो और हार-जीत के खेल खेलना बंद करो।

13. The present life of the man with addiction of gambling is painful; his next life too will be painful. Inauspicious karmas lead to inauspicious future state-of-existence. The man in whose life the storm of craving, hope and despair is blowing cannot have purity of disposition; he lives an anxious life that ends in anxiousness. Such a man gets evil state-of-existence such as the infernal-being and the plant and animal. He then is subjected to intense suffering due to bodily cutting, piercing, striking and beating. No one will come to his rescue. Therefore, be kind on self and stop indulging in sports of winning and losing.

---

14. सज्जन लोग हितकारी-शिक्षा को अवश्य ही स्वीकार करते हैं, वे 'सत्यार्थ-बोध' का अपमान नहीं करते हैं, अपितु किए गए दोषों की निन्दा-गर्हा एवं आलोचना, प्रायश्चित्त कर आत्म-विशुद्धि को वर्धमान कर, दोष छोड़, निर्दोष होकर धर्म-संस्कृति का बहुमान करते हुए पाप-वृत्ति से रहित होकर, एक श्रेष्ठ-नागरिक बनकर स्वयं का स्वच्छ-जीवन कर इह-लोक और पर-लोक अर्थात् उभय-लोक को सुखमय कर लेते हैं।

14. Noble men accept readily the learning that is to their benefit; they do not undermine the knowledge of the truth. They censure their faults and increase soul-purity through expiation. They renounce faults and with due respect for the dharma and the culture get rid of evil tendencies. They vow to become good citizens, lead the life of purity, and thus make their present as well as next life happy.

---

15. ऐसा मान-अहंकार नहीं करना कि अब तो मैं जुआरी-पापी हो ही गया हूँ अब कुछ नहीं हो सकता, सुधार करके नरक तो जाना ही पड़ेगा। सर्वथा ऐसा मत सोचो, अशुभ छोड़ो, शुभ-कर्म विशुद्ध भावों से पाप-क्षय कर निर्जरा को प्राप्त करो। जैसे सूर्य की तीव्र-तपन से कीचड़ सूखने लगती है, उसी प्रकार तप-त्याग की साधना से बन्ध को प्राप्त कर्म भी झर जाते हैं, इसलिए पापों का त्याग करो, भाव प्रशस्त करो और आगामी भव को उज्ज्वल करो। पुण्य-पाप जीव के परिणामों पर आलम्बित है, अन्य किसी भिन्न कर्ता पर आलम्बित नहीं है, इसलिए सुदृढ़तापूर्वक अशुभ-कर्म छोड़ो-छोड़ो, शुभ-कर्म करो-करो-करो।

15. Do not entertain the thought that since I am an evil gambler nothing can be done now; even if I leave gambling my going to the hell is certain. This is not absolutely true; leave the evil and shed evil karmas through the purity of thought. Just as the hot rays of the sun dry up mire, observance of austerities and renunciation sheds bound karmas. Leave the evil, purify thought and brighten up your next birth. Merit and demerit depend on own dispositions, not on anything external; be firm to leave demerit and accept merit.

---

16. अज्ञ प्राणी परिग्रह-संज्ञा, लोभ-कषाय, ममत्व-परिणाम, राग-बुद्धि के वश हुआ जुआ जैसे दुर्व्यसन में संलग्न हो जाता है। सातों ही व्यसनों का राजा जुआ है। यदि जुआरी धन जीत भी गया तो मदिरा पीता है, मद्य से क्षुदित मांस खाता है। शराब और मांस की तामसिकता से उन्मत्त हुआ वेश्यावृत्ति करता है। वेश्याओं को खुश करने के लिए धन चाहिए, इसलिए चोरी करता है, अशुभ क्रिया-कर्म करते-करते उग्र हो निरीह मूक-प्राणियों का शिकार करता है। धन-हीन हो वेश्याओं से अपमानित होने पर अन्य स्त्रियों की ओर दौड़ता है। अहो! एक जुआ के संसर्ग ने सातों के सात व्यसनों से जोड़ दिया। चाहे होली हो या दीवाली अथवा अन्य कोई भी विवाह आदि उत्सव, परन्तु शौक-शौक में भी जुआ नहीं खेलना।

16. The ignorant man, due to his instinct of possession, greed-passion, infatuation and attachment, engages in gambling. Gambling is the king of all seven addictions. On winning, the gambler drinks alcohol and eats flesh. Malignance of alcohol and flesh prompts him to go to prostitutes. Money is required to satisfy the prostitutes and he thus engages in stealing. Doing such evil activities, he gets violent and engages in hunting mute animals. Without enough money he gets disgraced by the prostitutes and runs after other women. Alas! One addiction of gambling connects him to all seven addictions. Whatever be the occasion, festivities of Holī, Dīwalī or a wedding, do not ever engage in gambling.

मांस व्यसन

Eating Flesh

17. हे मानव! मांस न पर्वतों पर फलित होता है, न वृक्षों पर, न आकाश में, न पृथ्वी पर अंकुरित होता है। मांस फल-फूल नहीं, न धान्य, न रस, न खनिज-रसायन, वह तो प्राणियों का कलेवर है। पशु आदि की हत्या के बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती। मांस भक्षी कभी भी दयावान मानव संज्ञा को प्राप्त नहीं होते, क्योंकि जिनका हृदय क्रूरता से ओत-प्रोत है वे ही मांस खाते हैं। वह देव नहीं, परमात्मा नहीं, ईश्वर-भगवान् नहीं, धर्मोपदेशक नहीं, गुरु नहीं, धर्मात्मा-महात्मा नहीं जो जीव-वध से उत्पन्न मांस खाने का उपदेश या आदेश करे और निषेध न करे। वह धर्म-ग्रंथ ही नहीं जिनमें जीव के कलेवर खाने को आहार-संज्ञा दी हो। जहाँ दया-करुणा-अहिंसा की बात की गई हो, परस्पर जीवों की रक्षा की बात की जाती है, एकमात्र वही सत्यार्थ-बोध देने वाले उपदेशक हैं, वही तत्त्वप्ररूपक सत्यार्थ-बोधक धर्मग्रंथ हैं।

17. Flesh does not grow on mountains, on trees or in sky; it does not sprout on earth. Flesh is not a fruit, a flower, a grain, a juice, a mineral or a chemical; it is body of the living-beings. It does not come into existence without killing of animals, etc. The man who eats flesh can never be called 'compassionate' since only those with cruel tendencies eat flesh. He is not a deva, a supreme-soul, a god, a religious-preacher, a guru, or a follower of the dharma, who preaches and orders eating of flesh and does not prohibit it. It is not a scripture that terms flesh a food-item. Only those preachers who talk of pity, compassion, non-injury and mutual protection of living-beings, are propagators of the truth; only those texts which contain such teachings are true scriptures.

---

18. यदि कोई धर्म के नाम पर मांस-सेवन कर कहे कि यह तो मेरा धर्म है, अभक्ष्य-हिंसक द्रव्य सेवन का आदेश करे, वह सुधर्म नहीं। धर्म तो सदा शुद्धाहार-शाकाहार की ही प्रेरणा देता है। निरीह, मूक-प्राणियों का वध करके अपना पेट भरना मानव-धर्म नहीं। मानवता-शून्य, निशाचरी, राक्षसी-वृत्ति पशुवृत्ति है। मानव तो परमात्मा के आकार का है; जितने महापुरुष परमात्मा हुए हैं वे सब मनुष्यगति में, मनुष्य देह से हुए हैं। अहो नरो! अपनी देह के आकार को तो देखो, जिस पवित्र-देह का आश्रय पाकर परमात्मा महात्माओं ने अहिंसा परमब्रह्म का उपदेश दिया तथा स्वयं भगवत्ता की सिद्धि की, उस देह को पाकर जो पृथ्वी माँ की गोद के लालों को मारकर अपना उदर भर रहे हैं उन पापियों से मांस भरा उदर कह रहा है कि इसका फल अब भविष्य में आपके शरीर से नरक का उदर भरेगा। नरक गति में तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर नारकी तुम्हारे ही मुख में डालेंगे। श्रीराम, कृष्ण, भगवान् महावीर स्वामी की भूमि जो दुग्ध-घृत से सुवासित थी उस पवित्र भूमि पर वर्तमान में लोग खुलेआम मूक प्राणियों का वध कर रहे हैं।

18. If the man who eats flesh claims that this is his dharma, he is wrong; no worthy dharma preaches eating the inedible, produced out of killing. The true dharma

emphasizes eating only pure, vegetarian food. To fill your stomach by killing meek and mute animals is not humanity. It constitutes animal-tendency, rid of humanity and typical of night-roaming monsters. The body-form of the man is like that of the supreme-being; all those who attained the status of the supreme-being were humans. O men! See the form of your body; after having attained this form, the supreme-beings preached the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* and then attained liberation. Those who kill children of Mother Earth to fill up their stomach will have to fill up the stomach of the hell in future. Denizens of the hell will break apart your body and put the pieces in your mouth. On this pious earth of Rāma, Kriṣṇa and Mahāvīra that was once fragrant with milk and clarified butter people today are openly killing mute living-beings!

---

19. अहो! अहो! दुर्गति का भान नहीं, शासन का भय नहीं! वह शासक, शासक ही नहीं जो मांस खाए। पृथ्वी रो-रोकर अश्रुपात कर रही है, उसी का परिणाम है कि कभी भूचाल के रूप में, कभी अकाल के रूप में, कभी अतिवृष्टि के आँसू डाल रही है। जब नहीं मानते ये दुष्ट नर-अधम; तो पृथ्वी-माँ प्रकृति को रुष्ट कर कुपित हो हत्यारों पर कहर ढाती है।

19. Alas! No cognizance of the evil state-of-existence, no fear of the rule! The ruler who eats flesh is not a ruler. The earth is shedding tears; its tears take forms of earthquake, famine and deluge. When wicked and evil men do not reform themselves, angry Mother Earth punishes these murderers.

---

20. मानवता के नाम पर कलंकित मांस-भोजी, जिन्होंने मछली, बकरे, मुर्गा-मुर्गी, सांप, कुत्ते, सुअर, गाय-बैल, भैंस, ऊँट; इतना ही नहीं ओहो! नर-भ्रूण भी खा डाले, चूहे, चींटा तक को नहीं छोड़ा। ऐसे महापापी नरों से महामारी कोरोना के द्वारा प्रकृति मूक-प्राणियों के वध का बदला ले रही है।

20. The flesh-eaters blemish humanity; they do not hesitate in eating fish, goat, chicken, snake, dog, pig, cow and bull, buffalo, camel, even human-foetus, mouse and ant. The nature is now taking revenge, through the pandemic of coronavirus, upon evil men who kill mute living-beings.

---

21. यदि कोई कहे हम कौआ, सुअर, नहीं खाते, पर यह कोई दया नहीं, क्योंकि बकरे, गाय को खाना भी मानवता नहीं। अज्ञ-प्राणी जीवों को खाकर कहते हैं कि- हम पृथ्वी का सन्तुलन बना रहे हैं, यह घोर मूढ़ता है। अहो मानव! अपने भावों का सन्तुलन बनाओ, लोक का सन्तुलन स्वयं में सन्तुलित ही है। सभी प्राणी अपनी-अपनी आयु लेकर आते हैं और आयु पूर्ण कर चले जाते हैं। प्रत्येक जीव की आयु नियत है, मत करो

आप चिन्ता पृथ्वी के सन्तुलन की। रसना की पुष्टि के लिए पृथ्वी-सन्तुलन का सहारा मत लो, अपितु 'जियो और जीने दो' का नारा दो। चाहे करो कोटि-कोटि यज्ञ या उपवास पर यदि एक जीव की रक्षा भी कर ली तो वह श्रेष्ठ है। जीव-रक्षा ही श्रेष्ठ धर्म है। जीव का वध करके, कराके मांस खाना पाप ही है। चाहे वध स्वयं करो, चाहे अन्य से कराओ या करने वाले की अनुमोदना करो, पर तुम्हारा जप-तप, उपवास, यज्ञ, पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र की आराधना व्यर्थ है, संसार भ्रमण का ही कारण है। अन्य कुछ नहीं; एक बार स्वबुद्धि से विचार करो कि पर को पीड़ा देकर कौन सुखी हो सकता है?

21. The man who says that he does not eat crow and pig but only goat and cow does not make sense; he too is without pity. Ignorant men who eat flesh say that by doing so they are maintaining balance on earth; this is their great delusion. O man! Maintain balance of your mind; the earth is in balance by itself. All living-beings are born with own age-span and die on its completion. The age of every living-being is pre-determined; do not bother about maintaining balance on earth. Do not take refuge in such false logic; instead, propagate the dictum of 'Live and let live'. Saving the life of one living-being is better than performing millions and millions of religious ceremonies and observing fasts. Protecting the living-being is the excellent dharma. Eating flesh is evil; it does not matter if the killing of the living-being is by you, by other, or by your approval. Under the spell of such evil, all your concentration, austerities, fasting, rituals, prayers and incantation of mantras is useless; your world-wandering is not going to be snapped. Just reflect once: who can ever become happy after giving misery to other?

---

22. हे मानव! किञ्चित् भी मानवता, दया स्व-हृदय के कोने में कहीं शेष रखी हो तो अवश्य चिंतन करें, आज तुम जंतुओं को मार-मार कर खाओगे तो कर्म दैव भाग्य-विधि भी आपको नहीं बचाएगी, क्योंकि प्रकृति का न्याय सत्य होता है। इस भ्रम को मिटा लेना अभी ही कि हम कुछ भी अनर्थ करते रहें और हमारा प्रभु-गुरु धर्मस्थान हमारे पापों को समाप्त कर देगा, यह सब भ्रम है। सत्यार्थ-बोध को प्राप्त करो। सत्य तो यही है कि जैसा कर्म वर्तमान में करोगे उसका फल स्वयं ही भविष्य में तुम्हें भोगना पड़ेगा, अन्य कोई भी किसी के सुख-दुःख का कर्ता-हर्ता नहीं है, नहीं है। आस्था के सत्य को भी समझो।

22. If you have even a little of humanity and pity remaining in some corner of your heart just reflect on the following. The nature provides true justice; if you kill the living-beings and eat flesh, your fate will not be able to save you. Get rid of this misgiving that whatever evil you indulge in your god, guru or place-of-worship will destroy your evil karmas. Know the truth. The truth is that whatever you do today you only will have to experience the fruit in future; no one else is either a doer or a destroyer of your happiness and misery. Understand the reality behind trustfulness.

---

23. पूज्य के निमित्त भी जीवों का वध नहीं करना चाहिए, वह पूज्य-पूज्य कैसा जो जीवों के रक्त का प्यासा हो? वह देव नहीं जो जीवों का घात कराए। देव के यथार्थ स्वरूप को समझना चाहिए। देवाधिदेव, देव, कुदेव या अदेव, ये चारों ही देव मांस नहीं खाते, सत्य को समझो।

23. Do not kill living-beings in name of the deity; the deity thirsty for blood is certainly not worshipful. True deity does not get the living-beings killed. Understand the true nature of the deity. All four types of deities – supreme-deva, heavenly-deva, lowly-deva, and non-deva – do not eat flesh; understand this truth.

---

24. प्रथम देव हैं- देवाधिदेव; ये सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशी, कैवल्यज्ञान सम्पन्न अरहन्त देव हैं, इनका मांस खाने का तो विकल्प ही छोड़ो, अपितु सर्वज्ञ देव का तो कवलाहार (ग्रास) ही नहीं होता, क्योंकि इनका क्षुधा रोग समाप्त हो चुका है। जिनके भोजन का ही अभाव है, तो फिर मांस-सेवन का तो प्रसंग ही नहीं।

24. First of these, the supreme-deva, is the *Arhat*. The *Arhat* is all-knowing, is rid of attachment, his divine voice benefits all, and has perfect-knowledge. With his supremely-auspicious *(paramaudārika)* body, the *Arhat* is rid of the imperfection of hunger and does not eat food; the question of his eating flesh does not arise.

---

25. दूसरे हैं, देव गति के देव। वह अमृत-भोजी होते हैं। जब उन्हें भूख लगती है, तो वे भोजन का चिंतन करते हैं, तब उनके ही कंठ से अमृत झरता है, जिससे उनकी क्षुधा का नाश होता है। अमृत-आहारी देव सड़े-गले, मल-मूत्र-रक्त, पीव युक्त मनुष्य या पशु-पक्षियों के दुर्गन्धित मांस का सेवन क्यों करेंगे? स्वयं विवेक पूर्वक विचार करो। जो कुत्सित, विकराल रूपधारी भूत-व्यन्तरादि कुदेव हैं, उनका भी मूल रूप सुन्दर ही होता है।

25. The second, the heavenly-deva, consume nectar. When hungry, they think of food, nectar starts flowing from their throat and they satiate their hunger. Think yourself; why should such nectar-consuming deva eat stinking flesh of humans and animals that is full of rotten excrement? The form of even those deva who appear to be wicked and demon-like is basically pretty.

---

26. तीसरे, भूत-व्यन्तरादि भी मांसाहारी नहीं हैं, वे भी अमृत-भोजी हैं। वे भी कोतुहल-वश लोक को भयभीत करने हेतु विक्रिया मात्र दिखाते हैं, पर किसी के मांस-रक्त का सेवन कोई भी देव नहीं करता है और न ही कर सकता है।

26. The third, the lowly-deva like *bhūta* and *vyantara*, too consume nectar. For the

sake of intimidating people they transform their body through supernatural power but do not consume flesh or blood.

---

27. चौथा देव अदेव है, वह लोक में लोग वनस्पति आदि को मानते हैं, कई लोग नीमादि वृक्षों को देव मानकर के उपासना करते हैं, परन्तु वह पर्याय में वनस्पति एकेन्द्रिय जीव है, वह देव नहीं अदेव है। हाँ, द्रव्य निक्षेप से भविष्य-भूत की पर्याय को वर्तमान में कहना द्रव्य-निक्षेप का विषय है, वह जीव भूत में देव हो अथवा भविष्य में देव बने, फिर भी उसे वर्तमान में देव कहना। दूसरी अपेक्षा द्रव्यार्थिक-नय की है, शुद्ध द्रव्य-दृष्टि से सम्पूर्ण-जीव सिद्ध परमात्मा हैं, सकल व निकल परमात्मा हैं। किसी भी दृष्टि से देखें; तब भी देव के अन्दर मांस भक्षण, सुरा पान की अभिलाषा घटित नहीं होती। देव के नाम पर अज्ञ-प्राणी भोले-जीवों को भ्रमित कर रहे हैं। देव बलि चाहता है; ऐसा नहीं, अपितु स्व के उदर पुष्टि हेतु देव के नाम पर जीव वध कर मांस खा रहे हैं। देव कभी भी मांस नहीं खाते, इसलिए देव के नाम पर भी जीव का वध न करें और कुदेवों के कोतुहल से प्रभावित होकर भी जीव हिंसा के भाव न करें। पुण्य-पाप की महिमा है, न कोई किसी को लक्ष्मी देता है और न कोई उपकार करता है। उपकार-अपकार जीव के पुण्योदय-पापोदय से होता है। देव के नाम पर जीव वध कर, फिर उसे प्रसाद मानकर खाओगे, तो इससे निश्चित ही पाप कर्म का आस्रव-बंध होगा। क्या किसी की हिंसा से, वध से पुण्य हो सकता है? स्वयं ही स्व-प्रज्ञा से विचार करो। क्या किसी को मार देना धर्म-पुण्य का कार्य हो सकता है? फिर दया-करुणा करना, अभय-दान देना, अहिंसा परम धर्म ये सब बातें व्यर्थ हो जायेंगी तथा जीव रक्षा करने वाला नरक चला जाएगा तथा हिंसक मांस-सेवी स्वर्ग चला जाएगा। ऐसा कभी होता नहीं। मांस-भक्षी स्वर्ग-मोक्ष नहीं जाता, जब-तक त्याग करके प्रायश्चित्त नहीं कर लेता तब तक वह धर्म में उपस्थित नहीं होता है। समझो, मत फँसो मायावियों के मायाजाल में।

27. The fourth is the non-deva. People in the world consider the margosa tree, etc., as deva and worship these. These are one-sensed beings and, therefore, non-deva. Only from the point-of-view of installation of the soul in its past and future modes a tree can somehow be termed the deva. Or, from the pure-substance point-of-view all souls are supreme-souls. Whatever is the viewpoint, the deva cannot have longing for eating flesh and drinking wine. Uninformed men are deluding innocent people. It is not true that the deva wants sacrifice of living-beings; uninformed men indulge in sacrificial activities in name of the deva to satisfy their craving for flesh. The deva does not eat flesh so never kill anyone in his name; not even due to the amazing and evil activities of the lowly-deva. Your beneficence or maleficence depends solely on own merit and demerit. Eating flesh in name of the deva certainly causes influx and bondage of evil karmas. Can merit ever be obtained by killing someone? Think yourself. If merit can be obtained by killing, all talk of pity and compassion, gift of fearlessness and non-injury *(ahiṃsā)* as the supreme-dharma will become worthless. The protector of living-beings will go to the hell and the flesh-eating killer will go to the heaven! The flesh-eater does not go to the heaven or attain liberation unless and

until he expiates his wrong-doings and adopts the dharma. Do get entrapped in the web laid by the deceitful man.

---

28. एक प्रश्न है। स्वयं नहीं मारोगे प्राणियों को, पर दूसरे ने मारा हो तो क्या हमें हिंसा का दोष लगेगा? अरे मित्र? समझो, कृत-कारित-अनुमोदना से पाप का बंध होता है, यदि आप न खाएँ तो वह क्यों मारे? चाहे आप मारें या न मारें, यदि आप मांस खाते हैं तो हिंसा के पाप का बंध नियम से प्राप्त होगा। यह तो समझ में आ गया है कि- दूसरे के मारने पर मांस-सेवी को हिंसा का दोष लगेगा, पर एक बात और है, वह यह है कि न हमने स्वयं मारा, न दूसरे ने मारा, परन्तु पशु, पक्षी आदि स्वयं ही मर जाएँ तब तो उसके मांस खाने में हिंसा पाप नहीं लगेगा?

28. A question arises. If you do not kill the animal but someone else kills, will you be guilty of injury *(hiṃsā)*? Now understand; why will someone kill if you do not eat? The evil-karmas are bound by doing, causing it done, and approval. Whether you kill or not, if you eat flesh, you will be bound by evil-karmas. Another question arises. If no one kills the animal and it dies on its own, will eating its flesh cause bondage of evil-karmas?

---

29. अरे भाई! तुम पूरे भोले-प्राणी हो; यदि जीव स्वयं भी अपनी आयु पूर्ण करके मरा है, तब भी मांस नहीं खा सकते, वह भी हिंसा, पापमय ही है। मद दर्प का कारण जो मांस है उसमें मृतक-जाति के ही सम्मूर्च्छन जीव प्रतिक्षण उत्पन्न हो रहे हैं और मर रहे हैं, वह भी जीवों का पिण्ड है, खाने योग्य नहीं है। जिन्होंने यह उपदेश दिया है कि स्व मृतक पशु-पक्षी के मांस का सेवन कर सकते हैं, वे प्रेक्षावान पुरुष नहीं थे। ओहो! ऐसे उपदेशकों के उपदेश से अनर्थ हो गया, उनके भक्तों ने पशुओं को पर्वत से गिरा दिया, गिर कर मर गए या खूँटे से बांधकर छोड़ दिया, मर गया तो खा लिया। क्रूरता की सीमा ही तोड़ दी। जब दया का उपदेश देने का प्रचार है, फिर यह क्रूरता कैसी?

29. O brother! You are naive and gullible. You cannot eat flesh of even those living-beings who die on their own; this is evil act of injury *(hiṃsā)*. In the dead body of the animal, living-beings of its own class are generated spontaneously; these take birth and die. The dead body, thus, is an aggregate of many living-beings, not worth eating. Those who preach that the flesh of animals which die on their own can be eaten are not men-of-intelligence. Alas! These men have caused havoc. In order to eat animals, their followers have dropped-dead animals from mountain-tops or enchained them till death. All limits of cruelty have been broken! Why this cruelty under the guise of pity?

---

30. यदि कोई यह कहे कि- अग्नि पर गर्म करने या पकाने पर तो मांस खा सकते हैं, वह प्रासुक हो गया। नहीं। अरे पापियो! मांस कोई वृक्ष का फल नहीं है जिसे तुम पकाकर भक्ष्य-प्रासुक बनाना चाहते हो। मांस चाहे कच्चा हो, चाहे पका हो दोनों ही अवस्थाओं में हिंसा जन्य कर्म है। दोनों ही मांसों में प्रतिक्षण नवीन-नवीन अन्य जीवों की उत्पत्ति हो रही है। मूल बात तो यही है कि कच्चा या पक्का मांस प्राप्त तो तभी होगा जब मूक-प्राणियों का घात होगा। बिना जीव-हिंसा के मांस की उत्पत्ति नहीं होगी, इसलिए कोई भी मांस खाने योग्य नहीं है। रसना-इन्द्रिय पर नियंत्रण रखो, जाति-पंथ-सम्प्रदाय का नाम लेने से हिंसा धर्म नहीं हो सकता, न आपको पाप-कर्म छोड़ सकते। राजा भी अपराध करता है, तो उसका भी न्याय होता है, उसे भी दण्ड स्वीकारना पड़ेगा, इसी प्रकार से हिंसा कर्म से प्राप्त मांस चाहे तुम धर्म के नाम से सेवन करो या अपने सम्प्रदाय के मुखिया के कहने से करो, पर पाप का बंध होगा-ही-होगा और दुर्गति का दण्ड मिलेगा, इसमें कोई शंका मत करना। न शिष्य बचा पाएगा, न गुरु, न प्रभु। हिंसा-कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा।

30. Someone may argue that flesh can be eaten after cooking as it then becomes free of living-beings. No; O evil men! Flesh is not a fruit grown on the tree that can be made edible after cooking. Flesh, whether cooked or uncooked, is a product of injury *(hiṃsā)*. In both cases, new, spontaneously-generated living-beings take birth and die in it. But the basic thing to understand is that flesh, cooked or uncooked, is obtained only after killing mute animals. Flesh is not produced without killing and therefore not worth eating. Have control over your sense of taste; vouching for by caste, sect or community cannot turn your acts of injury *(hiṃsā)* into dharma and evil karmas will not leave you. Even if the king commits a crime, he has to accept its punishment. In the same way, whether you eat flesh in name of the dharma, or on beckoning of your community or its head, you will be bound with evil karmas and will get punished in form of an evil state-of-existence. Your disciple, guru or god, no one will be able to rescue you. The fruit of injury will have to be experienced.

---

31. संसार में दो प्रकार के पापी-जीव हैं, वक्र-बुद्धि वाले और दूसरे सरल-बुद्धि वाले अज्ञानी। अज्ञानी तो दोनों ही हैं; वक्र-बुद्धि एवं जड़-बुद्धि युक्त, दोनों के पास कुतर्क होते हैं, परन्तु दोनों के ही कुतर्कों की भाषा से बोध हो जाता है कि जड़ता सरलता से बोल रहा है कि वक्रता मायाचारी से बोल रहा है? उभय-बुद्धि युक्त अज्ञों के कुतर्क होते हैं कि- शाकाहारी लोग फल-अनाज खाते हैं, वे भी तो जीव हैं और हम मांसाहारी मांस-खाते हैं, फिर दोनों में क्या भेद है?

31. Two kinds of evil men are there in the world, with crooked intellect and with simplistic intellect. Both are ignorant; both have fallacious arguments but their language indicates whether they are speaking out of simplicity or crookedness. Such evil men argue that a vegetarian eats fruit and grain which are living-beings, a non-vegetarian eats flesh; what is the difference?

---

32. एक व्यक्ति ऐसा भोलेपन से बोल रहा है; यथार्थ में वह सत्य को नहीं समझता है और दूसरा वक्रता से बोल रहा है। ऐसे लोगों से कहना है कि- यदि वनस्पति एवं गाय-बकरी आदि में तुम्हें एकता दिख रही है, फल-शाक की भांति यदि मांसादि को मानते हैं, तो फिर अपने माता-पिता, देवता-गुरु आदि को भी तो सामान्य रूप एकभूत देखो, उन्हें खाते हो क्या? खाओगे क्या? आज तक खाया है क्या? तुम सम्बंधियों को भिन्न मानते हो और गाय-सुअरादि को भिन्न देखते हो, सम्बंधियों को नहीं खाते हो वैसे ही पशु-पक्षियों को नहीं खाना चाहिए। पशु-पक्षी भी किसी माँ की सन्तान हैं। फल-सब्जी आदि वनस्पति मौसम-मौसम पर होती है, इन्हें प्राप्त करने के लिए वृक्षों को नष्ट नहीं किया जाता है। उसमें भी दयालु-करुणावान् लोग साधारण-वनस्पति नहीं खाते, वे मात्र प्रत्येक-अप्रतिष्ठित वनस्पति ही खाते हैं, जिससे वनस्पतिकायिक-जीव को भी कष्ट न हो। जैसे आपको अपने नख-बाल निकालने पर पीड़ा नहीं होती उसी प्रकार से वृक्षों एवं लताओं से फल निकालने पर अथवा स्वयं ही जमीन पर गिरने पर फलों को ग्रहण करने पर उन्हें पीड़ा नहीं देकर सावधानी से चुनकर लाया जा सकता है, परन्तु मांस बिना हत्या के, बिना पीड़ा पहुँचाए प्राप्त नहीं किया जा सकता। मांस तो जानवरों को मारकर उनका रक्त बहाकर ही प्राप्त किया जाता है। धन्य-धन्य-धन्य धरती के देवता, वीतरागी-श्रमण जो जीव-जन्तु तो दूर, वह घास पर भी पैर नहीं रखते हैं। उनकी दया-करुणा महान् है, इसलिए वे धरती पर भगवान् हैं।

32. One man speaks thus out of simplicity as he is ignorant of the reality, the other man speaks thus out of crookedness. The counter-argument is that if you see oneness between plants and animals (like cow and goat), i.e., between fruit-grain and flesh, your parents, deity and guru too have the same oneness; do you eat them, will you eat them? You consider your relations different from cows and pigs and, therefore, do not eat your relations. If you extend the argument further, it becomes clear that you should also not eat birds and animals. A bird or an animal too is the child of some mother. Fruits and vegetables grow in particular season and trees are not to be cut to obtain these. The men with pity and compassion do not eat all kinds of plants; to avoid pain to the plant-bodied living-beings, they take care to eat only plants that have one-soul-in-one-body *(pratyeka)* and not plants that have many-souls-in-one-body *(sāmānya)*. Out of the plants that have one-soul-in-one-body *(pratyeka)* they eat only the *apratiṣṭhita* type – those that are not the substratum of many non-evolved *(nigoda)* souls. As you are not pained by the removal of your nails and hair, the trees and plants too do not experience pain when ripe fruits are plucked or fall on their own. This way, vegetarian food is obtained with due care but flesh cannot be obtained without killing and causing pain to the living-beings. Flesh is obtained only after killing and blood-shedding of animals. Hail the unattached ascetics, the deities on this earth, who do not even walk on grass! Great is their pity and compassion; they are, therefore walking deities on this earth.

33. जड़ता-वक्रता-अज्ञानता का त्याग करो, पशु-पक्षियों को भी स्व-सन्तान स्व-बंधु जैसा प्रेम दो, वे भी पृथ्वी की गोद के लाल हैं, इसलिए आपके ही भाई-बंधु समान हैं। उन्हें भी कष्ट होता है, उनकी भी रक्षा करो।

33. Renounce simplistic, crooked and ignorant attitude. Give love to birds and animals like your own relations; these too are sons of Mother Earth. These too experience pain; save these.

---

34. कोई अल्प-मुग्ध-धी पुरुष ऐसा भी विचार न करे कि अनेक वनस्पति पौधों को कष्ट देने की अपेक्षा एवं अनेक छोटे-छोटे जंतुओं को पीड़ा देने की अपेक्षा; एक विशालकाय भैंसा-ऊँट आदि जानवर को मारकर खायेंगे तो उससे अन्य अनेकों जीवों की रक्षा हो जाएगी। ऐसा विचार भी पाप ही है। अनेक पर करुणा करके एक घात करना भी हिंसा है, एक की रक्षा के लिए अनेकों का घात करना भी हिंसा है। भैया! पंचेन्द्रिय विशालकाय जीव की हत्या करना तो दूर, अपितु उसकी हिंसा का भाव करना भी घोर-पाप है।

34. Some silly and ignorant man may think that it is better to kill and eat a single huge animal, like the buffalo or the camel, than to cause pain to many small plants and creatures. This way, he thinks, he will save lives of many living-beings! Such thought is evil. To kill one and save many is injury *(hiṃsā)*, and to kill many and save one, too, is injury *(hiṃsā)*. Therefore, O brother! Even the thought of killing a huge five-sensed animal is a grave evil; what to talk of actually killing it.

---

35. अपनी कुतर्क-छेनी को विराम देकर जगत्-हितकारी अहिंसा-जननी की गोद में बैठकर मधुर फल-रस, अनाज, घृत-दुग्ध का पान करो, रक्त-मांस का सेवन मत करो।

35. Giving rest to the chisel of your fallacious arguments, sit in the lap of world-benefitting Mother *Ahiṃsā* and consume sweet fruit, juice, grain, clarified butter and milk; do not consume blood and flesh.

---

36. दुग्ध को भी हिंसक मानने वाले कुछ लोग शंका करते हैं कि- दुग्ध भी तो शरीर से निकलता है वह भी पशु का अंग है। उसे तो आप अहिंसा-धर्म मानने वाले सेवन करते हैं, उसमें क्या हिंसा का दोष अथवा मांस खाने का दोष नहीं लगेगा? इसके लिए यह समाधान है कि- अहो आश्चर्य! आप लोग पूर्ण-तत्त्वज्ञान सत्यार्थ-बोध से शून्य हो, रक्त-मांस शरीर में है, यह सत्य है। उसी से शरीर निर्मित है। जैसे मल-मूत्र की ग्रन्थि शरीर में भिन्न है उसी प्रकार दुग्ध की ग्रन्थि भिन्न है। जैसे पशु अथवा मनुष्यनी के शरीर में उत्पन्न मूत्र, न खून है, न मांस है। शरीर के अन्दर होने पर भी शरीर के बाल न रक्त हैं, न मांस और कफ-श्लेष्मादि भी भिन्न तत्त्व हैं, इसी प्रकार से दुग्ध भिन्न तत्त्व है। गो-रस अर्थात् दुग्ध-घृत आदि का सेवन महा-पुरुषों ने भी किया है, परन्तु रक्त एवं मांस का सेवन नहीं किया।

36. One may express doubt that milk is produced from the body of the animal and, therefore, it is a part of the animal. Those who believe in the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* are seen to consume it; is it not injury *(hiṃsā)* and is it not the same as consuming flesh? No. Such thinking is devoid of the knowledge of the truth. It is true that blood and flesh are also in the body and the body comprises these. But as the glands that produce urine and faeces are different, the gland producing milk is different. Urine is altogether different from blood and flesh. Although part of the body, hairs are not blood, flesh or mucus and phlegm; in the same way, milk is different from all these elements. Even great men had consumed milk and clarified butter, not blood and flesh.

---

37. गाय-भैंस का दुग्ध नहीं निकाला जाएगा, तो वे कष्ट को प्राप्त होते हैं, वे अस्वस्थ हो जाएँगे और यदि उनका बछड़ा पूरा दूध पी लेगा तो वह भी बीमार हो जाएगा, इसलिए विवेकपूर्वक स्व-बुद्धि का प्रयोग करो। दुग्ध, दही, मट्ठा, घृत, शास्त्रानुसार मर्यादित हैं, उनका सेवन कर सकते हैं, वे रक्त-मांस नहीं हैं। जैसे दुग्ध नहीं निकालने पर गाय-भैंसादि को कष्ट होता है वैसे ही रक्त-मांस नहीं निकालने पर किसी भी जानवरों को कष्ट नहीं होता, अपितु उनके शरीर से रक्त-मांस के निकालने पर उनके प्राण ही जाते हैं, रक्त निकालने पर भी शरीर क्षीण होता है, ऐसा दुग्ध निकालने पर नहीं होता है।

37. If the cow or buffalo is not milked, it suffers pain and may get sick. Also, it is not good for the calf to drink the whole of the milk of cow or buffalo; it too may get sick. Use your discrimination. Consumption of milk, curd, buttermilk and clarified butter is permitted in the Scripture; these are not like blood or flesh. Not milking the cow or buffalo causes it pain but no animal suffers pain when its blood or flesh is not taken out; in fact, it dies when its blood or flesh is taken out. On taking out blood the body turns weak but not on taking out milk.

---

38. विवेकपूर्वक समझो, दुग्ध रक्त-मांस नहीं है, दुग्ध-तो-दुग्ध ही है। दुग्ध ग्रहण करने योग्य है, परन्तु रक्त, मांसादि किसी भी अवस्था में ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। रोग होने पर निरामिष-वनस्पति, धातु-रसायनमय औषधियों का ही सेवन करना चाहिए। प्राण-प्रियता के साथ अहिंसा धर्म-प्रिय भी होना चाहिए। अपने सुख के पीछे दूसरे को कष्ट देना यह न तो धार्मिकता ही है और न ही नैतिकता। स्व-प्राणों के राग में पर के प्राणों का घात मत करो, न कराओ और न ही अनुमोदना करो।

38. Understand with discrimination; milk is not blood or flesh. Milk is fit for consumption but blood and flesh are not fit for consumption in any circumstance. When sick, take only plant, mineral or chemical based medicine, free from animal blood and flesh. Love your life but also the dharma of non-injury *(ahiṃsā)*. To make

others suffer for your own welfare is neither dharma nor morality. Do not destroy, get destroyed or approve destruction of life of others for your own life.

---

39. इतना विशेष ध्यातव्य विषय है कि गाय-भैंसादि के बछड़ों को पर्याप्त दुग्ध अवश्य पिलाया जाए। जब-तक वह घास-चारा-दाना नहीं खाता तब-तक उसको दुग्ध पिलाया जावे, उसके साथ दुर्व्यवहार न किया जावे। माँ बछड़े की है, प्रथम अधिकार बछड़े का ही है, तदोपरान्त मालिक का। प्राकृतिक प्रक्रिया से ही दुग्ध निकाला जाय। करुणा पूर्वक दुग्ध निकालें। इस प्रकार दुग्ध सेवन उपादेय ही है, पर मांस सर्वथा हेय ही है।

39. Take special care that the calf gets enough milk to drink. So long as the calf is dependent on milk and not grown enough to eat grass, grain and fodder, do not ill-treat it and let it drink sufficient quantity of milk. After all, the cow is the mother of the calf; the first right on milk is that of the calf and not of the cow's owner. Milk should be taken out with due compassion only by natural method. Milk taken out in this manner can be consumed; flesh in any form is not fit for consumption.

मद्य व्यसन

Drinking Alcohol

40. मद्य, मदिरा, शराब, दारू ये सब एकार्थवाचक हैं। दुर्जन हो या सज्जन दोनों की ही पहचान सर्वप्रथम खान-पान से ही होती है। महान्-पुरुष सदैव अपने मन एवं भोजन को पवित्र रखते हैं। जिसका मन एवं भोजन पवित्र नहीं है उसका जीवन कभी भी पवित्र नहीं हो सकता, फिर वह जीवन में महानता को कैसे प्राप्त कर पाएगा? महान्, महात्मा, परमात्मा होना तो उसके लिए बहुत दुर्लभ है, वह श्रेष्ठ मानवता युक्त मानव ही नहीं। श्रेष्ठ-नर की श्रेष्ठता, मन शुद्धि एवं भोजन-शुद्धि पर ही आलम्बित है।

40. These words – *madya, madirā, śarāba, dārū* – are synonyms for alcoholic drink. The first mark of the evil or the noble man is his way of eating and drinking. Great men maintain auspiciousness of their mind and food. Those whose mind and food are not auspicious cannot lead an auspicious life; how can they ever attain greatness? To attain greatness or the status of great or supreme soul is extremely difficult for such men; they lack even humanity. The excellence of the man depends on the purity of his mind and food.

---

41. जीवन में किसी से प्रभावित होने के पूर्व उसके मन, भोजन एवं भाषण-शुद्धि का ज्ञान कर लेना। वह चाहे सामान्य व्यक्ति हो या विशेष नेता-अभिनेता, पंडित-पुजारी, साधु-संन्यासी, श्रोता-वक्ता, कवि-कलाकार

हो, उसकी मुख-शुद्धि, उदर-शुद्धि, मन:शुद्धि हो तो ही उसे स्वीकारना, अन्यथा स्व से अन्तर डालकर चलना। कुल-शुद्धि जो है वह भोजन एवं पेय-शुद्धि पर ही निर्भर है।

41. Before getting influenced by a man, find out about the purity of his mind, food and speech. Whether an ordinary man or a leader-actor, a learned priest, a saint, a listener-speaker or a poet-artist, accept him only if he has purity in his mouth, belly and mind; otherwise maintain distance from him. The purity of lineage too depends on the purity of food and drink.

---

42. जिनके खाद्य-स्वाद्य, लेय-पेय विकृत हो चुके उनका कुल भी विकृत समझो और विकृतों की संगति से विकृति ही आएगी। जैसे कोरोना रोगियों के सहवास-स्पर्श से कुल क्षय हो जाता है वैसे ही अशुद्ध-भोजन-पानी सेवन करने वाले के सहवास से धर्म-धन, नीति-न्याय, सत्यता, कुल-जाति की पवित्रता ये सब क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। साधुजन उन्हें किसी भी अवस्था में स्वीकार नहीं कर पाते। देश-राष्ट्र धर्म की रक्षा शुद्धाहार, शुद्ध-विहार, शुद्ध-विचार एवं शुद्ध-आचार से ही सम्भव है, अन्य कोई भिन्न उपाय नहीं है।

42. Those who consume food that is unfit for consumption, be it staple food, savory food, food-for-taste or for drinking, are of lowly lineage. Their company will corrupt you. As the company of the man suffering from the coronavirus destroys your family, the company of those who consume impure food and drink destroy the purity of your dharma, wealth, morality, justness, truthfulness, lineage and caste. Noble men do not accept them under any circumstance. Protection of the nation and the dharma is possible only through pure food, pure roaming, pure thought and pure conduct; there is no other way.

---

43. विश्व में बहुत-अंश में स्व-विषय-कषाय-व्यसन, भोगवादी-संस्कृति का प्रचार देव एवं धर्म के नाम पर बहुत हुआ है, लोगों ने स्व-विकारों को धर्म की चासनी में लपेटकर परोसा है, जैसे मांसाहार की पुष्टि के लिए पशुबलि का प्रचार। देवों को तर्पण करने, पशुबलि से स्वर्ग-मोक्ष मिलेगा, इस प्रकार असभ्य, असत्य, आगम-विरुद्ध भाषण कर स्व-पर का संसार-वर्धन, दु:ख बढ़ाने वाले लोग लोक में बहुत हैं।

43. In the name of deity and dharma many people in the world have propagated the culture of consumerism that comprises sense-indulgence, passions and addictions; in order to deceive others these people have presented own evil thoughts, like animal-sacrifice, in form of sugar-coated dharma. There are many people in the world who propagate their uncultured, untrue and non-scriptural ideas, like the dharma comprises gratification of the deities, and animal-sacrifice leads to liberation. Their ideas lead to enhanced world-wandering and suffering.

---

44. आश्चर्य होता है कि स्वयं को प्रतिबुद्ध समझने वाले लोग अन्ध-विश्वास के असीम गर्त में पड़ जाते हैं और उसे धर्म मानकर उन्मत्त हो रहे हैं। मदिरा जैसी सड़ी, बदबूदार वस्तु से अमृत-भोजी देवों को खुश करना चाहते हैं। जिनकी प्रज्ञा को अविवेक की स्यारिनी खा गई; ऐसे तत्त्व ज्ञान-शून्य लोग शराब के अचमन से आत्म-शुद्धि मानते हैं, मद्य के कुण्ड में स्नान कर पाप-क्षय मानते हैं। धर्म-स्थानों पर प्रसाद के रूप में शराब वितरण कर रहे हैं, घोर आश्चर्य ऐसे धर्मान्धों की अज्ञानता पर। कहीं-कहीं लोग धर्म और देवता के नाम पर भीड़ संग्रह कर स्वयं ही मुख से विचित्र-विचित्र ध्वनि निकालते हुए अंग-उपांगों को हिलाहिलाकर अज्ञ-प्राणियों को भ्रम में डालकर मद्यपान करते हैं। मुख से कहते हैं कि- देवता को मदिरा अर्पण करो और स्वयं पी लेते हैं। यह सामूहिक शराब-व्यसन पाप का ही कारण है। पीना तो दूर, छूना भी पाप है, हिंसा है। कोई-कोई देव-स्थान पर मदिरा पान कर चीखता-चिल्लाता है कि- रे भाई! वरदान माँगो। ऐसी अज्ञानता लोगों के मध्य सम्प्रति-काल में भी है। पढ़े-लिखे लोग भी जब अन्धविश्वास की ओर जाएँगे तो अन्य जीवों का क्या होगा?

44. It is surprising that even men who call themselves intelligent fall into the deep pit of superstitions; as if inebriated, they see dharma in superstitions. They wish to gratify deities, who are known to consume only nectar, by offering them rotten and foul-smelling liquor. Men ignorant of the reality and whose intellect has been consumed by the jackal of non-discrimination believe that drinking liquor leads to soul-purification and bathing in the pool of liquor destroys evil-karmas. Their level of ignorance and superstition is amazing; in places of worship they distribute liquor as a boon. At some places, people assemble in large numbers, yell and dance awkwardly, and pretend to offer liquor to the dharma and the deity. They do so to consume liquor themselves. This kind of collective drinking causes demerit only. Just to touch liquor is demerit and an act of injury *(hiṃsā)*. In order to gratify the deity, the practice of drinking liquor at places of worship is prevalent even today. If the so-called educated men fall into the pit of such superstitions, what will happen to the others?

---

45. अहो मित्र! समझो, सत्यार्थ-बोध को प्राप्त करो। देवों को अमृत-पान से श्रेष्ठ सुन्दर भला अन्य क्या हो सकता है, क्या उस अमृत को छोड़कर देव शराब पियेंगे! इससे बड़ी देवों की मूढ़ता क्या होगी? एक बार मदिरा की उत्पत्ति पर तो विचार कर लो, फल-फूल, खाद्य-द्रव्यों को सड़ा-गलाकर मदिरा का उत्पादन होता है, जिसमें कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है। अंगूर, महुआ, गुड़, जवा, गन्ना, खजूरादि पदार्थों से शराब का उत्पादन किया जाता है। अहिंसा-धर्म के पालकों को किसी भी प्रकार की मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिए। उच्च कुलोत्पन्नों की पहचान मदिरा पीना नहीं, अपितु शुद्ध-दुग्ध पान करना है। कुलीन पुरुषों को शुद्ध शरबत, ठंडाई, स्वच्छ आम्र-फलों के रसों का पान करना चाहिए। जिससे धन-धान्य, यश की हानि होती है ऐसी मदिरादि को छोड़ देना चाहिए। शराब जैसे अन्य जो भी नशीले पेय हैं उन सब का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग कर देना चाहिए, जिससे मुख-शुद्धि, कुल-शुद्धि सुरक्षित रह सके। शराबी नशे में सब-कुछ भूल जाता है और फिर वह कभी माँ को पत्नी कहता है, तो कभी पत्नी को माँ कहता है, इस प्रकार वह पवित्र-सम्बंधों में कलंक लगाता रहता है।

45. O friend! Understand the truth. What can be more pleasing to the deities for consumption than nectar; leaving nectar, would they ever drink liquor? Think about the way liquor is produced; its production involves rotting of fruits, flowers and grains, causing destruction of millions and millions of living-beings. Grape, *mahuā*, molasses, *javā*, sugarcane, date-palm, etc., are used to produce liquor. Those who follow the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* should never consume liquor. The mark of high-lineage is not consumption of liquor but pure milk. Noble men consume only pure soft-drinks, like cool *ṭhandāi* and fruit juices. Renounce the consumption of liquor which causes destruction of wealth and renown. For protecting the purity of your mouth and lineage renounce for life all inebriating drinks. The inebriated man loses his power of discrimination and sometime calls the mother his wife and the wife his mother. This way he keeps on maligning even sublime relations.

---

46. शराबी की बहुत दुर्दशा होती है, वह नशे में नाली में गिर पड़ता है, मार्ग पर ही पड़ा रहता है, उसके मुख को श्वान चाटते हैं तथा लघु-शंका भी कर देते हैं। शराबी के घर में कभी शान्ति नहीं होती है, मदिरा पान करने वाला अपनी माँ एवं पत्नी के आभूषण-मंगलसूत्र भी बेच देता है। धनपति भी व्यसन के कारण खाकपति हो जाता है। शराबी पर पुत्र-पत्नी, माता-पिता भी विश्वास नहीं करते हैं। एक शराबी के कारण पूरा-परिवार परेशान रहता है, दु:खी रहता है। सम्बंधी-जन भी शराबी के घर जाना पसंद नहीं करते हैं।

46. The plight of the drunkard is woeful; he is seen falling into the gutter, lying on the street, a dog licking his face and urinating on him. There is no peacefulness in the home of the drunkard; he is seen selling ornaments and sacred nuptial-thread of his mother and wife. Due to the habit of drinking, a wealthy man becomes a pauper. No one, even his son, wife, mother and father, trust the drunkard. The whole family remains disturbed due to him. Even the relatives shy away from visiting his house.

---

47. उच्च-कुलीन लोग शराब पीना तो दूर है, मदिरा के प्याले को स्पर्श करना भी पाप मानते हैं। आप जीवन में सुख-शान्ति चाहते हैं, उभय-लोक के सुख की भावना है तो शराब पीना ही नहीं शराब पीने वालों के साथ रहने का भी त्याग करो। उनके पात्रों का पानी भी नहीं पीना। इतिहास साक्षी है, शराब के नशे के कारण द्वारका नगर भस्म हो गया, राजकुमारों सहित सम्पूर्ण नगरवासी अग्नि में जलकर मृत्यु को प्राप्त हुए। हे मित्र! न बोतल की मदिरा पियो, न मोह की मदिरा पियो।

47. What to talk of drinking it, noble men consider it an evil to even touch the cup of wine. If you want peacefulness in life and happiness in both worlds, do not drink alcohol and leave the company of those who drink it. Do not use their cups to even drink water. History is a witness; the town of Dwārkā, along with its princes and

citizens, was burnt to ashes due to inebriation of the princes. Do not get inebriated either by the wine of the bottle or of delusion.

---

48. एकमात्र परम-ज्ञायक स्वभावी चैतन्य ज्ञान-घन निज आत्म-प्रभु की शरण लो; वही लोक में सर्वश्रेष्ठ एवं सुन्दर है। अन्य नहीं, अन्यथा नहीं। जितने जीव आज तक सिद्ध हुए हैं, भविष्य काल में होंगे, वर्तमान में विदेह क्षेत्र से सिद्ध हो रहे हैं वे सब निज-ज्ञायक स्वभावी भगवान्-आत्मा के आलम्बन से ही हुए, हो रहे हैं। नशीले द्रव्यों की, परिणामों में मोह तथा कषाय-भावों की मदिरा का त्याग करके ही हुए हैं। यदि आपको भी सिद्धि चाहिए तो उभय-मद का त्याग करो।

48. Take refuge only in own conscious-soul whose nature is to know and which owns the wealth of knowledge; it is the most beautiful and finest thing in the world. All those who have attained liberation, will attain liberation and are attaining liberation from the region of Videha, have taken, will take and are taking recourse to the own knowing-soul. They renounce all external inebriating objects, like alcohol, as well as internal inebriating objects, like delusion and passions. If you wish for liberation, renounce both kinds of inebriating objects.

वेश्या व्यसन

Sexual Intercourse With A Harlot

49. जिसका शील पूर्ण भंग है, अनेक पुरुषों को जो वासना पूर्ति हेतु पति बना चुकी है, धन के लिए जो अपने तन को सौंप चुकी है, जिसका यही व्यापार है, ऐसी नगर-नार, बाजारू नारी वेश्या कहलाती है। अनेकों से दूषित नारी का संग सज्जन-पुरुष स्वप्न में भी नहीं करते हैं। चाहे स्वदेश में हों, चाहे परदेश में, परन्तु अपनी विवाहित नारी को छोड़कर संसार की अन्य स्त्रियों का पूर्ण त्याग कर स्वदार-संतोष व्रत का पालन कर, अपने शील धर्म की रक्षा करते हैं। उन्हें इहलोक एवं परलोक के दु:खों से भय सदा रहता है।

49. She is totally without character, she has become the wife of many men for the sake of satisfying their lust, she has dedicated her body to money, selling her body is business for her, and she is available for money to all; such a woman is a harlot. Noble men do not wish, even in their dreams, the company of such woman, blemished by many men. Whether in own country or in a foreign land, they protect assiduously their vow of satisfaction in just own-wife and renounce all other women. They are always fearful of misery in this world and the next.

---

50. वेश्यावृत्ति से इस लोक में अपवाद तथा परलोक में दुर्गति होती है। वेश्या-सेवी की स्व-पत्नी कभी भी प्रसन्न नहीं रहती, उसके जीवन में दु:ख की घड़ियाँ घटती रहती हैं। वेश्यासेवी को स्व-संतान के सामने सिर नीचा करके जीना पड़ता है। उसे श्रेष्ठ जनों के मध्य कभी भी सम्मान प्राप्त नहीं होता है। जब-जब वह शान्त बैठता है तब-तब वह अपने को हीन-भावना से पीड़ित पाता है।

50. The addiction of going to a harlot brings disrepute in this world and evil state-of-existence in the next. The wife of the man who goes to a harlot is never happy. Such a man has to remain shamefaced in front of his own children. He does not get respect among the nobility. When calm, he suffers from the inferiority complex.

---

51. मित्रो! वेश्याएँ तन से कितनी भी सुन्दर दिखें, परन्तु उनका मन कभी सुन्दर नहीं होता। उनकी प्रीति पुरुष पर नहीं, अपितु पुरुष के धन पर होती है। जब तक प्रेमी के पास धन है तभी तक वेश्या का प्रेम है। धनहीन को वेश्या ऐसे छोड़ देती है जैसे गन्ने को रस निकालकर दुकानदार फेंक देता है। वेश्या की किसी भी व्यक्ति पर स्थाई प्रीति नहीं होती है, एक पुरुष के बाद वह शीघ्र ही दूसरे पुरुष को चाहती है। वेश्या का प्रेम नहीं होता, वह मात्र व्यापार करती है। वेश्या सेवन से एड्स जैसे असाध्य रोग हो जाते हैं, फिर वह व्यक्ति घुट-घुट कर मरता है।

51. Friends! Howsoever beautiful the body of the harlot may appear her mind is never beautiful. Her love is not for the man but for his money. So long as the man has money she loves him. She leaves the poor man as bagasse is thrown away after extracting the juice of the sugarcane. She does not love a man permanently; she keeps on changing men. She does not love; she does only business. Going to a harlot causes intractable diseases like the AIDS; the man gets a painful death.

---

52. अहो आश्चर्य! इतना सब कुछ जानने के उपरान्त भी गृद्धता-युक्त विट-पुरुष श्वानवत प्रवृत्ति करता है। जैसे खुजेला-श्वान कुतिया के पीछे जिह्वा निकाले घूमता रहता है वैसे ही कामी वेश्याओं के भोगे झूठे-तन के लिए घूमता रहता है। वेश्यासेवी स्ववंश का शत्रु होता है; जो व्यर्थ में ही अपने वीर्य का व्यय करता है। वही व्यक्ति यदि स्वदार-संतोष व्रत का पालन करता, वह स्वयं स्वस्थ रहता और श्रेष्ठ स्वस्थ-संतान को जन्म देता जिससे सनातन धर्म की परम्परा का विकास होता।

52. What a surprise! Even after knowing all this, the voluptuous man engages in a behaviour fit for a dog. Just as the dog infected with scabies and with its tongue out chases a bitch, in the same way, the luscious man roams about in search of the body of the harlot that has already been enjoyed by many other men. The man who goes to the harlot is the enemy of own family; he expends his semen uselessly. If the man had observed the vow of satisfaction in just own-wife, he would have been healthy and given birth to a healthy offspring to further the tradition of the eternal dharma.

---

53. धन्य-धन्य-धन्य वे नर, श्रावक, गृहस्थ जो अपनी विवाहिता नारी को ही मात्र अपनी पत्नी मानते हैं तथा उसमें संयम के साथ संतुष्ट रहते हैं, अवशेष जगति की अन्य नारियों पर जननी, भग्नीवत दृष्टि रखते हैं। विद्वान्, कवि, न्यायाचार्य, वाग्मी, साहित्याचार्य, धर्माचार्य तभी तक सुन्दर लगते हैं, जब तक वे पापाचार काम से पीड़ित नहीं हुए। सर्व-धर्मों में शील धर्म प्रधान-धर्म है, उसी का पालन करो। महा दु:खों की खान वेश्या-सेवन का त्याग करो। अशुभ कर्मी स्वयं के घर में भी पूज्यता नहीं पाता, फिर वह जगत्-पूज्य कैसे हो सकता है? सर्व-ग्रंथों का सार 'सत्यार्थ-बोध' समीचीन धर्म का पालन करने से ही आत्म-कल्याण होगा, अन्य किसी भी पापाचार, छल-कपट, ईर्ष्या-भाव, कामुकता से आत्म-हित सम्भव नहीं है। सम्पूर्ण श्रेष्ठ-विचार आत्मानुशासक भव्यवर पुरुष के अन्दर ही आते हैं। स्व-भव्यता का निर्णय भी आप स्वयं कर लें। जैसी भाव दशा होगी वैसी ही भविष्य की पर्याय होगी, फिर उसे कोई भी विश्व की शक्ति रोक नहीं सकती, आपकी सम्पूर्ण-व्यवस्था आपके भावों पर ही निर्भर है।

53. Hail those householders who remain satisfied, with due restraint, only with their wife, and who consider all other women their mothers and sisters. The wise, the poet, the logician, the preacher, the man of letters and the preceptor look charming so long as they are not bitten by lustful craving. To maintain sexual morality is the excellent dharma; observe this dharma. Abstain from promiscuity as it is the mine of great misery. The man who indulges in evil activities is not revered by own family; how can he be revered by the world? For soul-development, follow the right dharma based on truth which is the essence of all scriptural texts; evil conduct, deceitfulness, jealousy and lust do not lead to soul-development. The mind of the potential *(bhavya)* soul that observes soul-discipline is home to all kinds of excellent thoughts. Decide yourself if you are a potential *(bhavya)* soul. Your future state-of-existence depends on your dispositions; your entire system depends wholly on your dispositions, not on any external power.

---

54. वेश्या में आसक्त चारुदत्त की कथा प्रसिद्ध है। सेठ की सम्पूर्ण सम्पत्ति वेश्या के घर पहुँच गई। जब वेश्या की माँ ने देखा कि इसके घर कुछ नहीं बचा, तो अपनी पुत्री को समझाया कि इसे छोड़ दे, पर वेश्या भी चारुदत्त के प्रति आसक्त हो चुकी थी, इसलिए वह छोड़ने को तैयार नहीं थी। चारुदत्त ने अपने माता-पिता के घर जाना ही छोड़ दिया था, वह वेश्या के ही घर में वास करने लगा था। चारुदत्त मादक पदार्थ का सेवन कर विश्राम कर रहा था, तब वसन्तसेना वेश्या की माँ ने उसे बोरे में भरकर शौचालय में पटकवा दिया। प्रात: सुअर ने बोरे में मुख मारा तो चारुदत्त बोरे में पड़ा-पड़ा ही कहता है कि अरी वसन्तसेना क्यों जगा रही हो, मुझे सोने दो। अहो! कोटि-कोटि स्वर्ण मुद्राओं का स्वामी आज वेश्या-व्यसन के कारण शौचालय में पड़ा है!

54. The story of *Seṭha* Cārudatta, who got attached to a harlot, is famous. The harlot slowly sneaked the entire wealth of Cārudatta. As Cārudatta became broke, the mother of the harlot asked her daughter to leave him. But the harlot had also developed some attachment for Cārudatta and so she refused to do so. Cārudatta

stopped going to his parents' home and started living in the home of the harlot. One night, when the drunken Cārudatta was sleeping, the mother of harlot Vasantasenā got him packed in a bag and got him thrown in a toilet outside. In the morning, as a pig started to lick his face, he groaned, "O Vasantasenā! Don't wake me up; let me sleep." Alas! Due to his addiction of going to a harlot, the owner of millions and millions of gold coins was sleeping today in a toilet!

शिकार व्यसन

Hunting

55. शौक के पीछे निरीह, निरपराध मूक-प्राणियों को मार देना शिकार है। दूसरे के प्राण-हरण कर क्या वीरता दिखाना? वीर्यवान, बलवान तब कहलाओगे जब रुग्ण-पीड़ित प्राणियों की प्राण रक्षा करोगे। मूक पशु-पक्षियों की हत्या करने वाला कायर पुरुष होता है। पशु, नारी, निर्बलों का वध करने वाला कायर ही होता है। शिकारी क्रूर होता है, जो मुख में तृण दबाए हिरण को भी मार देता है, वीर पुरुष जिसका हृदय दया-धर्म से आर्द्र है वह तो प्रयत्न-पूर्वक मूक-प्राणियों की रक्षा करता है। शिकारी कभी भी सुख-शान्ति का जीवन नहीं जी पाएगा, वह पर को पीड़ा देकर स्वयं कैसे सुखी हो सकता है? निरपराध जीवों का घात मत करो, वे जीव भी जीना चाहते हैं, जैसे आप जीना चाहते हो। जीवों को मारने की अपेक्षा रक्षा करने में अपनी शक्ति का व्यय करो, किसी माँ के लालों को मत मारो। कर्म तुम्हे भी नहीं छोड़ेगा। आप सबल हो, इसलिए आज बलहीनों पर प्रहार कर रहे हो, कभी आप भी बलहीन होंगे तब आप पर होंगे प्रहार। मित्र! कर्म-फल भोगने के लिए तैयार रहना। आज तुम पर के रक्त बहाने में हर्ष मना रहे हो, पर वह दिन भी कभी आएगा जब सिंह-अजगर जैसे जीवों के तुम ग्रास बनोगे, राज-दण्ड को प्राप्त करोगे, तब फाँसी के फँदे पर तुम्हे अपने पापों की याद आएगी कि हमने कितने प्राणियों का गला घोंटा, कितनों के अंग-अंग छिन्न-भिन्न किए। तब तुम्हे प्राण-हरण की पीड़ा का बोध होगा। ब्रह्मदत्त चक्री शिकार व्यसन के कारण नरक गति को प्राप्त हुआ।

55. Hunting involves killing, for own-pleasure, the meek, innocent and mute animals. What bravery is there in killing others? Only by protecting the sick and the grieving will you be called strong and virile. The one who kills mute birds and animals is a coward. Only a coward kills animals, women and the weak. The hunter is merciless as he does not hesitate in killing a deer with a blade of grass in its mouth; on the other hand, the brave man whose heart is moist with the dharma of pity makes effort to protect mute animals. The hunter will never be able to lead a happy life; how can the one who makes others suffer lead a happy life? Do not kill innocent animals as these too want to live. Use your strength and energy in protecting the living-beings; do not kill the offspring of a mother. The karmas will not spare you. Today you are strong and therefore striking others; the others will strike you when you turn weak.

Friend! Be prepared to experience the fruition of karmas. Today you are relishing the shedding of blood of others; the day will come when you will get into the mouth of the lion or the python, or hanged as part of state-punishment. You will then remember your evil deeds as to how many living-beings you have strangulated and of how many living-beings you have cut off limbs. You will then realize the suffering involved in killing. Brahmadatta, the king-of-kings *(cakrī)*, had to go to the hell due to his addiction for hunting.

---

56. यदि तुम दूसरों की फँसाओगे, उनके प्राण-हरण करोगे तो निश्चित ही तुम्हें उनका कटु-फल भोगना पड़ेगा। आपको जीने का अधिकार है; तो दूसरों को जीने देना कर्तव्य भी समझना चाहिए। दूसरे के प्राण-हरण करके अपनी दुर्गति का आमन्त्रण मत करो। मूक-प्राणियों का हरण कर अपने लिए नरक का द्वार मत खोलो। जब कोई किसी जानवर को मारता है तो उसकी संतान माँ की याद में तड़फ-तड़फकर मर जाती है, तब उस शिकारी को उभय-हिंसा का पाप लगता है। शिकार एक क्रूर-कृत्य है, जो दुर्गति का कारण है।

56. You will certainly have to suffer from the fruition of your karmas if you entrap and kill others. You have the right to your life; to let others live is your duty. Do not invite an evil state-of-existence by killing others. Do not open the door of the hell for yourself. When a hunter kills an animal its offspring too writhes and dies; the hunter suffers the evil of killing both. Hunting is a cruel sport that results in an evil state-of-existence.

चोरी व्यसन

Stealing

57. किसी भी रखी हुई, पड़ी हुई, गिरी हुई वस्तु को उसकी स्वीकृति के बिना ग्रहण करना चोरी है। वस्तु के स्वामी की आज्ञा के बिना, कोई भी पर की वस्तु का प्रयोग करता है, तो वह चोरी है। जब आप स्वामी नहीं हो तो प्रयोक्ता कैसे?

57. To take, without permission, any article that has been kept, lost or dropped is stealing. To use, without permission of the owner, any article of another too is stealing. When you are not the owner, how can you use the article?

---

58. कुछ लोग किसी की पड़ी हुई वस्तु को उठा लेते हैं और उसका दूसरे को दान कर देते हैं, तो क्या ऐसा करना उचित है? नहीं, जिस वस्तु पर आपका अधिकार नहीं है, उसका दान कैसा? पर-वस्तु का दान नहीं होता है, एकमात्र स्व-वस्तु को देना ही दान संज्ञा को प्राप्त होता है, वह भी स्व-पर कल्याण के लिए। अधिकार रहित वस्तु का देना, दान नहीं है, वह तो अपराध ही है। पर-द्रव्य का प्रयोग किसी भी निमित्त से करो; वह चोरी है।

58. Some men pick up a lost article and gift it to others; is it appropriate? No. How can you gift an article that is not yours? Gifting someone a thing that belongs to others is not *'dāna'*; *dāna* means gifting, for benefit of self and others, something that belongs to you. To give something that does not belong to you is not *dāna;* it is an offence.

---

59. दूसरे के मंदिरों, तीर्थों, मूर्तियों पर अपना स्वामित्व स्थापित करना चोरी ही है। पर के लिखित ग्रंथों पर अपनी प्रशस्ति लिखकर अथवा लिखवाकर स्व-स्वामित्व बताना साहित्य की चोरी है। किसी के प्राचीन धर्म स्थलों पर अधिकार कर लेना यह पुरातत्व की चोरी है, संस्कृति की चोरी है।

59. To acquire ownership of temples, places of pilgrimage and idols of others constitutes theft. To publish in your name the scriptures composed by others is the theft of literature. To obtain rights on ancient places of worship of others is the theft of archaeology and culture.

---

60. धर्मात्मा की मुद्रा और भेष बनाकर जीने वाले कोटि-कोटि मनुष्य हैं, पर अस्तेय अचौर्य-व्रत के साथ जीने वाले सज्जन बहुत ही कम हैं। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें मालूम है कि हमारे पूर्वजों ने चोरी की थी, वह धन-धरती, तीर्थ क्षेत्र, मंदिर आज हमारे पास हैं, फिर भी उपयोग कर रहे हैं, वहाँ के पुजारी, पंडित, स्वामी बनकर बैठे हैं, यह सब चोरी की सामग्री प्रयोग करने वाले तस्कर हैं।

60. There are millions and millions who live under the guise of religious men but few are those noble men who live with the vow of non-stealing. There are some people who are aware that their ancestors had committed theft and as a result today they own land, places of pilgrimage and temples. They sit in these places as priests and owners; such men, using the stolen property, are smugglers.

---

61. शासन पर जोर देकर आप अधिकार जमा सकते हो, भोग कर सकते हो, दूसरों की संस्कृति पर अपना स्वामित्व दिखा सकते हो, परन्तु स्वयं के हृदय से मिलो, क्या आपका हृदय सत्य के आसन पर विराजमान है? पर-वस्तु छोड़ नहीं पा रहे तो कम-से-कम सत्य को स्वीकार ही कर लो। सत्यवादी तो करुणाशील, अहिंसक,

स्याद्वादी, अनेकान्तवादी होता है। यदि एक बार भी जीवन में 'सत्यार्थ-बोध' हो जाए तो कभी-न-कभी सत्य जीवनचर्या व वाणी-सत्यार्थ होगी, यह परम सत्य है। सदियाँ बीत जाने पर भी पर-वस्तु तो पर ही रहेगी, वह निज-वस्तु नहीं हो सकती है।

61. You may acquire rights, enjoy the places and own the culture of others by pressurizing administration, but meet your own heart; is it sitting on the throne of truth? If you are not able to leave the property of others, at least accept the truth. The truthful man is full of compassion, non-injury, and believes in the doctrines of conditional predication and multiplicity of the reality. It is the supreme truth that if only once a man comes to know the truth, he shall, at some time, adopt right lifestyle and right speech. Even after a lapse of centuries, the object of the other will remain as such; it will not become yours.

---

62. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति प्राणों से भी प्रिय होती है, व्यक्ति धन-अर्जन करने के लिए सात-समुद्रों को भी पार कर जाता है, दिन-रात अर्थ-पुरुषार्थ में लगाता है, तब कहीं पुण्य-योग, लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से व्यक्ति को अर्थ लाभ होता है। धन-बल पर मानव अपनी शक्ति दिखाता है। जो व्यक्ति दूसरे के धन का हरण करता है, मानो वह उसके प्राणों का ही हरण करता है। आगम में उपचार से धन को ग्यारहवाँ प्राण कहा है।

62. Man loves his wealth more than life. He travels across seven oceans, toils day and night and then on strength of his previously earned merit and destruction-cum-subsidence of karmas that obstruct gain, he is somehow able to earn money. Money is a kind of strength for him. The man who takes away money of another man effectively takes away his life. In the Scripture, money has conventionally been called the eleventh life-principle *(prāṇa)* of man.

---

63. अहिंसा धर्म की रक्षा के लिए अचौर्यव्रत के पालन के लिए किसी भी व्यक्ति के धन-धान्य, नारी, भूमि-तीर्थ, ग्रंथ, प्रतिमा-मंदिरों पर अनधिकृत अधिकार मत करो, अपनी सत्य-सज्जनता का परिचय दो, यही भारतीय-संस्कृति की भूतार्थ पहचान है। पाप करने वाले को पापी के भेष में ही पाप करना चाहिए, धर्मात्मा के भेष में पाप करने से सर्व-साधुओं पर शंका होती है। दुराचारी के द्वारा धर्म की बदनामी नहीं होती, अपितु जो धर्मात्मा भेषधारी हैं उनके द्वारा धर्म-मार्ग बदनाम होता है। धर्मात्मा के भेष में पाप करने से अन्य सभी सच्चे, धर्मात्माओं के प्रति भी आस्था समाप्त हो जाती है।

63. To protect the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* and to observe the vow of non-stealing *(acaurya)*, do not acquire others' wealth and grain, women, land, places of

pilgrimage, idols and temples. Exhibit your truthfulness and nobility; this is the eternal Indian culture. The evil-doer should indulge in evil only as an evil man; if he does so under the guise of a religious man, all religious men tend to lose credibility. The path of dharma is not stained by the evil-doers but by those who indulge in evil under the guise of religious men. True religious men lose credibility if evil-doers engage in evil under the guise of religious men.

---

64. यदि धर्म-मार्ग आपको कठिन लगता है, संयम के पालन में अपने-आपको असमर्थ महसूस करते हैं, कामनाओं-वासनाओं पर आपका नियंत्रण नहीं है, तो धर्म की बदनामी मत करो, अपितु स्वगुरु व समाज से प्रार्थना कर लो कि मेरे द्वारा श्रेष्ठ-मार्ग पर चलना कठिन हो रहा है, मैं असमर्थ हूँ, मैं धर्मात्मा के भेष में मायाचारी का जीवन नहीं जीना चाहता हूँ। मेरे शिथिलाचार, अनाचार के कारण अन्य धर्मात्माओं के प्रति लोगों की आस्था समाप्त होगी, लोकापवाद बढ़ेगा, इसलिए श्री संघ-नायक एवं समाज के समक्ष मैं गृहस्थ-धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ। इससे मात्र स्व-सामर्थ्यहीनता का ही परिचय होगा, परन्तु लोक में मंगलोत्तम शरणभूत धर्म का उपहास तो नहीं होगा।

64. If you find it difficult to tread the path of dharma, to observe self-restraint and to control your lust and cravings, confess your inability to your guru and society. Confess your inability to lead the difficult life of the ascetic, and tell them that you would not like to deceive others under the guise of an ascetic. Tell them that you would prefer to adopt the dharma of the householder as your neglect of duty and loose conduct as an ascetic will result in people losing trust in all ascetics and also in their disparage. Although this will bring to the fore your inability to observe the dharma of the ascetic, it will save the most-auspicious and worth-following dharma from ridicule.

---

65. इस विधि से किसी साधक ने गृहस्थ-धर्म स्वीकार कर भी लिया, तो भी सत्य-धर्म के प्रति अनास्था उत्पन्न नहीं होगी और अन्य धर्मात्माओं के प्रति अश्रद्धान भी नहीं होगा और छल-कपट भी नहीं कहलाएगा। जगत्-पूज्य, जगत्-हितकारी मोक्षमार्ग मोक्षमार्गियों के द्वारा अखण्ड चलता रहेगा।

65. If an ascetic accepts the dharma of the householder in the aforesaid manner, the true dharma and the true ascetics will be saved from people's distrust; also, it will save the person from the evil of deceiving others. This way, the true ascetics will continue to tread the most-revered and worthy path to liberation.

---

66. वे लोग लोक में महा-निन्दनीय हैं जो कामनाओं, वासनाओं को संयमित किए बिना साधु-भेष को धारण कर अशुभ-कर्म में संलग्न हैं, पर अहं के कारण भेष नहीं छोड़ते, अशुभ-कर्म भी नहीं छोड़ते और लोक प्रतिष्ठा चाहते हैं। ऐसे दुराचारी, पापियों की कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं बचती है और न ही आत्म-प्रतिष्ठा ही बचती है। ऐसे बकवृत्ति वाले जीव पृथ्वी पर भारभूत हैं।

66. Highly reprehensible are the men who adopt the marks of an ascetic without first restraining their lust and cravings, and continue engaging in inauspicious acts even after adopting asceticism. They leave neither asceticism nor inauspicious acts but wish for world-fame. Such wicked and evil men not only lose all prestige in the world, but also self-prestige. Such hypocrites are a burden on the earth.

---

67. ऐसा ही पृथ्वी पर भार-भूत एक तपस्वी अपने शिष्यों के साथ दिन में पंचाग्नि तप का ढोंग रचाता था और रात्रि में शिष्य-मण्डली के साथ नगर में बहुमूल्य द्रव्यों की चोरी कर, आश्रम के अन्दर अंधकूप में रखता था। ऐसा करते-करते बहुत दिन व्यतीत हो गए, नगरवासी चोरी की घटनाओं से दु:खी होकर राज-दरबार में पहुँचे। सम्राट् से प्रार्थना की, 'स्वामी आप ही हमारे रक्षक-देव हैं। हे देव! नगर में निरन्तर-निरन्तर चोरियाँ हो रही हैं, पर चोर का पता नहीं चल रहा है। हमारा धन-सम्पत्ति हरण हो गया, सम्पत्ति के अभाव में गृहस्थी कैसे चलेगी? महाराज आप ही उपाय बताएँ।' राजा ने सम्पूर्ण-प्रजा को सान्त्वना देकर विदा किया और कोतवाल को बुलाकर आदेश दिया कि सात दिनों के अन्दर-अन्दर चोर एवं चोरी के द्रव्य का पता करें। राजाज्ञा प्राप्त कर कोतवाल ने चोर की खोज प्रारम्भ की। चोर तो तपस्वी बनकर पूज्यता को प्राप्त हो रहा था।

एक दिन कोतवाल के द्वार पर एक भिखारी आया, उसने भीख माँगी तो कोतवाल ने कहा कि- 'मैं स्वयं ही परेशान हूँ, तुम्हें कहाँ भीख दूँ।' तब भिखारी ने पूछा, 'चिन्ता का कारण क्या है?' कोतवाल बोला, 'अरे भाई! नगर में कई दिनों से चोरी हो रही हैं, पर चोर का पता ही नहीं चल रहा है।' भिखारी कहता है, 'आपके नगर के आश्रम में जो तपस्वी है वही चोर है।' कोतवाल कहता है कि- 'ऐसा मत कहो।' भिखारी बोला, 'मेरा विश्वास करो, वही चोर है।' कोतवाल बोला, 'इसकी प्रमाणिकता क्या है?' तब भिखारी ने कहा कि वह कल प्रात: आपको बतलाएँगे जिससे कोतवाल को शान्ति मिली।

भिखारी शाम को अंधे का भेष बनाकर आश्रम पहुँचा। बोला, 'मुझे कुछ दिखता नहीं, रात्रि विश्राम हेतु आश्रम में ठहरना चाहता हूँ, आप मुझे आश्रम में स्थान दो, भिखारी पर दया करो।' साधु वेषधारी तपस्वियों ने उसको स्थान दे दिया। अर्द्धरात्रि को तपस्वियों के समूह ने भेष बदला और नगर में चोरी करने के लिए चल पड़े। भिखारी सब देखता रहा, उन तपस्वियों ने चोरी का धन लाकर अंधकूप में डाल दिया और प्रात: तपस्या में लग गए। भिखारी प्रात: उठा और आवाज लगाता है कि अब मैं जाता हूँ। वह लाठी टेकते-टेकते कोतवाल के यहाँ पहुँचा और वहाँ चोरों का रहस्योद्घाटन किया। भिखारी को उचित पुरस्कार दिया गया।

कोतवाल ने सिपाहियों के साथ आश्रम घेर लिया और अंधकूप से सम्पूर्ण सम्पत्ति निकालकर उन तपस्वियों सहित राज-दरबार में प्रस्तुत किया। राजा देखकर आश्चर्य में पड़ गया। राजा कहता है कि- 'ओहो! मायावी, पापीजन कुछ भी कर सकते हैं। तुम्हे साधु-भेष धारण कर ऐसा कुकर्म नहीं करना था। आपकी ऐसी प्रवृत्ति से

प्रजा का साधुओं के प्रति विश्वास समाप्त हो जाएगा।' राजा ने चोरों को कठोर दण्ड से दण्डित किया। पश्चात् तपस्वी एवं उनके चेले अशुभ-परिणामों के कारण मरण कर दुर्गति को प्राप्त हुए। सत्य है, अशुभ कर्मों का फल अशुभ ही होता है। बीज के अनुसार वृक्ष होता है और तद्रूप ही फल की प्राप्ति होती है। भेष कुछ भी हो, पर कर्म जैसे करोगे फल तो वैसा भोगना ही पड़ेगा। चोरी का फल तपस्वियों को भोगना ही पड़ा, इसलिए ऐसा कोई न सोच ले कि धर्म के भेष में कुछ भी कर सकते हैं। कर्म-सिद्धान्त दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर देता है। वर्तमान में भी जिन्होंने धर्मात्मा के भेष में खोटे कार्य किए उन्हें जेल जाना पड़ा। यदि आपको अपयश, कष्ट, दुर्गति से बचना है तो अशुभ कर्म मत करो।

67. Such an ascetic, a burden on the earth, living with his disciples in a secluded hermitage used to feign observance of austerities during the daytime and go to the town during the night to steal valuable goods. He used to store the stolen goods in a deep pit in his hermitage. This continued for many days and the grieved citizens approached the king, "O lord! You are our protector. The town is continuously witnessing thefts but the thief is not to be found. Now we are all broke. How will we be able to sustain ourselves? Please help us." The king consoled the citizens and ordered the police-sergeant to find out, within seven days, the thief and the stolen goods. The police-sergeant started his work. The thief was a highly revered man-of-austerities!

One day, a beggar visited the house of the police-sergeant for alms. The police-sergeant said to him, "I am myself greatly troubled; how can I give you alms?" When the beggar asked him the reason for his trouble the police-sergeant explained that the town is witnessing thefts since many days now and the thief is still untraceable. The beggar told the police-sergeant that the ascetic living in the secluded hermitage is the thief. The police-sergeant retorted by asking the beggar not to blame someone, especially a holy man, without proof. The beggar submitted that he shall come back the next morning with the proof.

In the evening, the beggar reached the hermitage in the guise of a blind man. He said to the ascetic, "I am blind and cannot see anything. Please have pity on me and give me shelter in your hermitage for the night." He got permission to spend the night there. At midnight the ascetic and his disciples changed dresses and proceeded for the town to commit the routine theft. The beggar was watching everything. After coming back, the ascetics deposited their booty in the deep-pit. The next morning, they reestablished themselves in usual austerities. The beggar left the hermitage, reached the house of the police-sergeant and described to him the secret. The beggar got suitably rewarded.

The police-sergeant, along with his policemen, besieged the hermitage and took out all stolen goods from the deep-pit. He presented the ascetic and his disciples in the king's court. The king was surprised. He said to the ascetic, "O deceitful man! You

should not have performed such evil deeds under the guise of an ascetic. The citizens will lose trust in all ascetics." The king awarded grave punishment to the thieves. After death, all false ascetics attained evil states-of-existence. True; inauspicious karmas yield inauspicious fruit. The tree and its fruit are only according to the seed. The fruit is according to the karmas, irrespective of the external marks of the doer. The fruit of stealing had to be experienced by the ascetics; do not ever think that an ascetic can do anything he wishes. The doctrine of karmas imparts real justice. In the present time also those who committed crime under the guise of ascetics have suffered imprisonment. Refrain from evil karmas if you wish to escape from ignominy, pain and lowly state-of-existence.

पर-रमणी-रमण व्यसन

Sexual Intercourse With Wife Of Another

68. पाँच अणुव्रतों में ब्रह्मचर्याणुव्रत भी एक महान् व्रत है; इसे ही स्वदार-संतोष व्रत कहते हैं। स्व से विवाहित स्त्री मात्र को पत्नी के रूप में देखना, अवशेष नारियों को बहिन-माँ की दृष्टि से देखना। मनुष्यनी स्त्री ही नहीं, देवी, तिर्यञ्चनी तथा अचेतन-स्त्री रूप पुत्तलिका चित्र-स्त्री को देखकर भी अपने परिणामों को अशुभ नहीं करना तथा स्व-पत्नी के साथ भी संयमित रूप से असंयम का सेवन करना। श्रेष्ठ-जन मात्र सनातन-धर्म एवं वंश परम्परा हेतु ही संतान के उद्देश्य से काम-सेवन करते हैं।

68. Among the minor vows, the vow of chastity is a great vow; this vow constitutes satisfaction in just own wife. Under this vow all women, except own wife, are considered mothers and sisters. Do not entertain inauspicious dispositions for any other woman and also for a nymph, a female-animal, and the form or picture of a woman. Observe restraint while indulging in sexual-intercourse even with own wife. Noble men indulge in sexual-intercourse in order to give birth to an offspring who can further the tradition of the eternal dharma and the family.

---

69. जिसके लिए स्त्री-भोग (सुख) व्यसन रूप नहीं है, जो पुरुष काम-सुख पर नियंत्रण रखता है वह सिंह जैसा शक्ति-सम्पन्न होता है, जो गजराज को भी परास्त कर लेता है। जो कामी लोग होते हैं वे अनियमित काम सेवन करके, शक्तिहीन, कमजोर श्वान, सुअर-बकरे की प्रवत्ति वाले होते हैं।

69. The men for whom sexual indulgence is not an addiction and who exercise control in sexual indulgence are strong like a lion that can get the better of even an

elephant. The lustful men indulge in sex in an uncontrolled manner and become weak; their sex-indulgence is of the nature of a dog, a boar or a he-goat.

---

70. वीर्य (शुक्र) सौम्य-धातु के क्षय से सातों ही धातुओं का क्षय होता है, जिससे शरीर दुर्बल, बलहीन हो जाता है। उसकी स्मरण-शक्ति, धारणा-शक्ति, वाक्-शक्ति, तेज-ओज, नेत्रों की ज्योति क्षीण हो जाती है। रोग-निरोध शक्ति-सामर्थ्य भी क्षीण हो जाती है, वह क्षय-रोग से पीड़ित हो जाता है, एड्स जैसे रोग हो जाते हैं। लोग उसके पास आना भी पसंद नहीं करते हैं। अति-मैथुन सेवन से महाकष्ट-प्रदायक रोग हो जाते हैं, ऐसे दुराचारी के संसर्ग से शरीर, धर्म, कीर्ति सभी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। उसे बाल-वृद्ध सभी उपहास की आँख से देखते हैं।

70. With destruction of precious semen all seven vital elements of the body are destroyed and, as a result, the body becomes weak and powerless. The memory, retention power, power of speech, body-glow and eyesight become weak. The body loses its immunity and the man gets afflicted with diseases like tuberculosis and AIDS. People shun coming close to him. The man with excessive sex-indulgence suffers from grave diseases and his body, dharma and renown are destroyed. He becomes a subject of ridicule for all, young and old.

---

71. स्व-स्त्री के साथ अति काम सेवन से भी उक्त सभी रोग हो सकते हैं, तब फिर जो पर-स्त्री सेवन करेगा उसकी क्या दुर्दशा होगी? पर-स्त्री लम्पट पुरुष आषाढ़-मास का कामुक बैल ही है अथवा आसोज महीने का श्वान जो लोक-लाज शून्य पशुवत क्रिया करता है। पर-स्त्री सेवी बिना पूँछ एवं सींग के बैल ही हैं, भावी काल के नारकी, कुल-जाति-वंश-धर्म की पवित्रता का नाश करने वाले होते हैं। पर-स्त्री सेवी जीवित होने पर भी मृतक मुर्दे-तुल्य घूमते हैं।

71. The man with excessive lustful craving for even own wife can get afflicted with the aforesaid diseases; what will be the condition of the man who indulges also with wife of the other? The animal-like behaviour of such unchaste men flouts all societal norms; their behaviour is like that of the lustful bull in the month of *āṣāḍha*, and the dog in the month of *āsoja*. Such men are like bull without the tail and the horns. They destroy their lineage, caste, family and dharma, and are destined for future life in the hell. They roam around on earth like dead men.

---

72. पर-स्त्री अर्थात् चाहे विवाहिता हो या अविवाहित, दासी हो या महारानी, स्व-जननी हो या बहिन, चाची की बेटी हो या मौसी-मामी की या स्व-पुत्री - ये सभी पर-स्त्रियाँ ही हैं। विवाहित पर-ग्रहीता हो और कन्या

अपरिग्रहीता हो, आपके लिए तो दोनों ही पर हैं। पापियों को न कन्या-धर्म दिखता है, न बहिन, न माता। अहो! अहो! तीव्र घोर-पापी, कामुक को कुछ भी दिखाई नहीं देता है। पर-रमणी में रमण के भाव ही भाव-विशुद्धि का नाश कर देते हैं, पर-स्त्री गामी कभी भी निर्भय जीवन नहीं जीता, वह प्रतिक्षण भयभीत रहता है। स्व-कृत कुकर्म का रहस्य लोक में प्रकट न हो जाय, इसलिए चिन्ता में भयभीत होता रहता है, ऐसा मानव स्व एवं पर का घातक होता है। पर-स्त्री लम्पट रावण की क्या दशा हुई सर्व-विश्व प्रसिद्ध है। वंश, सम्पत्ति, राज्य-वैभव, यश-कीर्ति क्षण मात्र में विलीन हो गई। जिस चक्र-रत्न से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता था, जिसके नियोग से अर्द्धचक्री पद प्राप्त हुआ, इन्द्र जैसे राजा जिसके यहाँ सेवा में थे, वही रावण एक पर-स्त्री के राग वश हो उसी चक्र-रत्न से स्व-सिर का छेद करा बैठा। कुलंकर बनकर जियो, कुलांगार मत बनो, पर-स्त्री व्यसन से दूर रहो।

72. The 'other' woman may be married or unmarried, a maid or a queen, the mother or the sister, daughter of a paternal or maternal aunt, or your own daughter. She may be married or unmarried; both are 'other' women for you. The evil men fail to make distinction between a maiden, a sister and the mother. Alas! The grave and lustful sinner fails to see all this. Just the thought of copulating with 'other' woman corrupts his internal purity. The man with such evil thought can never lead a fearless life. He is fearful that people may come to know of his evil deeds; he causes destruction of self and others. The world knows what happened to the lustful Rāvaṇa. Rāvaṇa was being served by kings like Indra. His family, wealth, state-grandeur, renown and glory got destroyed in no time. The divine-discus that was for vanquishing the enemies and which was instrumental in getting him the status of half-king-of-kings caused the slicing of his own head. Be an embellishment to your family and not its destroyer; renounce the addiction of 'other' woman.

(अठारह प्रकार के व्यसनों में चार व्यसन तो सात-व्यसनों के अन्तर्गत ही हैं,
शेष के स्वरूप को कहते हैं।)

Out of the eighteen addictions mentioned earlier, four are common to the seven described above. The rest are described now.

पिशुन व्यसन

Backbiting

73. 'पिट्ठ-मांसभोजी' तात्पर्य पीठ पीछे चुगली करना, बुराई-निन्दा करना। बड़े-बड़े राज-घराने चुगलखोरों ने नष्ट करा दिए, सामान्य जन की क्या बात? चुगली एक ऐसा व्यसन है जिससे चुगलखोर स्वयं तो दूषित होता ही है, अपितु वह दूसरों की चुगली कर दूसरों के भावों का भी घात करता है।

73. 'Backbiting' means malicious talk about someone who is not present. Backbiters have caused destruction of many royal families, what to talk of the common men. Backbiting is an addiction that pollutes the thoughts of not only the person indulging in it but also of the others.

---

74. चुगलखोर के अन्दर एक समय प्रमाण काल भी किसी की गुप्त बात गुप्त नहीं रहती, वह गुप्त बात को भी शत्रु हो या मित्र, सामान्यजनों में भी फैला देता है और परस्पर में कलह कराकर खुशी मानता है। वह भूल जाता है कि मेरी चुगल-खोरी से अशान्ति फैल जाएगी। न वह स्वयं ही शान्ति से जीता है, न ही दूसरे को शान्ति से जीने देता है। जैसे सज्जन लोग साँप, सिंह को देखकर सावधान हो जाते हैं वैसे ही चुगलखोर के नाम से ही सावधान हो जाते हैं। प्रज्ञ-पुरुषों को चुगलखोर के आने पर सावधान हो ही जाना चाहिए। नारदजी की चुगली क्या जगत् प्रसिद्ध नहीं? मन्थरा ने क्या नहीं करा दिया, राम जैसे महापुरुष को वनवास करा दिया, यह लोक-प्रसिद्ध है।

74. The backbiter cannot keep a secret with himself even for a second; he tends to transmit the secret to friends and foes, and by thus causing conflict among others he feels contented. He forgets that his habit of backbiting disturbs peace. Neither he himself lives in peace nor lets others live in peace. Noble men are wary of a backbiter as of a snake or a lion. Knowledgeable men should remain on guard against backbiters. Nārada's habit of backbiting is world-famous. It is well-known that the backbiter Mantharā caused Lord Rāma's extradition to the forest.

---

75. प्रज्ञजनों को अपनी गुप्त, गूढ़-बात पिशून स्वभावी पुरुष के सामने कभी नहीं करना चाहिए। समय, अवसर, व्यक्ति देखकर ही अपनी बात को कहना चाहिए। गुरु, पिता, नेता, अधिकारी, सम्राट् आदि का प्रिय बनने के लिए व्यक्ति चुगली करता है। चुगलखोर को आगम में असत्यवादी कहा है। जो व्रती हो और चुगलखोरी करता हो तो वह स्वयं को सत्यव्रती न माने। उसके पास अहिंसा-व्रत भी नहीं है, क्योंकि वह स्व-पर की भाव-हिंसा में लीन है। चुगली कभी-कभी द्रव्यहिंसा का भी कारण बन जाती है। चुगली के कारण युद्ध भी हो जाते हैं, इसलिए सज्जनों को चुगली-व्यसन से अपनी आत्म-रक्षा करना चाहिए।

75. Knowledgeable men should never divulge their secrets to a backbiter. Talk at proper time, occasion and after ascertaining the nature of the listener. The backbiter talks maliciously about others to win favour from persons like the guru, the father, the leader, the administrator and the king. Scriptural texts term a backbiter a liar. The vow-observer who engages in backbiting no more remains the observer of the vow of truthfulness. Being engaged in causing psychical-injury to self and others, he no more observes the vow of non-injury *(ahiṃsā)*. Sometimes he causes physical-injury too. Even wars have taken place due to backbiting; noble men should refrain from the addiction of backbiting.

---

76. चुगलखोर अपनी आदतों के कारण सभी लोगों का विश्वास समाप्त कर लेता है और फिर वह अपने प्रति अविश्वास उत्पन्न करा लेता है। वह अपने माया-स्वभाव के कारण किसी का भी विश्वासपात्र बनकर नहीं रह पाता है। लोक में वह चुगलखोर के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। वह कितना भी श्रेष्ठ, चारित्रवान, धनवान्, ज्ञानवान हो फिर भी लोग यही कहते हैं कि- सब ठीक है, परन्तु दूसरे की निन्दा करता है, चुगली करता है, कब क्या बोल दे, इसलिए इससे सावधान रहो।

76. Due to his habits, like deceitfulness, the backbiter loses trust of everyone. He becomes famous as a backbiter. He may be good in conduct, wealth and knowledge, still people have such words for him: "He is otherwise fine, still beware of him as he censures others, does backbiting and speaks unwarrantedly."

---

77. चुगली करने वाला विघ्न-संतोषी होता है, कलह-प्रियता उसकी परम सखी है। वे लोग पुण्यात्मा हैं जिनको कोई चुगली करने वाला नहीं मिला। चुगली करने वाला न स्वयं ही शान्ति से रहता है और न ही दूसरों को रहने देता है। वह चुगली करने वाला यथार्थ में ईर्ष्यालु होता है।

77. The backbiter gets contentment out of trouble of others; he loves the dame-conflict. The men who have never come across a backbiter are full of merit. The backbiter neither himself lives in peace nor lets others live in peace. He is truly a jealous man.

दिवा-शयन व्यसन

Sleeping In Daytime

78. श्रम की थकान दूर करने के लिए विश्राम करना, निद्रा लेना आवश्यक है। सम्पूर्ण औषधियों का अपना एक स्थान है, परन्तु नींद का अपना ही महत्त्व है।

78. Sleep is necessary to get rest on being tired. Medicines have a place but sleep has its own importance.

---

79. तनाव ग्रसित, चिन्ता युक्त, काम-वासनाओं से पीड़ित व्यक्ति को शीघ्र ही सोना उचित है। इष्ट-वियोग से दुखित आर्तध्यान में बैठे व्यक्ति को पूर्ण-निद्रा मिल जाए तो उसका वियोग-जन्य दुःख हल्का हो जाता है। निद्रा न भी आए फिर भी आँखें बन्द कर शान्ति से परमात्मा का स्मरण व तत्त्व-चिन्तन करते रहना चाहिए जिससे श्रम की थकान एवं चिन्ता की ज्वाला अवश्य ही शान्त होगी। नींद से शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही

थकानें दूर हो जाती हैं, नवीन स्फूर्ति का संचार होता है, चित्त प्रसन्न होता है और चिन्ता का विस्मरण हो जाता है। नींद प्राकृतिक ही लेना चाहिए। निद्रा लेने के लिए गोली आदि न खावें और न ही अन्य किसी को सलाह दें, क्योंकि उष्ण-औषधि व्यक्ति के अन्दर धीरे-धीरे उन्मत्तता को जन्म देती है। ऐसा उन्मादी कई बार आत्महत्या का भी प्रयास करता है, उसके मुख की आभा भी फीकी पड़ जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा-सा हो जाता है। वह सामान्य जीवन से हटकर विशेष जीवन जीने लगता है।

79. The man under stress, worry or lustful-craving should sleep early. If the man suffering from sorrowful concentration due to the loss of a loved one gets sound sleep, his grief is alleviated. When sleep is not forthcoming, close your eyes and reflect in peace on the supreme-soul; this way the fire of tiredness and worry will snuff out. Sleep provides relief from bodily and mental tiredness; it perks up lost energy, provides delight and blanks out worries. Sleep naturally. Do not take sleeping pills and advise others to take these; such medicine gradually causes inebriation. The inebriated man may try to commit suicide, the glow of his face becomes pale and he becomes peevish. Renouncing natural life, he adopts an artificial life.

---

80. ऐसा श्रम करो जिससे समय पर स्वभाविक नींद लो। कुछ लोग शीघ्र सो जाते हैं, तो कभी देर से ऐसे लोगों की कोई समय-सारिणी ही नहीं होती है, वे हमेशा मानसिक एवं शारीरिक-दु:खों से पीड़ित रहते हैं। नियत काल में नींद लेना चाहिए और नियत-काल में ही उठ जाना चाहिए, क्योंकि असमय का जागना तथा सोना दोनों ही स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हैं।

80. Exert in a manner so as to get timely and natural sleep. Some persons do not have any schedule for going to bed and rising; they constantly suffer mental and bodily agony. Go to bed at the scheduled time and rise at the scheduled time; going to bed and rising at irregular times is harmful for health.

---

81. जो शाम होते ही सो जाते हैं और प्रात: सूर्योदय के बाद जागते हैं, वे विशिष्ट-विद्या की सिद्धि नहीं कर पाते हैं। ब्रह्म-मुहूर्त में सूर्योदय के पूर्व जाग जाना चाहिए। ब्रह्म-मुहूर्त सोने का नहीं, ध्यान-अध्ययन का है। विद्यार्थी-जनों, साधु-महात्माओं, सज्जनों को सूर्योदय के पूर्व ब्रह्म-मुहूर्त में शय्यासन छोड़ देना चाहिए और प्रभु-भजन, आत्मध्यान, विद्याध्ययन में लग जाना चाहिए। एक स्वस्थ पुरुष के लिए छह घण्टे की नींद पर्याप्त है। शिशु-बालक को अधिक सोना चाहिए, पर युवा को छह घण्टे पर्याप्त हैं। वृद्धावस्था में नींद स्वत: ही कम होने लगती है। योगी जन तप-साधना से निद्रा-विजय करते हैं, फिर भी उन्हें शरीर श्रमानुसार अल्प निद्रा लेना चाहिए।

81. Those who go to bed early as the sun sets and get up late after the sun rises do not attain special learning. The auspicious time for getting up is before the sun rises;

this time is not for sleeping but for meditation and study. The students, the religious men and the nobility should leave bed at the auspicious time, before the sun rises, and engage in adoration of the Lord, meditation and study. Sleep of six hours is adequate for the healthy man. Infants and children need more sleep. In old-age sleeping hours reduce naturally. The *yogī* vanquishes sleep through the observation of austerities; he should sleep less, according to his bodily effort.

---

82. मित-भाषण, मित-भोजन, मित-निद्रा योगी-जनों की पहचान है। अति-निद्रा और अनिद्रा दोनों ही रोग हैं, दोनों के होने पर व्यक्ति अस्वस्थ हो जाता है, पागलपन छा जाता है।

82. The *yogī* is marked by less speaking, less eating and less sleep. Too much or too little sleep, both constitute illness; due to any of these the man becomes unhealthy and deranged.

---

83. यदि नींद न आवे तो शान्ति से सद्-साहित्य का स्वाध्याय करना चाहिए, धीरे-धीरे नींद आ जाएगी। नींद न आने पर रोगी को पञ्चपरमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए। दिन में भोजन में आँवला लेना चाहिए तथा सिर में ब्राह्मी, जटामासी व बादाम का तेल लगाना चाहिए, सरसों का तेल पैर के तलवों में लगाएँ, परन्तु नींद की गोली न खाएँ।

83. When unable to sleep, study good literature with a calm mind; you will slowly fall asleep. Another option is to meditate on the Five Supreme Beings. Take myrobalan fruit with lunch and massage your skull with oil of *brāhmī*, *jaṭāmāsī* or almond. Massage soles of your feet with mustard-oil; do not take sleeping pills.

---

84. रात्रि में उचित विश्राम करें, दिन में उद्यम करें। दिन में सोने का पूर्ण निषेध समझना चाहिए। आगम दृष्टि से दिन में सोने से दर्शनावरणीय तथा ज्ञानावरणीय कर्म का विशिष्ट आस्रव-बंध होता है, इसलिए दिन में सोने की आदत नहीं बनाना। दिन में सोने की आदत एक व्यसन है जो शारीरिक, मानसिक, आर्थिक क्षति का कारण है। ज्ञान क्षेत्र भी दिन के सोने से प्रभावित होता है। ग्रीष्म-काल को छोड़कर शेष काल में दिन में सोने के लिए आयुर्वेद-शास्त्र भी निषेध करता है। ग्रीष्म-ऋतु को छोड़कर अन्य ऋतुओं में दिन में सोने वाले के रोग वृद्धि तथा मृत्यु होने का निरूपण धन्वन्तरि ने किया है।

84. Rest at night, work during the day. Consider sleeping in daytime as prohibited. According to the Scripture, sleeping in daytime causes influx and bondage of karmas that obscure perception and knowledge; avoid sleeping in daytime. Sleeping in daytime is an addiction that affects bodily, mental and economic well-being. It also

affects knowledge acquisition. The *Āyurveda* too prohibits sleeping in daytime, except during summers. According to Dhanvantari, sleeping in daytime, except during summers, leads to ill-health and even death.

---

85. आचार्य प्रवर श्री सोमदेव सूरि ने 'नीति वाक्यामृतम्' ग्रंथ में लिखा है कि- 'दिन में शयन शरीर में छिपे हुए अनेक रोग रूपी सर्पों को जगाने का कारण और समस्त कार्य-सिद्धि में बाधक है।' सार यह है कि स्वास्थ्य व कार्यसिद्धि चाहने वाले व्यक्ति को ग्रीष्मकाल को छोड़कर अन्य ऋतुओं में दिन में सोना नहीं चाहिए। दिन में सोने से प्रमाद, आलस्य, कफ-वृद्धि, मोटापन, बुद्धि की ठसता, विस्मरण शक्ति की वृद्धि आदि होती है। समझदारों को प्रयत्नपूर्वक दिन में नहीं सोना चाहिए।

85. *Ācārya* Somadeva Sūri, in *'Nīti-vākyāmṛtam'* says, "Sleeping in daytime awakens hidden snakes of various diseases in the body and hinders accomplishment of work." The essence is that the man wishing good health and work-accomplishment should not sleep in daytime, except during summers. Sleeping in daytime causes negligence, laziness, increase in phlegm, obesity, dullness of intellect and forgetfulness. Intelligent people should avoid sleeping in daytime.

निन्दा व्यसन

Censuring Others

86. पर-निन्दा करना बहुत खोटा व्यसन है, जो नीच गोत्र का कारण है। निन्दा-रसालु से बचना बहुत ही कठिन कार्य है, कब किसका लोकापवाद करा दे; निन्दक का कोई विश्वास नहीं।

86. Censuring others is a very wicked addiction that results in low-status *(nīca-gotra)*. To protect yourself from those who censure others is a difficult task; you never know whom and when he denounces.

---

87. पिशुनता एवं निन्दा में बहुत अन्तर है। पिशुनता अर्थात् किसी की गुप्त बात को उद्घाटित करना, दूसरों को बताना, निन्दा में व्यक्ति किसी दोष के न होने पर भी उस पर आरोपण कर दूसरों को बताता है। बुराई करना निन्दा है, पिशुनता एवं निन्दा ये दोनों ही अविश्वास के कार्य हैं।

87. There is great difference between backbiting and censuring others; backbiting means revealing the secret of someone to others, censuring others means telling self-

imagined faults of someone to others. In censuring others the idea is to denounce. Both backbiting and censuring others are evil deeds.

---

88. पर-निन्दक अपने जीवन का उत्थान नहीं कर पाता है, क्योंकि उसे पर दोष-दर्शन से समय ही नहीं मिलता। वह स्वात्म-दर्शन, आत्म-विकास का चिंतन कब करे? स्व-आत्मोन्नति पर विचार करने के लिए भी समय चाहिए। बिना विचार के किसी भी कार्य की पूर्णता नहीं होती है।

88. The man who censures others is not able to progress in life; he is always busy in finding faults in others. When will he think about own-soul and soul-development? Own soul-development too requires time. Without thinking, no work gets accomplished.

---

89. पर-निन्दा नीच कर्म है। श्रेष्ठ जन पर निन्दा के दोष से हमेशा स्वयं की आत्मरक्षा करते हैं। दूसरों की निन्दा करते ही बड़े से बड़े पुरुष भी शीघ्र ही लघु हो जाते हैं। पर-निन्दा से पूज्य से पूज्य भी तुरन्त अपूज्यता को प्राप्त हो जाता है, सम्माननीय भी असम्मान को प्राप्त होता है। लोक में कोई कितना भी गिरा क्यों न हो, फिर भी सज्जन पुरुष अच्छी, कल्याणप्रद, प्रशस्त, पुण्य-वर्धनीय, पाप-क्षयकारी बात ही सुनना चाहता है। अशुभ-भाषा, अशुभ-भाषण सुनने का मन भव्य-पुरुषों का कभी नहीं होता है। भव्य-धर्मात्मा जीव साधु-महात्माओं के, विद्वानों के सानिध्य को प्राप्त होते ही चातक-पक्षी की भाँति एक-टक हो ज्ञानीजनों के मुख-मण्डल की ओर दृष्टि लगाता है।

89. Censuring others is an evil karma. Noble men protect themselves incessantly from the evil of censuring others. By censuring others a great man loses immediately his greatness, a revered man loses reverence and a respectable man loses respect. Noble men wish to hear only decent, beneficial, gracious, merit-accruing and demerit-shedding words, even in respect of a lowly man. They are not interested in listening to inauspicious words and speech. When in company of noble souls, like the ascetic and the learned, the potential *(bhavya)* man-of-dharma, like the *cātaka* bird, watches unremittingly only their faces.

---

90. जैसे चातक स्वाति-नक्षत्र की पानी की बूँद को देखता है; उसी प्रकार धर्मात्मा तत्त्वज्ञ-पुरुषों के श्रीमुख को देखता है। कब स्वाति की बूँदवत इनके श्रीमुखकमल से 'सत्यार्थ-बोध' पूर्ण भूतार्थ-देशना प्रकट हो और मैं अपने कर्ण-पटलों की अंजुली लगाकर पी लूँ। समय प्रमाण-काल भी विलम्ब स्वीकार नहीं है। आयु कर्म का एक-एक पल व्यतीत हो रहा है, इसे व्यर्थ मत जाने दो। सम्प्रति-काल जितना श्रेष्ठ-कार्यों में जाएगा वही हमारे भविष्य के लिए अत्यन्त शुभ-मंगल-प्रशस्त क्षेम-कुशलता का कारण है।

90. As the *cātaka* bird looks unremittingly at the star *svāti* for a drop of water, in the same way, the man-of-dharma looks at faces of the learned men who know the reality. His ears wait eagerly to drink the drop of 'truth about the reality' falling from their mouth in form of words, like the *cātaka* bird waits for the drop of water falling from the star *svāti*. He is not ready to delay it even for an instant. He reckons that the age-karma is getting used up incessantly and, therefore, do not waste time. Only the time that we use in noble deeds will make our future auspicious, propitious, bright and prosperous.

---

91. व्यर्थ की बातें, व्यर्थ के कार्य हमारी आत्मोन्नति के कारण न हैं, न थे, न ही भावी काल में होंगे, इस बात को आत्मार्थी-जन भली-भाँति जानते हैं। वे जगति पर लौकिक कार्य एवं लौकिक कारणों से अपने आपको दूर रखते हैं तथा सदा सुश्रुत के श्रवण, मनन, चिंतन, संभाषण में अपने आयुकर्म के निषेकों को लगाते हैं।

91. The men interested in soul-enrichment know pretty well that useless talk and deeds can never – in the past, present or future – result in soul-development. They, therefore, keep themselves away from worldly deeds and goals; they instead use up their remaining time of life in listening to, reflecting on, and discussing scriptural texts.

---

92. स्व-प्रशंसक, पर-निन्दक नीच गोत्र का आस्रव करता है। अपने गुणों का उद्‌भावक, पर के अवगुणों का उद्‌घाटक भी नीच गोत्र का आस्रव करता है, वह तिर्यञ्चादि अशुभ गति को प्राप्त करता है। मनुष्य बने तो लोक निंदित कुल में जन्म लेता है, जिसे लोग स्पर्श करना भी पसन्द नहीं करते। ऐसी विडम्बना होती है, पर दोष उद्‌घाटक की।

92. The man who engages in praise of self and censure of others causes the influx of karmas that lead to low-status *(nīca-gotra)*. The man who proclaims virtues in self and defects in others too causes the influx of karmas that lead to low-status; he attains inauspicious state-of-existence, like a plant or animal. If he is reborn as a man, he takes birth in a lowly family; others do not like to even touch him. This is in store for the man who indulges in proclaiming defects in others.

---

93. पर-निन्दा ऐसा व्यसन है जो बिना नशे का नशा होता है। निन्दा-रसिक न दिन देखता है, न रात्रि देखता है, न भवन-महल-मशान या मन्दिर कहीं भी, उसे तो अवसर मिलना चाहिए, वह दूसरे की बुराई करना प्रारंभ कर देता है। यदि हम निन्दक की बुराई सुनते हैं, तो उससे उसकी शक्ति बढ़ती है। निन्दक जिसकी निन्दा करे, उसी की अपन प्रशंसा कर दो तो वह निन्दा करना छोड़ देगा। निन्दक पर-की निन्दा उसी के सामने करता है जो

सुनता है। जो सज्जन पर की निन्दा न करता हो और न सुनता ही हो उसके सामने कोई भी किसी अन्य की निन्दा करने की शक्ति नहीं जुटा पाएगा। कोई यह भी न सोचे कि- निन्दा करने वाले को नीच-गोत्र का आस्रव-बंध होगा मुझे नहीं। अरे भाई! भ्रम निकाल दो यह कि सुनने से बंध नहीं होता। सुनने से भी व्यक्ति को ऐसा रस आता है जैसे धूम्रपान करने वाले के धुँए को सूँघने वाले को। क्या आप यह नहीं जानते कि धूम्रपायी के साथ बैठने मात्र से भी कैंसर जैसी बीमारी हो जाती है। जैसे कोरोना जैसी महामारी रोगी के समीप से निकलने मात्र से हो रही है, उसी प्रकार से निन्दा सुनने मात्र से भी नीच गोत्र का आस्रव होता है। नीच-गोत्र से बचने के भाव हैं तो न पुण्यात्मा की, न पुण्यक्षीण की निन्दा करो, आपके द्वारा की गई निन्दा न किसी के पुण्योदय घटाएगी न बढ़ाएगी, व्यर्थ अपने वचन-बल का दुरुपयोग करने का क्या लाभ? कोई पुण्य लाभ नहीं है, अपितु पुण्य द्रव्य का व्यर्थ में ही क्षय है।

93. Censuring others is an addiction that causes drunkenness without drinking. The man who relishes censuring others looks constantly for an opportunity to do so; in a house, palace, cremation-ground or temple. We encourage the censurer by listening to him. Talk good of the person he censures; this will discourage him. No one can talk ill of a person in front of the noble man who neither speaks nor listens to words that censure others. Do not think that only the one who censures others, and not the one who listens to such talk, will get the low-status *(nīca-gotra)*. Listening to such talk too is harmful; like inhaling smoke when in proximity of a smoker may cause grave disease, like cancer. Just listening to the words that censure others causes the influx of karmas that lead to low-status; just the proximity of an infected man causes the coronovirus infection. Do not censure anyone, the man-of-merit or the man-of-demerit; it will not affect him but you are bound to waste your strength-of-speech. By doing so you do not earn merit; you just destroy your past merit.

---

94. वे लोग लोक में करुणा के पात्र हैं जो निन्दा-व्यसन से पीड़ित हैं। जैसे महापापी को अपने तन-धन-घर की दयनीय स्थिति का भान नहीं रहता, पैसे-पैसे को तरसता है, फिर भी मदिरा पान करता है, ऐसे ही निन्दा रसालु, निन्दा-व्यसनी को बोध होता है कि मुझे पर की निन्दा करने से कुछ नहीं मिलेगा, मेरा पुण्य ही क्षय होगा, अविश्वास, अपकीर्ति ही मिलेगी, ज्ञानी-जनों के मध्य कोई सम्मान नहीं बढ़ेगा, फिर भी निन्दा किए बिना विचारों का मन नहीं मानता है।

94. The men suffering from the addiction of censuring others require compassion. Just as the man with addiction of alcohol does not realize the pitiable condition of his body, wealth and home, he lives in dire poverty, but still consumes alcohol, in the same way, the man with addiction of censuring others realizes that he will not gain anything out of censuring others, only his merit will get destroyed, he will get mistrust and disrepute, and lose all respect among the learned men, but still his mind does not rest without censuring others.

---

95. कुछ अलिखित निन्दा करते हैं मुख से वह तत्काल की है, पर कुछ तीव्र-कषायी जीव होते हैं, वे दूसरे की निन्दा लिखकर दीर्घ-कालिक करते हैं। वे जगत् के लोगों को कहते हैं कि- मैं सत्य का प्रकाश कर रहा हूँ, पर उन निन्दक को सत्यार्थ का बोध ही नहीं, निन्दा कर्म ही असत्य है। वस्तु की मीमांसा करना प्रज्ञा-कौशल है, पर मीमांसा सम्यक्-विषय पर समीचीन होती है, वह भी विषय के विशद स्पष्टार्थ हेतु। वहीं जो निन्दा है; वह अज्ञान, ईर्ष्यावश होती है।

95. Some men censure others verbally and the effect is temporary, but some men with severe passions censure others in writing and the effect is long-lasting. They claim that they are highlighting the truth but fail to realize the truth that to censure others itself is untruth. To reflect deeply on the nature of an object constitutes intellectual-skill but the object should be worthy of reflection and reflection should result in better understanding of its true nature. The act of censuring others, on the other hand, is based on ignorance and jealousy.

---

96. यदि किसी धर्म, दर्शन, चर्या, ज्ञान, साहित्य, आगम-पुराणों की निन्दा करने-कराने की बुद्धि उत्पन्न हो तो सर्वप्रथम उनका सम्यक्-विधि से, गुणग्राही दृष्टि से दीर्घकाल तक अध्ययन करना चाहिए। पदार्थ-बोधक आगम अगाध है, शास्त्र एक विराट्-सागर है, उसमें कौन नहीं डूब सकता है? उसमें पार पाने के लिए श्रेष्ठ नाविक का आश्रय ले लेना चाहिए। यदि गूढ़-ग्रथों का रहस्य समझ नहीं आए तो ज्ञानी आचार्य, उपाध्याय, साधु या तद्विषयक विद्वान से समझना चाहिए। बिना जाने, बिना समझे किसी भी दर्शन के सिद्धांतों-क्रिया-पक्षों, आराधना-साधना, भक्ति-पूजा-अर्चना, मंत्र-उपासना, विधि पर निन्दात्मक आलेखन या वक्तृत्व-भाषण स्व-अज्ञानता को दीर्घ-काल तक स्थापित करना है। यदि आपको बोलने-लिखने की भावना है, तो उसे रोककर सर्वप्रथम ज्ञाता बनो। पहले ज्ञाता बनो फिर प्रवक्ता बनो। प्रसिद्ध-पुरुषों को ज्ञानियों के मध्य अपनी अज्ञानता-पूर्ण बात को लिखकर नहीं जाना चाहिए। प्रसिद्ध जीवित कार्यकारी नहीं मृत्यु के बाद भी आपका साहित्य आपकी आन्तरिक-सत्यता को उद्घाटित करता है, इसलिए सभी लेखक-कवि इस बात पर ध्यान दें।

96. If you wish to criticize any dharma, philosophy, occupation, literature or scriptural text, first study these sincerely for a long period and with a positive mind. The Scripture is a very deep and huge ocean; who can escape getting drowned in it? Take help of a skilled sailor to cross this ocean. Understand the deep secrets contained in the Scripture from knowledgeable chief-preceptors, preceptors and ascetics, or from specialized learned men. To speak or write censuring words about any philosophy – its doctrines, activities or aspects, adoration and observances, devotion and prayers, mantra and incantations – without understanding the reality is to establish own-ignorance for a long time. Before proceeding to write or speak, acquire knowledge. Well-known men who censure others in writing wrongly should not go in midst of knowledgeable men. Even after death your writings will highlight your own internal truth; all writers and poets, beware of this fact.

---

97. अपनों के मध्य वाह-वाह! आपका कीर्ति-स्तंभ नहीं, आपका देह-वियोग होने के बाद आपकी एवं आपके द्वारा लिखित साहित्य की सम्यक्-समीक्षाएँ वसुन्धरा पर मनीषियों-विद्वानों द्वारा होती रहें, वही होगा तुम्हारा स्थाई कीर्ति-स्तंभ। सहस्त्रों वर्ष व्यतीत हो गए फिर भी सम्प्रति भारत ही नहीं सर्व-विश्व वसुन्धरा पर दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जैसे साहित्यकारों का सुयश वर्धमान हो रहा है, उनका महान्-ग्रंथ 'समयसार' विश्वविख्यात है।

97. Praise by the followers! Erect your 'glory-post'! Nope! Your permanent 'glory-post' will only be erected if the literature composed by you gets annotated on by learned scholars even after your death. After the lapse of thousands of years the literature composed by renowned *digambara* preceptors, like *Ācārya* Kundakunda, is still being revered not only in India but in the whole world. The profound Scripture *'Samayasāra'*, by *Ācārya* Kundakunda, is known the world-over.

---

98. शास्त्रों का स्वाध्याय, ज्ञान-तत्त्व का गंभीर-चिंतन भाव-विशुद्धि का प्रबल कारण है, जो पर-निन्दा से रहित होता है। ज्ञानी जीव की प्रथम पहचान होती है कि वह पर-निन्दा व्यसन से अत्यंत दूर ही रहता है।

98. Study of the Scripture, acquisition of knowledge and deep reflection on the reality are strong means to attain the purity of dispositions. The first mark of the learned man is that he maintains great distance from the addiction of censuring others.

---

99. सुतर्कों के माध्यम से तत्त्व की समीक्षा की जा सकती है, परन्तु तर्क-शून्य कुतर्कों से ज्ञानीपने की पहचान नहीं होती है। सत्यार्थ बोध स्याद्वाद-अनेकान्त से ही सम्भव है, स्याद्वाद-अनेकान्त दृष्टि के आलम्बन लिए बिना वस्तु-तत्त्व का सम्यक्-प्ररूपण असम्भव है। प्रत्येक वक्ता व लेखक को स्याद्वाद-शासन का गम्भीर अध्ययन निष्णात-विद्वान् से करना चाहिए।

99. The nature of the reality can be critiqued by sound logic but fallacious logic is not the mark of a learned man. The knowledge of the truth is possible only by employing the doctrines of conditional predication and multiplicity of the reality; without employing these doctrines, right description of the nature of the reality is impossible. Every speaker and author should study the regime of the doctrine of conditional predication from a learned and competent man.

---

100. जो आपका स्वयं का अध्ययन-चिंतन-मनन है वह तो आपके पास है ही; वह कहीं जाने वाला नहीं, इसके साथ स्याद्वाद-दर्शन (जैन-दर्शन), चारों-अनुयोगों का ज्ञान भी कर लेना चाहिए। व्यक्ति की सोच में

विशालता आए बिना रह नहीं सकती है। वह अपनी बात को कहने के पूर्व नय-दृष्टि पर अवश्य ही विचार करेगा। कहीं मेरे वचनों या लेखन के द्वारा किसी सत्य तत्त्व का घात तो नहीं हो रहा, ऐसा विचार, अहिंसा-धर्म से विभूषित, स्याद्वादी अवश्य ही करेगा।

100. Your study, reflection and thinking is your own and not going to leave you; along with it, study the Jaina philosophy based on the doctrine of conditional predication *(syādvāda),* and the four limbs *(anuyoga)*. Study of these broadens thinking. The man adept in these will reflect on the particular point-of-view *(naya)* before making a statement. The man embellished with the dharma of non-injury *(ahiṃsā)* and adept in the doctrine of conditional predication will always be careful not to destroy the truth through his spoken or written words.

---

101. अनेकान्त-दृष्टि से विचार करने वाला सज्जन-पुरुष पर-निन्दा से अत्यन्त दूर हो जाता है। जो पर-निन्दा करता है; उससे सभी द्वेष करने लगते हैं अथवा जो मनुष्य पर-निन्दा करता है उस निन्दा निवृत्ति के लिए, निन्दा किए जाने वाले पुरुष की प्रशंसा को छोड़कर अन्य कोई अमोघ-औषधि नहीं है। पर-निन्दा व्यसन से आत्म-रक्षा करो, स्व-अवगुणों को देखो, स्व-अवगुणों की सुधार करो, यही मानव धर्म है।

101. The noble man who is able to see the multiplicity of the reality pulls himself away from censuring others. The man engaged in censuring others is disliked by all; the only unfailing means to come out of this evil is to say words of praise for the person you had earlier censured. Save yourself from the addiction of censuring others; see and rectify your own faults. This is the dharma of the man.

गीत-श्रवण व्यसन

Listening To Songs

102. साधक-श्रावक दोनों का ही समय अर्घवान है, जीवन स्वच्छ-श्रेष्ठ बनाना है तो समय की रक्षा करना सीखो। जो समय की रक्षा करना जानता है उसी की सर्वत्र रक्षा होती है। जो समय के मूल्य को नहीं समझता है उसके जीवन का भी कोई विशेष मूल्य नहीं रह जाता है। जीवन में प्रतिक्षण समय-रक्षा के भाव आना चाहिए। जो समय निकल गया; क्या वह पुनः प्राप्त होगा? पल-पल नवीन-नवीन आयाम तैयार करना।

102. Time is precious for both, the ascetic and the householder; if you wish to make your life clean and worthy learn to guard time. The man who knows how to guard time is guarded himself. The life of the man who does not value time becomes

worthless. Guard time every instant; the lapsed time is lost forever. Think afresh every instant.

---

103. मित्रो! एक श्वास ली, क्या पुनः श्वास लेने तुम जीवित ही रहोगे? आपको भरोसा है? इसलिए विवेकशीलों को वही कार्य करना चाहिए जिससे समय का दुरुपयोग न हो। साधक का आत्महित के अलावा अन्य कोई उद्देश्य नहीं होना चाहिए, व्यर्थ के कार्यों में समय व्यतीत मत करो। श्वास-श्वास की कीमत है। आयु पूर्ण होने पर फिर एक मिनट भी अतिरिक्त प्राप्त नहीं हो सकेगा।

103. Friends! You have just taken a breath; are you certain to live long enough to take another breath? Knowing this, the men of discrimination never misuse time. The ascetic should engage himself in nothing but soul-development; he should not waste time in useless activities. Each breath is precious. Not a single additional minute shall be granted on completion of age.

---

104. लोक में मनोरंजन के विषय अनेक हैं। जिसकी मनोरंजन के प्रति तीव्र लालसा है वह अपना सब कुछ न्योछावर कर देता है, उस लंपटी को अच्छे-बुरे का कुछ भी विवेक नहीं रहता है। यहाँ तक कि वह किस पद पर आसीन है, यह भी भूल जाता है और अपने से च्युत हो जाता है।

104. There are many ways of entertainment. The man with a strong longing for entertainment loses his everything; he fails to distinguish between what is good for him and what is not. He even forgets his high status and casts off self-esteem.

---

105. जितना अधिक आप सामान्य-जनों के मध्य बैठोगे आप उतने ही सामान्य होते जाओगे। गीत-श्रवण-व्यसन जिसको लग गया वह दिन-रात उसी में आसक्त रहता है। गृह-कार्य, राज्य-कार्य, आत्म-साधना की भावना सब चौपट हो जाते हैं। साधु व सम्राट् को हमेशा स्व-कार्य के प्रति जाग्रत रहना चाहिए। गीत-गानों में उन्मत्त न साधना कर पाएगा और न ही राज्य सँभाल पाएगा। गीत-गानों में गंभीरता का नाश हो जाता है, फिर उसका सज्जनों-महाजनों, साधु वृन्दों में स्थान नहीं होता है।

105. The longer you spend time with ordinary men, more ordinary shall you become. The man with addiction of listening to songs remains engrossed in it, day and night. He overlooks all his responsibilities toward home, state and self. The ascetic and the king should always be awake in respect of their responsibilities. The man with addiction of listening to songs will neither be able to observe vows nor state-responsibilities. Listening to songs destroys seriousness of thought and, as a result, the man with such inclination loses place among the noble, great and virtuous men.

---

106. गाने वाले का अपना एक स्थान रहता है, क्योंकि गान भी एक कला है। विद्या है; परन्तु उसका स्थान पूज्य नहीं संगीतकार का ही होता है। लोक में भी देखा जाता है कि साधु, सम्राट् का आसन संगीतकार से उच्च ही होता है। राजा प्रजा पर अनुशासन की विद्या का सतत अभ्यास करे, साधु आत्मानुशासन का अभ्यास करे, तो निश्चित ही उसका विकास संभव है। संगीतकार सतत सप्त-सुरों का अभ्यास करे, तभी वह अपनी विद्या में निष्णात होगा।

106. Singing is an art and education; the singer has his own place as a skillful person and not as someone to be worshipped. It is seen in the world that the seat of the ascetic or the king is always higher than that of the singer. For attaining progress, the king should practice the art of disciplining his subjects and the ascetic the art of disciplining his soul. The singer must incessantly practice the seven notes to master his art.

---

107. आत्म-कल्याणार्थ साधक को राज्य व संगीत दोनों का ही त्याग कर; योग-उपयोग को सँभालने का अभ्यास करना चाहिए, वह भी अन्तरंग-बहिरंग विकल्पों से विमुक्त होकर।

107. The ascetic engaged in soul-development should renounce both kingship and music; he should practice control of his activities and cognition after relinquishing all internal and external inquisitiveness.

नृत्य-दर्शन व्यसन

Watching Of Dance

108. लोक नाना लोगों से पूर्ण है; जितने संसारी जीव हैं वे सब स्व-क्षयोपशम से युक्त हैं। अन्य-में-अन्य के क्षयोपशम प्रवेश नहीं करते; ऐसा लगता अवश्य है कि- अमुक व्यक्ति की संगति से अमुक व्यक्ति ऐसा हो गया, परन्तु यह कथन लोक-व्यवहार में निमित्त प्रधान है। उसे भी स्वीकार करो, परन्तु अंतरंग के मूल विषय को पूर्ण भूलकर नहीं। जिस जीव का जैसा स्वयं का क्षयोपशम रहता है, वैसे-वैसे लोगों के प्रति उसका संपर्क होता है और वह वैसे-वैसे ही लोगों को पसन्द करता है। सामान्य भाषा में जिसकी जैसी मति होती है उसकी गति भी वैसे ही कार्य में होती है। उपचार से दूसरे पर अच्छे-बुरे संस्कार डालने का आरोप आता है। उसे कोई समाप्त भी नहीं कर सकता, करना भी नहीं चाहिए, अपितु निमित्त-उपादान को समझकर तटस्थ, मध्यस्थ हो जाना चाहिए।

108. The world comprises various kinds of people; all worldly souls have own karmic destruction-cum-subsidence. By conventional wisdom it is said that a man has acquired some traits due to a particular person. This is to be accepted but not without appreciating the internal truth. According to his own karmic destruction-cum-subsidence, the man mixes with and develops liking for particular kinds of persons. In common parlance, the man's own attitude determines his actions. Only by convention, others are said to be the cause of changing a man's habits, good or bad. This is fine; however, appreciate the true role of the external and the internal causes and then become unbiased and neutral.

---

109. जीव की योग्यता स्व-पुरुषार्थ से ही बनती है। जैसी पुरुषार्थ की गति होती है उसकी वृत्ति वैसी-वैसी बनती चली जाती है, यही पूर्ण-भूतार्थ है, सत्य है। दर्शन ऐसा करो जिससे आत्म-दर्शन हो, परमात्म दर्शन हो, उभय-लोक में सुख एवं यश की प्राप्ति होती हो। प्रेय की ओर गमन न कर; श्रेय की ओर गमन हो, लोकोत्तराचार में लीन होकर।

109. The capability of a man depends on his own-effort. The whole truth is that the nature of the man's own-effort determines his inclinations. Your vision should be such that you are able to visualize own-soul and the supreme soul, able to attain happiness and glory in both worlds, and, engrossed in non-worldly behaviour, move toward the excellent goal of liberation.

---

110. जिस दर्शन से पर-लोक तो दूर वर्तमान में ही आपकी साधुता-आत्मानुशासनता के अभाव का दिग्दर्शन होने लगे, ऐसे दर्शन का सर्वत्र, सर्वथा त्याग होना चाहिए।

110. Renounce all over and completely the vision that results in showing up your lack of asceticism and soul-discipline in the present life itself, what to talk of the future life.

---

111. बालचेष्टा में वृद्ध ज्ञानी-जनों को नहीं जाना चाहिए। ज्येष्ठ-जनों को समय-प्रमाण-समय भी क्षुद्र कार्यों में नहीं देना चाहिए। सम्पूर्ण-साधुता जहाँ स्वाहा हो; वहाँ दर्शन क्या? साधुजनों का प्रवेश ही निषेध है। पर-दर्शन में सज्जनों को अपनी सज्जनता की बलि नहीं दे देना चाहिए। धर्मात्माजन प्रभु-दर्शन, गुरु-दर्शन, तीर्थ-दर्शन, सद्-शास्त्रों, आगमों के दर्शन में अपने नयनों का सम्यक्-प्रयोग करते हैं।

111. Senior knowledgeable men should not indulge in childish activities. They should not engage, even for a second, in menial tasks. What kind of vision is that in

which one's entire asceticism is burnt to ashes? Do not ever enter such places. Noble men do not sacrifice their nobility in seeing others. Men-of-dharma make good use of their eyes in seeing the deity, guru, places of pilgrimage, religious texts and the Scripture.

---

112. अज्ञ, विवेक-बुद्धि के दरिद्रीजन अपना अमूल्य, दुर्लभ-समय भांड, नृत्य-गानों में विलीन करते हैं, उन्हें सुर-दुर्लभ नर-देह की कीमत का बोध नहीं है। मानव-पर्याय आत्म-कल्याण के लिए प्राप्त हुई है; नृत्य-दर्शन के लिए नहीं, पूर्व-पूर्व पर्यायों में यही-यही करते, देखते आए हैं। आज क्या नया है?

112. Men who are ignorant and lack discrimination waste their valuable time in dancing and singing; they are unaware of the value of the human body, unavailable to even the celestial-beings. The human mode *(paryāya)* is for soul-development, not for watching dances. We have been performing and watching dances in our past modes; what is novel now?

---

113. धन्य-धन्य-धन्य तीर्थेश महाराजा आदिनाथ स्वामी; जिन्होंने स्वर्ग की अप्सरा नीलांजना की नृत्य-कला में मृत्यु का बोध कर नवीन नृत्यांगना के नृत्य को बन्द करने का आदेश कर दिया और राज्य त्याग वैराग्य-पथ को स्वीकार कर अक्षयवन्त संज्ञा को प्राप्त किया।

113. Hail the Ford-maker *Mahārāja* Ādinātha *Svāmī* who, when the celestial dancer Nīlānjanā died and was replaced immediately with her replica by Indra, ordered the cessation of dancing, renounced kingship, accepted the path of detachment and attained the state of eternity.

---

114. प्रयागराज गंगा तट विराट् वट-वृक्ष के तले दिगम्बर जैनेश्वरी जिन-दीक्षा धारण कर पश्चात् हिमगिरि-हिमालय कैलाश पर्वत पर घोर-घोर तप साधना कर निर्वाण को प्राप्त किया। नाभिनन्दन को नृत्य दर्शन से नहीं, अपितु आत्म-दर्शन से भगवत्ता की उपलब्धि हुई।

114. Ādinātha *Svāmī* adopted the *digambara*, sky-clad ordination on the bank of the Ganges at Prayāgarāja under the huge fig-tree, performed severe austerities at Mountain Kailāśa of Himgiri-Himālaya, and attained liberation *(nirvāṇa)*. The son of Nābhi did not attain the supreme purity of his soul by watching dance but by watching own-soul.

---

115. अहो आश्चर्य! आत्म-दर्शन के मार्ग पर चलने के पाथेय को प्राप्त नर-देह में राजते ज्ञानी-जन, साधु-वृन्द तत्त्व-निर्णय, आत्म-दर्शन, स्वात्म-चर्या, मनीषियों की गोष्ठी छोड़ नारी-नृत्य में बैठें, उनका अवलोकन करें, यह बात सज्जनों को सुपाच्य नहीं है, एकमात्र दुर्जन ही पचा सकते हैं।

115. What a surprise it is that the knowledgeable men and ascetics use their body – fit for use as provision for traversing the path of soul-realization – not in activities like determining the nature of the reality, own-soul perception, own-soul conduct and attending seminars, but in watching the dances of women! This fact can only be digested by wicked men, not by the nobility.

---

116. नारी-नृत्य, नारी-सम्मेलनों में अपना अमूल्य-समय नष्ट न कर, आत्म-दर्शन, यतियों के सम्मेलन के दर्शन ही त्यागियों को शोभा देते हैं। धर्म नेता, साधु-महात्मा किसी भी परम्परा से सम्बंध रखते हों उन्हें एवं राजनेता, समाज नेता, परिवार के मुखिया अथवा किसी भी विवेकी को नृत्य-दर्शन की आदत नहीं डालनी चाहिए। प्रतिष्ठित धर्मजनों को मार्ग-पथों, गली-गलियारों में किन्नर, वेश्यादि के नृत्य अथवा अन्य सामान्य नट-नटनियों के नृत्य-नौटंकी, नाटक, नृत्य-नाटिकादि में अपना मूल्यवान समय नहीं लगाना चाहिए। जो कार्य धर्म एवं लोक-विरुद्ध हो उस कार्य में सज्जन जनों को किञ्चित् भी रुचि नहीं दिखाना चाहिए।

116. The men of dharma should present themselves only in congregations of ascetics engaged in soul-visualization, not in assemblies of women and dance-concerts. The habit of witnessing dances of women is to be avoided by all men of discrimination, not only religious leaders and ascetics but also political leaders, social leaders and heads of family. The men of dharma should not waste their valuable time in witnessing any kind of dances, plays or concerts. Noble men should not show interest in any activity that is against the dharma and worldly-propriety.

---

117. पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा की मर्यादा तभी तक है, जब-तक नृत्यादि वृत्तियों में सामूहिक नहीं बैठेंगे। प्रदर्शक दर्शकों को लुभाने हेतु शरीर के अंग का नृत्यादि में प्रदर्शन करते समय सभी जन एक साथ बैठेंगे तो एक-दूसरे की कुदृष्टि का बोध हो जाएगा और फिर लोक-व्यवहार की मर्यादाएँ भी समाप्त हो जाएँगी।

117. Decorum is maintained between the father and his son, the guru and his disciple, and the king and his subject, so long as they do not watch together dances, etc. If they watch, sitting together, the voluptuous movements of the dancers, the lewd response of the one will be seen by the other and all decorum that must be maintained in such gracious relationships will be destroyed.

---

118. चेतन-नृत्यांगनाओं को देखने का तो पूर्ण निषेध है ही, अपितु श्रेष्ठ-जनों को दूरदर्शनों चैनलों में भी बिना मर्यादा के सन्तानादि के साथ अशुभ सिनेमादि नहीं देखना चाहिए। वृद्ध-जनों को युवा-पीढ़ी की आस्था का ध्यान अवश्य ही रखना चाहिए।

118. Watching live dance-performances of women is strictly prohibited; watching, with children, movies and vulgar shows on television too is not advisable. The elderly should maintain their trustfulness among the younger generation.

---

119. श्रेष्ठ तो यही है कि व्यर्थ के कार्यों को समय ही नहीं देना चाहिए। गुणीजनों को प्रशस्त धार्मिक चित्रों का दर्शन करना चाहिए तथा उसी का प्रचार-प्रसार करना चाहिए। आपका अनुशासित जीवन ही लोक-प्रसिद्धि, आत्मसिद्धि प्रदायक है, अन्य कोई उपाय भी नहीं है। स्वात्म-तत्त्व का दर्शन स्वात्म-भावना पर आलम्बित है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

119. The best is not to spend time on worthless activities. Noble men should watch only auspicious and dharma-based pictures and propagate these. Only your disciplined life will provide you glory in the world, and soul-realization. Observation of own-soul will lead you to the realization of own-soul substance; there is no other way.

वादित्र-श्रवण व्यसन

Listening To Music

120. घन, सुषिर, ताल, मृदंग, धत्ता, झालर, शहनाई, तुरई, वरह, ढोलक आदि नाना प्रकार के प्राचीन वादित्र एवं वर्तमान के कर्णप्रिय वादित्र, ये सब कर्ण-इन्द्रिय के विषय हैं और ये सभी आत्म-घातक हैं। कर्णेन्द्रिय विषय में लिप्त मृग-सर्प आदि प्राणी इतने तल्लीन हो जाते हैं कि पर-के बंधन में पड़कर अपनी स्वतंत्रता का नाश कर लेते हैं और कभी-कभी तो प्राणों से ही हाथ धो लेते हैं। संगीत-बाजों में निमग्न व्यक्ति अपने कर्तव्यों को भूलकर सुबह से शाम तक अन्य कार्य पर दृष्टि ही नहीं ले जाता, परिणाम यह होता है कि सारी व्यवस्थाएँ बिगड़ने लगती हैं, इसलिए अपने जीवन को व्यवस्थित बनाकर चलना चाहिए। वादित्रों में मत जाओ, बाजों ध्वनियों की अपेक्षा भगवान् की दिव्य-ध्वनि तत्त्वोपदेश सुनो।

120. Ancient musical instruments of various kind, including *ghana, suṣira, tāla, mṛdaṅga, dhattā, jhālara, śahanāī, turaī* and *ḍholaka,* as well as modern instruments, are for the sense-of-hearing; these are not beneficial for soul-development. Living-beings, like snake and deer, engrossed in their sense-of-hearing

get cooped up by others and, at times, lose their life even. The man engrossed in listening to music from morning to evening forgets all his duties; all his systems of life get haywire. Make your life systematic. Don't go after musical instruments: listen to the preaching based on the divine voice of the Lord, instead.

---

121. यदि वादित्रों में ही समय पूर्ण कर दिया, तो धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष पुरुषार्थ कब करेगा? सामान्य से ग्रहस्थ कदाचित् वादित्र श्रवण कर ले, परन्तु वादित्र सुनने की आदत या व्यसन नहीं होना चाहिए। प्रज्ञ-पुरुष अपने जीवन में उन्हीं कार्यों में पुरुषार्थ करते हैं जिनसे दु:ख और संसार से मुक्ति हो और परमात्म-सुख प्राप्त हो। गान-श्रवण, नृत्य-दर्शन एवं वादित्र-श्रवण में आसक्त हुआ कौन पुरुष अपने प्राण, धन और मान-मर्यादा को नष्ट नहीं करता? अर्थात् सभी नष्ट करते हैं। विवेकी को उक्त गान-श्रवणादि में आसक्त नहीं होना चाहिए।

121. If a man spends all his time in listening to music, when will he put effort on the dharma, wealth, family, and liberation? Occasional listening to music is fine but this should not turn into a habit or an addiction. Intelligent people put their effort on activities that result in release from misery and the world, and attainment of the supreme happiness. Who does not lose life, wealth and glory through the addiction of listening to song and music, and watching dance? The man of discrimination should avoid such addiction.

---

122. प्रज्ञ-पुरुष प्रतिक्षण उस बात पर ध्यान रखते हैं जिसमें देश-राष्ट्र-समाज-धर्म हित के साथ स्वहित निहित हो। प्रज्ञ-जन वही सुनते हैं, वही देखते हैं, उसी पर चिंतन करते हैं जो आत्म-कल्याण में सहायक हो।

122. Intelligent men concentrate on subjects that benefit not only the country, nation, society and dharma, but also self. They hear, see and reflect only on subjects that help soul-realization.

वृथा-गमन व्यसन

Aimless Moving About

123. सदय-हृदयीजन प्रयोजन के वश ही गमन करते हैं, व्यर्थ में न स्वयं घूमते हैं न अन्य को ही घुमाते हैं, साथ ही व्यर्थ में निष्प्रयोजन घूमने वालों की अनुमोदना भी नहीं करते। विशिष्ट महापुरुष उच्च जाति के देवों तुल्य जीवन जीते हैं। गति, शरीर, परिग्रह एवं अभिमान में जैसे उच्च देव हीन-हीन होते हैं, ऐसे ही श्रेष्ठी-जन सहज जीवन जीते हैं।

123. Kind-hearted men move about only with a purpose; they themselves do not move about aimlessly, do not ask others to do so and do not grant approval to others to do so. Excellent men are like the heavenly deva. Just as the heavenly deva in higher *kalpa* decrease with regard to motion, stature, attachment and pride, excellent men, too, lead a natural life.

---

124. जिनकी कोई कीमत नहीं है ऐसे आवारा खुले श्वान यहाँ-वहाँ सर्वत्र दिन-रात विचरण करते हैं, गली-गली में भोंकते रहते हैं, उनका काम ही यह है और वे कर भी क्या सकते हैं? उनकी पर्याय की प्रत्यासत्ति ही ऐसी है। दूसरे के द्वारे पर घूमना और पर की रोटी के टुकड़ों को देखना, उसी में जीना। स्वयं का न भाग्य न पुरुषार्थ, अहो! क्या जीवन?

124. The worthless and wandering street-dogs move about here and there, day and night and keep on barking in every street; what else can they do? This is the manifestation of their mode of existence. To move about in front of every door, to look for food at every place; they live this way only. Neither own-fate nor own-effort; alas, what a life!

---

125. देश, राष्ट्र, धर्म, समाज एवं स्वात्महितान्वेषी-जन, प्रतिपल अपना विचार एवं जीवन को उत्कर्षपूर्ण देखना चाहते हैं। हर कर्म उनका सद्-विचार, सद्सोच, सद्कार्य के लिए ही होता है। असद्-विचार, असद्-सोच, असद्-कार्य के लिए उनका कोई प्रयास पृथ्वी पर नहीं होता है। व्यर्थ का विचार, व्यर्थ का आचार, व्यर्थ का भ्रमण उनके हृदय-कोष में होता ही नहीं। वे जीव विरले ही होते हैं, जो कि आत्मोत्कर्ष के साथ विश्वोत्कर्ष की दृष्टि प्रदान कर सकें।

125. The men who wish beneficence of the country, nation, dharma, society and own-self uplift every moment their thought and life. Their each effort is for right thinking and right purpose. They do not indulge in actions that blemish their thinking and purpose. Purposeless thinking, purposeless activity, and purposeless moving about do not exist in the repository of their hearts. Only very few living-beings can visualize world-development with own soul-development.

---

126. तीर्थंकर भगवन्तों ने स्व-पर हितार्थ सम्पूर्ण देशों में पर्यटन किया, पर व्यर्थ भ्रमण नहीं किया। उन्होंने विश्व के लिए 'सत्यार्थ-बोध' दिया। संयमित भोजन, शुद्ध शाकाहार वह भी तामसिकता रहित करें। शुद्ध विचार हों, पर ईर्षा रहित। प्राणी हिंसा रहित स्व-पर कल्याणार्थ विहार करें, असम्यक्-कार्य हेतु व्यर्थ गमन न करें। पग-पग चलने का अर्थ निहित होना चाहिए।

126. The Supreme Lords – *Tīrthaṅkara* – toured all countries not without purpose but with the aim of benefitting others. They imparted the knowledge of truth to the world. Eat with restraint only pure, vegetarian and non-stimulating food. Have pure thoughts, rid of envy. Move about only for the purpose of benefitting self and others, without causing injury to the living-beings; do not move about without right purpose. Every step that you take should have a meaning.

---

127. प्रज्ञ पुरुष श्वास, समय और कदम तीनों की रक्षा करते हैं। न श्वास व्यर्थ लेते हैं, न समय को व्यर्थ निकालते हैं और न अपने कदमों को पृथ्वी पर व्यर्थ रखते हैं। शारीरिक शुद्धि के लिए, भोजन के लिए, श्री जिनदेव दर्शन, तीर्थ वन्दना के लिए, गुरु वन्दना के लिए, आगम बोध हेतु ही गमन करते हैं, व्यर्थ में संसार-वृद्धि हेतु कोई कार्य नहीं करते। पुराण-पुरुषों के जीवन को अपने अन्तःकरण में पूर्ण स्थान देते हैं। प्रत्येक कदम विवेक-ज्ञान के साथ रखते हैं, ऐसा कदम कभी नहीं रखते जिसके उपरान्त पश्चाताप करना पड़े। कदम रखने के पूर्व सोचते हैं, वहीं बुद्धिहीन कार्य करने के उपरान्त पश्चाताप करता है, यही दोनों में अन्तर है।

127. Intelligent men protect their breath, time and step. They do not waste their breath, time and each step that they put forward on earth. They move about only for purifying their body, for food, for the *darśana* of Lord Jina, for pilgrimage, for adoration of the guru and for study of the Scripture; they do not move about for any task that elongates world-wandering. They establish firmly the great historical men in their hearts. Every step that they take is with discrimination and knowledge so that they do not have to regret later on. Ignorant men take step and regret later on; this is the difference.

---

128. व्यर्थ में स्वयं घूमना, दूसरे को घूमाना, ये प्रमाद-चर्या है, अनर्थदण्ड है। निष्प्रयोजन किया गया कार्य 'अनर्थदण्ड' कहलाता है। निरर्थक यहाँ-वहाँ घूमने-फिरने वाला व्यक्ति अनर्थपूर्ण पाप किए बिना विश्राम नहीं लेता अर्थात् निष्प्रयोजन घूमने वाला व्यक्ति सभी पापों में फँस जाता है, इसलिए अर्थ-लाभादि प्रयोजन-शून्य घूमने का त्याग करना चाहिए।

128. To move about aimlessly and ask others to do so are negligent activities or purposeless-sin *(anarthadaṇḍa)*. To perform any activity without purpose is called *anarthadaṇḍa*. The man who moves about here and there certainly gets engaged in all kinds of demerits; renounce moving about purposelessly.

---

129. जहाँ धर्म-यश वर्धमान होता हो वहीं सज्जनों को गमन करना चाहिए। जिस क्षेत्र में धर्म-यश-धन का नाश हो रहा हो वहाँ पर व्यर्थ में नहीं जाना चाहिए। कर्तव्यनिष्ठ, विवेकयुक्त सद्-पुरुष बिना प्रयोजन व

आमंत्रण के अकेले किसी के यहाँ पर नहीं जाते हैं। पर-घर में बिना बुलाए जाने से सम्मान तो मिलता ही नहीं, अपितु अपमान ही मिलता है, जो हृदय में शल्य खड़ी कर देता है और शल्य का जीवन दु:खमय ही होता है।

129. Noble men should visit only such places where dharma and glory are enhanced. Do not unnecessarily visit places where dharma, glory and wealth are destroyed. The dutiful and discriminating men do not visit any place alone without purpose and invitation. If a man visits someone else's house without invitation he does not get due respect and that acts as a sting *(śalya)* in his heart; the life with sting is full of misery.

ईर्ष्या व्यसन

Jealousy

130. संसार में पतन के अनेक कारणों में ईर्ष्या बहुत बड़ा कारण है। पर की विभूति, लक्ष्मी, उत्थान सहन न कर उससे द्वेष-बुद्धि रखना, अन्दर-ही-अन्दर जलना, झुलसना ईर्ष्या है। हृदय से किसी की भी, किसी भी क्षेत्र में होती हुई उन्नति को सहन न करने की असमर्थता ईर्ष्या है। ईर्ष्यालु को न दिन में शान्ति मिलती, न रात्रि में। चन्द्रमा की चाँदनी, चन्दन के छींटे, शीतल-सुवासित जल भी उसे शान्ति नहीं दे पाता है।

130. Jealousy is one of the main causes of downfall in the world. Jealousy is to get scorched from within due to one's inability to tolerate the grandeur, wealth and progress of others. Not being able to tolerate, in own heart, the progress of anyone in any field is jealousy. The jealous man does not get peace, day and night. Even the light of the moon, the sprinkling of the sandalwood, and the soothing, fragrant water fail to assuage the jealous man.

---

131. कदाचित् गंगा जलादि शरीर को ठंडा कर सकते हैं, पर अन्तरंग की दाह-ज्वाला पानी आदि द्रव्यों से शान्त नहीं हो सकती है। विश्व में जितने भी देश-युद्ध, राष्ट्र-युद्ध, गृह-युद्ध हुए हैं उनमें सर्वप्रथम, प्रधान, अहं भूमिका किसी की रही है, उसका नाम ईर्ष्या है। चाहे शीत युद्ध हो, चाहे मूक युद्ध हो, चाहे जल युद्ध हो, चाहे मल्ल युद्ध हो, चाहे दृष्टि युद्ध, ये सभी एकमात्र परस्पर ईर्ष्या के कारण ही हुए हैं।

131. It may be possible to cool the body by external applications like the water of the Ganges but the internal scorching due to jealousy cannot be extinguished by such applications. The first, primary and important reason of all conflicts that have taken place in the world between countries, nations and families can be traced to jealousy. Whether it is a cold war, a silent fight, a water fight, a bodily fight or a sight fight, all these have taken place only due to mutual jealousy.

---

132. जिसके अन्दर ईर्ष्या के कदम दृढ़ हो चुके हैं वह कभी किसी की अच्छाई नहीं देख पाता; गुण-ग्राहकता का आलोकिक आनन्द उसे कभी नहीं आता है। अपनों के अन्दर ही विशेष-गुण प्रकट हो रहे हों अथवा हो गए हों तो उन्हें भी ईर्ष्यालु सुदृष्टि से देखने का साहस नहीं कर पाता है। पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य के मध्य जब ईर्ष्या की ज्वाला जलती है तो अनेकों की आस्थाओं की पुष्प-मालाएँ मुरझा जाती हैं।

132. The man in whom jealousy has established its feet firmly cannot see virtues in others; he fails to experience the unearthly bliss of adopting virtues of others. The jealous man is not able to muster courage to see the originating or already-existing special virtues even in his kin. When the fire of jealousy burns among the father and the son and among the guru and the disciple, the garlands of trustfulness of many get withered.

---

133. कम-से-कम पिता को पुत्र की, पुत्र को पिता की, गुरु को शिष्य की, शिष्य को गुरु की, पति को पत्नी की, पत्नी को अपने पति की, मित्र को मित्र की, जाति-भाई को जाति-भाई की, देश को देशवासी की, राष्ट्र को राष्ट्रवादी की, स्वभाषा-भाषी को स्वभाषा-भाषी की, सहधर्मी को सहधर्मी की उन्नति पर हर्षित होने की क्षमता तो आना ही चाहिए।

133. The members of the following relationships, at least, should have the ability to get pleased on seeing the progress of each other: the father and the son, the guru and the disciple, the husband and the wife, the friends, the brothers, the countrymen, the nationalists, the speakers of the same language and the followers of the same religion.

---

134. जैसे एक सच्ची माँ अपने बेटे की उन्नति पर प्रमुदित होती है, ऐसे ही प्रत्येक जीव के अंतरंग-बहिरंग विकास पर गुणग्राही पुरुष स-वात्सल्य भाव से प्रसन्न होता है। वे ही इस भू-लोक में श्रेष्ठजन हैं जो पर के विकास में स्व-विकास देखते हैं। श्रेष्ठ-ज्येष्ठ जन, राजनेता, धर्मनेता देश के विकास में स्व का विकास देखता है, धर्म के विकास में स्वधर्म का विकास देखता है। ऐसा राजनेता ही राज्य चलाने का अधिकारी है।

134. Just as the real mother gets delight out of her son's progress, in the same manner, the man keen to adopt virtues gets affectionate delight on seeing the internal and external progress of every man. The excellent men on this earth see own progress in progress of others. The senior man of virtue or the leader or the religious-head sees his own progress in progress of the nation; in progress of the dharma he sees own progress. Only such a leader has the right to run the country.

---

135. जो व्यक्ति मात्र स्वपेट, स्व-पेटी देखता है, पर की वृद्धि पर नेत्रहीन-दीन व आक्रोश-पूर्ण करता है, ऐसा व्यक्ति, राजनेता एवं राजा किसी भी संस्था के मुख्य पद को सँभालने के लिए अयोग्य है। सम्यक्-उत्थान के लिए अयोग्य पुरुष को अपना अधिकारी व श्रद्धेय नहीं चुनना चाहिए। अयोग्य के न स्वामी बनो और न ही सेवक, क्योंकि अयोग्य का सहवास जीवन में कष्ट देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे पाएगा। गुण-ग्राही, गुणवान, गुण-सम्पन्न दाता के साथ निवास करोगे तो जीवन सुवासित हो जाएगा। पल-पल में श्रेष्ठजनों का सानिध्य, गुरुजनों का आशीष, विद्वानों की विद्या का बोध ईर्ष्या-रहित व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। वहीं ईर्ष्यालु की तो पत्नी भी छोड़कर चली जाती है, फिर अन्य की क्या बात करें। श्रेष्ठ यही है कि विश्वास के साथ रहना सीखो, यही आत्मोन्नति का मार्ग है।

135. The person, leader or king whose sight is only on own sustenance and wealth and who either fails to see or gets disturbed on progress of others is not fit to be the head of any institution. To attain right self-progress, do not choose an incapable man as your leader or a person-of-reverence. Do not become either a master or a subordinate of an incapable man; the company of such a man will provide you nothing but misery. For fragrance in life, have company of the man who is apt in adopting virtues of others and is virtuous himself. Only the man without jealousy gets incessant company of great men, blessings of the guru and knowledge from the men-of-knowledge. Even the wife of the jealous man leaves him, what to talk of the others. Live with confidence; this is the path to self-progress.

---

136. ईर्ष्या की ज्वाला में आहूत हुए लोगों का इतिहास लिखा रखा है। सद्-धर्म के ईर्ष्यालुओं ने त्यागी-साधु-महात्माओं पर घोर-घोर उपसर्ग किए, मंदिर-मूर्तिओं को नष्ट किया तथा परिवर्तन भी किया, सद्-शास्त्रों की होली भी जलाई, बहू-बेटियों के शील नष्ट किए। कौरव-पाण्डव युद्ध में किसकी भूमिका है? ईर्ष्या-भाव की। नारायण-प्रतिनारायण का युद्ध भी ईर्ष्या से ही प्रारम्भ होता है।

136. The history is replete with stories of men who got burnt up in the fire of jealousy. Men with jealousy for right dharma had inflicted great calamities on pious men, ascetics and men-of-distinction, destroyed and converted to other faith temples and idols, burnt down holy Scripture, and assaulted young women. What instigated the war between the Kaurava and the Pāṇḍava? It was jealousy. The conflict between the *nārāyaṇa* and the *pratinārāyaṇa*, too, is instigated by jealousy.

---

137. ज्ञानी जनों को चाहिए कि जलने के पहले जलना छोड़ें; यदि जलने के पूर्व जलना नहीं छोड़ पाए तो भव-भव घोर दु:ख में जायेंगे। अपयश, अकीर्ति, लोक-अविनय, दुर्गतियों के दु:ख, ये सब ईर्ष्या का ही फल समझो। साधु एवं सम्राट् को कभी भी अपना चित्त ईर्ष्या की आग में नहीं जलाना चाहिए, क्योंकि यह सर्वथा घातक ही है।

137. Knowledgeable men should stop burning up in the fire of jealousy before their body gets burnt up; if not, their future lives will be full of misery. Disrepute, dishonour, denouncement and misery in future lives are to be considered as the fruits of jealousy. The ascetic and the king should never burn their hearts up in the fire of jealousy; this causes all-round destruction.

साहस व्यसन

Recklessness

138. पर-स्त्री सेवन एवं कन्या-दूषण, इसे नीतिकारों ने साहस व्यसन नाम दिया है, परन्तु यह यथार्थपूर्ण श्रेष्ठ का साहस नहीं समझना, यह तो क्रूरता-कुशीलता से युक्त दु:साहस है।

138. Wise men have termed indulgence in others' wives and spoiling of virgins as recklessness but do not mistake the word 'recklessness' for valour; what it means here is the behaviour that is full of cruelty and loose-character.

---

139. ओहो! दुर्जन, कामांध विषयासक्त पापों से कितना निडर-निर्भीक होता है जिसे अपनी दुर्गति का भी भय नहीं है, उसे लोक अपयश का भी डर समाप्त है और रावण जैसे नर्क जाने की तैयारी है। ओहो! कितना बड़ा दु:साहस? जाति-कुल-वंश-धर्म, नगर, सम्प्रदाय की अपकीर्ति का भी जिसे कोई विकल्प नहीं है, उसे मात्र अपनी वासना, भोगवृत्ति से ही प्रयोजन है। ऐसा नरधम पृथ्वी पर मात्र भार ही है। साहस-व्यसन पूर्ण हेय ही है।

139. Alas! Reckless is the evil man who is blind with lust and engrossed perpetually in the pleasure of the senses; he is not afraid of the evil state-of-existence, disrepute, and ready to go to the hell, like Rāvaṇa. Great recklessness! He is not concerned if his caste, lineage, family, dharma, town, and community are denounced; what matters to him is lust-indulgence and enjoyment of pleasures. Such lowly man is nothing but a burden on the earth. The addiction of recklessness is to be shed wholly.

अर्थ-दूषण व्यसन

Squandering Wealth

140. गृहस्थ प्राणों की भी चिंता छोड़कर अर्थ-संग्रह करता है। यह भी सत्य है कि धन के अभाव में स्वजीविका एवं अतिथि-सत्कार कैसे कर पाएगा? व्यवहार-धर्म के लिए श्रावक के पास उचित सम्पत्ति का होना अनिवार्य है।

धनहीन गृहस्थ पशुओं जैसे अपमान एवं दरिद्रता के दु:खों को भोगता है। धनहीन गृहस्थ की आत्म-पीड़ा को वही जानता है।

140. The householder makes effort to earn money even at the cost of his life. It is also true that he requires money for own livelihood and for veneration of the guests. For observing the conventional dharma, it is essential for him to have suitable amount of wealth. The man without money is mistreated like an animal and experiences misery of poverty. Only the householder who is penniless understands the associated misery.

---

141. प्रज्ञ जनों को आय-व्यय पर विवेकपूर्वक विचार करना चाहिए। जो गृहस्थ आय-व्यय में विचार कुशल नहीं है उसका जीवन दु:ख के साथ ही निकलता है, इसलिए आय को देखकर ही व्यय करना चाहिए। अर्थ शास्त्र के बोध के लिए, दिगम्बर जैन मुनि के कमण्डलु को देखो। कमण्डलु के जल-ग्रहण का मुख बड़ा होता है और जल को निकालने की टोंटी छोटी होती है। इसी प्रकार से अर्थ-संग्रह अधिक हो और व्यय उससे कम हो। अर्थ का संग्रह करना आवश्यक है।

141. Intelligent men keep track of their income and expenditure. The householder who is not prudent in his income and expenditure suffers misery; spend according to your income. For learning money management, look at the water-pot *(kamaṇḍalu)* of the *digambara muni*. It has a wide inlet-hole for pouring water but a narrow outlet spout for taking out water. In the same way income should exceed expenditure. Saving money is essential.

---

142. परिग्रह-परिमाण व्रत के साथ असीम अर्थ भी अनर्थकारी हो जाता है। अर्थवान के साथ दयावान तथा दानवान भी होना चाहिए। पुण्यात्मा, धनवानों के द्वारा ही तो तीर्थस्थान एवं साधु-महात्माओं की धर्म-साधना की रक्षा होती है। पुण्य द्रव्य-सम्पन्न अर्थवान जिस देश, समाज, राष्ट्र में निवास करते हैं वहाँ के निवासी सुख से निवास करते हैं। जहाँ श्रीशून्य, पुण्य-क्षीण लोग निवास करते हैं वहाँ किस द्वार पर भिखारी को भीख मिलेगी? किस निर्धन को अर्थ मिलेगा? इसलिए जहाँ पर राजा, सेठ, वैद्य, विद्वान्, धर्मात्मा, साधु-पुरुषों का विचरण हो तथा धन-धान्य, जल पूर्ण हो वहीं आर्यजनों को निवास करना चाहिए। उक्त सामग्रियों में से कोई यदि कम हो तो स्थान का त्याग कर अन्यत्र वास करना चाहिए।

142. For those who have taken the vow of limiting possessions, too much of wealth becomes unusable. Only the men who are with merit and wealth protect the places of pilgrimage and help ascetics and holy men observe dharma. The inhabitants of the country, society and nation where the men of merit and wealth exist lead a happy life. Who will give alms to a beggar at places where only the poor men without merit live? Which poor man will get money? Therefore, noble men should live only at places

inhabited by the king, rich men, doctors, wise men, holy men, and ascetics, and have abundance of wealth, grain and water. Move away from the place if any of these is absent.

---

143. धन, धर्मात्मा, भक्ष्य-भोजी जीवों से राष्ट्र शोभायमान होता है, पर इससे भिन्न जनों से राष्ट्र भारभूत होता है। कुछ लोग राष्ट्र को चलाते हैं, कुछ लोगों को राष्ट्र ही चलाता है। ऐसा जीवन बनाओ कि राष्ट्र के लिए भारभूत न हो हमारा जीवन, अपितु राष्ट्र के लिए उपहार स्वरूप हो। पल-पल राष्ट्र एवं धर्म गद्-गद् रहे आपके नाम पर। जिनके नाम से राष्ट्र गौरवान्वित हो ऐसे नर सामान्य नहीं होते, अपितु वे लोग विशिष्ट नरोत्तम संज्ञा को प्राप्त होते हैं।

143. A nation is embellished by the men who have wealth, lead a pious life and eat only edible food. Some men run the country; some are run by the country. Lead a life so as not to become a burden on the nation; become a gift for the nation. Your name should bring delight to the nation and the dharma. The men who make their nation proud are not common; they are the most excellent men.

---

144. पूर्वकृत दान, धर्म-धर्मात्माओं के प्रति मायाचारी रहित वात्सल्य-भावना से जो पुण्य का आस्रव-बंध किया था, उस पूर्वकृत पुण्योदय से वर्तमान में अर्थोपलब्धि हुई है, उसका सम्यक्-उपभोग पूर्वक व्यय होना चाहिए। असमीचीन-वृत्ति से जो धन का व्यय करता है वह कुबेर जैसा भी क्यों न हो तब भी उसे अल्प काल में ही धन-हीनता, दरिद्रता का दर्शन करना पड़ता है, अतः अर्थ के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए।

144. Your present wealth is due to the fruition of influx and bondage of your past karmas of giving gift, and pristine affection toward the dharma and its followers. Spend money only in right kind of enjoyment. Those who are rich like Kubera but spend money in an indiscreet manner have to witness poverty in no time. Do not be reckless with money.

---

145. लोभी नहीं विवेकी तो होना ही पड़ेगा। विवेकपूर्वक वित्त का व्यय करो भविष्य में चित्त खिन्न न हो। धर्म के साथ धन का उपयोग करना सीखो। अर्थ-दूषण व्यसन से आत्मरक्षा करना सीखो। जो बहुत कमाने पर भी धनहीन हैं, ऐसे पुण्यहीन, विवेकहीनों से दूरी बनाकर जीना, पर उन्हें देखकर शिक्षा अवश्य लेना। जो धनिक होकर भी किसी का भला न कर सके, वही तो यथार्थ में धनहीन है।

145. Do not be greedy but have discrimination. Spend discreetly so as not to get disturbed later on. Use money with a sense of dharma. Save yourself from the addiction of squandering money. Maintain distance from the poor men of demerit

and indiscretion, but do learn from them. In true sense, the men who are rich but do not help anyone are poor.

---

146. अर्थ-दूषण व्यसनी जीव लोक में जीवन-हीनता के साथ कंगाली का जीवन जीते हैं। जिन्हें धन-संग्रह करने का 'सत्यार्थ-बोध' नहीं है वे आय कम करते हैं और उसे भी अभक्ष्य-भोजन, अपेय-पेय, असेव्य-सेवन, सुरा-सुन्दरी के भोग में व्यर्थ ही गवाँ देते हैं। जो कुक्षेत्रों, कतीर्थों, कुपात्रों में धन व्यय करते हैं, वे अर्थ-दूषण व्यसनी हैं।

146. Men having the addiction of squandering money lead a barren life of poverty. Those unaware of the truth of money-saving earn less but spend more on unworthy food, drink, other consumables, and on alcohol and promiscuity. Those who spend money on evil regions, places and recipients have the addiction of squandering money.

---

147. जो दुष्कर्मियों के मध्य अपने द्रव्य को लगा रहे हैं, भोग-भोजन से भिन्न जिन्हें अन्य कुछ नहीं दिखता वे धनपति भी कुछ ही दिनों में कंगाल हो जाते हैं। अहो प्रज्ञात्मन्! अपात्र-कुपात्रों में, दुर्व्यसनों में, पंचेन्द्रियों के अमर्यादित सुख-भोगों में जीवन एवं धन दोनों का अपव्यय मत करो। जीवन में धर्म एवं यश के साथ जीवित रहना है, तो संयमित जीवन जियो। धनवानों, विद्वानों, यशवानों के मध्य यशवान बनकर वे ही अर्थवान रह पाते हैं, जो सदा चारित्रवान रहते हैं।

147. Rich men, who spend their wealth among the men of evil tendencies and who are not able to see anything beyond food and enjoyment, lose wealth in a matter of days. O intelligent soul! Do not waste your life and wealth on unworthy recipients and in unrestrained enjoyment of the five senses. Live with restraint if you wish to lead a life of dharma and glory. Only those men who maintain glory among the rich, knowledgeable and well-known men are able to retain wealth and right conduct.

---

148. मित्र! जीवन में कितनी भी विपत्ति आ जावे, परन्तु अपने निर्मल यश एवं चारित्र को कभी भी विपत्ति में नहीं डालना। अर्थ-दूषण व्यसन मुक्त जीवन जीना, प्रसन्न-चित्त से सदा सद्पात्रों को दान करते रहना, दान भी स्व-शक्ति से ही करना, जिससे स्वयं एवं परिवार का जीवन आनंदपूर्ण बना रहे।

148. Friend! Whatever calamities you may face, do not put at risk your pristine glory and conduct. Lead a life free from the addiction of squandering money and continue giving gifts to the worthy recipients; give gifts only according to your ability in order to maintain happiness of self and family.

अकारण-वध व्यसन

Aimless Killing Of Living-beings

149. शासन वही कर सकता है; जिसका स्वयं का जीवन आत्मानुशासित हो। जो स्वयं ही आत्मानुशासित नहीं है उसका स्वयं के गृह में ही अनुशासन नहीं चलता, फिर देश व राज्य में क्या चलेगा? जैसा तुम स्वयं के लिए चाहते हो वैसा दूसरों के लिए भी करना सीखो, शत्रु के प्रति भी सदय-भाव रखो। समय परिवर्तनभूत होता है, तृण भी समय पर काम आता है। घर में पड़ा मलिन वस्त्र भी घर में पोंछा के काम में आता है। घूरे का ढेर भी खेत में खाद के काम में आता है, इसलिए किसी को सर्वथा हेय दृष्टि से मत देखो।

149. Only the man of self-discipline can rule others. The man without self-discipline cannot force disciple in own family, how can he possibly rule the country or the state? Do unto others as you would have them do unto you; maintain kindness even for your enemy. Time changes and at certain time even a blade of grass becomes useful. The worn-out cloth becomes useful for the purpose of cleaning. The heap of waste matter becomes useful as manure; do not consider anything as totally worth discarding.

---

150. जो वस्तु जैसी है उसे वैसी अवश्य देखो। काँटा भी समय पड़ने पर काम में आता है; जब पैर में काँटा चुभ जाता है तब वृक्ष का काँटा ही उस काँटे को निकालता है। इसका तात्पर्य काँटे को पेटी या स्ववस्त्रों में नहीं रखना, पर उसका भी अपना महत्त्व है इतना समझना। जो जैसा उसे वैसा स्थान देना। किसी का अपमान नहीं, पर सम्मान का अतिरेक भी नहीं।

150. See every object as it actually is. At a certain time, even a thorn is useful; when a thorn pricks your foot, another thorn is used to take it out. The idea is not to collect and keep thorns safely in boxes but to appreciate their usefulness. Give every object the place it deserves. Do not denounce anyone; also, do not give excessive reverence.

---

151. किसी का वध मत करो। निष्प्रयोजन, निष्कारण न किसी का वध करो; न बदनाम। अहिंसा परमब्रह्म का आलम्बन लो। करुणाशील के घर विभूति स्वयं चलकर आती है, हिंसक-क्रूर हत्यारे के घर की विभूति, सुख-शान्ति-आनन्द देखते-देखते ही क्षण मात्र में विलीन हो जाती है। दुराचारियों के प्रति भी आप अप्रशस्त मत सोचो, उन्हें तो उनके पापों का फल स्वयं ही मिलेगा। क्रूर-से-क्रूर शासकों का भी अंत हुआ है, फिर हम क्यों किसी का बुरा सोचकर अपना पुण्य क्षीण करें?

151. Do not kill anyone. Do not kill or denounce anyone without a purpose and cause. Take refuge in the supreme virtue of non-injury *(ahiṃsā)*. Prosperity comes by itself to the home of the compassionate man. Prosperity, happiness, peace and bliss leave

the home of the cruel and violent man in no time. Do not think ill of even men of loose conduct; on their own they will get the fruit of their evil karmas. Existence of even the most cruel rulers has come to end; why should we destroy own merit by thinking ill of others?

---

152. अति की इति नियत है, इसकी नियतता को टालने में किसी की गति नहीं है। वैभव एवं अधिकार पाकर अहंकार में मत आओ। निरपराध जीवों को मत सताओ। वनस्पति, अंकुरों को नष्ट करने वाले नष्ट हो जाते हैं, फिर मानवों पर अत्याचार करने वाले कैसे बच सकते हैं?

152. Outrageousness must come to an end; no one can overrule this fact. Do not be overbearing of your affluence and power. Do not torture innocent living-beings. When those who harm plants and sprouts are destroyed, how can those who torture humans be saved?

---

153. शासक को निर्दोष व्यक्ति पर क्रूरता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। सामान्य प्रजाजनों को भी परस्पर में करुणा-भाव का व्यवहार रखना चाहिए। एक बगीचे में नाना वृक्षों-फलों का समुदाय एक साथ होता है, तभी तो वह बगीचा कहलाता है। एक-एक वृक्ष की उद्यान में अपनी एक कीमत है, इसी प्रकार एक-एक नागरिक की देश में कीमत है। प्रत्येक व्यक्ति से देश की संख्या का परिणाम-प्रमाण का बोध होता है। मानव को मानव देखो, इतना ही नहीं, प्राणी-मात्र में भगवान्-आत्मा को देखो। किसी को कष्ट मत दो, सभी जीवों को जीने का अधिकार है। जीवों को जीने दो यह भी सबका कर्तव्य है। सभी को अधिकार के साथ कर्तव्यों का भी समीचीन पालन करना चाहिए।

153. The ruler should not be cruel against the innocent man. All citizens should have mutual compassion. In a garden many kinds of trees and fruits grow together. Each tree has its own value. Similarly, each citizen in a country has value. Each citizen contributes to the attribute and size of the country. See every human as a human; not only this, see a god-soul in every living-being. Do not harm anyone; all living-beings have the right to live. All are duty-bound to let others live. All must observe their duties along with their rights.

---

154. धिक्-धिक्-धिक् वे अधिकृत अधिकारी जो धन के पीछे दूसरों से दुर्व्यवहार करते हैं। पर को पीड़ित करना भी भाव-हिंसा है। अपने पद के अनुकूल व्यक्ति को स्व-पद के अनुसार अपने अधिकारों का उपयोग विवेक, दया, मानवता के साथ करना चाहिए। अनुशासन का पालन दयार्द्र-भाव से कराया जाता है। सामने वाले की स्थिति का भी संज्ञान होना चाहिए। प्रजा-जनता को सँभलने के लिए भी समय देना चाहिए। यदि प्रजा ही

नष्ट हो जाएगी या स्वात्म-हत्या करेगी फिर राजा के राज्य की शोभा ही क्या? यदि प्रजा का ध्यान नहीं रखा गया तो प्रजा संगठित होकर राजा के विनाश का ही निर्णय कर लेगी। प्रजातंत्र की यह विशेषता है कि इसमें प्रजा अपने शासक का निर्धारण करती है।

154. Fie on the officials who misbehave with others for the sake of money. To hurt others is psychic-injury *(bhāva-hiṃsā)*. Every official should use the powers bestowed on his position with discrimination, pity and humanity. Discipline has to be applied with kindness. The condition of the subjects should be taken note of. Give adequate time to the subjects for reformation. If the subjects of a country are destroyed or if they resort to self-destruction, the country and its ruler stand to lose magnificence. If the subjects are not looked after well, they themselves will decide to dethrone the ruler. The special feature of democracy is that the subjects themselves determine their ruler.

---

155. शासक को प्रजा का पालन जननी जैसा करना चाहिए। माँ की डाँट में भी दुलार महसूस होता है। किसी का वध करना समस्या का समाधान नहीं है। शासन द्वारा मृत्यु-दण्ड भी किसी विशेष कारण का बोध कराकर दिया जाता है। सम्राट् का धर्म है वह जैनाचार्यों की भाँति सर्वप्रथम अपराध का बोध करा दे। यदि अपराध बोध होने पर अपराधी पुनः वही अपराध नहीं करता है, तो यही उसका प्रायश्चित्त हो गया। प्रायश्चित्त का उद्देश्य शिष्य को पीड़ित करना नहीं है, अपितु दोषों से दूर करके आगमविधि से तपस्या कराना है। अपराध बोध कराने पर भी यदि वह पुनः-पुनः अपराध करता है तो उस अपराधी को कठोर प्रायश्चित्त देते हैं। फिर भी न सुधरे तो मूल दीक्षा ही छेद कर देते हैं, शिष्य की शिष्यता का ही त्याग करा देते हैं। यदि ऐसा नहीं किया तो श्रीसंघ का ही नाश हो जाएगा; सम्पूर्ण शिष्यगण दोष करने लगेंगे और अनुशासन-बद्धता नष्ट हो जाएगी।

155. The ruler should look after his subjects like a mother. Even reprimand by the mother has affection in it. To kill someone is not the solution of the problem. Death penalty is awarded for specific and extraordinary reason. While awarding the punishment, the ruler should first specify the misdemeanor, like the Jaina chief-preceptors do. If the misdemeanor is not repeated, this by itself constitutes expiation. The idea behind expiation is not to torture the disciple but to rid him of his faults and put him back on to the path of austerities as ordained in the Scripture. If the disciple repeats the misdemeanor, the expiation becomes harsher. Still if he fails to reform himself, he is expelled from the congregation. If this is not done, the congregation will get destroyed; all members will become unrestrained with no discipline in force.

---

156. इसी प्रकार शासक का उद्देश्य किसी नागरिक को मारना नहीं होना चाहिए। सर्व-प्रथम अपराधी को सुधार का उद्देश्य होना चाहिए।

156. The aim of the ruler should not be to kill anyone. His first aim should be to reform the person committing fault.

---

157. अपराधी स्वयं ही बोध होने पर अपराध का त्याग कर देता है, तो फिर अन्य दण्ड की आवश्यकता नहीं है। अल्प-अपराध पर मृत्युदण्ड अथवा निरपराधी को मृत्युदण्ड देना तो पूर्ण अनुचित ही है। नेता, राजा के नाम के आगे प्रजा-पालक जुड़ा रहता है, इसलिए शासक को प्रजा पालक होना चाहिए, प्रजा नाशक नहीं। अनुशासन बना रहे, इसलिए अल्पोचित दण्ड देकर प्रजा को अपराध मुक्त करें तथा शीघ्र अकारण वध-व्यसन की आदत का त्याग करें।

157. If the offender, on his own realization, renounces the misdemeanor, there is no need for any punishment. To award death penalty on minor crime or to a person not-guilty is wholly unjustifiable. The leader and the ruler are the protectors of the subjects; they should not become the destroyers of the subjects. For the sake of maintaining disciple and to rid the subjects of crime, award only limited and justifiable punishment. The leaders and the rulers should renounce the addiction of aimless killing.

---

158. हिंसा कभी भी पुण्य का कारण नहीं होती हैं; हिंसा पाप ही है, पाप ही थी, पाप ही रहेगी। जो हिंसा करता है, करता था, करेगा, वह भी पापी है, पापी था, पापी ही रहेगा। जो सभी प्रकार के अपराध और हिंसा कर्म का त्याग कर श्रेष्ठ कार्य करता है, पाप कर्मों का त्याग कर प्रायश्चित्त को कर लेता है, तब उस जीव का कल्याण भी हो जाता है। अशुभ छोड़कर शुभ में लगो तथा शुद्ध को प्राप्त कर तुम भी भगवान् बन सकते हो। नैतिक-पुरुष अहंकार वश, क्रोध वश, निष्प्रयोजन घास का अंकुर भी नष्ट न करें, फिर मनुष्य के विषय में तो कहना ही क्या?

158. Injury *(hiṃsā)* never begets merit *(puṇya)*; it always begets demerit *(pāpa)*. The one engaged in injury *(hiṃsā)* remains forever an evil-doer. The one who renounces all activities of crime and injury and starts engaging in virtuous activities after expiating for his past evil deeds, attains own-welfare. Leave inauspiciousness, engage in auspiciousness and attain purity of own soul; this way you too can become a supreme soul. Noble men should not destroy, out of pride, anger or without purpose, even a blade of grass; what to talk of a human being.

द्रव्य-हरण व्यसन

Snatching Wealth Of Others

159. व्यसन मुक्त राजा ही प्रजा को सुख दे सकता है। जो व्यसन में डूबा है वह प्रजा को क्या सुखी कर पाएगा? राज्य व्यवस्था मर्यादा के साथ होनी चाहिए, बिना मर्यादा के राज्य नहीं चल सकता, राज्य को नीति के साथ ही चलाया जाता है। अनीतिपूर्वक जो राज्य करना चाहते हैं, वे शीघ्र ही पतन को प्राप्त होंगे। अधिकार पाकर जो कर्तव्य का ध्यान नहीं रख पाता उसका विनाश नियत है, उसका पतन परमात्मा भी नहीं बचा पाएँगे फिर अन्य की क्या बात है? बड़े-बड़े स्व-सुखार्थी क्रूर राजे-महाराजे भी हुए, उनका अन्त यश के अन्त के साथ हुआ। साधु-स्वभावी सम्राट् धर्म-यश के साथ सदय-भाव से रहते हैं, वे जन्म-जन्म तक जीवित रहते हैं। प्रबल-पुण्यात्मा जीव को कोई मारना भी चाहे तो नहीं मार सकता है।

159. Only an addiction-free king can make his subjects happy. What happiness can the ruler who himself is drowned in addictions provide to his subjects? The ruler should observe proper restraint; the state can only be ruled with right policies in place. Those who rule without right policies in place are soon ruined. The downfall of those who exercise powers without observing duties is certain; even god cannot save them. Reigns of famous rulers who were cruel and were concerned only about own welfare ended in ignominy. Pious glory of kind-hearted rulers of ascetic-nature remains alive for generations. No one can kill a man with strong fruition of merit.

---

160. पर-धन हरण प्राण-हरण तुल्य है। द्रव्य कमाने की दृष्टि से लोग नाना माया-भाव बनाते हैं, परन्तु पुण्य-क्षीणता में मायाचार चल नहीं पाता, फलतः वह कहीं न कहीं तो खुल ही जाता है। अग्नि को रूई में क्या कोई सुरक्षित रख सका? अग्नि रूई में गुप्त रह सकती है क्या? उसी प्रकार से छल-बुद्धि से संगृहीत धन भी स्व-ग्रह में नहीं ठहर सकता, इसलिए सद्वृत्ति से सम्पत्ति का अर्जन करना चाहिए, पर को पीड़ा देकर नहीं। वे लोग उभय लोक में पतित हैं जो अपने जीवन के लिए पर का जीवन दुःखी कर रहे हैं। साधु-पुरुष स्व के सुख एवं दुःख जैसा पर का सुख-दुःख भी देखते हैं। वे लोग निकृष्ट हैं; जो सामान्य जनों से लेकर राजकीय वस्तुओं का भी हरण कर लेते हैं। शासकीय सेवा में लगा पुरुष मात्र मासिक-वेतन का अधिकारी है, न कि शासकीय सम्पदा का अधिकारी है।

160. Snatching wealth of others is like snatching their life. People resort to deceit in order to earn money but somehow such behaviour gets revealed. Can fire be kept safe in cotton-wool? Can fire remain hidden in cotton-wool? In the same way, money earned through deceit does not stay for long in the home of the earner. Earn money through honest means, not by causing misery to others. Men who, for their own sake, cause misery to others become lowly in both worlds. Noble men see the happiness and misery of others as they see their own happiness and misery. Contemptible are the

men who snatch goods of the general public and the government. The man working for the government is entitled to salary and not government property.

---

161. जो प्रतिष्ठित-पदों पर आसीन प्रतिष्ठित-अधिकारी, कर्मचारी, नेतागण, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, मंत्री, सांसद, विधायक, शिक्षकादि राष्ट्र-सेवा में तत्पर हैं वे सभी राष्ट्र-उन्नति के अंग हैं। वे उनका जो उचित वेतन है उसी का उपयोग करें, वह भी दान-धर्म करते हुए। सभी के श्रेष्ठ-कार्यों से ही एक श्रेष्ठ-राष्ट्र का उदय होता है। सभी नागरिकों का उद्देश्य एकमात्र राष्ट्र-विकास ही होना चाहिए। राष्ट्र-विकास के नारे के साथ-साथ राष्ट्र-विकास के कार्य भी होना चाहिए। देश की सम्पत्ति का उपयोग देश-हित में होना चाहिए। राष्ट्र का अनधिकृत तृण भोग भी नहीं होना चाहिए। जो व्यक्ति राष्ट्रीय-सम्पदा का उपभोग मात्र स्वहित में लगाता है वह राष्ट्र-द्रोही, तस्कर है।

161. Responsible and respectable officers, employees and leaders like the prime-minister, the president, the ministers, the parliamentarians, the members of legislative assemblies and the teachers who are engaged in serving the nation are limbs of the nation's development. They should live within their salary and that too while observing the dharma of giving gift. Good deeds of all citizens give rise to a good nation. All citizens must have one goal: development of the nation. The slogan of development of the nation should be complemented by actual work. Not even a blade of gross of the nation should be misappropriated. The man who misappropriates national wealth is a traitor, a smuggler.

---

162. राजकीय द्रव्य-सेवी पर स्वर्ण मुद्राओं का दण्ड उपादेय है। सकारण द्रव्य-ग्रहण यदि कोटि-कोटि भी करे, तब भी व्यक्ति सहन कर लेता है, किन्तु शासक को अकारण कर या द्रव्य-हरण नहीं करना चाहिए। सम्राट् को प्रजा से उतना ही कर (टैक्स) लेना चाहिए जिससे वह स्वयं भी जी सके और पुनः कर देने योग्य बचे और बिना छल के कर प्रदान करता रहे। अधिक कर लगाने से प्रजा शासक से उदास हो जाती है। प्रजा की उदासता राज्य-क्षय का कारण है। स्वदेश शासक की अनुरागी प्रजा जहाँ रहती है वहाँ सदा सुख एवं शान्ति रहती है। राजा तथा प्रजा की एकता राज्योन्नति का प्रबल हेतु है। वह राजा धन्यवाद का पात्र है जिसकी प्रजा राजा को बहुमान-सम्मान के साथ आदर-सत्कार करे।

162. To impose a fine of gold coins on the one who misappropriates government funds is desirable. People tolerate parting with their money if the ruler has a genuine reason but the ruler should not impose heavy taxes or ask for money without a genuine reason. The ruler should collect taxes only to the extent that leaves enough money with the people for their living, are able to pay taxes again and honestly. High taxes generate resentment for the ruler and people's resentment causes downfall of the state. The state where citizens love their ruler remains ever happy and peaceful.

Unity between the ruler and the citizens is a strong cause of state's development. That ruler is to be thanked who is respected and loved by people.

---

163. जिस प्रकार वृक्ष का मूलोच्छेद करने से उससे फल प्राप्ति केवल उसी समय अंतिम एक बार ही होती है, उसी प्रकार जो राज्य अन्याय के द्वारा प्रजा का सर्वस्व-अपहरण करता है उसे उसी समय केवल एक बार ही धन मिलता है, भविष्य में नहीं। प्रजा की सम्पत्ति निश्चय से राजा का विशाल खजाना है, इसलिए उसे न्यायपूर्वक उपयोग करना चाहिए। अनुकूल उपाय से; अपराध प्रतिकूल आर्थिक-दण्डादि द्वारा नहीं। जैसे स्वयं के खजाने की रक्षा करते हैं वैसे ही प्रजा के धन की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है, क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर राज्य में शत्रुकृत प्राकृत-रोग या महामारी आदि विपत्ति के आने पर राज्य सेठों व अन्य धनिकों द्वारा दान देकर ही राज्य-रक्षा होती है। जैन सेठ भामाशाह ने विपत्ति काल में अपना द्रव्य न्योछावर कर राष्ट्र-रक्षा की, इसलिए प्रजा के द्रव्य का भी संरक्षण होना चाहिए।

163. If a tree laden with fruit is uprooted, it gives fruit only once, not again; in the same way, if the ruler, through injustice, snatches everything of his subjects, he gets money only once, not in future. The wealth of the subjects is the wealth of the nation. The ruler should use this wealth judiciously and collect it by fair means, not through imposition of penalties. It is the duty of the ruler to protect the wealth of the subjects, as his own. In difficult times, like invasion by an enemy or spread of an epidemic, only the rich among the subjects come forward to protect the nation. There is this example of Jaina *Seṭha* Bhāmāśāha who sacrificed all his wealth to save his nation in time of difficulty; the wealth of the subjects too needs preservation.

कर्कश-वचन व्यसन

Harsh Words

164. संसार में सबसे अधिक मधुर (मीठा) न मिश्री है, न अमृत। लोक में सर्व-लोकानन्द प्रदान करने वाली कोई वस्तु है तो वह है- प्रिय हितकारी, मधुर वचन। किसी को आप कितना ही मीठा खिलाओ, परन्तु भाषा-कटुक बोलते हैं, तो उस मिठाई की कोई कीमत नहीं है। प्राणिमात्र के प्रति मधुर-मृदु-गंभीर, आत्महितकारी मोक्षमार्ग की ओर ले जाने वाले वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए। कटुक, कर्कश, कठोर-वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि मधुर-वाणी से काला-नाग भी अपने वश में हो जाता है, पर कर्कश-कठोर-सावद्य, मर्म भेदी शब्दों से तो अपने सगे-सम्बन्धी लोग भी शत्रु हो जाते हैं। कटु भाषी पिता के पुत्र भी पिता को छोड़कर चले जाते हैं। जगति पर सबका प्रेम-पात्र बनना है तो सत्य, सरल, प्रांजल, मधुर-भाषण बोलना सीखो वह भी मायाचारी रहित। स्वार्थ-सिद्धि हेतु नहीं, न ख्याति हेतु, अपितु स्वाभाविक प्राकृत रूप से भाषा में माधुर्य का रस भर दो।

164. In this world, neither the sugar-candy nor the nectar is the sweetest of all things. The sweetest thing that provides delight to all is the endearing, helpful and soothing speech. Give someone the sweetest of food to eat but if your speech is harsh the food loses its sweetness. Use speech that is sweet, soothing, deep, and helps the soul tread the path to liberation. Do not use bitter, harsh, and piercing words. Soothing sound has the power to subjugate even the black cobra but harsh and piercing words convert even your family members into your enemies. Due to persistent harsh words, even the son leaves his father. If you wish to become lovable on this earth, learn to use true, simple and sweet words, free from deceit. Not for any self-interest or fame but naturally soak your speech with the juice of pleasantness.

---

165. श्रेष्ठ-साधक, त्यागी, विद्वान्, धनपति, राज्याधिकारी तथा शासक की भाषा पूर्ण सधी हुई होनी चाहिए। व्यक्ति के भावों की अभिव्यक्ति भाषा से ही तो होती है। ज्ञानी-अज्ञानी, विवेकी-अविवेकी, शठ (मूर्ख) विद्वान्, राजा-प्रजा, साधु-असाधु, कर्मचारी-अधिकारी, शहरी-ग्रामीण, शिक्षित-अनपढ़, कुलीन-अकुलीन की पहचान शरीर-वर्ण से नहीं, अपितु श्रीमुख से विनर्गित वाणी से होती है। विनयशील की भाषा से विनय का स्रोत टपकते दृष्टिगोचर होता है, वहीं अविनय दोष से जिनका चित्त दूषित है उनकी भाषा से अविनय का विष रिसता है।

165. The speech of the ascetic, the man-of-vows, the man-of-knowledge, the rich, the minister and the ruler should be balanced. The thoughts of a man are conveyed by his speech. The knowledgeable and the ignorant, the discerning and the undiscerning, the foolish and the clever, the ruler and the subject, the virtuous and the evil, the employee and the employer, the urban and the rural, the educated and the uneducated, the noble and the ignoble are distinguished not by the colour of their body but by their speech. The speech of the modest man has the spring of humility in it while the speech of the immodest man has the spring of poison in it.

---

166. व्यक्ति का जब कर्कश-भाषण व्यसन बन जाता है तब लोग उससे धीरे-धीरे दूर होने लगते हैं। समझदार लोग जैसे क्रूर-प्राणियों से अपनी प्राण रक्षा करते हैं ठीक वैसे ही कर्कश भाषी से आत्मरक्षा करते हैं। भाषा की कठोरता मात्र कर्ण-पटल का ही घात नहीं करती, अपितु अंत:करण को भी विदीर्ण कर देती है। यह आत्म-विशुद्धि के लिए तो काल-कूट जहर है। जो ये सोचते हैं कि- कर्कश-वचनों से किसी पर अधिकार जमा लेंगे, यह सब विपरीत सोच है। समझदार विवेकी-जन नासमझ उद्दण्डों से व्यर्थ-वार्ता कर अपना समय नष्ट नहीं करते हैं। वे मौन रहना ही उचित समझते हैं, न कि कर्कश-भाषी से डरते हैं। सज्जनों को अपना धर्म-यश, काल, भाव प्रिय होता है। प्रज्ञ-जन व्यर्थ की शब्दावली में उलझकर अपने अमूल्य-जीवन के क्षणों को नष्ट नहीं करते हैं।

166. When uttering harsh words becomes an addiction for a man, others start maintaining distance from him. Prudent men protect themselves from the person speaking harsh words, as they protect themselves from cruel animals. Harsh words pierce not only the ears but also the heart. Harsh words are a deadly poison for soul-purity. It is fallacious to think that one can dominate others by uttering harsh words. Prudent and discerning men do not engage in unnecessary chitchat with imprudent and rude men. They prefer to remain silent instead; but this does not mean that they are afraid of such imprudent men. Noble men value their dharma, glory, time and thought. Intelligent men do not waste time by indulging in unnecessary discussion on semantics.

---

167. बोलो वही जो वात्सल्य, प्रेम-भाव को वर्धमान करे। बिखरी समाज, टूटे-हृदय परस्पर जुड़ जाएँ, आप्त-आगम-तपोभृतों पर आस्था बने, देश-देश, राष्ट्र-राष्ट्र में सद्भाव के भाव जगें, युद्ध की जगह सहयोग की भावना बने, मानव में मानवता का संचार हो, पशुवृत्ति का अभाव हो, पिता-पुत्रादि पारिवारिक संबन्धों में मधुरता का प्रवाह हो और परस्पर में कटुता का जहर न घुले। प्रत्येक मानव के अंदर प्राणिमात्र के प्रति करुणा स्रोत बहे, दीन-दुखी, असहाय-जनों को देखते ही सहायता की गंगा बहे। भाषा ऐसी बोलो जिससे शत्रु वर्ग भी मैत्री की भावना से भर जावे, सम्प्रदाय-सम्प्रदाय के प्रति सद्भाव बने, कोई किसी पर कुदृष्टिपात न करे, आपकी सम्यक्-भाषा सदी का इतिहास बने।

167. Speak only that which enhances affection and love. Let your words act as a cement for the disjointed society and broken hearts. Let your words engender trust for the sect-founder, the Scripture and the preceptor, goodwill among nations, cooperation rather than conflict, humaneness, destruction of the animal instinct, sweetness in mutual relations, and freedom from the poison of bitterness. In the heart of every man let the stream of compassion for all living-beings and rendering immediate assistance to the helpless flow. Your speech should be able to convert the enemy into a friend, bring about cooperation among different communities with a sense of mutual welfare. Your speech should become a part of this century's story.

---

168. वाणी में पुष्प खिलें, जन-मानस भव्य-भ्रमर बन तुम्हारी वाणी का रसपान करें। नहीं होता अन्य कोई मधुर-रस; वचनों की मधुरता के आगे। पर को भी अपना बनाने का मंत्र है- मधुर-वचन और अपनों को भी पर-बनाने का तन्त्र है- कर्कश वचन, ये दोनों ही मानव के पास हैं। जैसा मानव चाहे वैसा कर सकता है, अन्य की कोई आवश्यकता नहीं है। जीवन का सार व्यक्ति की वाणी, भाव पर टिका है। जिसका भाव व भाषा पर नियंत्रण है वह साधु-पुरुष है और जिसका भाव व भाषा पर कोई नियंत्रण नहीं, वह मानव के आकार में तिर्यञ्च है। महानता-साधुता बाजारों में नहीं मिलती, वह तो स्वयं से ही अपने ही स्वभाव में प्रकट होती है।

168. Let flowers bloom through your speech for the honeybees in form of men to drink nectar. No other juice is as sweet as sweet-speech. The *mantra* to bring others into your fold is sweet speech and the *tantra* to throw out those in your fold is harsh speech. Both are available to the man; no outside help is required. The essence of man's life depends on his speech and thought. The man having control over his speech and thought is a virtuous man and the man having no control over his speech and thought is an animal in form of a man. Greatness and virtuousness are not available in the market; these get manifested in own nature, by the self.

---

169. अल्पज्ञानी मधुर-भाषी मंत्रियों की सम्यक्-सलाह को अल्पज्ञ शासक भी यदि स्वीकार लेता है, तो वह भी राज्य-संचालन में उत्तीर्णता को प्राप्त कर सकता है, परन्तु अधूरा-ज्ञानी हठधर्मी कर्कश-भाषी स्व-राज्य का ही पतन कर लेता है। राज्य का राजा ऐसा नहीं होना चाहिए। जहाँ कर्कश-भाषी, हठधर्मी स्वामी हो उस स्थान का सज्जनों को त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि वह कर्कशी कभी भी हठता में आकर प्रजा का नाश कर सकता है। मित्र हो या पुत्र, पिता हो या स्वामी हठधर्मी का सहवास मात्र हीन-भावना, पराधीनता का ही वेदन कराएगी इससे आत्मनिर्भरता, आत्म-स्वतंत्रता का ह्रास होगा, स्वात्म-विशुद्धि का घात होगा, इसलिए कर्कश-भाषी एवं हठधर्मी दोनों से ही शीघ्रातिशीघ्र भिन्नत्व को प्राप्त करो।

169. If the ruler, not knowledgeable himself, rules by the right advice, in form of pleasing words, of his ministers, he can administer his state well; however, the ruler with inadequate knowledge, obstinacy and harsh speech, ruins the state. Noble men should leave the place which is ruled by a ruler whose speech is harsh and who is obstinate. The ruler with harsh speech and obstinacy can at any time harm his subjects. The company of an obstinate person – friend or son, father or ruler – will engender inferiority complex and dependence; the company of such a person will cause deterioration of self-dependence, self-freedom and self-purity. Distance yourself, at the earliest, from the man whose speech is harsh and who is obstinate.

---

170. मर्म-भेदी, हृदय-विदारक, कर्कश वचन शस्त्र के घाव से भी अधिक कष्टदायक होते हैं। शस्त्र का घाव तो समय पाकर भर जाता है, परन्तु शस्त्र से अधिक घातक कठोर-कर्कश-दुर्वचन होता है, जिसका घाव भवों-भवों तक नहीं भरता है। किसी भी स्थिति में कटु-कर्कश वचन नहीं बोलना चाहिए। श्रेष्ठ-महान् वे पुरुष हैं जो न तो किसी पर शस्त्र की चोट मारते हैं और न ही कर्कश-वचनों का प्रहार करते हैं।

170. Stinging, heartrending and harsh words cause more pain than that due to a wound caused by a weapon. The wound caused by a weapon heals with time but the wound caused by lethal, cruel and harsh words does not heal in many lives. Do not

speak bitter and harsh words under any circumstance. Those men are excellent and great who do not harm anyone with the strike of a weapon or of harsh words.

---

171. कर्कश वचन रूपी बाण महा-भयंकर होते हैं, क्योंकि वे दूसरों के मर्म-स्थलों में प्रविष्ट होकर पीड़ा पहुँचाते हैं, जिनसे पीड़ित पुरुष दिन-रात शोकाकुल रहता है। दिन-रात आत्म-पीड़ा से पीड़ित हीन-भावना में जीता है और नहीं सँभाल पाया स्वयं को तो आत्महत्या भी कर लेता है।

171. The arrows of harsh words are deadly; heartrending harsh words cause agony to the listener, day and night. Due to agony of day and night the listener gets a sense of inferiority and, if not able to come to terms with it, resorts even to suicide.

---

172. अहो अहिंसको! इस बात पर ध्यान दो, आपकी कर्कश-भाषा किसी की हत्या का कारण बन सकती है, उसका पूरा पाप तुम्हें मिलेगा।

172. O followers of non-injury *(ahiṃsā)*! Your harsh words can cause death of someone. You will be the sole recipient of consequent demerit *(pāpa)*.

---

173. कुलीन को नीच कहना, कुल-कलंकी कहना, इत्यादि भाषा मर्म-भेदी है, कर्कश है। वयोवृद्ध को देखकर आक्रोशित होकर बोलना, तेरे बाल श्वेत हो गए हैं, यह भी मर्म-भेदी कर्कश वचन है। सदाचारी को दुराचारी, विद्वान् को मूर्ख, निर्दोष को सदोषी कहना वाक्-पारुष्य है। मनुष्य की जाति, आयुष्य, सदाचार, विद्या व निर्दोषता के अयोग्य, विरुद्ध वचन कहना, वाक्-पारुष्य है। नैतिक-मनुष्य को अपनी स्त्री-पुत्र, माता-पिता, भृत्यों को कर्कश वचनों का त्यागपूर्वक हित-मित-प्रिय वचन बोलते हुए विनयशील बनना चाहिए।

173. Speech such as calling a noble man either ignoble or spoiler of his lineage is heartrending and harsh. To say, out of anger, an old man, "Your hairs have turned white," is heartrending and harsh speech. To call a virtuous man an evil man, a learned man a thickheaded man, an innocent man a guilty man, is harsh speech. To say something that undermines the caste, age, conduct, learning and innocence of anyone, too, is harsh speech. The man of morality should renounce uttering harsh words to his wife, son, mother, father and dependants; he should remain humble and his words should be beneficial, cryptic and pleasant.

दण्ड-पारुष्य व्यसन

Punishing Others Unlawfully

174. प्रजा में अन्याय-अनीति का संचार न हो, इसलिए राज-दण्ड दिया जाता है, दण्ड में भी हित निहित रहता है। एक के अपराध से प्रेरित होकर अनेकों में अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगती है। दण्ड कोई अन्याय नहीं है। यदि किसी ने अपराध किया है तो उचित न्याय के साथ उसे दण्ड दिया जाए, जिससे भविष्य में वह अपराधी वृत्ति न करे, अतः अपराधी के सुधार हेतु दण्ड-व्यवस्था है।

174. Punishment is awarded by the state so as to curb the spread of injustice and immorality; beneficence is implied in punishment. The crime committed by one may incite others to do the same. When a man commits a crime, he deserves suitable punishment so as to deter him from repeating it. The system of punishment is for reforming the criminal.

---

175. यदि शासक दण्ड नहीं देगा तो लोक में अनर्थ हो जाएगा, कोई किसी से भयभीत नहीं होगा और स्वेच्छाचार वृत्ति प्रारम्भ हो जाएगी। सबल निर्बल को जीने नहीं देगा। पृथ्वी मानवीयता से शून्य हो जाएगी, धनिक ही मात्र सुख-भोगी होंगे, शेष लोग उनके सेवक बनकर ही रहेंगे। पृथ्वी-पति के बिना पृथ्वी पर सामान्य जीवों का जीना कठिन हो जाएगा, इसलिए राजकीय-दण्ड अनिवार्य है।

175. Without the system of state-punishment the world shall become anarchical; no one will fear wrong-doing and freewheeling will prevail. The strong shall not allow the weak to live. The world shall become devoid of humanity; only the rich men shall enjoy happiness with all others just serving them. Without the ruler, the life of common men shall become miserable and, therefore, state-punishment is essential.

---

176. ओहो! जब राजा/शासक ही अन्याय-पूर्वक दण्ड-नीति का प्रयोग करे, तो वह शासक भी दण्ड का पात्र है। राजा को अपनी दण्ड-नीति धर्म-नीति व न्याय-नीति के आश्रयपूर्वक लगानी चाहिए।

176. Alas! If the ruler administers state-punishment in an unjust manner, he himself deserves to be punished. The system of state-punishment should rely on the principles of dharma and justice.

---

177. श्रेष्ठ राष्ट्र के राजा के द्वारा परिस्थिति देखकर ही दण्ड-नीति का प्रयोग करना चाहिए। कहीं निरपराधी को दण्ड न हो जाय और अपराधी दण्ड से छूट न जाए। दण्ड नहीं दिया तो राज्य नष्ट हो जाएगा और अन्याय

पूर्वक दण्ड दिया तो तब भी राज्य नष्ट हो जाएगा। सर्व प्रथम अपराधी की बात भी सुनना चाहिए, एकाएक दण्ड की घोषणा न की जाए।

177. The worthy ruler should administer punishment only as per the prevailing situation. The innocent should not be punished and the guilty should not go unpunished. The state where guilty is not punished gets ruined; the state where punishment is based on injustice too gets ruined. Give the accused a chance to prove his innocence; do not announce punishment abruptly.

---

178. क्रूर एवं अन्याय पूर्वक दण्ड देने वाले शासक का नाश सुनिश्चित है। अन्याय से किसी का वध करना, जेल में बंद करना, सम्पूर्ण-धन अपहरण करना, जीविका नष्ट करना 'दण्ड-पारुष्य' है।

178. Downfall of the ruler who is cruel and accords punishment in an unjust manner is certain. To kill, imprison, snatch away wealth, and cause destruction of livelihood of someone in an unjust manner constitute 'punishing others unlawfully'.

---

179. उक्त अठारह व्यसनों में से यदि कोई एक भी व्यसन में अनुरक्त है तो वह शासक, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र किसी भी जाति-वर्ण का हो उसका नाश निश्चित है। फिर जो सम्पूर्ण अठारह ही व्यसन करता हो उसका राज्य, राजनीति व यश शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा, इसलिए अधिकृत जनों को अपने निर्णय विवेक पूर्वक लेना चाहिए। प्रेक्षा के बिना ही जो निर्णय लेते हैं, वे जीवन भर पश्चाताप की ज्वाला में जलते रहते हैं।

179. If the ruler belonging to any caste or class – *kṣatriya, brāhmaṇa, vaiśya* or *śūdra* – indulges even in one of the aforesaid eighteen addictions, his downfall is certain. How can the ruler with all the eighteen addictions maintain his kingdom, politics and glory? The men in power should, therefore, take decisions with due discrimination. Those who take decisions without proper thinking burn themselves in the fire of regret throughout life.

* * *

31

सत्यार्थ-बोध

सदाचार

Good Conduct

1. उच्च विचार व आचार व्यक्ति को महान् बनाते हैं। उच्च-आचार, सदाचार, सद्-आचरण व्यक्ति की कुलीनता का परिचय है। सदाचारी लोग अपना परिचय मुख के शब्दों से ही नहीं, अपितु समीचीन-आचरण से ही दे देते हैं। वे सत्य बोलने के साथ-साथ सत्य जीवन भी जीते हैं। सदाचार व्यक्ति के व्यक्तित्व का सार है। सदाचारी व्यक्ति सर्वत्र विश्वास को प्राप्त होता है। सदाचार लोक में सर्वत्र सम्मान को प्राप्त है, अखिल-विश्व सदाचारी की चरण बलिहारी है। सम्पूर्ण विश्व की सम्पदा का लाभ हो, फिर भी अपने सदाचार का विक्रय नहीं करना चाहिए। लोभ-कषाय सदाचार की शत्रु है। सद्-आचार, सद्-विचार तभी तक सुरक्षित हैं, जब-तक व्यक्ति लोभ-कषाय से अप्रभावित है। लोभ से प्रभावित होते ही सर्वगुण समाप्त होने लगते हैं। अंतरंग-मूर्च्छा सदाचार को मूर्च्छित कर देती है।

1. High thinking and good conduct make a man great. Good conduct and behaviour are marks of man's nobility. Men of conduct do not have to introduce themselves through words; their right conduct introduces them. They not only speak truth but live life based on truth. Good conduct is the core of man's personality. A man of good conduct is trusted everywhere. Whole world respects good conduct and bows down at the feet of the man of good conduct. Do not sell your good conduct even if you get the wealth of the whole world in exchange. The passion of greed is the enemy of good conduct. Good conduct and high thinking remain safe only until the man is unaffected by the passion of greed. In presence of greed all virtues start disappearing. Internal infatuation puts good conduct in a trance.

2. दृढ़ता स्वकार्य सिद्धि का मूल-मंत्र है, इसलिए स्व श्रेष्ठ-कार्य पर दृढ़ता रखना चाहिए। अच्छे कार्य पर कठिनाईयों के आने पर विचलित होना दृढ़-धर्मियों का कार्य नहीं। अपने श्रेष्ठ कार्य से वे ही विमुख होते हैं जिन्हें स्वकार्य तथा स्वयं पर विश्वास नहीं है। अन्य पर अविश्वास स्वकार्य घातक तो है, परन्तु इतना नहीं जितना स्व का अविश्वास। जिसे अपने बल-वीर्य-विज्ञता का स्व-विश्वास नहीं वह जीवन में कोई पुरुषार्थ-सिद्ध कार्य को सिद्ध नहीं कर पाएगा। कुछ करना है तो विश्वास करो, आत्मविश्वास व्यक्ति को आत्म-निर्भर बनाता है।

2. Firmness is the basic mantra for work-accomplishment. Be firm on accomplishing your good work. Those who are firm do not get distracted by the difficulties they may encounter. Only those who do not have faith on self and their work get disinclined to accomplish the task on hand. Not to trust others is destructive for work-accomplishment but not as destructive as not to trust self. The man who does not have faith on own strength, fortitude and intelligence cannot accomplish any task whose consummation depends on own effort. If you wish to do something, have trust that self-confidence makes the man self-dependent.

---

3. जिसके अन्दर आत्म-विश्वास की कमी है, वे परावलम्बी जीवन जीते हैं। वे हर समय पर के मुख की ओर ही देखते हैं, क्योंकि उन्हें स्वयं की क्षमता का ज्ञान ही नहीं होता है और न ही स्वात्म-विश्वास। जो व्यक्ति परकीय-कृत कार्यों की सदा-ही स्वयं-कृत कार्य जैसी प्रशंसा करते रहते हैं, वह उनकी मूर्खता की परिचायक है। जिनकी कार्य करने की क्षमता नहीं है, वे अकुशल हैं, वे पर-प्रशंसा से ही संतुष्ट होते हैं।

3. Those who lack self-confidence live a life that is dependent on others. Unaware of their own capability and due to lack of self-confidence, such men are always dependent on others. The men who constantly praise the works of others like their own works are dim-witted. Those who are incapable of doing any work are incompetent; they get satisfied by the praise of others.

---

4. जब कठिन-कार्य में स्वयं की प्रज्ञा नहीं चलती तब परकीय-प्रज्ञा का प्रशंसक बनना पड़ता है, यह लोक-रीति है। दुर्जनों को पर की प्रशंसा तो दुर्लभ है, पर की निन्दा में ही जीव आनन्द मानता है।

4. When own intelligence is not able to accomplish difficult tasks, one has to appreciate others; this is the world convention. Evil men do not get appreciation from others; they instead take delight in denouncing others.

---

5. प्रशंसनीय कार्य की प्रशंसा करना अच्छी बात तो है, परन्तु वह कार्य आपका नहीं है, क्योंकि उस कार्य का कर्ता कोई भिन्न पुरुष है। उसकी प्रशंसा से प्रशंसनीय तो वही होगा जिसने कार्य किया है, प्रशंसनीय बनने के लिए आपको स्वयं ही प्रशंसनीय कार्य करना चाहिए। पर-प्रशंसा करो, परन्तु स्व-पुरुषार्थ छोड़कर नहीं। मेरे कार्य की सिद्धि तो स्वकार्य के प्रति किए पुरुषार्थ से ही होगी, पर-प्रशंसा मात्र से नहीं होगी। भक्ति-श्रद्धा-आस्था भिन्न विषय है; कार्यसिद्धि तो स्वकर्ता-भाव से होगी पर-प्रशंसा से नहीं, अतः भक्ति की भाषा के साथ स्व-पुरुषार्थ की प्रबलता भी चाहिए। बिना पुरुषार्थ के कोई भी वस्तु की उपलब्धि क्षीण-पुण्यात्मा जीव को असंभव है।

5. To appreciate others is good but remember that the doer of the laudable work is someone else, not you. If you wish appreciation, become the doer of the laudable work. Appreciate others but without leaving self-exertion. Your work will get accomplished by own exertion and not merely by appreciating others. To have faith, devotion or trust is a different issue; for work accomplishment become a doer and put sincere effort with faith. It is impossible for the man lacking merit *(puṇya)* to attain anything without putting in right effort.

---

6. सदाचार की सिद्धि हेतु सद्-साहित्य का अध्ययन, वस्तुत्व का विचार, वस्तुत्व स्वतंत्रता पर दृष्टि, सदाचारी पुरुषों की संगति, हेय-उपादेय का गहन चिंतन तथा अस्ति के साथ नास्ति पर भी विचार करना चाहिए। उभय तत्त्व के विचार बिना सदाचार नष्ट हो जाएगा। चर्या पर विचारों का गहरा प्रभाव रहता है; जैसे विचार होते हैं वैसा आचरण होने लगता है। सदाचार के लिए विचारों का स्वस्थ रहना अनिवार्य है। शरीर कितना ही क्षीण हो जाए, परन्तु पवित्र विचारों में क्षीणता नहीं आना चाहिए। यदि बर्तन बड़ा है तो पानी नीचे गिरकर कीचड़ नहीं करेगा और यदि पात्र छोटा है तो पानी नीचे गिरेगा, गीला होगा कीचड़ भी होगी। जिसकी विचारधारा विराट् है, वह कुटुम्ब-परिवार, राज्य एवं राष्ट्र में विद्वेष की कीचड़ नहीं फेंकने देगा। जब-जब घर-घर का, नगर-नगर का, राष्ट्र-राष्ट्र का युद्ध हुआ है तब-तब वहाँ कोई-न-कोई छोटे सोच वाला अवश्य होगा।

6. The prerequisites for good conduct are: study of good literature, contemplation on the nature of substances, sight on independence of each substance, company of laudable men, and deep reflection on what is to be accepted and rejected besides on duality of affirmation *(asti)* and negation *(nāsti)*. Without understanding the duality in the nature of substances, good conduct cannot persist. Conduct depends on thoughts; thoughts drive conduct. For good conduct, have only positive thoughts. Even when the body becomes very frail, positive thoughts should not lose vitality. A large container withholds a lot of water without spilling it whereas a small container, not able to withhold enough water, spills it and causes mud. The broad-minded man does not allow formation of the mire of hatred in his family, state or nation. All conflicts among members of family, cities or nations have occurred due to narrow-mindedness of certain individuals.

---

7. तुच्छ-बुद्धि वाले कहीं भी हों वे सद्-भावना, सद्-विचार, सदाचार का घात करते ही हैं और कराने में भी अपनी अहं भूमिका निभाते हैं। वे एकांकी-बुद्धि का प्रयोग कर अखण्डता को खण्ड-खण्ड करा देते हैं। उनके मुख के शब्दों में करुणा रहती है, पर हृदय करुणा-शून्य ही रहता है। ऐसे व्यक्ति राष्ट्र के मुख्य-पद पर आसीन होने के पूर्ण अयोग्य हैं। जो जाति-कुल, परम्पराओं के मद में अकण्ठ डूबा है, वह अखण्ड-भारत, अखण्ड-विश्व का खण्ड-खण्ड करा देगा। जिस बात से अखण्डता सुरक्षित रहे उस बात पर अधिक बल देना चाहिए।

7. Narrow-minded men, wherever they are, destroy goodwill, right-thinking and right-conduct by their own actions and by granting approval to others. Their one-track mind causes destruction of unity. They talk of compassion but are without pity in their hearts. Such men are unworthy to head the nation. The man who is immersed in the pride of his caste, lineage or traditions will cause complete destruction of unity in India and the world. What matters is the maintenance of unity.

---

8. एकांकी चिंतन सद्भावना का शत्रु है। जो अनेकान्त-दृष्टि से, बहुमुखी विचार-धारा से चिंतन करता है उसी में सद्भावना के सूत्रों का सूत्रपात होता है, जिससे स्व-पर हित का मार्ग खुलता है। दीन-दु:खी जीवों के प्रति दया आती है। विशेष विचार करने की योग्यता सदाचारी के अन्दर सहज उत्पन्न होती है।

8. One-track mind is the enemy of goodwill among people. In the man who reflects on multiplicity of the reality sprouts the disposition of goodwill that opens up the path to well-being of self and others. He develops pity on the unfortunate and suffering men. The ability to think-through comes naturally to the man of good conduct.

---

9. जहाँ किसी भी जीव के प्रति विपरीत विचार नहीं आते, नैतिकता विद्यमान रहती है, जहाँ शत्रु भी कल्याणकारी विचारों को स्वीकार कर लेते हैं, वहीं प्रेक्षाकारी प्रज्ञा होती है। दुष्टों की विचारधारा वैर-विरोध, द्वेष को उत्पन्न करने वाली तथा सज्जनों की विचारधारा प्रेम-वात्सल्य, मैत्री-भाव को वृद्धिंगत करती है।

9. In sound intellect negative thoughts do not arise for any living-being and morality remains intact; even the enemies accept thoughts of their well-being. While the thoughts of evil men promote enmity, conflict and jealousy, the thoughts of noble men promote love, affection and brotherhood.

---

10. सदाचारी, नरोत्तम का विचार विकासशील होता है और होना भी चाहिए। सद्-सम्पत्तिवान सदाचारी के दान देने के विचार आते-ही-आते हैं। दु:खी प्राणियों की कोई नियत-जाति नहीं है, दयालु को जाति देखकर

उपकार के भाव आते हैं तो वह जातिवादी है, करुणावादी नहीं। जाति देखकर दान देने के भाव हैं तो जाति प्रेम है। प्राणी मात्र के प्रति एकत्व-भाव से उपकार-भाव है, करुणाभाव। भूख-प्यास, शत्रुकृत उपद्रवों से व्याकुल हुए प्राणियों को अभय-दान देना, उनकी रक्षा करना, साम्यवादी भावना से युक्त जीवन जीना करुणा दान है।

10. The thought-process of the excellent man endowed with good conduct is progressive. The man who has acquired wealth by honest means certainly thinks of giving gifts. Pitiable men do not belong to any particular caste. If the donor gives gift depending on the caste of the pitiable man, he believes in casteism, not in the virtue of pity; it exhibits his love for a particular caste. Compassion is to have the singular disposition of helping others. It constitutes giving the gift of safety and protection to those suffering from hunger, thirst or enemy-created hardships, and to lead a life based on equality among all men.

---

11. करुणादान में पात्र-अपात्र का विकल्प नहीं रखा जाता, मात्र दु:खी जीवों को देखकर उनका यथायोग्य सहयोग किया जाता है, परन्तु पात्र-दान में अपात्र-कुपात्र-सुपात्र का ध्यान रखा जाता है।

11. Giving gift out of pity – *karuṇādāna* – is not concerned about worthiness of the recipient; help is rendered to every suffering man. However, when giving gift to a worthy recipient – *pātradāna* – worthiness of the recipient is to be seen.

---

12. जगति पर अनुपलब्ध वस्तु की उपलब्धि चिंता से नहीं होगी, अपितु उद्यम से होगी। जिसके भीतर उत्साह-शक्ति है, उद्यमशीलता है वही पुरुष विराट्-सम्पदा का स्वामी बन पाता है। जहाँ उत्साह-भाव का अभाव है, वहाँ कुछ भी लाभ नहीं है। आदमी का कर्तव्य है कि वह प्रमाद छोड़कर अनुत्साहिता का त्याग कर विचार करे। कार्य करने के पूर्व जो अनुत्साहित हो चुका है, वह पुरुष नपुंसक पुरुषवत है। नारी को देखते ही जिसकी शक्ति क्षीण हो जाती है वह इस वसुन्धरा पर क्या शत्रुओं की पत्नियों की माँग मिटाने वाले वीर-सपूत को उत्पन्न कर पाएगा? उत्साह-शक्तिहीन जगति के किसी भी कार्य को पूर्ण नहीं कर पाएगा, कार्य की पूर्णता उन्हीं के द्वारा सम्भव है जिनके पास उत्साह-शक्ति है।

12. The object of desire is attained through effort, not by worrying. The man who has exuberance and industriousness becomes the owner of immense wealth. The man without exuberance does not gain anything. It is the duty of the man to renounce negligence and insipidness. The man who becomes insipid even before starting a task is like an impotent man. How can the man who loses all strength just by seeing women give birth to a brave offspring with ability to cause the removal of vermillion from the centre-hairline of the wives of the enemy? The man without strength of exuberance is not able to complete any task; only the man with strength of exuberance has the ability to complete tasks.

---

13. दीन-हीन दरिद्रता के साथ जीवन वे ही निकालते हैं जो अपने मूलधन का तो व्यय करते हैं, पर नवीन धन का अर्जन ही नहीं करते। उनकी श्वास-श्वास पीड़ा के साथ निकलती है, इसलिए बुद्धिमान मनुष्यों को अपना मूलधन बढ़ाते हुए आय-अनुकूल व्यय करना चाहिए, जिससे दरिद्रता का कष्ट भविष्य में भोगना न पड़े।

13. Those who spend money out of their capital without earning afresh lead a life of poverty and lowliness. Their every breath smacks of pain; to escape the pain of future poverty wise men should spend money out of their present income while adding to their capital.

---

14. दु:ख व कष्ट के काल में भी सुख जैसा साथ जो देता है वही सच्चा-मित्र होता है, ऐसा मित्र प्रत्येक व्यक्ति का होना चाहिए, यही समय की पुकार है। सबके दिन एक से नहीं होते और सब दिन भी एक से नहीं होते। कष्टों के काल में भी जो काँटा बने वह सगा होने पर भी पर है और जो काँटों के चुभने पर सुई बनकर काँटा निकालता है वह मित्र है। बुद्धिमान-मनुष्य को मूर्ख, दुष्ट, चाण्डाल, पतित-जाति तथा धर्म-च्युत मनुष्यों के साथ मित्रता नहीं करना चाहिए। जिनका प्रेम हल्दी के रंग जैसा क्षणिक होता है, उनसे मित्रता करने से भी क्या लाभ?

14. The one who gives you company during the time of misery as during the time of happiness is the true friend indeed; every man should have such a friend. The days of all are not the same and all days too are not the same. Your kin who acts like a thorn during the time of your misery is not close to you, and the one who, during the time of your misery, acts like a needle to take out your thorns is your friend. A wise man should not befriend stupid, evil, lowly, degraded, and wicked men. Of what use is the friendship of those whose affection is ephemeral like the colour of the turmeric?

---

15. यशवान धर्मात्मा व्यक्ति की गरीबी भी विशाल अमीरी-सी फलित होती है, इसलिए मित्रता यशवान धर्मात्मा-जनों से करनी चाहिए। जो पतन के काल में शीघ्र ही अपना विवेकपूर्ण हस्तावलम्बन देकर कुमार्ग के गर्त से रक्षा कर ले, पर-स्त्री, पर-धन, कुधर्म और कुव्यसनों से दूर रखे ऐसा मित्र सात-समुद्रों को पार करके भी मिले तो उसे प्रयत्न-पूर्वक प्राप्त कर लेना चाहिए।

15. Even the poverty of the glorious and virtuous man results in great affluence; have friendship with such a man. If a prudent man who supports you at the time of your downfall, saves you from falling into the pit of evil, and keeps you away from attraction for women of others, snatching of wealth of others, evil tendencies and addictions, make all-out effort to befriend him even if he lives across seven oceans.

---

16. दुष्ट, दुराचारी, कामी, दुर्व्यसनी मित्र की मित्रता तोड़ने पर यदि करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं का घाटा लग रहा हो तो भी उसे छोड़ देना चाहिए। धन की महिमा नहीं है, धन तो म्लेच्छों के पास भी होता है। कुधर्मी, अनार्य भी लक्ष्मीवान हैं, यह तो कुपात्र दान से भी मिल सकता है। सद्-संगति, सुपात्रों की प्राप्ति, सद्धर्म पूर्व में किए सुकृत का सुफल है। सुधर्म की प्राप्ति भी सद्धर्म-धारण से ही मिलती है। ऐसी संगति करो, ऐसे स्थान पर बैठो जहाँ पर बैठने पर राज्य-सभा में क्या, साधुओं की सभा में भी सम्मान हो और पर-भव में परमात्म-पद की प्राप्ति हो।

16. Leave friendship of the man who is evil, wicked and addicted, even if it entails the loss of millions and millions of gold coins. Money is not important; even a barbarian can be rich. Wicked and uncivilized men too are seen to be rich as it is possible for such men to receive gifts of money. To be in good company, to be able to give gift to worthy recipients and to observe dharma are the results of past virtuous deeds. Laudable dharma is attained only through adoption of laudable conduct. Have only such company and sit in such places that result in your respect in this life not only among the royalty but among the ascetics, and in the next life the status of the supreme-being.

---

17. ऐसी मैत्री और गोष्ठी किस काम की जिसका फल पशु बनकर, नारकी बनकर भोगना पड़े, इसलिए विवेकियों को दुष्टों की गोष्ठी तथा दुष्टों की मैत्री का पूर्ण त्याग करना चाहिए। कुछ धातु (लोहा) की संगति से लोक में देवता संज्ञा को प्राप्त अग्नि भी लोहार के घन से पीटी जाती है, इसी प्रकार खोटे-आचार, खोटे-विचारवानों के संयोग से सुशील जन भी अपयश, मानसिक व शारीरिक-पीड़ा को प्राप्त होते हैं। संगति, मैत्री परीक्षा करके ही स्वीकार करना चाहिए। पुण्यहीन, कुलहीन से घनिष्ट मैत्री स्थापित करने से अकीर्ति का कष्ट सहन करना पड़ता है। कुलवान, सुशील, कीर्तिवान के सम्पर्क में आने पर विपत्तियाँ भी टल जाती हैं, इसलिए विवेकी, सदाचारी तथा कुलवन्तों के साथ ही अपना सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। समान-गुण तथा अधिक गुणवानों के साथ ही रहना चाहिए। यश और सुख प्राप्ति की भावना है, तो हीन-आचरण, हीन-गुणी के साथ नहीं रहना चाहिए।

17. Of what use are the friendship and the forum that result in lowly birth as an animal or an infernal-being? The men of discrimination should renounce completely evil friendship and forum. The fire, conventionally venerated as a deva, when in company of the iron, a lowly metal, has to suffer the blow of the sledgehammer; in the same way, the company of men of evil conduct and thoughts brings about disrepute, and mental and bodily agony, to the noble men. Accept your company and friendship only after proper examination. Your fast friendship with men without merit and lineage will result in the pain of disgrace. Adversities run away from the man who remains in the company of noble, virtuous and reputed men; live in the company of discriminating, virtuous and noble men. Keep the company of only those men who

either match or exceed your own virtues. For glory and happiness, do not live with men of lowly conduct and virtue.

---

18. इष्ट-वस्तु व व्यक्ति के वियोग में जो दु:ख होता है; उसे शोक कहते हैं। शोक करने से असाता-वेदनीय कर्म का आस्रव होता है, जिससे व्यक्ति को स्वयं दु:खी होना पड़ता है। ऐसे निमित्त जीवन में उपस्थित हो जाते हैं। इष्ट के वियोग में रुदन करने से कोई लाभ नहीं, इष्ट-वियोग में रोने से मृत बंधु तो आता नहीं। यदि रोने से मृत-संबन्धी वापिस आ जाए तो रोना ठीक है। व्यर्थ में रो-रोकर स्वयं दु:खी होना व जीवित-बंधुओं को मृतक की याद दिलाकर वियोग-जन्य वेदना को बढ़ाना है। ज्ञानी जनों का कर्तव्य है कि मृतक के मरण पर अधिक अश्रुपात न करके, समय पर अंतिम-संस्कार करना चाहिए, अधिक देर नहीं लगाना चाहिए। मृतक का 48 मिनट अर्थात् अन्तर्मुहूर्त के अन्दर-ही-अन्दर संस्कार हो जाना चाहिए। दीर्घ-समय लगाने पर मृतक के शरीर में ही वही स्वयं यदि व्यन्तर हो गया तो तद्-शरीर में प्रवेश कर, नगर-गाँव में उपसर्ग की सम्भावना हो सकती है। साथ ही, अन्तर्मुहूर्त के उपरान्त मृत शरीर में पंचेन्द्रिय तद्जाति सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं, जो कि प्रचुर मात्रा में होते हैं और जो नेत्रों से दिखाई नहीं देते हैं, उनकी भी हिंसा होगी।

18. The feeling of sadness at the loss of a desirable thing or person is sorrow *(śoka)*. Sorrow causes the influx of karmas that cause unpleasant-feeling *(asātā vedanīya)* which lead to further suffering. The causes of sorrow do happen in life. There is no point crying at the death of a kin; he is not going to come back. It is appropriate to cry if the deceased were to come back! Crying only increases your own sorrow and of the kinship. On the death of a kin, the wise men should perform, without delay, the last rites of the deceased rather than spend time in tear-shedding. The last rites should be performed within forty-eight minutes. If longer time is taken for performing the last rites, it is possible for the soul of the dead to enter the dead body as a peripatetic *(vyantara)* deva and cause havoc in the nearby regions. Further, after forty-eight minutes, many spontaneously-generated, five-sensed living-beings of the same class take birth in the dead body; these are not visible to the eyes and cremation of the dead will result in their killing *(hiṃsā)*.

---

19. सदाचारी-जनों को मृत-शोक छोड़कर सर्वप्रथम संस्कार-विधि शास्त्र-विहित लोक-मर्यादा से करना चाहिए। तदोपरान्त धर्म-ध्यान के साथ पातक को पूर्ण रूप से पालना चाहिए। अनित्यादि भावनाओं का चिंतन करके समय पूर्ण करें, सूतक के दिन पूर्ण होने पर शान्तिकर्म शान्ति-विधान से करें।

19. Leaving sorrow, the noble men should first perform the last rites of the deceased as per the scriptural injunction and worldly convention. The days of mourning should be spent in meditation of the dharma. During the days of mourning reflect constantly on truths, like transitoriness *(anitya-bhāvanā),* and perform the ritual of *'Śānti-vidhāna'* on the concluding day.

---

20. मृत्यु-भोज एक विकृत रूढ़ी है, इससे बचना चाहिए। दान-पुण्य के भाव हैं, तो समय निकल जाने पर कोई सामर्थ्य-अनुसार अनुष्ठान कर लो, पर व्यर्थ में धन व्यय न करें। स्व-शक्ति को देखकर जो दानादि कर्म करता है, उसे भविष्य में संक्लेशता, दरिद्रता जैसी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता है। जो लोग अपनी आय का ध्यान दिए बिना व्यय करते हैं, वे शीघ्र ही स्वदेश अथवा परदेश में धन अभाव के कारण ऋण आदि के कारण मानसिक पीड़ा से पीड़ित होते हैं, अन्ततः आत्महत्या जैसे पाप से पतित हो जाते हैं।

20. Hosting of the death-feast is a perverted tradition, worth renouncing. If you wish to earn merit by giving gift, organize a religious ceremony at proper time according to your financial ability but do not spend money needlessly. So as to avoid anxiety and poverty later on, indulge in acts such as giving gift according to own financial strength. Men who spend in excess of their income soon get strapped for cash and, laden with the burden of debt, face mental agony. In the end, they may fall into the trap of the evil of suicide.

---

21. सदाचारी जनों के द्वारा किया गया पर-उपकार उनके महा-कल्याण का कारण है, पर जो पुरुष स्वार्थ-बुद्धि से किसी की भलाई करते हैं वे श्रेष्ठ-फल को प्राप्त नहीं होते हैं, वह कल्याण का कारण नहीं है। कल्याणप्रद-कार्यों में अपनी सांसारिक-कामनाओं का त्याग करना पड़ता है। भव्योत्तम वे जीव हैं, जो सद्कार्य करते हुए भी बदले में कोई अन्य कामना नहीं करते। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो व्यक्ति की तृष्णा-ज्वाला को शान्त कर सके। एकमात्र संतोष-सलिल ही ऐसा है, जिससे तृष्णा-ज्वाला शान्त हो सकती है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

21. Noble men who help others earn great propitiousness; however, the men who help others out of self-interest do not get the same result as their act of helping others no more maintains its purity. In acts of propitiousness, all worldly desires should be renounced. Those who do not desire anything in return for their virtuous deeds are excellent men. No object in the world has the power to subdue the flames of human craving. The water-of-contentment is the only means that can subdue the flames of human craving; there is no other means.

---

22. धन्य-धन्य-धन्य वे भव्योत्तम जिन्होंने समता रूपी सन्तोष-जल से अपनी तृष्णा-ज्वाला को शीघ्र ही उपशान्त कर लिया है। जीवन उत्थान का मार्ग सदाचार ही है। सज्जन-सदाचारी जन जीवन के सम्पूर्ण-दिवसों को साक्षी-भाव से अवलोकन करते हैं और मध्यस्थ-धर्म में प्रवेश कर जाते हैं। कुछ अनहोनी होने पर भी वस्तु-व्यवस्था का चिंतन कर विस्मरण कर देते हैं।

22. Hail the excellent men who subdue the flames of craving by their composure that flows out as the water-of-contentment. Good conduct is the path to life's

progress. Noble and virtuous men watch all days only as observers and remain stationed in the dharma of neutrality. In case something unusual happens, they just reflect on the nature of objects, and forget.

---

23. भूल जाना; आत्मस्थ होने का एक सुन्दर उपाय है। जो भी शुभाशुभ घटित होता है, वह जीव को हर्ष एवं विषाद के लिए होता है, पर हर्ष-विषाद को मात्र वे ही प्राप्त होते हैं जिन्हें 'सत्यार्थ-बोध' नहीं है। शीघ्र भूलना वही जानते हैं, जो सत्यार्थ ज्ञाता हैं, भूतार्थ-बोध युक्त हैं। जो बुरी स्मृतियों को शीघ्र भूल जाते हैं, वे हमेशा प्रसन्न रहते हैं।

23. The ability to forget is one good means to get established in own-soul. All auspicious and inauspicious happenings come with happiness or misery for the living-being; however, only those ignorant of the truth get to happiness or misery. Those who know the truth and appreciate it are with the ability to forget soon. Those who forget soon the negative happenings remain happy always.

---

24. सदाचरण व्यक्ति के जीवन को ऊँचाईयाँ प्रदान करता है, सज्जातित्व एवं सुकुलता को वर्धमान करता है। जो व्यक्ति सदाचार रूप वस्त्र से अलंकृत नहीं है, वह सुन्दर-वस्त्रों से वेष्ठित होने पर भी नग्न ही है। सदाचार से विभूषित शिष्ट पुरुष नग्न होने पर भी नग्न नहीं गिने जाते, अतैव लोकप्रिय होने के लिए भी आचरण विशुद्ध रखना चाहिए।

24. Good conduct provides height to the life of a man; it provides him high caste and lineage. The man clothed attractively but without the garb of good conduct is a naked man. The man who is naked but clothed in good conduct is not a naked man. Attain purity of conduct to become famous.

---

25. ऐसे भूतल पर भूधर बहुत हैं, हुए हैं और भविष्य में होंगे, जो लोकप्रिय होना चाहते हैं, पर उनको विशुद्ध-आचरण प्रिय नहीं है।

25. On this earth, many rulers are present today, have been in the past, and will be in the future, who wish to be famous but are not inclined toward the purity of their conduct.

---

26. उन्हें बोध होना चाहिए कि लोकप्रियता चाहने तथा बहिरंग-प्रदर्शन मात्र से प्राप्त नहीं होती है। साधु हो या असाधु, राजा हो या रंक उसे लोकप्रियता की चाह है, तो उसे यह यथार्थ समझना चाहिए कि मात्र फोटो

और चित्रों से लोकप्रियता नहीं हो सकती है, उसके लिए तद्-संबंधी पुण्य होना चाहिए। यश:कीर्ति नामकर्म, सुभग नामकर्म, आदेय नामकर्म, साता वेदनीय आदि प्रशस्त कर्मों का उदय तथा प्रत्यक्ष में सदाचरण एवं सद्-व्यवहार भी चाहिए।

26. All should appreciate that fame is not attained merely by wishing for it or by ostentation. The ascetic or the non-ascetic, the king or the poor, should appreciate the truth that the display of photographs does not constitute fame; to be famous they must have earned the corresponding merit *(puṇya)*. They should have the fruition of laudable name-karmas of glory-and-renown *(yaśaḥ-kīrti)*, good-temper *(subhaga)* and lustrous body *(ādeya)*, and pleasant-feeling *(sātā-vedanīya)* karma, besides perceptible good conduct and behaviour.

---

27. बिना सदाचरण एवं सद्-व्यवहार के आपकी लोकप्रियता की भावना बन्ध्या सुत खिलाने की है अर्थात् न बन्ध्या के पुत्र होगा न वह खिला पाएगी। सौभाग्यवती, पुत्रोत्पत्ति की योग्यता वाली नारी ही अपने गृह-आँगन में सुत को खिला पाती है, इसी प्रकार श्रेष्ठ-विशुद्ध-निर्मल आचरण, ज्ञान-दर्शन सम्पन्न सद्-व्यवहारी जीव ही यशवंत यशगानयुक्त लोकप्रिय बन पाता है, इसलिए समाज नेता हो या धर्मनेता, राजनेता सभी को अपना आचरण पवित्र रखना चाहिए।

27. The wish for fame and popularity without good conduct and behaviour is like the wish of a barren woman for playing with her son; she cannot have a son and, therefore, the wish is bound to remain unfulfilled. Only the fertile woman whose husband is alive is able to play with her son in the courtyard of her home; in the same way, only the man whose conduct is laudable and pure, who is endowed with knowledge and perception, and who exhibits good behaviour attains fame and popularity whereupon people sing songs of his glory. All leaders – social, religious and political – should, therefore, adopt good conduct.

---

28. सदाचारी प्रत्येक कार्य समय पर करता है, क्योंकि समय पर किया गया कार्य श्रेष्ठ फलवान होता है। असमय में किया गया कार्य अपयश का ही कारण बनता है। जो विवेक-विहीन कामी काम-वासना के वश होकर दिवा-मैथुन करता है तथा रजस्वला स्त्री का सेवन करता है वह चाण्डाल से भी नीच होता है।

28. The man of good conduct does every work at the proper time; only the work done at the proper time yields good result. The work done at the wrong time is the cause of disrepute. The indiscriminate man who, subjugated by lust, indulges in copulation during daytime or with the menstruating wife is extremely lowly.

---

29. दिन व्यापार के लिए, ब्रह्ममुहूर्त धर्मध्यान एवं विद्याध्ययन के लिए, सन्ध्या सन्ध्या-वन्दना के लिए है। सर्वप्रथम प्रातः जागते ही परमात्मा का स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग-पूर्वक नौ बार णमोकार महामंत्र का जाप करें। प्रभु से प्रार्थना करें अहो परमेश्वर! सम्पूर्ण दिन सुकृत्य में पूर्ण हो, किसी प्रकार का अनर्थकारी कार्य मेरे द्वारा न हो, उत्तम से उत्तम कार्य करने में हमारा दिन पूर्ण हो, हाथों से भगवत जिनेन्द्र की अर्चना तथा सुपात्रों को सुदान हो। हे प्रभु! मैं हमेशा भक्ष्य-भोजन करूँ, अभक्ष्य पदार्थों से दूर रहूँ। सुनीति से धर्म, परिवार, समाज, राष्ट्र की रक्षा के लिए सम्पत्ति अर्जन हेतु सद्-व्यवहार पूर्वक सद्-व्यापार अहिंसक रूप से करूँ।

29. The daytime is for commerce, the early morning – *brahmamuhūrta* – is for meditation and study, and the evening time is for obeisance and worship. As you get up in the morning, reflect on the supreme-god and then, standing in the *kāyotsarga* position, chant the *Ṇamokāra Mahāmantra* nine times over. Pray thus, "O Supreme Lord! Let my whole day pass in good deeds; no untoward act is done by me; whatever I do be excellent and my hands be used only in worship of Lord Jina and giving gift to the worthy recipients. I should eat only that food which is worth eating. My commercial activity is for earning money in order to protect the dharma, family, society and nation; let it be based on right behaviour and non-injury *(ahiṃsā)*."

---

30. जिस व्यापार में अर्थ-लाभ अधिक हो, परन्तु जीवों का नाश हो ऐसे अनाचार के कारणभूत मछली-पालन, मुर्गीपालन, बकरी-पालन, शराब के ठेके, ईंट के भट्टे आदि बहुहिंसक धर्म-विरुद्ध, लोक-विरुद्ध, कुल-विरुद्ध, जाति-विरुद्ध कोई भी व्यापार मेरे से न हों, उसमें स्वप्न में भी चित्त न जाए। श्रेष्ठ महाजनी का स्वर्ण-रजतादि, हीरा, माणिक्य, वस्त्रादि का व्यापार करूँ। भूखा सो जाऊँ, भीख माँगकर जीवन जी लूँ, परमात्मा का स्मरण-पूर्वक प्राण त्याग कर समाधि ले लूँ, किन्तु अभक्ष्य-भोजन, अनीति के धन से जीवन न जियूँ।

30. "I should not get engaged in evil commercial activities, like fishery, poultry, goat-rearing, liquor-selling and brick-kiln, which may be profitable but cause widespread injury *(hiṃsā),* besides being against my dharma, ethics, caste and lineage. I should not think of such activities even in my dream. Like a good businessman, I should engage myself in commercial activities, like trading in jewellery, diamond, gems and cloth. I may sleep hungry, live on begging, die in meditation of the Supreme Lord, but do not wish to survive on non-edible food and evil money."

---

31. सज्जनों को सुखी-जीवन जीना है, तो सन्देह-शीलता पर भी विजय प्राप्त करना चाहिए। पग-पग पर, क्षण-क्षण में जो सन्देह करता हो उसका कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता है। स्व-निर्णय पर ही जिसे सन्देह हो, वह पर के श्रेष्ठ निर्णयों पर क्या विश्वास कर पाएगा? विश्वास किए बिना किसी भी कार्य को आगे गति नहीं दी जा सकती। शंकालु सन्देही व्यक्ति अविश्वास में ही समय नष्ट करता है।

31. The noble men who wish to lead a happy life should vanquish distrustfulness. The man who is distrustful at every step and on every occasion cannot accomplish any work. How can the man who does not have trust on own decisions have trust on even good decisions of others? No work can progress well in absence of trustfulness. The doubting man wastes all his time distrusting others.

---

32. जिस दृढ़ता, निश्चयात्मक दृष्टि से कार्य प्रारंभ किए जाते हैं, अन्त तक वही विश्वास-दृढ़ता दृढ़ रहना चाहिए, तभी लौकिक एवं पारमार्थिक कार्य पूर्ण हो सकते हैं। सन्देह में न आप किसी पर विश्वास बना पाएँगे और न ही अन्य कोई आपके ऊपर विश्वास स्थापित कर पायेंगे। विश्वास से ही सर्व-कार्यों की सिद्धि होती है।

32. To be able to accomplish any worldly or spiritual task it is essential to maintain, till the completion of the task, the firmness and belief with which it was started. In presence of distrustfulness neither will you trust others nor will others trust you. All works are accomplished in presence of trustfulness.

---

33. अपेक्षा के बिना ही प्राणिमात्र के प्रति सहज-प्रीति जिसके भीतर होती है, वह जगति की सर्व-विशिष्ट विभूतियों में उत्कृष्ट विभूति सम्पन्न पुरुष है। प्रेम-शून्य जीना श्रेष्ठ जीवन नहीं, जीवन श्रेष्ठ तो वही है जिसमें परस्पर धर्म-धर्मात्माओं के प्रति प्रेम-वात्सल्य स्नेह विद्यमान है। प्रेम-वात्सल्य रहित देह-धारी मात्र हड्डियों का ढेर हैं। प्रेम लता में श्रद्धा के पुष्प खिलते हैं और उसी में नि:श्रेयस अभ्युदय सुख के फल लगते हैं।

33. The man with natural affection, without self-interest, for all living-beings is the finest among all virtuous men in this world. Life without love is not laudable; that life is laudable which is marked by mutual love and affection for the dharma and its followers. The body without love and affection is just an assemblage of bones. Only in the creeper of love bloom the flowers of trust and of final beatitude.

---

34. आपके पास ठहरने के लिए भवन नहीं, खिलाने के लिए भोजन नहीं, पिलाने के लिए पेय नहीं, पहनने के लिए वस्त्र नहीं, तिलक लगाने के लिए चन्दन नहीं फिर भी कोई बात नहीं। उपरोक्त वस्तुएँ आपके पास नहीं हैं, इन्हें आप प्रदान नहीं कर सकते। फिर भी इतना तो आप कर ही सकते हैं कि वात्सल्य-प्रेम-स्नेह से अतिथि को देख लें। किसी को मत ठुकराओ, अपितु हृदय से लगाओ। जिसे तुम ठुकरा रहे हो वह भी कभी आपके काम में आएगा। सबके दिन एक से नहीं होते, सब दिन भी एक से नहीं होते।

34. It does not matter if you are not able to offer others a place to live, food and drink, clothing, and the sandalwood paste to apply on their forehead, as you do not own these things. Still what you can do is to welcome them with love and affection. Do not ill-treat anyone; embrace everyone. The one you are ill-treating will someday

come forward to help you. The days of all are not the same and all days are not the same.

---

35. ज्ञानीजन कुछ बातें समय पर छोड़ देते हैं, समय आएगा तब समाधान हो जाएगा। मत मुँह फुलाओ साधु-महात्माओं को देखकर। मत मारो साँप-गोहरे को, वे भी शक्ति-रूप भावी भगवान् हैं। मोक्षमार्ग में सहायक नियमों का ही निरूपण करो, मोक्षमार्गियों की साधना में सहायक बनो। पशु-पक्षियों, भृत्यादि के भोजन में भी अन्तराय करोगे, तब भी तुम्हें अशुभ-कर्म का बंध होगा फिर तुम अज्ञानतावश, द्वेषवश संयमी के आहार में ही विघ्न करोगे तो फिर उसका क्या दुष्फल होगा? बन्धुओ! प्रयत्नपूर्वक अनर्थ कार्यों से बचो। सम्पूर्ण राष्ट्र को स्नेह-प्रेम-वात्सल्य के सूत्र में बाँधो। महामारी जैसी आपत्ति में भेद-भावना को भुलाकर, जन-जन में राष्ट्र-भावना का विकास करो, परस्पर मिलकर दु:खियों के दु:ख दूर करो, मैत्री-भावना का विकास करो।

35. Knowledgeable men leave certain things on time; with time things get solved. Do not make faces at the ascetics and virtuous men. Do not kill snakes and lizards; these too have potential godhood in them. Affirm only that which constitutes the path to liberation; assist those treading the path to liberation. Causing impediment to partaking of food even by animals, birds and subordinates causes bondage of inauspicious karmas; imagine the wickedness of causing impediment, out of ignorance or jealousy, to partaking of food by the men of dharma. Brothers! Save yourself assiduously from evil deeds. Spread the message of love and affection to the entire nation. At the time of an epidemic discard all dissension and develop nationalism; assuage the suffering of the people and develop friendship among all.

---

36. संकट के काल में परस्पर उपकार करने का अवसर है; दूसरे के सहयोग को दुर्भाग्य मत मानो, यह तो सौभाग्य स्वीकार करो। हमारा तन-मन-धन दूसरे की विपत्ति-हरण करने में सहकारी बन रहा है। दु:ख-संकट-विपत्ति के समय अपनी स्वशक्ति से दु:खियों के दु:ख दूर करने का पुरुषार्थ करना बहुत बड़ा अनुष्ठान है। दया-धर्म को किसी धार्मिक-अनुष्ठान से कम नहीं समझना। अहिंसा परम-धर्म विश्व का सबसे बड़ा धर्म है, अहिंसा-करुणा-दया से शून्य कोई धर्मानुष्ठान जगति पर श्रेष्ठता को प्राप्त नहीं होता। अहिंसा धर्म एकमात्र ऐसा अनुष्ठान है जिसमें बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक सभी संलग्न हो सकते हैं। विश्वभूमि को प्रसन्नचित्त देखने के अनुष्ठान का पवित्र फल प्राप्त करो। अपने द्वारा किसी का हित हो जाए तो उसे अहंकार में नहीं देखना, उसे अहो-भाग्य मानो।

36. Mutual help is an opportunity at the time of a calamity; do not consider helping others a misfortune. During such time use your body, mind and money to help others. It is a great observance if you make effort, according to your strength, to alleviate the suffering of others in their rough time. The dharma of pity is no less than a religious

ritual. Non-injury *(ahiṃsā)* is the greatest of all religions in the world; no religious ritual that is rid of non-injury, compassion and pity attains greatness. All – children, aged, youth, women, men and eunuch – can participate in the religious ritual of non-injury. Witness its auspicious fruit in form of delight on all faces in the world. If you cause welfare of someone, do not get conceited but take it as your good fortune.

---

37. अच्छे कार्य की प्रशंसा एवं अशुभ या प्रतिकूल कार्य में माध्यस्थ-भाव ज्ञानी-जन ही करते हैं, मूढ़-प्राणी नहीं कर पाते, क्योंकि उन्हें विचारों को पवित्र करने की प्रज्ञा ही प्राप्त नहीं हुई है। हेय-उपादेय-ज्ञेय की धारा बुद्धि में चलती है तब जब व्यक्ति विशिष्ट पुण्य के साथ जीवन जीता हो। बिना पुण्योदय के 'सत्यार्थ-बोध' नहीं होता और 'सत्यार्थ-बोध' के बिना जीवन पशुवत हो जाता है। पुण्यात्मा ज्ञानीजन उसे पहचान कर तदनुकूल व्यवहार करते हैं।

37. Only knowledgeable men are able to acclaim good work and become indifferent to evil work. Ignorant men are not able to do this as they lack wisdom to purify thoughts. When the life of a man is endowed with merit, his intellect is able to discern between what needs to be accepted and what needs to be rejected. Without fruition of merit, apprehension of the truth – *satyārtha-bodha* – is not possible and without apprehension of the truth the man leads the life of an animal. Men of merit recognize this and live accordingly.

---

38. अहो प्रज्ञात्मन्! स्वात्मा के वैभव को समझो, स्व-पर हित हेतु आगम वर्णित तत्त्व का सम्यक्-अभ्यास करो, क्योंकि तत्त्व-ज्ञान के बिना वस्तु के वस्तुत्व का बोध नहीं हो सकता है।

38. O wise man! Appreciate the glory of own-soul. For the well-being of self and others dedicate yourself to understanding the nature of the reality, as described in the Scripture. It is not possible to understand the nature of substances without the knowledge of the reality.

---

39. वचन-कुशलता सदाचारी का विशिष्ट-गुण है। जैसे मधुर-आम्रफल सबके चित्त को लुभा लेता है; नर-तिर्यञ्च सर्व-प्राणी आम खाने की इच्छा करते हैं, इसी प्रकार मधुर-भाषी के वचनों को श्रवण करने की सभी जीव इच्छा रखते हैं। प्रत्येक क्षण मधुर, मित-भाषी के वचन मंत्र सम गूंजते हैं।

39. The special attribute of the man of conduct is deftness in speech. Just as the sweet mango-fruit attracts everyone, the humans and the animals, in the same way, all living-beings wish to listen to the man with sweet words. Sweet words of the man-of-few-words reverberate like a mantra.

---

40. ज्ञाता का ज्ञेय शब्द है तथा अन्य पर-ज्ञेयों को जानने में सहकारी निमित्त है। ज्ञाता के ज्ञान-गुण के जानन-धर्म में शब्द निमित्त बनते हैं। ज्ञाता उच्चारण-अनुच्चारण शब्दों के द्वारा अर्थ का बोध कर लेता है, एक-एक वाक्य मंत्र-रूप होता है, परन्तु प्रयोक्ता के भावों की निर्मलता चाहिए। तुम्हारे शब्द, भाषा, वाणी जगत्-कल्याणी बने।

40. The word *(śabda)* is the object-of-knowledge *(jñeya)* for the knower *(jñātā)*; words are the instrumental cause for knowing the other objects-of-knowledge. Words are the instrumental cause for the process-of-knowing that constitutes the knowledge-attribute *(jñāna-guṇa)* of the knower. The knower assimilates the meaning through words, uttered and unuttered. When the disposition of the speaker is pristine, his each sentence is like a mantra. Let your words, language and speech be for the well-being of all!

---

41. जगत् को स्व-अनुकूल बनाने की बलात्-चेष्टा करना भी हिंसा है। करुणा, दया, अनुकंपा की शिक्षा प्राणी-मात्र को देना ही चाहिए। धर्म शिक्षा दो, परन्तु स्व-स्वार्थ पूर्ति हेतु नहीं। स्व-अनुकूल बनाने की दृष्टि में पर की स्वतंत्रता का हरण एवं प्रतिक्षण लोभ-माया कषाय की तीव्रता जाग्रत रहती है।

41. To try to force others conform to you is an act of injury *(hiṃsā)*. Teach compassion, pity and tenderness to all living-beings. Teach dharma to all but not with any self-interest. When the sight is on making others conform to you, it involves abduction of their freedom and rise of the passions of greed and deceitfulness.

---

42. एकता का पाठ पढ़ना चाहिए, परन्तु विश्व के सम्पूर्ण-द्रव्यों को एकरूप में देखने की कोशिश नहीं करना चाहिए। यदि विश्व एक हो गया तो जड़-चैतन्य का भेद समाप्त हो जाएगा, आम-नींबू एक स्वाद देंगे। विचारों में सत्यार्थ-मार्ग पर एकता का विचार होना चाहिए, न कि सम्पूर्ण पुरुषों का एक स्वभाव। सम्पूर्ण-द्रव्यों का स्व-स्वभाव, भिन्नत्व-अभिन्नत्वभूत वस्तु-स्वभाव का विवेक ज्ञानी-जनों का कर्तव्य है।

42. To teach the lesson of unity is good but do not try to see all substances in the world as one. If all substances were one, the distinction of inanimate and animate will vanish; mango and lemon will have the same taste. Unity should be in respect of the true path that needs to be followed rather than in respect of the nature of men. Discerning and knowledgeable men should know that all substances have their own-nature and exhibit separateness as well as oneness.

---

43. सबके साथ रहकर सबसे भिन्न रहना, परन्तु मित्रता के व्यवहार को अभिन्न रखना भी एक कला है। यह तभी सम्भव है जब स्व-विशेषताओं के साथ दूसरे की विशेषताओं को भी महत्त्व देना आना चाहिए। जो पुरुष

भिन्न-जनों के अन्दर भी गुण देखना जानता है, वह सबके साथ वास कर सकता है, स्व-गुणों को देखते हुए। आनन्द-प्रसन्नता इसी में है।

43. Maintain your separateness while living with others, but it is an art to maintain oneness in observation of friendship. This is possible only when you know own qualities but also acknowledge the qualities of others. The man who knows own qualities but also acknowledges the qualities of others can live with all. This provides him delight and happiness.

---

44. जो लोग मात्र अपनी विशेषता को ही देखना जानते हैं, अन्य के विशेष-गुणों को तुच्छ समझते हैं, स्व से भिन्न पुरुष को महत्त्व देना नहीं जानते, मात्र स्व-स्व पेट एवं पेटी पर जीते हैं वे लोग किसी के साथ प्रेम व आनन्द के साथ निवास नहीं कर सकते।

44. The men who are able to see only own qualities, are indifferent to qualities of others, do not know how to accord importance to others and live for prosperity of own body and wealth, cannot enjoy living with others in harmony.

---

45. प्रेम-वात्सल्य औषध जिसके पास है, वह पुरुष पशुओं के मध्य भी पुरुषों जैसा दुलार पाएगा, वन-खण्ड में भी राज्य-सुख पाएगा।

45. The man who owns the medicine of love and affection will receive human-like love even from animals; he will enjoy the happiness of a king even in the forest.

---

46. स्व की अनुकूलता के साथ दूसरे की भी अनुकूलता देखो; यही जिनोपदेश है। 'जियो और जीने दो' सूत्र के अनुसार यदि विश्व का जीवन प्रारंभ हो जाता है, तो कभी भी विश्व-युद्ध नहीं होगा और न ही गृह-युद्ध। विश्व-मैत्री इस सूत्र पर ही अवलम्बित है।

46. See your self-interest but see also the interest of others; this is the preaching of Lord Jina. If the world starts living according to the dictum of 'Live and let live,' there will never be a world-war or even a family-feud. This dictum is the basis of world-brotherhood.

---

47. सभी जीव दया-दम-त्याग-समाधि के साथ आत्मनिर्भर बनें, भगवान् महावीर स्वामी का 'सर्वोदयी-तीर्थ' विश्व में जयवन्त रहे, हर व्यक्ति विश्व-हित पर विचार करे, तभी मानव जाति की पहचान होगी। हिंसा, आतंक, पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र, पर-स्त्री के हरण से मानवता की रक्षा नहीं होगी। मानवता की विशुद्ध-भावों से रक्षा करना ही सच्ची-साधुता है, वही विश्व-हितंकारी प्रज्ञावान पुरुष है।

47. Let all men become self-dependent with virtues of compassion, self-restraint, renunciation and meditation; victory to the sacred-precept of upliftment-of-all – *'sarvodaya-tīrtha'* – expounded by Lord Mahāvīra; let every man think of world-beneficence. All these give us the identity of the human race. The humanity cannot be saved if we get involved in violence, terrorism, and snatching away of wealth, land and women of others. Saving humanity with pristine thoughts is real asceticism; the knowledgeable man who does so benefits the world.

---

48. अहो प्रज्ञात्मन्! आत्म-शोध ही 'सत्यार्थ-बोध' है। आत्म-शान्ति का मूल-मंत्र धैर्य है। कालुष्य भाव के अभाव का पुरुषार्थ पुरुष की विशिष्ट-साधना है। पास होने पर कुछ लोग कष्ट दे सकते हैं और दूर होने पर भी कष्ट मिटा सकते हैं, इस सत्य को समझो।

48. O knowledgeable soul! Apprehension of the truth – *satyārtha-bodha* – consists in soul-purification. Forbearance is the primary mantra for soul-tranquility. To strive for ridding the soul of evil-inclinations is the special observance. Appreciate the truth that some people who are close to you can cause you misery and some others who are away from you can bring you happiness.

---

49. नम्र वृत्ति, प्रिय-भाषण मानवता के ये दो हैं श्रेष्ठ आभूषण। श्रुत-संवेग भाव आत्म-शान्ति का परम उपाय है तथा यही मोक्ष-प्रासाद का विराट्-द्वार है।

49. Modesty and sweet words are two excellent ornaments of the humanity. To have affection for the Scripture is the finest means to attain soul-tranquility; it is the doorway to the palace of liberation.

---

50. श्रुति श्रुतभूत कर्ण-प्रियता के साथ अंत:करण को प्रिय होनी चाहिए। धर्म-निरपेक्ष जीवन सुगन्ध-शून्य पुष्पवत है। पंचमकाल में श्रुत-आराधना, स्वाध्याय परम-तप और ध्यान है, इसलिए सतत-स्वाध्याय में लीन रहो।

50. The scriptural gospel should not only be pleasing to your ears but also to your heart. The life without the dharma is like the flower without fragrance. In this fifth period (the *kali* age), the adoration *(ārādhanā)* of the Scripture *(śruta)* and the study-of-the-Scripture *(svādhyāya)* constitute supreme austerity *(tapa)* and meditation *(dhyāna)*. Remain engrossed in the study-of-the-Scripture.

---

51. अहो ज्ञानी! संसार की माताओं की गोद में जाओगे तो बदनाम हो जाओगे, पर माँ–भारती जिनवाणी की गोद में जाओगे तो यशवान हो जाओगे।

51. O wise man! You will be discredited if you sit in the laps of worldly mothers, but attain glory if you sit in the lap of *Mā Bhāratī Jinavāṇī*.

---

52. अहो मित्र! जगत् की ललनाएँ गले पड़ गईं तो कंगाल हो जाओगे और वागीश्वरी माँ जिनवाणी गले में बस गई तो मालामाल हो जाओगे।

52. O friend! If lascivious women of the world fall for you, you will become a pauper; if *Vāgīśvarī Mā Jinavāṇī* sets herself in your throat, you will become super-rich.

---

53. धैर्य व्यक्ति की अंतरंग शक्ति का परिचायक है और अधीरता आत्म–बुराई जो आत्म–विकास का प्रचण्ड गति–अवरोधक है, इसलिए अधीरता से शीघ्र ही आत्म–रक्षा करो।

53. Forbearance is an internal strength and impatience a weakness that acts as the speed-breaker for soul-development. Save your soul from impatience.

---

54. अहो आत्मन्! भवातीत होना है तो पर–भावों के राग की भावना से अतीत हो जाना चाहिए। आपके बारे में कौन क्या सोच रहा है, इस पर विचार मत करो। मैं लोगों के बारे में क्या सोचता हूँ, इस पर विचार करो, यही सम्यक्–सदाचार है।

54. O soul! If you wish to snap world-wandering, renounce dispositions based on the 'other'. Do not think about what others think of you. Think of what you think of others; this is the right conduct.

• मंगल भावना •

स्वयं जियो व अन्य जगति के सर्व–जीवों को जीने दो। अहिंसा, दया, करुणा, मैत्री, वात्सल्यपूर्ण–धर्म जगति पर सदा–सदा जयवन्त हो। साथ ही **'सत्यार्थ–बोध'** की उपलब्धि विश्व–धरा पर तब–तक जयवंत रहे जब–तक अवनि–अम्बर का अन्त न हो।

Live and let others live. Let the dharma of non-injury, pity, compassion, brotherhood and affection prevail forever on the earth! Let the truth, that is the ***'satyārtha-bodha'***, prevail till the end of the earth and the sky!

* * *

'सत्यार्थ-बोध' श्रुतनिष्ठ, प्रत्युत्पन्नमति, अध्यात्मयोगी, निर्ग्रन्थनाथ विशुद्धसागरजी गुरुदेव की; अंतरंग मन के मनन, चित्त के चिंतन-मंथन, चैतन्य के तत्त्व-ज्ञान से प्रसूत एक मौलिक कृति है; जो पाश्चात्य-संस्कृति से अशांत पथ भ्रमित मानवों को स्वात्म-संस्कृति के प्रति चेतना प्रदान कर सुप्त-मानवीय-आदर्शों को जागृति प्रदान कर नैतिकपूर्ण जीवन निर्माण के लिए जनोपयोगी, पठनीय, अनुकरणीय, स्तुत्य एवं महत्त्वपूर्ण है।

'सत्यार्थ-बोध' इसलिए और अधिक महत्त्वपूर्ण है कि- यह सत्य-अहिंसा के पथिक पग-विहारी, आत्मयोगी, निष्ग्रह-साधक के द्वारा स्वांत-सुखाय ही उद्भूत हुई है, जनहित हो जाय तो 'सोने-पर-सुहागा' कहावत सिद्ध होगी। यह सत्य को अनुभूत वेदन करने वाले सातिशय श्रुत-धर निर्ग्रन्थ पथ के पथिक, विश्व-मैत्री के पक्षधर, सर्व-जीवों पर करुणावान, समताधारी, क्षमाशील, परिग्रह-शून्य, न्याय-प्रवीण, ज्ञानी-ध्यानी, निर्ग्रन्थों के मुकुट-मणी, ज्येष्ठ-श्रेष्ठ, सर्वमान्य तत्त्वमनीषी, आत्म-साधक, जिनशासन-प्रकाशक, सुव्रत-धारक आचार्य गुरुदेव विशुद्धसागर जी द्वारा सृजित है।

श्रमण सुव्रतसागर मुनि

Behavioural scientists the world over have spent incalculable time trying to establish a relationship between money and happiness. Their research suggests that money, at least up to a certain level, has the power to make one happy. Further, after attaining that level, spending money on others in form of shared experiences, buying all sorts of insurances, going on stress-free vacations, having expensive and lavish dinners, and gaining more leisure time by hiring people to help around contribute to happiness. They have absolutely no vision beyond the present life. Profound ideas like acquiring faith and knowledge, observing vows such as non-injury and limiting possessions, fasting, giving up of external and internal attachments, self-restraint, enduring afflictions, austerities, concentration and meditation are foreign to them. They know neither the true nature of happiness nor the true value of money.

With no vision beyond the present life, they have failed miserably to understand the Truth. True happiness does not reside in sensual pleasures – which invariably are followed by the loss of vitality and despondency – and is an attribute of the soul.

Ācārya Viśuddhasāgara's ***'Satyārtha-bodha'*** – 'Know The Truth' – through its thirty-one chapters, instructs us on what attributes we need to adopt or renounce in order to attain the supreme state of perfection and bliss, in life present and beyond.

The instructions provided in the book constitute the true '*dharma*' – the own-nature of substances – applicable universally to the mankind.

Vijay K. Jain, *English Translator*

ISBN: 9788193272688

विकल्प
Vikalp Printers